णमो सुयस्स

उत्तराध्ययन सूत्र

(हिन्दी भाषानुवाद सहित)

अनुवादक
बाल ब्रह्मचारी शास्त्रोद्धारक
पंडित मुनि जैनाचार्य श्री अमोलक ऋषिजी महाराज

प्रकाशक
श्री अमोल जैन ज्ञानालय
धुलिया (महा०)

णमो सुयस्य

उत्तराध्ययन सूत्र

(हिन्दी भाषानुवाद सहित)

अनुवादक
बाल ब्रह्मचारी शास्त्रोद्धारक
पंडित मुनि जैनाचार्य श्री अमोलक ऋषिजी महाराज

प्रकाशक
श्री अमोल जैन ज्ञानालय
धुलिया (महा०)

आगम : उत्तराध्ययन सूत्र

अनुवादक : जैनाचार्य, शास्त्रोद्धारक श्री अमोलक ऋषिजी म०सा०

संयोजक : प्रवर्त्तक गुरुदेव श्री कल्याण ऋषिजी म०सा०

© सम्प्रस्तोता : उपप्रवर्त्तक गुरुदेव श्री तारक ऋषिजी म०सा०

सहायक : श्री लोकेश ऋषिजी म०सा०
श्री सुयोग ऋषिजी म०सा०

द्वितीय संस्करण : २००१

मूल्य : ६०.००

प्रकाशक व प्राप्ति स्थान
श्री अमोल जैन ज्ञानालय
कल्याण स्वामी रोड
गली नं० २
धुलिया-४२४००१
फोन नं० ०२५६२-३७९२३

अन्य प्राप्ति स्थान :
भारतीय विद्या प्रकाशन
१, यू. बी., जवाहरनगर, बंग्लो रोड, दिल्ली-११०००७ फोन : (०११) ३९७१५७०

भारतीय बुक कार्पोरेशन
(१) १, यू. बी., जवाहरनगर, बंग्लो रोड, दिल्ली-११०००७ फोन : (०११) ३९७१५७०
E-mail : bvpbooks@hotmail.com
(२) पो. बा. नं. ११०८, कचौड़ी गली, वाराणसी-२२१००१ फोन : (०५४२) ३९२३७६

मुद्रक :
जैन अमर प्रिंटिंग एजेन्सी
जवाहरनगर, बंग्लो रोड, दिल्ली-११०००७

प्रकाशकीय

आज से अर्ध शताब्दी पूर्व जैनाचार्य, शास्त्रोद्धारक, शांति सम्राट् पूज्य श्री अमोलक ऋषिजी म०सा० ने स्थानकवासी परम्परा में सर्वप्रथम ३२ आगमों का हिन्दी भाषा में अनुवाद किया था। शास्त्रोद्धारक का कार्य राजा बहादुर लाला सुखदेव सहाय जी के सहयोग से वि०सं० १९७२ से वि०सं० १९७६ तदनुसार ई०सं० १९१६ से ई०सं १९२० लगभग साढ़े तीन वर्ष में सिकन्द्राबाद में सम्पन्न हुआ था। सर्वजन हिताय, सर्वजन सुखाय के रूप में वह कार्य युगयुगान्तर तक स्मरणीय स्मारक के रूप में ऐतिहासिक देन रहेगी।

वर्तमान समय में जैनाचार्य, शास्त्रोद्धारक श्री अमोलक ऋषिजी म० के आगम अप्राप्य हो गये हैं। हमें काफी लम्बे अर्से से स्वाध्यायी बन्धुओं का विशेष आग्रह प्राप्त होता रहा कि श्रद्धेय श्री के आगमों का पुनः प्रकाशन कराएं। प्रवर्त्तक श्री कल्याण ऋषिजी म०सा० ने अपने जीवन काल में अपने गुरुदेव के पदचिह्नों पर चलते हुए अनेक शास्त्रों एवं ग्रंथों का पुनः प्रकाशन करवाकर समाज को उपकृत किया। उन्हीं के प्रधान शिष्य उप प्रवर्त्तक, श्रद्धेय श्री तारक ऋषिजी म०सा० भी अपने गुरु द्वारा चिह्नित पद चिह्नों का सफलता पुरस्सर अनुसरण कर रहे हैं। प्रस्तुत 'उत्तराध्ययन सूत्र' का पुनर्प्रकाशन इन के ही प्रयासों से प्रकाशित हो रहा है। एतदर्थ हम कृतज्ञता ज्ञापित करते हैं।

हमें सात्त्विक गौरव है कि आगम प्रकाशन की पुष्पमाला में यह एक और नव्य पुष्प पिरोया जा रहा है जिसकी मधुर सौरभ से आगम रसिक लाभान्वित हुए बिना नहीं रहेंगे, जिससे हमारा यह प्रकाशन कार्य सर्वथा सार्थक सिद्ध होगा।

प्रेमसुख छाजेड़
मंत्री
श्री अमोल जैन ज्ञानालय
धुलिया

उत्तराध्ययन सूत्र के अर्थ सौजन्य दाता

१. श्री मान् राजेश जी, विकास जी जैन–वीर नगर, दिल्ली

२. श्री मान् सुभाष जी जैन, दिल्ली

३. श्रीमती नगीना देवी धर्मपत्नी किसन लाल जी चोरडीया की स्मृति में उनके उनके अनुजों द्वारा चांदनी चौक दरीबा, दिल्ली

४. श्री चंद जी जैन (जैन बन्धु)–पंजाबी बाग, दिल्ली

५. श्री राजकुमार जी जैन–रूप नगर, दिल्ली

६. श्री आत्माराम जी जैन–देहुरोड, पुणा

७. श्री दर्शन लाल जी जैन–डेरावल नगर, दिल्ली

८. श्री मोडीलाल जी किसनलाल जी प्रकाशचंद जी कोठारी–अहमदाबाद

९. श्री अशोक जी जैन–(उपाध्यक्ष महासभा), दिल्ली

१०. श्री जनकराज जी जैन–वीर नगर, दिल्ली

इन सभी अर्थ सौजन्य कर्त्ता को मैं संस्था की ओर से साधुवाद प्रकट करता हूँ।

प्रेमसुख छाजेड
मन्त्री
श्री अमोल जैन ज्ञानाल्य धुलिया (महा.)

शुभम् वचनम्

महाप्रभु महावीर ने राग और द्वेष पर विजयश्री प्राप्त की थी अतएव वे जिन थे तीर्थंकर थे। तीर्थंकर की दिव्य वाणी को जैन परम्परा में आगम कहा है। श्रमण प्रभु महावीर के समग्र विचार, समग्र विश्वास और समग्र आचार का संग्रह जिसमें हुआ है उसी को द्वादशंगी कहा जाता है। महाप्रभु ने अपना उपदेश उस युग की जन भाषा में दिया था वह भाषा अर्धमागधी है। अर्धमागधी भाषा को देववाणी भी कहा गया है। जैन संस्कृति के विचारों और आचारों का मूलश्रोत आगम साहित्य है।

जैन आगम साहित्य में उत्तराध्ययन सूत्र का भी गौरवपूर्ण स्थान रहा है। यह वह आगम है जिसमें चतुर्विध अनुयोग का सहजभावेण अन्तर्भाव हुआ है। प्रस्तुत आगम की अभिधा से भी यह स्पष्ट है कि अध्ययन उत्तर अर्थात् उत्तम अध्ययन है यह वह अध्यात्म आहार है जो आत्मा को पुष्टि और तुष्टि प्रदान करता है। यह वस्तुतः जीवन-दर्शन है, जीवन सूत्र है, और जीवन-भाष्य है। यथार्थ अर्थ में प्रस्तुत आगम जैन जगत का गीता दर्शन है। इस आगम पर प्रकृत, संस्कृत, अपभ्रंश और लोक-भाषाओं में जितनी टीकाएँ, उपटीकाएँ और अनुवाद प्रस्तुत हुए हैं उतने किसी आगम पर दृष्टिगत नहीं हुए हैं। चिरकाल से इस आगम पर व्याख्याओं का प्रवाह अजस् रूपेण प्रवहमान हुआ है।

स्थानकवासी परम्परा एक विशुद्ध परम्परा है। इस परम्परा में अनेक आगम मनीषी आचार्य हुए हैं। आराध्य स्वरूप आचार्य श्री अमोलकऋषि जी म० एक ऐसे महाश्रमण आगम अध्येता आचार्य हुए हैं जिन्होंने आगम बत्तीसी को राष्ट्र भाषा हिन्दी में सर्वप्रथम प्रस्तुत किया है। यह एक ऐसा अद्‌भुत कार्य है जिस कार्य को उन्होंने उस युग में मूर्त-रूप प्रदान किया था। उनका साहस और संकल्प वस्तुतः अद्वितीय रूप सिद्ध हुआ। उन्होंने अपने जीवनकाल में विविध विषयों पर शताधिक ग्रन्थों की रचना की। उनके द्वारा प्रणीत जैन तत्त्व प्रकाश उनकी अमर-ख्याती को आज भी प्रकाशमान किए हैं। उन्हीं युग-पुरुष आचार्यश्री के द्वारा अनुदित उत्तराध्ययन सूत्र इतना अधिक लोकप्रिय रहा कि कतिपय वर्षों से यह आगम अनुवाद दुष्प्राप्य हो गया था। उप प्रवर्तक श्री तारकऋषि जी म० के निर्देशन में श्री सुयोगऋषि जी म० ने प्रस्तुत आगम को जन सुलभ बनाने की दृष्टि से विशेष प्रयास किया। परम्परा की दृष्टि से वे प्रपौत्र शिष्य हैं और उन्होंने जिस रूप में अपने उत्तरदायित्व का निर्वाह किया है वह प्रशंसनीय है।

मुझे आत्मिक विश्वास है कि प्रस्तुत संस्करण आगम अध्येताओं और स्वाध्यायशील जिज्ञासुओं के लिए उपादेय सिद्ध होगा और यह संस्करण जन मानस में सद्‌संस्कारों के अमृत प्रवाह को प्रवाहित करेगा। इसी मंगल भावना के साथ।

(आचार्य शिवमुनि)

श्री एस०एस० जैन सभा
वीरनगर, जैन कॉलेनी
दिल्ली-११० ००७
दिनांक : २ नवम्बर, २००१

संप्रस्तोता की कलम से

जैन आगम साहित्य जितना व्यापक है उतना ही गंभीर भी है। यह वह साहित्य है जिसमें जैन विद्या के प्रत्येक पहलू का सविस्तृत विवेचन और तलस्पर्शी विश्लेषण हुआ है। यह ध्रुव सत्य है कि 'उत्तराध्ययन सूत्र' एक ऐसा आगम रत्नाकर है जिसमें विविध विषयों की मणिमुक्ता अपनी शुभ्र से प्रदीप्तमान है। जो विषय वस्तु अन्यान्य आगमों में नहीं है वह प्रस्तुत उत्तराध्ययन सूत्र में है।

जैनाचार्य, शास्त्रोद्धारक श्री अमोलक ऋषिजी म० ने जो आगम बत्तीसी का हिन्दी भाषानुवाद किया था। वह एक अद्‌भुत और ऐतिहासिक कार्य सम्पन्न किया था। उनकी अविचल निष्ठा, साहस, संकल्प और आगमीय ज्ञान की तलस्पर्शिता, गम्भीरता उनके कार्य से ही स्वतः स्पष्टतः परिलक्षित हो जाती है।

प्रस्तुत 'उत्तराध्ययन सूत्र' के द्वितीय संस्करण में श्रद्धेय श्री जी के भाव, भाषा और शैली की मौलिकता को बनाए रखने में समग्र रूपेण जागरूकता रखी है। इसके पूर्व संस्करण में मुद्रण की दृष्टि से जो स्खलनाएं हमें दृष्टिगत हुई है केवल उन्हें परिमार्जित किया है।

प्रस्तुत द्वितीय संस्करण के नव्य संस्कार में आचार्य सम्राट् श्री शिव मुनि जी म० सा० के आशीर्वाद से एवं आगम मनीषी श्री रमेश मुनिजी म० प्रखर वक्ता श्री लोकेश ऋषिजी म० एवं सुयोग्य शिष्य सुयोग ऋषिजी की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही। इसके अतिरिक्त श्री हितेष ऋषिजी, श्री रसिक ऋषिजी म०, श्री सुशांत ऋषिजी म०, श्री सुबोध ऋषिजी म० का स्नेह सद्‌भाव भी स्मरणीय है। एवं विशेषतः महासती डॉ० मुक्ति प्रभाजी म० आदि सहयोगी साध्वी वृन्द का आलेखन भी उक्त कार्य में उल्लेखनीय रहा।

मुझे हार्दिक प्रसन्नता है कि प्रस्तुत उत्तराध्ययन सूत्र का द्वितीय संस्करण जिज्ञासुओं के कर कमलों में प्रस्तुत किया जा रहा है। मुझे पूर्णतः विश्वास है कि यह द्वितीय संस्करण जन-जन के लिए अद्वितीय सिद्ध होगा।

तारक ऋषि
[श्रमण संघीय उप प्रवर्त्तक]

अनुक्रम

१.	विनयश्रुत नामकं प्रथममध्ययनम्	.....	.....	.....	.....	१
२.	परीषह नामकं द्वितीयमध्ययनम्	.....	.....	.....	.....	१८
३.	चुतुरंगा नामकं तृतीयमध्ययनम्	.....	.....	.....	.....	४१
४.	असंस्कृत जीवित नामकं चतुर्थमध्ययनम्	.....	.....	.....	.....	५२
५.	अकाम सकाम मरणं नामकं पंचममध्ययनम्	.....	.....	.....	.....	५९
६.	क्षुल्लक निर्ग्रंथ नामकं षष्ठमध्ययनम्	.....	.....	.....	.....	६५
७.	एलयं नामकं सप्तमध्ययनम्	.....	.....	.....	.....	६९
८.	काविलियं नामकं अष्टममध्ययनम्	.....	.....	.....	.....	७५
९.	नमिप्रवर्ज्या नामकं नवममध्ययनम्	.....	.....	.....	.....	८०
१०.	द्रुमपत्र नामकं दशममध्ययनम्	.....	.....	.....	.....	९३
११.	बहुश्रुत नामकं एकादश अध्ययनम्	.....	.....	.....	.....	९९
१२.	हरिएसबल नामकं द्वादशमध्ययनम्	.....	.....	.....	.....	१०५
१३.	चित्तसंभूति नामकं त्रयोदशमध्ययनम्	.....	.....	.....	.....	११५
१४.	इक्षुकार नामकं चतुर्दशमध्ययनम्	.....	.....	.....	.....	१२२
१५.	सभिक्षु नामकं पञ्चदशमध्ययनम्	.....	.....	.....	.....	१३२
१६.	ब्रह्मचर्य समाधि स्थानक नामकं षोडशमध्ययनम्	.....	.....	.....	.....	१३६
१७.	पापश्रमणीयं सप्तदशमध्ययनम्	.....	.....	.....	.....	१४३
१८.	संयतीय नामकं अष्टादशं अध्ययनम्	.....	.....	.....	.....	१४६
१९.	मृगापुत्रीयनामकमेकोनविंशतितममध्ययनम्	.....	.....	.....	.....	१६७
२०.	महानिर्ग्रन्थीय नामकं विंशतितममध्ययनम्	.....	.....	.....	.....	१८१
२१.	समुद्रपालीक नामकं एकविंशतितममध्ययनम्	.....	.....	.....	.....	१९१
२२.	रथनेमी द्वाविंशतितमध्ययनम्	.....	.....	.....	.....	१९५
२३.	केशिगौतमिकं त्रयोविंशतितममध्ययनम्	.....	.....	.....	.....	२०२
२४.	अष्ट प्रवचन माता नामकं चतुर्विंशतितममध्ययनम्	.....	.....	.....	.....	२१६
२५.	यज्ञकीय नामकं पंचविंशतितममध्ययनम्	.....	.....	.....	.....	२२४

२६. समाचारी नामकं षड्विंशतितममध्ययनं २३२
२७. खलुंकीय नामकं सप्तविंशतितममध्ययनम् २४५
२८. मोक्षमार्गगति नामकं अष्टाविंशतितममध्ययनम् २४८
२९. सम्यक्त्व पराक्रम नामकं एकोनत्रिंशतममध्ययनम् २६२
३०. तपमार्ग नामकं त्रिंशतममध्ययनम् २८१
३१. चरणविधि नामकं एकत्रिंशत्तममध्ययनम् २८८
३२. प्रमाद स्थान नामकं द्वात्रिंशतममध्ययनम् २९७
३३. कर्म प्रकृति नामकं त्रयोत्रिंशतममध्ययनम् ३१७
३४. लेश्याध्ययन नामकं चतुर्त्रिंशतममध्ययनम् ३२३
३५. अणगारयध्यणं पंचत्रिंशतममध्ययनम् ३३२
३६. जीवाजीव विभक्ति षट्त्रिंशत्तममध्ययनम् ३३६

१

पढमं विणयसुयऽज्झयणं
विनयश्रुतनामकं प्रथमं अध्ययनम्

संजोगा विप्पमुक्कस्स, अणगारस्स भिक्खुणो।
विणयं पाउकरिस्सामि, आणुपुव्विं सुणेह मे॥१॥

श्री सुधर्मास्वामी अपने शिष्य श्री जम्बू स्वामी से कहते हैं कि नव प्रकार का बाह्य व चौदह प्रकार का आभ्यंतर परिग्रह, इन दोनों प्रकार के संयोगों का त्याग करने वाले अनगार भिक्षुकों का विनय रूप आचार जिस प्रकार है वैसा ही प्रकट करूँगा, उसे तुम अनुक्रम से श्रवण करो॥१॥

आणानिद्देसकरे, गुरूणमुववायकारए।
इंगियाकारसंपण्णे, से विणीए त्ति वुच्चइ॥२॥

विनीत के लक्षण–जो सदैव गुरु की आज्ञा प्रमाण करने वाला हो, गुरु की दृष्टिगत में अथवा गुरु के वचन सुख से श्रवण किया जावे वैसे स्थान में निवास करने वाला होवे, मुख नेत्रादिका के चिह्नों से गुरु के मनोभाव जानकर वैसा ही कार्य करने वाला होवे, वही शिष्य विनीत कहलाता है॥२॥

विनय आत्म-कल्याण का आधार है। विनय धर्म की प्रतिमूर्ति थी–गौतम स्वामी। वे गोबर ग्राम के रहने वाले गौतम गोत्रीय वसुभूति ब्राह्मण के पुत्र और माता पृथ्वी के आत्मज थे, उनका नाम इन्द्रभूति था। ये चारवेद और चौदह विद्यादि षट् शास्त्र में प्रवीण थे। ब्राह्मणों की क्रिया करने से ब्राह्मण संप्रदाय में प्रसिद्धि पाये हुये थे। एक बार राजगृही नगरी में बाहुल ब्राह्मण ने यज्ञ की रचना रच ब्राह्मणों को निमंत्रण दिया था। जिसमें ग्यारह बड़े ब्राह्मण चार हजार चार सौ ब्राह्मण के परिवार से आये थे और भी बहुत से दूसरे ब्राह्मण एकत्र हुये थे। उस समय श्री श्रमण भगवान् महावीर स्वामी भी राजगृही नगरी के गुणशील उद्यान में पधारे। वहाँ देवताओं ने समवसरण की रचना की । उस समय देवता यज्ञ मंडप के ऊपर से होते हुए समवसरण में जाने लगे। दूर से देवताओं को आते हुए देखकर इन्द्रभूति आदि ब्राह्मण बोलने लगें कि यज्ञ से आकर्षित होकर देवता भी आ रहे हैं, परन्तु वे देवता गण यज्ञ पर से होते हुए आगे चले गये, तब संशय हुआ कि ये देवता कहाँ जा रहे हैं? पृच्छा करने से किसी ने कहा कि राजगृही नगरी के गुणशील उद्यान में श्री श्रमण भगवान महावीर स्वामी पधारे हैं, उनके दर्शन के लिये देवता जा रहे हैं। ऐसा सुनकर इन्द्रभूति अभिमान सहित बोला कि मैं अकेला ही सर्वज्ञ हूँ यह दूसरा सर्वज्ञ का ढोंग करने वाला कौन इन्द्रजालिक है कि जो यज्ञ के अतिशय से आते हुए

देवताओं को भ्रमाकर अपने तरफ खींचता है? यों विचार कर अपने ५०० छात्रों सहित भगवान श्री महावीर स्वामी के पास गये वहाँ समवसरण की रचना देखते ही दिगमूढ हो गये। मन में ही विचार करने लगे कि मैंने मेरा संशय जो गुप्त कर रखा है। उसे यदि यह दूर कर देवे तो मैं उस को सर्वज्ञ मानूं। इतने में भगवान ने उन को उनके गोत्र के नाम से सम्बोधित कर कहा–अहो गौतम![१] वेद में तीन दकार हैं, इसका संदेह तेरे मन में बहुत काल से है, इसका अर्थ दान, दया व दम होता है, इतना सुनते ही उसका संशय दूर हो गया। अपने ५०० छात्रों सहित भगवान के पास दीक्षा अंगीकार की। त्रिपदी (उप्पन्नेइ वा, विगमेइ वा, धुवेइ वा) से चौदह पूर्व के ज्ञान के धारक बने अपने ज्ञानादि गुणों से सभी साधुओं में मुख्य भगवान के गणधर हुए। अनेक लब्धि प्राप्त और श्रुत ज्ञान के पारगामी होने पर भी सदैव भगवान के समीप रहते थे। संशय होने पर या बिना हुए अनेक प्रकार के प्रश्न पूछे हैं, भगवती सूत्र में भगवान से ३६००० प्रश्न पूछे हैं। सर्व गुण संपन्न होने पर भगवान पर मोहभाव होने से केवल ज्ञान की प्राप्ति नहीं हुई थी। इनके सन्मुख अनेक साधुओं को केवल ज्ञान होता देखकर वे बहुत हताश हो गये। तब भगवान ने उनको संबोधित कर कहा अहो गौतम! तेरे और मेरे में बहुत काल से प्रीति है, गत काल में हम बहुत समय साथ रहे हैं, तुम मेरे सभी साधुओं में मुख्य हो, सब वादियों में प्रतिष्ठित हो, परन्तु तुम्हारा मेरे पर मोह होने से तुमको केवल ज्ञान नहीं प्राप्त हुआ है। आगामी काल में तुम मेरे समान बनोगे। भगवान का अंतिम चातुर्मास पावापुरी में था। तब आयुष्य कर्म थोड़ा रहा जानकर गौतम स्वामी का आर्तध्यान कम करने के लिये देवश्रमण ब्राह्मण को प्रतिबोध करने करने के लिए भेज दिया और भगवान कार्तिक वद अमावास्या की आधि रात्रि में निर्वाण पधारे। निर्वाण उत्सव में देवताओं का गमनागमन देखकर गौतम स्वामी को भगवान के निर्वाण का मालूम हुआ तत्काल वे मूर्च्छित हुए, अनेक प्रकार के विलाप करने लगे तब वह प्रतिबोधित देवश्रमण बोला–अहो प्रभू! आप जैसे ज्ञानियों को गुरु के वियोग से ऐसा करना उचित नहीं है, ऐसा सुन तत्काल सावधान होकर मोहदशा कम करते हुए क्षपक श्रेणी पर चढ़े और केवल ज्ञान प्राप्त हुआ। केवल पर्याय पालकर मोक्ष पधारे।

आणानिद्देसकरे, गुरूणमणुववायकारए।
पडिणीए असंबुद्धे, अविणीए त्ति वुच्चइ॥३॥

अविनीत के लक्षण–जो विनीत के लक्षण कहे हैं उससे विपरीत अविनीत के लक्षण जानना, यथा जो गुरु अथवा तीर्थंकर की आज्ञा का अनादर करता है, जो गुरु की दृष्टिगत से अथवा गुरु के वचन सुनने में नहीं आवे ऐसे दूरस्थान में रहता है, गुरु के साथ प्रत्यनीक-वैरभाव रखता है और तत्त्वज्ञान का ज्ञाता नहीं है; वह अविनीत कहाता है॥३॥

अविनीत शिष्य सदैव दु:ख को प्राप्त करता है यथा–कूलबालु। पांच आचार के पालने वाले और आचार्य के गुण युक्त बहुत शिष्यों के परिवार वाले कोई आचार्य थे उनके शिष्यों में से एक शिष्य अविनीत था जो छद्मस्थता से लगे हुए गुरु के दोषों को सदैव निकालता था और उनकी हीलना निंदा करता ही रहता था। इतना अविनय करने पर भी आचार्य उसकी आत्मा के सुधार के लिये बहुत हित शिक्षा देते थे और ज्ञानाभ्यास कराते थे। परंतु सब को वह गलत समझता था और गुरु से सदैव वैर भाव रखता था। ग्रामानुग्राम विचरते हुये एक

---

१. अनेक स्थानों पर आत्मा के अस्तित्व के सम्बन्ध में वर्णित है।

बार गुरुदेव किसी समय एक पर्वत पर से नीचे उतर रहे थे। उस समय उनके साथ के दूसरे शिष्य आगे पीछे हो गये, और मात्र वह कुशिष्य आचार्य के पीछे आ रहा था उसने इधर-उधर देखकर आचार्य की घात करने का विचार किया और एक बड़ा पत्थर ऊपर से नीचे गिराया। उसकी आवाज सुनकर आचार्य ने पीछे देखा तो अपने कुशिष्य का दुष्कृत्य मालूम हुआ, परंतु समय देखकर अपने दोनों पाँव फैला दिये जिससे आता हुआ पत्थर दोनों पाँव के बीच में से चला गया। अब गुरु शीघ्रमेव अन्य शिष्यों के साथ हो गये और उनके सन्मुख उस अविनीत शिष्य का कर्त्तव्य बताया। सभी साधु उस कुशिष्य का तिरस्कार करने लगे, तब उसने गुरु का ही दोष बताया। गुरु समताभावी होने पर भी उस दुष्ट के प्रसंग से क्रोधातूर हो गये और उसको श्राप दिया कि तेरा दुष्ट स्त्री से विनाश होगा और अनंत भव भ्रमण करेगा। गुरु के तिरस्कार युक्त वचन सुनकर दुष्ट शिष्य हास्य करने लगा और बोलने लगा कि क्या तुम्हारे कहने मात्र से मुक्ति चली जायेगी, जब मेरी आत्मा शुद्ध है तो मुझे दोष कहाँ से प्राप्त होगा, ऐसा कहकर गुरु का त्याग कर वहाँ से चल दिया और वेणा नदी के तट पर योगियों के आश्रम में रहकर दुष्कर तपश्चर्या करने लगा। वहाँ कोई सार्थवाह प्रमुख आता तो उसके पास से निर्दोष आहार लेकर चारित्र का पालन करने लगा। चातुर्मास में वर्षा बहुत होने से नदी में अधिक पानी आया जिससे आस-पास के आश्रम ग्राम वगैरह नदी के साथ बह जाने का समय आ पहुँचा। उस समय उस साधु के तप के प्रभाव से पानी का प्रवाह मुड़ गया और आश्रम वगैरह सब निर्भय हो गये। ऐसा चमत्कार देखकर नदी के कूल को वालने (मुड़ाने) वाला होने से उस साधु का नाम कूलवालु रखा और वही नाम प्रसिद्ध हो गया। उस समय राजगृही नगरी में श्रेणिक राजा ने अपने हल विहल कुमार को सींचानक गंध हस्ती और बंकचूडामणि नामक अठारह सार हार दिये थे। कोणिक कुमार अपने पिता श्रेणिक राजा को समाप्त कर अपने ग्यारह भाईयों को राज्य का विभाग कर स्वयं राज्य करता हुआ विचरता था। अपने हाथ से पिता को मारने के बाद में उस को बहुत पश्चाताप हुआ। जिस से राजगृही नगरी छोड़कर चंपा नगरी में आकर वह कूणिक राजा रहता था। एकदा कूणिक राजा की पद्मावती रानी ने हल विहल कुमार की रानियों को सींचानक हाथी व वंकचूडा हार सहित क्रीडा करती हुई सुना। उसने कूणिक राजा से कहा और उनके पास से हार व हाथी लेने का बहुत आग्रह किया तब कूणिक राजा ने रानी को बहुत समझाया और कहा कि यह मेरे भाई के पास हार हाथी है सो मेरा ही है तू उसको लेने का आग्रह मत कर, परन्तु उसने एक बात मानी नहीं और अपना आग्रह चालू रखा। इस से कूणिक राजा ने हल-विहल कुमार को बुलाकर कहा कि हार और हाथी जो तुम्हारे पास है वह राजा के भंडार में ही शोभादायक है। इसलिए हम को दे दो। उन्होंने उत्तर दिया कि यह दोनों वस्तु पिता ने अपने हाथ से हम को दी है-इसलिए इसमें आपका किसी प्रकार का अधिकार नहीं है और भी पिता के राज्य का भाग भी हम को नहीं मिला है, यदि हम को राज्य का विभाग देते हो तो हम यह हार व हाथी आपको देंगे। कूणिक राजा ने राज्य का भाग देने की ना कही और हार व हाथी उनके पास से लेने का निश्चय किया। इससे वे दोनों भाई वहां से निकल कर अपने स्थान आये और कूणिक राजा से डरकर अपने परिवार सहित विशाला नगरी में अपने नाना चेडा राजा के पास गये। अपने नानाजी से अपना सब हाल कहा कि इस कारण से हम यहाँ आये हैं। कूणिक राजा को यह समाचार मालूम हुआ कि दोनों भाई विशाला नगरी में चेडा राजा के पास गये हैं। तब दूत द्वारा कोणिक राजा ने चेडा राजा को कहलाया कि हार व हाथी सहित दोनों भाईयों को हमारे पास भेज दो। चेडा राजा ने उत्तर दिया कि मेरी पुत्री के तीनों पुत्र मुझे तो समान हैं। यदि

तुम्हारी इच्छा हार व हाथी लेने की होवे तो इनको राज्य में से विभाग दो यदि ऐसा करने की तुम्हारी इच्छा न होवे तो जैसी तुम्हारी इच्छा होवे वैसा करो। यह सुन कूणिक राजा अपने कालिकादि दसों भाईयों की सम्मत्ति से ३३ हजार हाथी, ३३ हजार घोड़े, ३३ रथ व ३३ क्रोड पदाति सहित चेडा राजा के साथ युद्ध करने को गया। चेडा राजा उनके धर्ममित्र नव मल्ली नव लच्छी यों अठारह देश के राजाओं को यह सब हाल कहलाया। तब उनने कहलाया की शरणागत को लौटा देना योग्य नहीं है, हम आप की मदद के लिये तैयार हैं। वे प्रत्येक २, तीन २ हजार हाथी, घोड़े, रथ व तीन २ क्रोड पदाती सहित चेडा राजा के पास आये, चेडा राजा सहित १९ ही राजाओं के ५७ हजार हाथी, ५७ हजार घोड़े, ५७ हजार रथ व ५७ क्रोड पदाति के साथ कूणिक राजा ने युद्ध किया। चेडा राजा ने दस दिन में दस भाइयों को अपने अमोघ बाण से समाप्त किया। इससे कुणिक राजा भयभीत हुए और अपने पूर्व भव के मित्र चमरेन्द्र व सौधर्मेन्द्र की आराधना की। वे आकर उनसे कहने लगे कि हमको किस लिये याद किया है। कूणिक ने कहा हमारे शत्रु चेडा राजा को मारो। उन्होंने उत्तर दिया कि वह हमारा धर्मबंधु है, इसलिये यह कार्य हमारे से नहीं बन सकेगा, परन्तु हम तुमारे शरीर का रक्षण करेंगे। चमरेन्द्र ने कुणिक राजा को वज्रमय कोट दिया और दोनों इन्द्र कोणिक राजा के आगे पीछे हाथी पर बैठकर महाशिला कंटक व रथमूगल यों दो संग्राम की रचना की। दो दिन में एक क्रोड अस्सी लाख मनुष्य मारे गये।[१] फिर चेडा राजा ने कूणिक राजा को मारने के लिये बाण मारा परंतु देवयोग से उनको बाण लगा नहीं। इससे चेडा राजा की सेना में हलचल मच गई। चेडा राजा भी दरवाजा बंदकर के नगर में चला गया। अब कूणिक राजा ने प्रतिज्ञा की कि विशाला नगरी में मैं गद्धे से हल चलाऊँगा। ऐसी प्रतिज्ञा लेकर विशाला नगरी को घेरा डालकर बहुत दिन पर्यंत रहे परंतु नगर का कोट नहीं टूटा। जिससे अंदर प्रवेश नहीं होने से वह बहुत आकुल व्याकुल हुआ। उस समय आकाशवाणी हुई कि–मागधिका नामक गणिका कूलवालु साधु को भ्रष्ट करे तो विशाला नगरी कूणिक राजा विजित कर सके। ऐसा सुनकर मागधिका गणिका को बुलाया और सब बात कह दी। गणिका यह कार्य करने का वचन देकर कृत्रिम श्राविका बनी और साथ अनेक आदमी लेकर कूलवालु साधु के पास गई। उनकी बहुत मनपूर्वक भक्ति करने लगी। साधु उसके वहाँ गौचरी के लिये आये, गणिका ने अजेपालिये मिश्रित लड्डू बेहराये जिसका आहार करने से उस साधू को अतिसार का रोग हुआ। अब वह गणिका उस साधु की वैयावृत्य करने लगी। यों करते-करते उसका मन चलित कर अपना पति बना लिया। फिर उसको कहने लगी कि पैसे के लिये कुछ उद्यम करो। वह शास्त्र का ज्ञाता होने से निमित्तिज्ञ बना। कूणिक राजा ने उसको विनति की कि हम विजयी होवे वैसा करो। उसने विशाला नगरी में फिरते-फिरते एक मुहूर्त[२] स्थूभिका देखी। इस नगरी का कोट बनने से पहले उसका मुहूर्त हुआ था। जब तक वह मुहूर्तस्थूभिका रहेगी तब तक कोई भी इस विशाला नगरी में नहीं आ सकता। ऐसी प्रभाविक वह स्थूभिका थी। ऐसा जानकर नगरी के लोगों से कहने लगा कि तुमको दुःख से बचना हो तो तुम्हारे नगर में एक मुहूर्त स्थूभिका है उसका समय पूरा हो गया है यह जहाँ तक रहेगा तब तक कष्टों से तुम मुक्त नहीं होओगे। इसलिए इसको मूल में से निकाल दो। इधर कूणिक राजा को समझाया कि जब ये मुहूर्त स्थूभिका निकालने लगे तब तुम अपने लश्कर सहित

---

१. इन में से एक जीव सौधम देवलोक में, एक जीव मनुष्य गति में, और बाकि के सब जीव नरक व तिर्यंच में गये।

२. मुनि सुव्रत स्वामी के जन्म समय दिशा कुमारिका ने वहां उनका नाला गाड़कर उस पर स्थुभिका बनाई थी।

थोड़े दूर पीछे चले जाना और मूल सहित उसे निकाल देवे तब आ जाना। नगरी के सब लोग उस निमित्तिज्ञ के वचन मानकर उसको खोदने लगे कि कूणिक राजा दूर चला गया। इससे विशाला नगरी के लोगों में विशेष श्रद्धा हुई और उस मुहूर्त स्थूभिका को मूल से निकाल दिया। तब कूणिक राजा का लश्कर आकर कोट को तोड़कर नगरी में जाकर अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण की। याने गद्धे का हल नगर में चलाया। चेडा राजा को देवता ले गये। वहाँ राजा बारह व्रत की आलोचना कर संथारा सहित आयुष्य पूर्णकर देव लोक में गये। हाथी अग्नि की खाई में गिरकर मर गया, हल विहल कुमार ने दीक्षा ली, हार देवता ले गया, और कूलवालुक अविनीत मरकर नरक में गया।

जहा सुणी पूईकण्णी, निक्कसिज्जई सव्वसो।
एवं दुस्सीलपडिणीए, मुहरि निक्कसिज्जई॥४॥

अविनीत शिष्य को सड़े हुए कानवाली कुत्तिया की उपमा देते हैं–जैसे रुधिर से झरते सड़े कानवाली कुत्तिया जहाँ जाती है वहाँ से उसे निकालते हैं, वैसे ही दुष्ट आचार वाला, गुरु का प्रत्यनिक (शत्रु) तुल्य और असंबंध वचन बोलने वाला शिष्य जिस गच्छ में जाता है वहाँ से उसको निकाल देते हैं॥४॥

कणकुण्डगं चइत्ता णं, विट्ठं भुंजइ सूयरे।
एवं सीलं चइत्ताणं, दुस्सीले रमई मिए॥५॥

जैसे सूअर (भंडसुरा) चावंल प्रमुख कण के कुड़े को छोड़कर विष्ठा खाता है, वैसे ही अविनीत अज्ञानी साधु विनय-को व अच्छे आचार को छोड़कर अविनितपना रूप दुष्टाचार में रमण करता है॥५॥

सुणियाऽभावं साणस्स, सूयरस्स नरस्स य।
विणए ठवेज्ज अप्पाणं, इच्छन्तो हियमप्पणो॥६॥

श्वान, सूअर और अज्ञानी मनुष्य का भाव सुनकर अर्थात् इन तीनों दृष्टांत को श्रवण कर अपने आत्मा का हित इच्छने वाला अपने आत्मा को विनय में स्थापित करे॥६॥

तम्हा विणयमेसिज्जा, सीलं पडिलभेज्जओ।
बुद्धपुत्त नियागट्ठी, न निक्कसिज्जइ कण्हुई॥७॥

इसलिये विनय की गवेषणा करना और अच्छे आचार की प्राप्ति करना। ऐसा करने वाला शिष्य आचार्य को पुत्रवत् प्रियकारी होता है वह किसी स्थान से नहीं निकाला जाता है और अन्त में मोक्ष प्राप्त करता है॥७॥

निस्संते सियाऽमुहरी बुद्धाणं अंतिए सया।
अट्ठजुत्ताणि सिक्खिज्जा, निरट्ठाणि उ वज्जए॥८॥

आभ्यंतर कषाय मंद व बाह्य कषाय प्रशांत करने वाला सदैव वाचालता रहित अल्पभाषी ऐसा विनीत शिष्य आचार्य के पास रहकर अर्थयुक्त अर्थात् हेय ज्ञेय व उपादेय वस्तु स्वरूप के

जानकार युक्त बनकर सिद्धांत का अभ्यास करे और जो निरर्थक स्त्रियादि कथाएँ हैं उसका त्याग करे॥८॥

अणुसासिओ न कुप्पिज्जा, खंतिं सेविज्ज पंडिए।
खुड्डेहिं सह संसग्गिं, हासं कीडं च वज्जए॥९॥

सूत्रार्थ का शिक्षण अथवा नीति मार्ग में प्रवृत्ति कराते कदाचित् गुरु शिक्षा देवे तो कोप करे नहीं परन्तु क्षमा धारण करे और द्रव्य से छोटी वयवाले बालक, क्षुद्र और भाव से अज्ञानी धीठ पार्श्वस्थ (शिथिलाचारी) क्षुद्र की संगति हास्य और क्रीडा का त्याग करे॥९॥

मा य चंडालियं कासी, बहुयं मा य आलवे।
कालेण य अहिज्जित्ता, तओ झाएज्ज एगगो॥१०॥

विनीत शिष्य को गुरु हितशिक्षा देते हैं कि अहो शिष्य! जैसे चांडाल निःशंक घृणा रहित हिंसादिक कृत्य करता है वैसा चाण्डाल समान निर्दयी क्रोध का आचरन करने वाला मत बन और संबंध रहित व प्रयोजन बिना बोले नहीं क्योंकि बहुत बोलने से बहुत दोष लगते हैं। दिन तथा रात्रि के प्रथम व अंतिम प्रहर में शास्त्र का अभ्यास कर और शेष समय में ध्यान कर॥१०॥

आहच्च चंडालियं कट्टु, न निण्हविज्ज कयाइवि।
कडं कडे त्ति भासेज्जा, अकडं नो-कडे त्ति य॥११॥

छद्मस्थता से कदाचित् चाण्डालिक कृत्य क्रोध में अयोग्य काम हो गया होवे तो उसे छिपाना नहीं परंतु किये हुये को किया हुआ और नहीं किये हुए को नहीं किया हुआ वैसा कहे॥११॥

मा गलियस्सेव कसं, वयणमिच्छे पुणो पुणो।
कसं व दट्ठुमाइण्णे, पावगं परिवज्जए॥१२॥

जिस प्रकार गलियार घोड़ा दोनों पांव, वचन, लगाम और चाबुक इन पांचों प्रहार को बारंबार इच्छता है, अर्थात् पांचों प्रहार लगने से चलता है वैसे अविनीत शिष्य बारंबार गुरु आदि के वचन से दंड प्रायश्चित व अपमानादिक से प्रेरित हुआ अपूर्ण काम कर छोड़ देता है वह स्वयं भी काम से घबराया हुआ पश्चाताप करता है और गुरु को भी दुःखी करता है, जैसे जातिवंत घोड़ा अपने सवार के मन के अनुरूप लगाम के सहारे संकेत मात्र से चलता हुआ स्वयं भी सुखी होता है और सवार को भी प्रसन्न करता है, वैसे ही विनीत शिष्य गुरु की चित्तवृत्ति अंग चेष्टादिक से जानकर प्रमाद का त्याग कर कार्य करता है, जिससे वह भी सुखी रहता है और गुरु को भी प्रसन्न करता है॥१२॥

अणासवा थूलवया कुसीला, मिउंपि-चण्ड पकरंति सीसा।
चित्ताणुया लहु दक्खोववेया, पसायए ते हु दुरासयंपि॥१३॥

जो शिष्य गुरु की आज्ञा नहीं सुनने वाला, मिथ्या बोलने वाला और दुष्ट स्वभाववाला होता है, वह कोमल स्वभाववाले गुरु को भी क्रोधी बनाता है। अविनीत शिष्य दोनों की आत्मा, का

बिगाड़ करने वाला होता है और गुरु के अभिप्राय अनुसार चलने वाला, शीघ्र विलंब रहित कार्य करने वाला, ऐसा विनीत शिष्य अति क्रोधी गुरु को भी शांत करता है॥१३॥

कुशिष्य भद्र प्रकृतिवाले गुरुजनों को भी क्रोध करने के लिए विवश कर देते हैं जैसे–चण्डकौशिक। किसी एक साधु को अपने पूर्वोपार्जित पापकर्म के उदय से दुष्ट शिष्य मिला था। यह शिष्य गुरु को दुःख देने में किसी प्रकार का विलम्ब नहीं करता था, तथापि क्षमावान महात्मा उस पर किसी प्रकार से क्रोध नहीं करते थे। एक बार गुरु शिष्य दोनों बाहर स्थंडिल भूमि में गये, मार्ग में अस्पष्ट पड़े हुए छोटे मेंढक का कलेवर गुरु के पांव के नीचे आ गया। ऐसा देखकर शिष्य ने गुरु से कहा कि–आपके पांव के नीचे छोटा मेंढक मर गया है। गुरु ने नीचे देखा तो वह सूखा हुआ मृत कलेवर था। इसलिए गुरु आगे चलने लगे। शिष्य गुरु को बारंबार कहने लगा कि आपके पांव के नीचे छोटा मेंढक मर गया है। इसलिये आप प्रायश्चित लो। गुरु ने बहुत नम्रतापूर्वक उत्तर दिया कि भाई! यह मृत मेंढक का कलेवर था। परन्तु शिष्य ने इस बात को स्वीकार किया नहीं और सारे दिन यही बात कहता रहा। फिर रात्रि को प्रतिक्रमण करने के बाद शिष्य ने गुरु को उस बात का स्मरण कराया और बारंबार यही बात कहने लगा। जिससे गुरु क्षमावान होने पर भी क्रुद्ध होकर शिष्य को रजोहरण की दांडी से मारने के लिये दौड़े, अंधेरे में नहीं दिखने से स्तंभ से उनका मस्तक टकराया और मूर्च्छित होकर नीचे गिर गये और कालधर्म को प्राप्त होकर विराधिक बनकर ज्योतिषी देवता में उत्पन्न हुए। वहाँ से काल के अवसर में काल कर किसी तापस के वहाँ जन्म लिया। वहाँ पर अपने बगीचे में किसी राजपुत्र को बिना आज्ञा से फूल चुनता देखकर कुपित हुआ और खंजर लेकर मारने गया। क्रोधावेश में दौड़ते हुए एक कुएं में गिर गया और मर गया। वहाँ से मरकर बड़ा प्रचंड व दृष्टिविषवाले चंड कौशिक नागरूप में उत्पन्न हुआ। यह बहुत जीवों की घात करता था। एक बार महावीर स्वामी छद्मस्थ अवस्था में थे तब एक बार उसके बिम्ब (बिल) पर आकर कायोत्सर्ग करके खड़े रहे। वहाँ चंड कौशिक सर्प ने भगवान के अंगूठे पर दंश दिया वह क्षीर समान मधुर मालूम हुआ। इससे विचार करने लगा कि यह कौन होगा? तब भगवान ने उसको उपदेश किया कि अहो चंड कोशी! तूने क्रोध के आवेश से तेरा पवित्र चारित्र का नाश करके ऐसी अधम गति को तू प्राप्त हुआ है, तथापि क्रोध का त्याग नहीं करता है। ऐसा सुनकर उसको जाति स्मरण ज्ञान प्राप्त हुआ और अपना पूर्व भव देखा फिर ऐसे पाप से मुक्त होने के लिये अनशन व्रत अंगीकार किया। अपना मुँह बिल में रखकर शरीर का भाग बाहर किया। लोगों ने नाग देव की पूजा निमित्त से उनके शरीर को दूध, दही, घृत वगैरह चढ़ाने लगे। जिससे अनेक चींटियाँ आकर उसके शरीर को काटने लगी। तथापि उसने किंचिन्मात्र उन पर क्रोध किया नहीं, ऐसी क्षमा धारण करके वह आठवें देवलोक में गया, आगे मोक्ष में जावेगा।

विनयशील शिष्य कठोर प्रकृति वाले क्रोधी गुरु को भी सरल व शांत बना देता है यथा–उज्जयनी नगरी में चंद्ररौद्राचार्य अनेक साधु के साथ वृद्धावस्था के कारण से स्थिर वास रहे थे। आचार्य स्वभाव से क्रोधी थे। विनय पूर्वक प्रयत्न से आचार्य को प्रसन्न करके उन के पास से एक श्रेष्ठि पुत्र ने तत्त्वज्ञान प्राप्त किया, उस का मन वैराग्य में होते हुए भी उस के पिता ने उस की शादी कर दी। शादी के बाद साला बहनोई दोनों मिलकर आचार्य के दर्शन करने को आये। वहाँ साला बहनोई का विनोद करता हुआ बोला कि अहो महाराज! यह मेरे बहनोईजी बड़े ज्ञानी हैं वैसे ही वैरागी हैं, आपके शिष्य होने योग्य हैं। आप इनको दीक्षा देवें। इस प्रकार दो चार बार कहने से आचार्य क्रोधातुर बने उसका मस्तक पकड़कर लोचकर दीक्षा दे दी। उसका साला डरकर

भाग गया। अब वह शिष्य गुरु से कहने लगा कि आपने तो मेरे पर उपकार कर मुझे संसार से तारा परंतु मेरे लिये आपको बहुत परीषह झेलना पड़ेगा। क्योंकि मैं मेरे पिता का एक ही पुत्र हूँ और वह यहाँ पर अवश्य आवेंगे। इसलिये यहाँ से चला जाना अच्छा है। उस समय संध्या होने आई थी तथापि वहाँ से निकल चले। वृद्धावस्था होने से गुरु चल सके नहीं। जिस से शिष्य पर क्रुद्ध होकर आचार्य बोलने लगे कि–अरे पापिष्ट! तेरे लिये मुझे यह कष्ट उठाना पड़ा। मैं अब नहीं चल सकता हूँ। तब शिष्य बोला कि–आप मेरे स्कंध पर बैठ जावो। आपको मैं ले चलूँगा। अब वह शिष्य आचार्य को अपने स्कंध पर लेकर चलने लगा, परन्तु अंधेरे में अच्छी तरह नहीं दिखने से शिष्य का पांव ऊँचा-नीचा पड़ता था, जिससे आचार्य को शरीर हिचकोले खाता हुआ खेदित होने लगा। आचार्य क्रोधातुर बनकर शिष्य के मस्तक पर मुष्टि के प्रहार से मारने लगे, परन्तु शिष्य किंचिन्मात्र भी क्रोध नहीं करता था और शांत भाव से विचार करता था कि मेरे जैसे पापी को धिक्कार होवे कि सुख से रहे हुए गुरु को मैंने दुःखित कर दिया। यों पश्चाताप करते हुए क्षपक श्रेणि में चढ़ कर घन घातिक कर्मों का क्षय कर केवल ज्ञान केवल दर्शन प्राप्त किया। सर्वज्ञ सर्व दर्शी होने से अच्छे मार्ग पर चले हुए गुरु हिचकारा नहीं पाने लगे तब गुरु बोलने लगे कि–"मार-सार" शिष्य बोले–"गुरु उपकार" गुरु ने पूछा कि क्या ज्ञान हुआ है? शिष्य ने कहा हाँ। गुरु ने पूछा कि प्रतिपाति की अप्रतिपाति? शिष्य ने कहा कि–अप्रतिपाति ज्ञान मुझे हुआ है, तब गुरु उनके स्कंध से शीघ्रमेव नीचे उतर गये और पश्चाताप करने लगे कि मेरे जैसे दुष्ट ने केवली की अशातना की। इस तरह पश्चाताप करते हुए वह भी क्षपक श्रेणी में चढ़कर कर्म का क्षय कर केवलज्ञान केवल दर्शन को प्राप्त हुए। इस तरह विनीत शिष्य दोनों के आत्मा का कल्याण करने वाला होता है।

नापुटठो वागरे किंचि, पुट्ठो वा नालियं वए।
कोहं असच्चं कुव्वेज्जा, धारेज्जा पियमप्पियं॥१४॥

गुरु आदि के बिना पूछे विनीत शिष्य कुछ भी बोले नहीं और पूछने पर मृषा बोले नहीं, कदाचित्त् क्रोध के अधीन बनकर जो कुछ अयोग्य कार्य किया होवे तो उसे क्षमाकर निष्फल बनावे और विनयवंत का कर्तव्य प्रियकारी व अविनयवंत का कर्तव्य अप्रियकारी है ऐसा विचार धारण कर विनय करें॥१४॥

क्रोध को सर्वथा हेय समझकर उसका त्याग करें यथा–किसी ग्राम में अपनी माता सहित दो क्षत्रिय पुत्र रहते थे। इन दोनों भाइयों में से बड़े भाई को किसी ने मार डाला। जिस से इस की माता बोली कि–क्षत्रिय का धर्म है कि दुश्मन से वैर लेना। इसलिये तू दुश्मन को ले आ। वह अपने भाई की घात करने वाले को पकड़ लाया और अपनी माता के सन्मुख खड़ा कर खडग उठाकर मारने लगा। तब वैरी मुख में तृण लेकर बोला कि मैं आपके शरण हूँ। ऐसा सुन उसकी माता बोली–अहो पुत्र! शरणागत को मारने का क्षत्रियों का धर्म नहीं है तब पुत्र बोला कि मुझे क्रोध आ रहा है तो अब मैं क्या करुँ? तब माता ने कहा कि क्रोध को क्षमा में बदल दो। माता का वचन मान्यकर पुत्र ने दुश्मन को अच्छा सम्मान दिया और उसके स्थान पहुँचा दिया। ऐसे ही साधु के छः ही काया के जीव शरणागत हैं उन में से कोई अज्ञानता से अपराध करे तो उस पर क्षमा रखना चाहिये और उस को क्षमा देना चाहिये।

प्रिय व अप्रिय में हितशिक्षा धारण करे यथा किसी नगर में राजा राज्य करता था उसका पुत्र बहुत व्याधिग्रस्त था। वह राजा प्रतिदिन अनेक वैद्य वगैरह को बुला कर उसका उपचार कराता था तो भी उस का रोग नहीं मिटा था। अन्यदा उस नगर में तीन मंत्रवादी आये। राजा को समाचार मिलने पर उन तीनों वैद्य को बुलाया और अपने पुत्र का उपचार करने के लिए कहा। तब उन में से एक वैद्य ने कहा कि मेरी औषधि से पुराना रोग चला जाता है और रोग नहीं होवे तो नया रोग आता है। राजा बोले–पेट मसल कर शूल करने जैसी तेरी औषधि हम को पसन्द नहीं है। दूसरा बोला कि मेरी औषधि से रोग चला जाता है परन्तु गुण अवगुण कुछ करे नहीं ऐसा है। तब राजा बोला कि पानी मन्थन करने समान तुम्हारी औषधि की हमें जरुरत नहीं है। तीसरा वैद्य बोला कि मेरी औषधि से रोग होवे तो चला जाता है और रोग होवे नहीं तो शरीर में पुष्टि करता है। राजा ने उसकी पास से औषधि दिलाकर पुत्र को निरोगी किया। ऐसे ही साधु भी तीसरे वैद्य की औषधि समान प्रियकारी कर्तव्य का आचरण करे।

अप्पा चेव दमेयव्वो, अप्पा हु खलु दुद्दमो।
अप्पा दंतो सुही होइ, अस्सिं लोए परत्थ य॥१५॥

आत्मा का दमन करना दुष्कर है। परन्तु आत्म दमन करने वाला ही इस लोक व परलोक में सुखी होता है; इसलिये आत्म दमन करना चाहिये॥१५॥

आत्म दमन पर पल्लीपति की कथा प्रेक्षणीय है–किसी समय एक साधु चौमासा करने जाते समय रास्ता भूल कर चोर पल्ली में चले गये। वहाँ पल्लीपति से बोले कि भाई! आज संध्या से चातुर्मास लगता है फिर हम को विहार करना नहीं कल्पता है, इसलिये यदि तुम्हारी आज्ञा होवे तो यहाँ रहें। पल्लीपति ने कहा कि–आप यहाँ सुख से रहो परन्तु उपदेश करना नहीं। पल्लीपति ने दिये हुए स्थान में ज्ञान ध्यान, तप व संयम से आत्मा को भावित करते हुए साधु ने चातुर्मास पूर्ण करके विहार किया और पल्लीपति पहुँचाने गया। साधुजी ने उस पल्लीपति को समझाकर अनजान फल खाने की प्रतिज्ञा करायी एक बार सब चोरों ने राजा का खजाना लूटकर भयंकर जंगल में छिप गये। तीन दिन तक कुछ खाने-पीने को मिला नहीं। चौथे दिन किंपाक वृक्षों को देखकर उनके फलों को सभी चोर तोड़-तोड़कर खाने लगे और पल्लीपति को भी दिये। पल्लीपति ने उस फल का नाम पूछा परन्तु किसी को उसका नाम मालूम नहीं था। तब पल्लीपति ने कहा कि मुझे ऐसे अनजान फल नहीं खाने की प्रतिज्ञा है इसे मैं खाऊँगा नहीं। ऐसे विकट प्रसंग में भी व्रत पर कायम रहा और फल खाये नहीं थोड़ी देर बाद उन फलों का विष सब चोरों पर असर करने लगा और सब चोर मर गये केवल पल्लीपति रह गया। वह पल्लीपति आनंदित होता हुआ और साधुओं के गुण गाता हुआ सब धन लेकर अपने घर आया और सुखी हुआ। इस प्रकार जो आत्मदमन नहीं करते हैं वे चोरों की तरह दुःख पाते हैं और आत्म-दमन करने वाले पल्लीपति जैसे सुखी होते हैं।

वरं मे अप्पा दंतो संजमेण तवेण य।
माहं परेहिं दम्मंतो, बंधणेहि वहेहिं य॥१६॥

मुझे अन्य कोई वध बंधन से न मारे इसलिये, सत्तरह प्रकार के संयम व बारह प्रकार के तप से आत्मा का दमन करना श्रेय है॥१६॥

आत्मदमन पर सींचानक हस्ती की कथा प्रेक्षणीय है–विंध्याचल पर्वत की तलहटी में एक तापस के आश्रम में बहुत तापस रहते थे। उस आश्रम के पास जंगल में हाथी व हथनियों का यूथ रहता था। उस यूथ का अधिपति हाथी हथनियों के भोग में ऐसा लुब्ध बना था कि नरहस्ती पेदा होता तो जन्मते ही उस को मार डालता था। एक बार एक हथनी को गर्भ रहा और कदाचित पुत्र होगा तो हाथी मार डालेगा इस विचार से पुत्र की रक्षा के लिये अपंग का ढोंग धारण कर पीछ-पीछे रहने लगी। कभी एक दिन कभी दो दिन बीच में अन्तर डाल मिलने लगी इससे हाथी को ऐसा विश्वास हुआ कि अपंग होने से यह अपने साथ नहीं चल सकती है इस तरह करते-करते हथनी ने तापसों के आश्रम में पुत्र प्रसव किया। वह बच्चा बड़ा होकर उन तापसों के बालकों के साथ वृक्षों को अपनी सूंड में पानी लेकर सींचता था इससे तापसों ने उसका नाम सींचानक दिया। जब वह सींचानक यौवन को प्राप्त हुआ तब वह हथनियों के यूथ में चला गया और उस वृद्ध हस्ती को मार कर सब हथनियों का अधिपति बना। फिर विचार किया कि जिस प्रकार तापस के आश्रम में मेरी माता ने मुझे जन्म दिया और मैंने मेरे पिता को मार डाला वैसे ही दूसरी कोई हथनी दूसरे पुत्र को जन्म दे और वह जन्म कर मुझे मार डाले! इस विचार से वह तापस के आश्रमों के पास आया और उनको उपसर्ग करने लगा सभी तापस वहाँ से घबराकर श्रेणिक राजा के पास गये और कहा कि राज्य योग्य सींचानक नामक गंध हस्ती हमारे आश्रमों के पास विंध्याचल पर्वत में है वह आप के पाटवी हस्ती होने योग्य है। राजा ने यह बात सुनकर किसी प्रकार से सींचानक हस्ती को पकड़ मंगवाया और मल स्तंभ से बांध दिया तब तापस लोग हस्ती से कहने लगे कि–रे सींचानक! हम ने तेरा रक्षण किया था, इससे बड़ा बन कर तूने हमको दु:खी किया। तेरे इस दुष्कृत्य का यही फल है। हाथी रोश में आकर अपने बंधन तोड़कर जंगल में चला गया पुन: उसे पकड़ने के लिये श्रेणिक राजा ने बहुत उपाय किये, परन्तु वह वश में आया नहीं। तब राजा ने अपनी कुलदेवी का आराधन किया। देवी ने आकर कहा कि–हे राजन्! चंपा नगरी में धनवान व ब्राह्मण के शास्त्र में पारगामी ऐसा वसु नाम का ब्राह्मण रहता था। उसको धनदत्त नामक जैन के साथ मित्रता थी। वह उस वसु ब्राह्मण को सदैव कहा करता था कि सुपात्र दान दे जिससे तेरे धन व जन्म सार्थक होवे। वह कहा करता था कि ब्राह्मण ही सुपात्र है। यो बारंबार विवाद होता था। वे दोनों वहाँ से काल कर धनदत्त तेरी नंदारानी की कुक्षि से नंदीषेण कुमार हुआ और वसु ब्राह्मण कुपात्र दान के प्रभाव से सींचनक गंध हस्ती हुआ है। यह कथन नंदीषेण कुमार को जाकर कहो वह हाथी से कहेगा तो उसको जाति स्मरण ज्ञान होगा और कुमार के साथ वह आ जायेगा। इतना कहकर कुलदेवी चली गई। श्रेणिक राजा ने नंदीषेण कुमार को भेजकर सींचानक गंध हस्ती को बड़ी धूमधाम से मंगवाया, और पट् हस्ती बनाया यही हाथी श्रेणिक राजा ने हल विहल कुमार को दिया था और इसी के लिये चेडा राजा व कूणिक राजा का बड़ा संग्राम हुआ था, जिस का कथन कूलवालु के वर्णन में किया गया है। जैसे इस हाथी ने स्वयमेव अपनी आत्मा वश की जिस से दूसरे के बंध प्रहार वगैरह से बचकर पाटवीय अभिषेक योग्य हाथी हुआ, वैसे ही जो साधु स्वयमेव आत्मदमन करते हैं वे अन्य बंध बंधन को प्राप्त नहीं होते हुए आचार्यादिक की पट्टी को प्राप्त होते हैं।

पडिणीयं च बुद्धाणं, वाया अदुव कम्मुणा।
आवी वा जइ वा रहस्से, नेव कुज्जा कयाइ वि॥१७॥

यदि गुरु कठोर वचन से शिक्षा देवे तो भी प्रगटरूप से अथवा गुप्तरूप से, वचन से अथवा कार्य से गुरु के साथ शत्रुता करे नहीं॥१७॥

न पक्खओ न पुरओ, नेव किच्चाण पिटठओ।
न जुंजे ऊरूणा ऊरूं, सयणे नो पिडस्सुणे॥१८॥

विनीत शिष्य गुरु के समान बैठे नहीं, गुरु के आगे बैठे नहीं और गुरु को पीठकर के भी बैठे नहीं गुरु के पास पाँव पर पाँव चढ़ाकर बैठे नहीं, वैसे ही शयन में तथा बिछाने में बैठा गुरु के वचन श्रवन करे नहीं परंतु आसन छोड़कर गुरु के वचन प्रमाण कर सुने॥१८॥

नेव पल्हथियं कुज्जा, पक्खपिण्डं च संजए।
पाए पसारिए वावि, न चिट्ठे गुरुणंतिए॥१९॥

विनयवान संयती गुरु के पास वस्त्र से अथवा हाथों से पालखी (दोनों घुटने) बंद कर बैठे नहीं, वैसे ही पांव पसारकर भी बैठे नहीं॥१९॥

आयरिएहिं वाहिंत्तो, तुसिणीओ न कयाई वि।
पसायपेही नियागट्ठी, उवचिट्ठे गुरुं सया॥२०॥

गुरु की मेरे पर कृपा दृष्टि है ऐसा जानने वाला मोक्षार्थी सदैव गुरु के पास रहे, और जब कभी गुरु बुलावे तब मौनस्थ रहे नहीं, रोगावस्था में होवे तो भी बिना बोला रहे नहीं॥२०॥

आलवंते लवन्ते वा न, निसीएज्ज कयाइ वि।
चइऊणमासणं धीरो, जओ जत्तं पडिस्सुणे॥२१॥

गुरु एक या बारंबार बुलावे तो बैठा रहे नहीं, कदाचित् व्याख्यान दे कार्य करता होवे तो अपना आसन छोड़कर गुरु जो आदेश करे सो धैर्यता पूर्वक व सावधानी से श्रवण करे, और वैसा ही कार्य करे॥२१॥

असणगओ न पुच्छेज्जा, नेव सेज्जागओ कयाइ वि।
आगम्मुक्कडुओ संतो, पुच्छिज्जा पंजलीउडो॥२२॥

कोई बहुसूत्री होवे तो भी अपने आसन व संथारे पर रहा हुआ गुरु को प्रश्न पूछे नहीं, परंतु गुरु के समीप आकर नमस्कार सहित दोनों हाथ जोड़कर नम्रता युक्त शास्त्रार्थादि जो इच्छा होवे सो पूछे॥२२॥

एवं विणयजुत्तस्स, सुत्तं अत्थं च तदुभयं।
पुच्छमाणस्स सीसस्स, वागरिज्ज जहासुयं॥२३॥

ऐसा विनयवान शिष्य गुरु को सूत्र अर्थ व सूत्रार्थ पूछे तो गुरु उस को जैसा स्वतः ने अपने आचार्य से सुना होवे वैसा कहे॥२३॥

मुसं परिहरे भिक्खू, न य ओहारिणिं वए।
भासादोसं परिहरे, मायं च वज्जए सया॥२४॥

साधु मृषावाद का त्याग करे, वैसे ही निश्चय कारिणी भाषा बोले नहीं, भाषा के दोषों का त्याग करें और माया कपट सदैव वर्जे॥२४॥

न लवेज्ज पुट्ठो सावज्जं, न निरट्ठं न मम्मयं।
अप्पणट्ठा परट्ठा वा, उभयस्संतरेण वा॥२५॥

कोई पूछे तो अपने लिये या दूसरे के लिये अथवा इन के सिवाय और किसी कार्य के लिये सावद्य भाषा बोले नहीं, वैसे ही निरर्थक व मर्मकारी वचन भी बोले नहीं॥२५॥

समरेसु अगारेसु, संधीसु य महापहे।
एगो एगत्थिए सद्धिं, नेव चिट्ठे न संलवे॥२६॥

लोह कारादिक शाला में, किसी मकान में, दोनों घर की संधि (गल्ली) में, और राजमार्ग में अकेला साधु अकेली स्त्री के साथ खड़ा रहे नहीं, वैसे ही वार्तालाप भी करे नहीं॥२६॥

जं मे बुद्धाऽणुसासंति, सीएण फरुसेण वा।
मम लाभो त्ति पेहाए, पयओ तं पडिस्सुणे॥२७॥

कोमल अथवा कठोर वचनों से गुरु मुझे जो हितशिक्षा देते हैं, वे मेरा लाभ के लिये देते हैं, ऐसी बुद्धि से गुरु की शिक्षा अतिशय जागरूकता पूर्वक श्रवण करे॥२७॥

अणुसासणमोवायं, दुक्कडस्स य चोयणं।
हियं तं मण्णई पण्णो, वेसं होइ असाहुणो॥२८॥

कदाचित् शिष्य से कोई दुष्कृत्य हुआ होवे और गुरु उसे कोमल अथवा कठोर भाषा से हित शिक्षा देवे तो प्रज्ञावान साधु उस शिक्षा को हितकारी मानते हैं और अविनीत शिष्य को वह शिक्षा द्वेष उत्पन्न करनेवाली होती है॥२८॥

हियं विगयमया बुद्धा, फरुसंपि अणुसासणं।
वेस्सं तं होई मूढाणं, खंतिसोहिकरं पयं॥२९॥

जो विनीत तत्त्वज्ञ और जिन के सब प्रकार के भय दूर हो गये हैं, वैसे शिष्य कठोर अनुशासन को भी हितकारी मानते हैं, ऐसी क्षमादि धर्मोत्पादक व सौम्यकारी हितशिक्षा को मूढ़ अविनीत शिष्य द्वेष रूप मानते हैं॥२९॥

आसणे उवचिट्ठेज्जा, अणुच्चे अकुए थिरे।
अप्पुट्ठाई निरुट्ठाई, निसीएज्जऽप्पकुक्कुए॥३०॥

विनीत शिष्य बिछोना पाट आदि आसन गुरु के आसन से नीचा और जो डगमगाता न होवे परंतु स्थिर जमा हुआ होवे ऐसा रखता है, चपल आसन नहीं रखता है, वैसे ही गुरु समीप रहा हुआ विना प्रयोजन उठे नहीं, प्रयोजन होने पर थोड़ा उठे अर्थात् एक काम में अनेक काम कर लेवे, वैसे ही बैठा हुआ भी हाथ पांव प्रमुख अंग को बिना प्रयोजन हिलावे नहीं॥३०॥

कालेण निक्खमे भिक्खू, कालेण य पडिक्कमे।
अकालं च विवज्जित्ता, काले कालं समायरे॥३१॥

विनीत शिष्य भिक्षा का काल अनुमान प्रमान से जाने, जिस ग्राम में भिक्षा का समय हुआ

होवे तब भिक्षा के लिये जावे, भिक्षा काल हो जाय तो तुरंत ही पुनः लौट जावे, समय बिना भिक्षा के लिये जावे नहीं॥३१॥

परिवाडीए-न चिट्ठेज्जा, भिक्खू दत्तेसणं चरे।
पडिरूवेण एसित्ता, मियं कालेण भक्खए॥३२॥

भिक्षा निमित्त निकला हुआ साधु जहाँ भोजन करने वालों की पंक्ति बैठी होवे वहाँ खड़ा रहे नहीं, गृहस्थ ने दिया हुआ शुद्ध निर्दोष आहार यथायोग्य गवेषणा करके ग्रहण करे, और सिद्धांतोक्त मर्यादित समय में आहार करें॥३२॥

नाइदूरमणासन्ने, नन्नेसिं चक्खुफासओ।
एगो चिट्ठेज्ज भत्तट्ठा, लंघित्ता तं नइक्कमे॥३३॥

गृहस्थ के वहाँ कोई भिक्षुक खड़ा होवे तो साधु उस के बहुत पास व उस से बहुत दूर खड़ा नहीं हो, वैसे ही गृहस्थ अथवा भिक्षुक की दृष्टिगत खड़ा रहे नहीं, उस को उल्लघंन कर गृहस्थ के घर में प्रवेश करे नहीं, परंतु आहार का अर्थी बना हुआ राग द्वेष रहित अकेला किसी को दृष्टि में आवे नहीं वैसे खड़ा रहे॥३३॥

नाइउच्चेव नीए वा, नासन्ने नाइदूरओ।
फासुयं परकडं पिण्डं, पडिगाहेज्ज संजए॥३४॥

भिक्षा के लिये गया हुआ विनयवान साधु दातार से बहुत ऊँचा बहुत नीचा बहुत आसन नजदीक व बहुत दूर खड़ा नहीं रहता हुआ अन्य के लिये बनाया हुआ प्रासुक एषणिक पिण्ड-आहार ग्रहण करें॥३४॥

अप्पपाणेऽप्पबीयम्मि, पडिच्छन्नम्मि संवुडे।
समयं संजए भुंजे, जयं अपरिसाडियं॥३५॥

जो स्थान चारों तरफ व ऊपर से ढका हुआ होवे, जिस में द्वीन्दियादि जीव तथा अनाज के दाने बीज आदि न होवे, ऐसे मकान में अपने जैसे आचार वाले साधु होवे उन के साथ अन्नादि नीचे नहीं डालता हुआ सरडकादि स्वाद नहीं लेता हुआ यत्न पूर्वक आहार करे॥३५॥

सुक्कडित्ति सुपक्कित्ति, सुच्छिन्ने सुहडे मडे।
सुणिट्ठिए सुलट्ठित्ति, सावज्ज वज्जए मुणी॥३६॥

आहार करते समय यह भोजन बहुत अच्छा बना, यह पकवान अच्छे पकाये, यह शाकादि का अच्छा छेदन किया, इन करेलादिक की कडवाश अच्छी हरण की, इन मोदकादिक में घृत अच्छा भरा हुआ है, यह कालाकन्दादि की चक्की आदि अच्छी जमाई है, यह भोजन पक्वान्नादि मेवे मसाले कर अच्छे बनाय हैं, इत्यादि प्रकार की सावद्य भाषा बोले नहीं अर्थात् मनोज्ञ भक्त पान की प्राप्ति होने पर उस में लुब्ध बनकर उस की प्रशंसा करे नहीं, वैसे ही अमनोज्ञ भोजन प्राप्तकर उस की निंदा भी करे नहीं, ऐसे ही अन्य स्थान भी सावद्य भाषा बोलने का विचार

रखना, जैसे यह मकानादि अच्छे बनाये, यह भोजन अच्छा पकाया, यह वृक्षादि अच्छा छेदा, इस कृपण का धन अच्छा हरा, यह पापी जीव मर गया जो अच्छा हुआ, यह वस्त्र भूषणआदि अच्छे स्थापन किये, यह रूपवती कन्या पति के योग्य है इत्यादि आरंभ की प्रशंसा करे नहीं और वैसी सावद्य भाषा का सदैव त्याग करें, परंतु कार्य प्रसंग से ऐसा बोले कि इसने धर्म ध्यान अच्छा किया, इस का संथारा अच्छा पका, इस के स्नेह का छेदन अच्छा हुआ, इस का मोह अच्छा हरा, यह पंडित मरण से मरा, इसने सम्यक्त्व में अपनी आत्मा को अच्छा स्थापित किया, इस का संयम अच्छा शोभता है, इत्यादि निर्वद्य भाषा प्रयोजन होने पर बोले॥३६॥

रमए पंडिए सासं, हयं भद्दं व वाहए।
बालं सम्मइ सासन्तो, गलियस्सं व वाहए॥३७॥

जैसे उत्तम जाति के घोड़े को कलाभ्यास कराते स्वयं आनंद पाता है, वैसे ही विनीत शिष्य को हित शिक्षा देते हुए गुरु आनंद मानते हैं, और जैसे गलीयारा घोड़े को शिक्षा देने में स्वयं खेदित होता है, वैसे ही अविनीत शिष्य को शिक्षा देने में गुरु खेदित होते हैं॥३७॥

एक बार म्लेच्छ लोग कहीं जाते हुए एक नदी के किनारे पर रथ को छोड़ घोड़ो को आस पास चरने के लिये छोड़ दिया उन दोनों घोड़ों ने वहाँ एक हृष्ट-पुष्ट गधा देखकर उस से पूछा अरे तू कौन है? उसने उत्तर दिया कि मेरा स्वामी मेरे पर बहुत वजन लादता था और मुझे बहुत सताता था, एक समय मैं यहाँ आ गया और यह अच्छा स्थान देखकर यहाँ ही रहने का विचार किया, जब वह कुंभार मुझे चलाने लगा तब मैं यहाँ ही नीचे जमीन पर गिर गया, कुंभार ने मुझे बहुत मार मारी, परंतु मैं उठा ही नहीं, तब मुझे यहाँ छोड़ कर वह चला गया। अब मैं यहाँ आनन्द में रहता हूँ। ऐसा सुनकर उन में से एक घोड़े ने ऐसा ही विचार किया जब उन को लेने के लिये म्लेच्छ लोग आये तब वह घोड़ा नीचे गिर गया, उस को उठाने का बहुत प्रयत्न किया परंतु वह उठा नहीं, इस से क्रोधावेश में आकर उस की गरदन काट डाली, और उस के स्थान उस गद्धे को जोत लिया, गधे ने विचार किया कि यदि मैं भी वैसे करूँगा तो मुझे भी यह मार डालेंगे यों जान दूसरे घोड़े के साथ चलने लगा, इस तरह अविनीत की कुशिक्षा मानने वाले बहुत दुख पाते हैं।

खड्डुया मे चवेडा मे, अक्कोसा य वहा य मे।
कल्लाणमणुसासन्तो, पावदिट्ठित्ति मन्नई॥३८॥

पाप दृष्टि अविनीत शिष्य को गुरु हित शिक्षा देवे तो वह द्वेषी बनकर लोगों के सन्मुख कहता है कि गुरुजी मुझे चपेटा (थप्पड़) मारते हैं, टकोर मारते हैं, मेरे पर आक्रोश करते हैं, मेरा वध करते हैं, इस तरह निन्दा करता है॥३८॥

पुत्तो मे भाय नाइ त्ति, साहू कल्याण मन्नइ।
पावदिट्ठि उ अप्पाणं, सासं दासि त्ति मण्णई॥३९॥

विनीत शिष्य गुरु की हित शिक्षा से प्रसन्न बनकर विचार करता है कि ये गुरुजी मुझे पिता पुत्र की तरह बड़े छोटे भाई की तरह अथवा ज्ञानी जन की तरह हित शिक्षा देते हैं, मेरी

आत्मा को यह शिक्षा हितकर्त्ता, ज्ञानादि गुण की वृद्धि कर्त्ता व कल्याणकारी होगी और जो अविनीत पाप दृष्टि शिष्य है वह ऐसा विचार करता है कि गुरु मुझे दास की तरह तर्जना ताडना करते हैं॥३९॥

न कोवए आयरियं, अप्पाणं पि न कोवए।
बुद्धोवघाई न सिया, न सिया तोत्तगवेसए॥४०॥

जो विनीत शिष्य होते हैं वे सदैव वैसे प्रवर्तते हैं कि न तो वह आचार्य को कुपित करते हैं और न स्वयं कदापि कुपित बनते हैं, गुरु की घात चिंतवन कदापि नहीं करते हैं और गुरु के छिद्र की गवेषणा करने वाले भी नहीं होते हैं॥४०॥

यथा–किसी समय एक आचार्य महा गुणवान अपने शिष्य के परिवार से बहुत वर्ष पर्यन्त ग्रामानुग्राम विचरते भव्य जीवों को प्रतिबोध करते थे। जंघा बल क्षीण होने से विहार करने में अशक्त बन किसी ग्राम में कि जहाँ श्रावकों का अच्छा समुदाय था और वे सुखी थे वहाँ स्थिरवास रहे। आचार्य ने अपने पास एक विनीत शिष्य को रखकर शेष सब शिष्यों को विचरने की आज्ञा दी। यहाँ विनीत शिष्य गुरु को सब प्रकार से साता उपजाता था, और आचार्य की बहुत अच्छी तरह वैय्यावृत्त्य करता था। इस से ग्राम के भाविक श्रावक उस की अच्छी प्रंशसा करते थे। अब दूसरे साधु घूमते-फिरते पुनः आचार्य के पास आये तब आचार्य ने और गाँव के श्रावकों ने उस विनीत शिष्य की बहुत प्रंशसा की, यह सुनकर अनेक विनीत भव्य शिष्यों को यह बात रुचि, परन्तु एक कदाग्रही शिष्य को ईर्ष्या उत्पन्न हुई और मन में विचार करने लगा कि क्या यह वैय्यावृत्त्य कर सकता है, वैसे मैं नहीं कर सकता हूँ क्या? अब तो आचार्य के पास मैं रहूंगा और वैय्यावृत्त्य करूंगा, यों विचार कर आचार्य के पास रहने की अपनी इच्छा प्रदर्शित कर वह वहाँ ही रहा। दूसरे शिष्य फिर अन्य स्थान विहार कर गये, थोड़े दिन तक तो अच्छी तरह वैय्यावृत्त्य की, परंतु बाद में घबराकर विचार करने लगा कि यह गुरु कब मरे और पाप कटे। ऐसा सदैव काम मेरे से तो नहीं हो सकता है, इन के काम में मुझे घड़ी भर की फुरसत ही कहाँ मिलती है, इससे जल्दी मर जाय तो अच्छा। इस तरह गुरु को मारने का उपाय रचा, जब वह गोचरी जाय और गृहस्थ उन को अच्छा सरस आहारादि बहरावे तब शिष्य ग्रहण करे नहीं और कहे कि गुरुजी का संथारा करने का भाव है, इसलिए सरस स्निग्ध आहार का त्याग करते हैं, ऐसा कहता हुआ सरस आहार लावे नहीं, और असाताकारी आहार लावे, ऐसा देखकर गुरुजी ने शिष्य से पूछा कि ऐसा आहार क्यों आता है? तब शिष्य बोला कि आप को यहाँ रहते बहुत दिन हो गये हैं, जिस से श्रावकों के भाव मन्द पड़ गये हैं, कहा है कि–**"स्त्री पीअर नर सासरे, संयमीयो स्थिरवास, इतने होवे अलखामने, जो करे अधिक निवास॥"** इस अनुसार अब अपने ये श्रावक थक गये हैं, अच्छी वस्तु की याचना करने पर भी यहाँ के श्रावक देते नहीं हैं, यों गुरुजी को समझाया। गाँव के श्रावक मिलकर आचार्य के पास आकर विनंति करने लगे कि आपका संथारा करने का विचार है ऐसा चेलाजी कहते हैं इस से हम दुःखी हुवे है, अहो भगवन्! आप का शरीर अभी अच्छा है तो आप संथारा क्यों करना चाहते हो? आचार्य महाराज अपने अविनीत शिष्य का कपट समझ गये और विचार किया कि श्रावकों का तो वैसा ही भाव है परंतु यह सब अविनीत शिष्य का प्रपंच है, अब इस में संथारा नहीं करूं तो धर्म की हीलना होवे, इसलिये संथारा करना ही मुझे उचित है,

ऐसा विचार अपेन दुष्ट शिष्य के अवगुण प्रसिद्ध नहीं करते हुए संथारा कर लिया और आयुष्य पूर्णकर स्वर्ग में गये, और अविनीत शिष्य अनंत संसारी बना।

आयरियं कुवियं नच्चा, पत्तिएण पसायए।
विज्झवेज्ज पंजलीउडो, वएज्ज न पुणुत्ति-य॥४१॥

किसी सयम आचार्य कुपित हो जावे तो उन को प्रीतिकारी वचनों से शांत करे, दोनों हाथ जोड़ कर विनंति करे कि मेरा अपराध क्षमा करो पुनः मैं ऐसा नहीं करूंगा॥४१॥

धम्मज्जियं च ववहारं, बुद्धेहायरियं सया।
तमायरंतो ववहारं, गरहं नाभिगच्छई॥४२॥

तत्त्ववेत्ता ज्ञाता बुद्धिवंत दशविध यति धर्म से प्राप्तकिया हुआ व्यवहार का पालन करे, शुद्ध व्यवहार पालने वाले की कोई निंदा नहीं करता है॥४२॥

मणोगयं वक्कगयं, जाणित्ताऽऽयरियस्स उ।
तं परिगिज्झ वायाए, कम्मुणा उववायए॥४३॥

आचार्य के मनोगत अथवा कहा हुआ कार्य को शीघ्रमेव वचन से ग्रहण करे अर्थात् यह कार्य मैं करूंगा यों कहकर फिर काया से उसे शीघ्रमेव कर देवे॥४३॥

वित्ते अचोइए निच्चं, खिप्पं हवई सुचोयए।
जहोवइट्ठं सुकयं, किच्चाई कुव्वई सया॥४४॥

विनीत शिष्य गुरु आदि की प्रेरणा बिना ही जाने प्रेरणा की है इस प्रकार शीघ्र मेव गुरु का कार्य करें, इस से गुरु भी प्रसन्न हो कर उस की प्रशंसा करे॥४४॥

नच्चा नमइ मेहावी, लोए कित्ती से जायए।
हवइ किच्चाणं सरणं, भूयाणं जगई जहा॥४५॥

विनयवान की सब लोक में कीर्ति होती है, ऐसा जानकर मेधावी विनय का आचरण करे, और जैसे पृथ्वी सब को आधार भूत है वैसे ही वह विनीत शिष्य सब को आधार भूत होवे॥४५॥

पुज्जा जस्स पसीयंति, संबुद्धा पुव्वसंथुया।
पसण्णा लाभइस्संति, विउलं अट्ठियं सुयं॥४६॥

जिसने विनय नम्रता से आचार्य की सेवा की है वैसे शिष्य पर आचार्य प्रसन्न होकर विशेष श्रुतज्ञान का लाभ देते हैं॥४६॥

स पुज्जसत्थे सुविणीयसंसए, मणोरुई चिट्ठइ-कम्मसंपया।
तवो-समायारि-समाहिसंवुडे, महज्जुई पंच वयाइं पालिया॥४७॥

उपसंहार–वे ही पूज्यनीय हैं जिनका गुरु की आज्ञा में प्रवृत्ति रूप उपासना द्वारा शास्त्रार्थ प्राप्त कर सब प्रकार से संशय रहित बने हैं, मन की रूचि उत्साह पूर्वक साधु की कर्म सम्पदा

कर्त्तव्य में रहे हैं, तप तथा सदाचारी में समाधिवंत व संवृतात्मा हैं, और महाद्युतिवंत–निर्मल पंच महाव्रत के पालक हैं॥४७॥

स देव-गंधव्व-मणुस्सपूइए, चइत्तु देहं मलपंकपुव्वयं।
सिद्धे वा हवइ सासए, देवे वा अप्परए महिड्ढिए॥४८॥ त्ति बेमि॥
॥विणयसुयऽज्झयणं समत्तं॥१॥

ऐसे गुण युक्त जो विनीत शिष्य होते हैं वे चारों प्रकार के देवता विद्याधरों मनुष्यों के पूज्यनीय होते हैं, यह मलमूत्रादि कीचड़ से भरा हुआ औदारिक शरीर त्याग कर अनन्त अक्षय अव्याबाध शाश्वत सिद्ध गति को प्राप्त करते हैं, अथवा कर्म रज अल्प रह जाने से (पुण्य वृद्ध होने से) महा ऋद्धिक देवता होते हैं, ऐसा सुधर्मा स्वामी अपने शिष्य श्री जम्बू स्वामी से कहते हैं कि–अहो जम्बू! जैसा मैंने महावीर स्वामी के पास से सुना है वैसा ही कहा है॥४८॥

विनय श्रुत नामक पहला अध्ययन सम्पूर्ण हुआ।



बिइयं परीसहऽज्झयणं
परीषह नामकं द्वितीय अध्ययनम्

सुयं मे आउसं। तेणं भगवया एवमक्खायं–इह खलु बावीसं परीसहा समणेणं भगवया महावीरेणं कासवेणं पवेइया, जे भिक्खू सोच्चा, नच्चा, जिच्चा, अभिभूय, भिक्खायरियाए परिव्वयंतो पुट्ठो नो विहन्नेज्जा॥१॥

अहो आयुष्मन् जम्बू! मैंने सुना है। भगवान ने ऐसा कहा है, इस लोक में बाईस परीषह होते हैं जो कश्यप गोत्रीय श्री श्रमण भगवान स्वामी ने कहा है, इन को सुनकर इन को जानकर इनपर विचारकर और इनके सन्नमुख बन कर भिक्षा के लिये परिभ्रमण करते हुए साधु को परीषह प्राप्त होवे तो भी वे गृहीत संयम की घात करे नहीं॥१॥

कयरे खलु ते बावीसं परीसहा समणेणं भगवया महावीरेणं कासवेणं पवेइया? जे भिक्खू सोच्चा, नच्चा, जिच्चा अभिभूय, भिक्खायरियाए परिव्वयंतो पुट्ठो नो विहन्नेज्जा॥२॥

प्रश्न–वे बाईस परीषह कौन से हैं कि जिन को जान कर यावत् उन के सन्मुख होकर भिक्षा के लिये प्रवर्तते हुए साधु को परीषह प्राप्त होवे तो भी डिगे नहीं?॥२॥

इमे खलु ते बावीसं परीसहा समणेणं भगवया महावीरेणं कासवेणं पवेइया। जे भिक्खू सोच्चा नच्चा जिच्चा अभिभूय भिक्खायरियाए परिव्वयंतो पुट्ठो नो विहन्नेज्जा॥३॥

उत्तर–ये निम्नोक्त बाईस परीषह कश्यप गोत्रीय श्री श्रमण भगवान महावीर स्वामी ने कहा है जिन को सुन कर, जान कर जिस पर जय कर और जिस के सन्नमुखकर भिक्षा के लिये परिभ्रमण करते हुए साधु को परीषह होवे तो भी वे डिगे नहीं॥३॥

तं जहा–१. दिगिंछापरीसहे २. पिवासापरीसहे ३. सीयपरीसहे ४. उसिणपरीसहे ५. दंस-मसयपरीसहे ६. अचेलपरीसहे ७. अरइपरीसहे ८. इत्थीपरीसहे ९. चरियापरीसहे १०. निसीहियापरीसहे ११. सेज्जापरीसहे १२. अक्कोसपरीसहे १३. वहपरीसहे १४. जायणापरीसहे १५. अलाभपरीसहे १६. रोगपरीसहे

१७. तणफासपरीसहे १८. जल्लपरीसहे १९. सक्कारपुरक्कारपरीसहे २०. पन्नाणपरीसहे २१. अन्नाणपरीसहे २२. दंसणपरीसहे॥४॥

जिन के नाम हैं–१ क्षुधा परीषह, २ तृषा परीषह, ३ शीत परीषह, ४ ऊष्ण परीषह, ५ दंशमशक परीषह, ६ अचेल परीषह, ७ अरति परीषह, ८ स्त्री परीषह, ९ चर्या परीषह, १० निषद्या परीषह, ११ शय्या परीषह, १२ आक्रोश परीषह, १३ वध परीषह, १४ याचना परीषह, १५ अलाभ परीषह, १६ रोग परीषह, १७ तृणस्पर्श परीषह, १८ जल मैल परीषह, १९ सत्कार पुरस्कार परीषह, २० प्रज्ञा परीषह, २१ अज्ञान परीषह, और २२ दर्शन परिषह॥४॥

परीसहाणं पविभत्ती, कासवेणं पवेइया।
तं भे उदाहरिस्सामि, आणुपुव्विं सुणेह मे॥१॥

श्री सुधर्मा स्वामी कहते हैं, कि अहो जम्बू! कश्यप गोत्रीय श्री महावीर स्वामी ने बाईस परीषह अलग-अलग कहे हैं। उनका ही कथन मैं दृष्टांत सहित अनुक्रम से कहता हूँ सो तुम श्रवण करो॥१॥

दिगिंछापरिगए देहे, तवस्सी भिक्खु थामवं।
न छिंदे न छिंदावए, न पए न पयावए॥२॥

सब परीषहों में क्षुधा परीषह सहन करना दुष्कर है, संयम व तप में जिनकी आत्मा बलवान है वैसे तपस्वी साधु को क्षुधा व्याप्त हो जावे और अचित्त निर्दोष आहार का योग बनें नहीं तो सचित्त वस्तु फलादि का स्वयं छेदन करे नहीं अन्य से छेदन करावे नहीं और छेदन करने वाले को अच्छा भी जाने नहीं। वैसे ही स्वयं अशनादि पकावे नहीं, अन्य से पकावे नहीं। पकाते को अच्छा जाने नहीं॥२॥

कालीपव्वंगसंकासे, किसे धमणिसंतए।
मायन्ने असण-पाणस्स, अदीणमणसो चरे॥१॥३॥

काक पक्षी की जंघा समान जिसका शरीर दुर्बल हो गया हो। रक्त मांस सूख गये हों और मात्र नसें चल रही हों वैसा तपस्वी अशन पान की मात्रा प्रमाण का जानने वाला अदीनपना से विचरे। अर्थात् आहार बिना शरीर इतना शुष्क हो जावे तो भी दीनता धारण नहीं करे॥३॥

क्षुधा परीषह पर हस्तीमित्र शेठ की कथा प्रेक्षणीय है–उज्जयनी नगरी में हस्तीमित्र नामक कोई श्रेष्ठि रहता था। किसी कारण वश पिता पुत्र वैरागी बनकर दीक्षा अंगीकार कर ग्रामानुग्राम विचरते हुए किसी अटवी में पहुँचे। वृद्धावस्था के कारण से हस्तिमित्र साधु विहार कर नहीं सके, जिससे अपने आचार्य से बोले कि मेरा शरीर श्रम से अत्यंत खेदित हो गया है और मैं चल नहीं सकता हूँ। इसलिये मैं अनशन व्रत लेकर संथारा अंगीकार करूं और आप आगे पधारे, आचार्य ने उनकी शक्ति देखकर संथारा करवाया और उन के पुत्र साधु को आचार्य ने अपने साथ आने के लिये बहुत कहा परंतु पिता से मोह होने के कारण वह वहाँ ही रहा। कालांतर में पिता साधु आयुष्य पूर्ण कर देवलोक में गये, और अवधि ज्ञान से अपने पूर्व भव के पुत्र साधु के

शरीर की रक्षा करता हुआ देख कर मोह होने से वह देवता वहाँ आया, और उस मृत कलेवर में प्रवेश कर के अपने क्षुधा से पीड़ित पुत्र को कहने लगा कि अहो मुने! इस जंगल में जो पक्व फल हैं वे खाने योग्य हैं, इसलिये खाओ, पुत्र साधु ने उत्तर दिया कि साधु को ऐसा सचित आहार अकल्पनीय है, इसलिये मैं प्राणांत में भी वैसा आहार नहीं करूँगा। उस साधु की ऐसी दृढ़ता देखकर वैक्रिय श्रावक श्राविका का संघ बनाया और आहारादिक का आमंत्रण किया, परंतु उसे भी देव कृत्य जानकर ग्रहण नहीं किया, इस से देवता ने प्रसन्न होकर जहाँ उनका साधु समुदाय था वहाँ उस साधु को पहुँचा दिया और उनके गुरु को देवता के द्वारा किये गये दृश्य को सुनाया। गुरु खुश हो गये और उन की बहुत प्रंशसा की उस पुत्र साधु ने भी शुद्ध संयम का पालन कर आत्म कल्याण किया, इस तरह अन्य साधु को भी क्षुधा परीषह सहन करना चाहिये।

तओ पुट्ठो पिवासाए, दोगुंछी लज्जसंजए।
सीओदगं न सेविज्जा, वियडस्सेसणं चरे।।४।।

आहार करने से तृषा होती है इसलिये दूसरा तृषापरीषह का कथन कहते हैं–अनाचार की दुगंछा करने वाले और संयम की लज्जावाला संयति को तृषा का परीषह होवे तो सचित्त ठंडा पानी नहीं पीवे परंतु निर्दोष अचित्त पानी की गवेषणा करता हुआ विचरे।।४।।

छिन्नावाएसु पंथेसु, आउरे सुपिवासिए।
परिसुक्कमुहादीणे, तं तितिक्खे परीसहं।।२।।५।।

जिस मार्ग में कोई भी मनुष्य नहीं आते हों वैसे मार्ग में तृषा से आकुल व्याकुल बना हुआ और जिस का मुख सूख गया है वैसा साधु दीनपना रहित तृषा को सम्यक् प्रकार से सहन रहें, परंतु सचित्त पानी का सेवन नहीं करे।।५।।

इस परीषह पर धनमित्र साधु की कथा ज्ञातव्य हैं किसी आचार्य के पास पिता पुत्र ने दीक्षा ली, वे ऊष्ण काल में विहार करते हुए तृषातुर हो गये। पुत्र साधु का शरीर कोमल होने से वह बहुत घबराया, आगे चलते हुए कोई जलाशय दृष्टिगत हुआ, तब पिता साधु ने विचार किया कि मेरी लज्जा से यह पानी नहीं पीयेगा, इसलिये जल्दी-२ पांव उठाकर आगे चले गये। पुत्र साधु पीछे से आ रहे थे, उन्होंने जलाशय देखकर पानी का विचार किया, और चारों तरफ देखते हुए कि मुझे कोई देख नहीं रहा है। फिर वह उस जलाशय में जाकर उस में से पानी की अंजली भरकर पीने का विचार किया। इतने में उस पानी में सूर्य का प्रतिबिम्ब को देखकर सोचा कि और कोई नहीं देखता है, परंतु अनंतज्ञानी तो देख रहे हैं, यह असंख्य जीवों का पिंड मेरे एक जीव की रक्षा कि लिये नाश करना, इस महा पुण्योदय के प्राप्त अनंत भव विध्वंसक संयम का एक भव के क्षणिक सुख के लिये नाश करना मेरे उचित नहीं है। ऐसा विचार कर लिया हुआ पानी यत्ना पूर्वक रख दिया, फिर वहाँ से उठते हुए चक्कर आया और मूर्च्छित होकर नीचे गिर गया, वहाँ से वह आयुष्य पूर्ण कर देवलोक में देवता हुआ। वहाँ अवधिज्ञान से अपने पूर्व का भव देखा, और पिता साधु का मनोगत दृष्ट भाव जाना, इस पाप की निवृत्ति कराने के लिये वह पड़े हुए अपने कलेवर में प्रवेश कर जहाँ आचार्य और पिता साधू थे वहाँ आया और आचार्य को वंदनानमस्कार किया, परंतु पिता साधु को वंदना नमस्कार नहीं कियां आचार्य के पूछने पर वह देव बोला कि अहो भगवन! सचित्त पानी भोगवाने का उन्होंने ने मुझे मन से आदेश किया था, और

अथ से इति तक सब कथन कह सुनाया और पिता साधु को प्रायश्चित दिलाकर शुद्ध किया, स्वयं वहाँ से देवलोक में चला गया।

चरंतं विरयं लूहं, सीयं फुसइ एगया।
नाइवेलं मुणी गच्छे, सोच्चाणं जिणसासणं।।६।।

क्षुधा-तृषा से रहित निर्बल शरीरवाले को शीत विशेष होवे, इसलिए तीसरा शीत परीषह कहते हैं, जो अग्नि आदि के आरम्भ से दूर होते हैं, जिन साधु को कदाचित् शीत का परीषह होवे तो वह साधु जिन भगवान की आज्ञा श्रवण कर क्रिया काल का उल्लंघन नहीं करें परन्तु कालोकाल क्रिया करे।।६।।

न मे निवारणं अत्थि, छवित्ताणं न विज्जई।
अहं तु अग्गिं सेवामि, इइ भिक्खू न चिंतए ३।।७।।

शीत का निवारण करने के लिये मेरे पास भी घर नहीं है, वस्त्र भी पूरे नहीं हैं। इससे मैं अग्नि का सेवन करूं, ऐसा चिंतन मात्र भी साधु नहीं करे।।७।।

इस पर भद्रबाहु आचार्य के चार शिष्यों का दृष्टान्त दृष्टव्य हैं–राजगृही नगरी में चार वणिक थे। जिन्होंने भद्रबाहु आचार्य के पास दीक्षा अंगीकार कर ज्ञानाभ्यास करते हुए ग्रामानग्राम विचरते हुए पुनः राजगृही नगरी में आये। इन चारों साधओं में से एक वैभारगिरि पर्वत पर, दूसरा पर्वत के नीचे, तीसरा राजगृही के पथ में वृक्ष के नीचे, और चौथा राजगृह नगरी के द्वार के पास दिन अस्त होने से रात्रि के चार प्रहर पर्यंत ध्यान करके स्थिर रहे। रात्रि में अत्यंत शीत पड़ने से पर्वत पर स्थित साधु रात्रि के प्रथम प्रहर में, पर्वत के नीचे का साधु दूसरे प्रहर में, राजगृही नगरी के पंथ का साधु तीसरे प्रहर में और द्वार के पास का साधु चतुर्थ प्रहर में शीत परीषह को समभाव से सहन करते हुए आयुष्य पूर्ण कर देवलोक में देवता हुए।

उसिणं परियावेणं, परिदाहेण तज्जिए।
घिंसु वा परियावेणं, सायं नो परिदेवए।।८।।

शीतकाल बाद ऊष्ण काल आता है इससे चौथा ऊष्ण परीषह कहते हैं–ग्रीष्म ऋतु (ज्येष्ठ आषाढ़) अथवा शरद ऋतु (आश्विन कार्तिक) में ऊष्णता के कारण भूमि आदि के आताप से और पाँव पसीना मैल आदि से, आभ्यंतर तृषा से पीड़ित बना हुआ साधु वृष्टि वायु से साता होवे वैसा इच्छे नहीं।।८।।

उण्हाहितत्तो मेहावी, सिणाणं नो वि पत्थए।
गायं नो परिसिंचेज्जा, न वीएज्जा य अप्पयं ४।।९।।

ऊष्ण ताप से पीड़ित बना हुआ साधु स्नान की भी प्रार्थना नहीं करे, पानी से सिंचन मात्र भी नहीं करे, वैसे ही बीजने से हवा भी करे नहीं।।९।।

इस ऊष्ण परीषह पर अरणक मुनि की कथा प्रेक्षणीय है–तगरा नगरी के दत्त साहूकार ने अपनी भद्रा भार्या और अरणिक पुत्र के साथ दीक्षा अंगीकार की। दत्त साधु वृद्धावस्था के कारण से स्वयं ज्ञानाभ्यास कर नहीं सके, परन्तु अपने पुत्र साधु को ज्ञानाभ्यास में लगाया और वे उसकी वैय्यावृत्य करने लगे। अब वह पिता

साधु उस के लिये आहार वस्त्र पात्र आदि जो चाहिये सो लाकर देते थे। कालान्तर में वह पिता साधु काल के अवसर में काल कर देवलोक में गया अब अरणिक मुनि को ही भिक्षा करने के लिये जाना पड़ा। भिक्षार्थ भ्रमण करते हुए ताप से पीड़ित आकुल व्याकुल बनकर एक गृहस्थ के प्रासाद की छाया में खड़े समय उसी प्रासाद में रहने वाली विरहिनी स्त्री ने अपने गवाक्ष में बैठे हुए साधु को देखकर दासी को बुलाने के लिये भेज दिया। अरणिक साधु ने भिक्षा के लिये उस के घर में प्रवेश किया। वहाँ उस स्त्री ने अनेक हाव-भाव कटाक्ष से उस साधु को मोहित कर अपना तन, मन व धन अर्पण कर दिया। अरणिक साधु ऐसे भोगों में लुब्ध बनकर वहाँ रहने लगे। उनकी माता साध्वी को अरणिक मुनि का पता नहीं लगने से मोह से भ्रमित बन ढूँढ़ने के लिये निकली और अरणक! अरणक! यों पुकारती फिरने लगी। एक बार वह साध्वी माता इस तरह पुकारती हुई उसी प्रसाद के नीचे से जा रही थी सो अरणक ने देखा। वह माता को देख लज्जित हुआ। महल से नीचे उतरकर साध्वी माता को वंदन किया। माता बोली–अहो पुत्र! चिंतामणि समान संयम व्रत का नाश कर तूने यह अनर्थ किया। तब अरणक ने उत्तर दिया कि मातु श्री! संयम की दुष्कर क्रिया मेरे से नहीं पलती है, परंतु आपकी आज्ञा होवे तो जिस ऊष्ण परीषह से मैं भ्रष्ट हुआ हूँ उसी ऊष्ण परीषह से मैं अपने आत्मा का सुधार कर लूं। माता ने कहा–आत्म कल्याण करना ही श्रेष्ठ है। ऐसा सुनकर अरणक ने सूर्य के ताप से अत्यंत तप्त बनी हुई पत्थर की शिला पर सो गया और आहार व शरीर का त्याग कर संथारा किया। जैसे अग्नि के ताप से मक्खन पिघलता है वैसे ही उस अरणक साधु का शरीर पिघल गया और समाधि भाव में लीनता से स्वर्ग गये।

पुट्ठो य दंस-मसएहिं, समरेव महामुणी।
नागो संगामसीसे वा, सूरो अभिहणे परं॥१०॥

ऊष्ण काल के बाद चातुर्मास आवे और चातुर्मास में जीवादिक की उत्पत्ति होने से पांचवा दंशमशक का परीषह होवे उसे कहते हैं–जैसे संग्राम के अग्र भाग में रहा हुआ शूरवीर हाथी भाला आदि शस्त्र के बहुत प्रहार होने पर भी शत्रु को घात करता है। वैसे ही दंशमशक परीषह से स्पर्शाया हुआ महा मुनि परीषह को जीतता है अर्थात् दंशमशक का परीषह प्राप्त होने पर समभाव से रहता है॥१०॥

न संतसे न वारेज्जा, मणं पि न पओसए।
उवेह न हणे पाणे, भुंजंते मंस सोणियं ५॥११॥

दंशमशकादि क्षुद्र प्राणियों के द्वारा मांस व रुधिर खाते होवें तो भी उन प्राणियों को कष्ट देवे नहीं। वैसे ही उनको अलग भी नहीं करे। अधिक क्या कहूँ–उन पर मन से भी द्वेष नहीं करे, परंतु उनकी उपेक्षा (दया) करे, किसी प्रकार से उन जीवों को अन्तराय नहीं करे॥११॥

दंशमशक परीषह पर ऋषि भद्र कुमार की कथा प्रेक्षणीय हैं–चंपा नगरी के जितशत्रु राजा के श्रमणभद्र कुमार ने दीक्षा अंगीकार करके ज्ञानाभ्यास किया। एक बार वे वृक्ष के नीचे कायोत्सर्ग कर रहे थे। वहाँ वृक्ष पर मधुमक्खी का छत्ता था। इसमें से किसी प्रयोग से शहद मुनि के शरीर पर पड़ा। जिससे मधुमक्षिका उस शहद लेने के लिये मुनि को दंश देने लगी। मधु मक्षिकाओं ने सब शरीर छिद्रमय बना दिया, तो भी वे डिगे नहीं, अत्यंत नरक जैसी वेदना समभाव से सहन की। उस समय नरक तिर्यंचादि दुःखों का विचार कर अपने

परिणाम की विशुद्धधारा पूर्वक समाधि मरण मरकर देवलोक में गये। ऐसे ही श्रमणभद्र साधु समान सब साधुओं को दंश मशक का परीषह सहन करना चाहिए।

परिजुन्नेहिं वत्थेहिं, होक्खामि त्ति अचेलए।
अदुवा सचेले होक्खामि, इइ भिक्खू न चिंतए॥१२॥

दंशक मशक की बाधा निवारने के लिये वस्त्र की आवश्कता होवे इससे छठा वस्त्र परीषह कहते हैं, वस्त्र जीर्ण हो जाने से मैं वस्त्र रहित हो जाऊँगा, तब मैं क्या करूँगा यों खेदित होवे नहीं, वैसे ही किसी से याचना करते वस्त्र प्राप्त हो जावे तो हर्षित भाव होवे नहीं। यों दोनों प्रकार का चिन्तवन साधु करे नहीं॥१२॥

एगया अचेलए होइ, सचेले आवि एगया।
एयं धम्मंहियं नच्चा, नाणी नो परिदेवए ६॥१३॥

कदापि जिनकल्पी की अपेक्षा वस्त्र रहित भी हो जाऊं और स्थविर कल्पी की अपेक्षा कदापि वस्त्र सहित भी हो जाऊं तो भी वस्त्र सहित अथवा रहित यों दोनों प्रकार के धर्म को हितकारी मानकर साधु खेदित होवे नहीं॥१३॥

इस अचेल परीषह पर आर्य रक्षित कुमार की कथा प्रेक्षणीय हैं–दशारण पुर का सोमदेव पुरोहित का पुत्र आर्य रक्षित विदेश से चौदह विद्या का अभ्यास कर आया। उसे राजा आदि ने बहुत धूमधाम से नगर में प्रवेश कराया। वह अपने पिता के चरण वंदन कर जैनधर्मावलम्बिनी माता के पास गया। परंतु माता का मुख कमल आनंदित देखा नहीं, तब उसने माता से कारण पूछा। माता ने कहा कि कदापि तू चौदह विद्या का निधान बन गया है परंतु यह चौदह विद्या तेरा आत्मकल्याण नहीं कर सकती हैं। कल्याण मात्र धर्म से ही होता है। तब पुत्र ने माता से पूछा कि धर्म का अभ्यास मुझे कौन करावेगा? माता ने कहा कि–तेतली पुत्र आचार्य कि जो तेरे संसार पक्षिय के मामा हैं, उनके पास जा वे ही धर्मज्ञान पढ़ा सकेंगे। माता ने कहा कि–हे पुत्र! तू वहाँ नव पूर्व का अभ्यास करेगा। तब वह आर्यरक्षित तेतली आचार्य के पास आया, और वंदना नमस्कार कर सब वृतांत कहा। तब आचार्य ने कहा कि जो संसार त्यागी होते हैं उनको ही हम वैसी विद्या का अभ्यास करा सकते हैं। यो सुनकर वह आर्य रक्षित विद्याभ्यास करने के लिये साधु हुआ। ग्यारह अंग पढ़ाये और पूर्व की विद्या पढ़ाने के लिये वज्रस्वामी के पास भेजा। उस रात्रि को वज्रस्वामी को स्वप्न आया कि किसी दीक्षित ने दूध पीते-पीते छोड़ दिया। प्रातःकाल में आर्यरक्षित मुनि मिले और सब वृत्तांत कह सुनाया। वार्तालाप होने से उसे योग्य जान पूर्वो का अभ्यास शुरु करवाया। अभ्यास करते-करते नव पूर्व का अभ्यास पूर्ण किया और दशवा पूर्व पढ़ते गुरुजी से पूछा कि अब और कितना पढ़ना बाकी है? गुरुजी ने उसे थका जान पढ़ाना बंद कर दिया। योग्य जानकर आचार्य पद पर स्थापित किया। वे वहाँ से विहार कर दशारण पूर आये, वहाँ प्रतिबोध देकर माता को और फल्गु रक्षितादि भाइयों को दीक्षा दी। सोमदेव लज्जा से साधु का लिंग नहीं धार सके, परंतु आचार्य विचरण करते रहे। लोग आचार्यादि सब साधुओं को वंदना करे परंतु सोमदेव को वंदना करे नहीं। सोमदेव के पूछने पर लोग ऐसा ही उत्तर देते थे कि हम साधु को वंदन करते हैं। तुम दंड कमंडल धारी हो। ऐसा सुनकर सोमदेव ने दंड कमंडल छोड़ दिये परंतु धोती का त्याग किया नहीं। आचार्य ने उनके आत्मा का

उद्धार के लिये श्रावक के बालकों को सिखला कर सोमदेव की धोती रस्ते चलते हुए छिनवाई। वहाँ एक गृहस्थ ने सोमदेव को चोलपट्टा दिया। उसे पहनकर आचार्य के पास आये। और बालकों की निंदा करने लगे जब कोई श्रावक बोला कि क्या धोती लादेऊँ? उन्होंने कहा कि अब लज्जा तो गई धोती से क्या काम है। अब तो ऐसा ही वस्त्र पहनूँगा। तब वे सोमदेव प्रमाणोपेत वस्त्रधारी बने और आचार्य ने उनको दीक्षा दी। वे चरित्र पालकर देवलोक में गये। जैसे सोमदेव ने अचेल परीषह सहन किया वैसे ही सब साधु को अचेल परीषह सहन करना चाहिए।

गामाणुगामं रीयतं, अणगारं अकिंचणं।
अरई अणुप्पवेसेज्जा, तं तितिक्खे परीसहं॥१४॥

वस्त्र नहीं मिलने से चिंता होवे इससे सातवां अरति परीषह कहते हैं–परिग्रह से रहित साधु को ग्रामानुग्राम विचरते हुए अरति होवे तो उस अरति परीषह को सहन करे॥१४॥

अरइं पिट्ठओ किच्चा, विरए आयरक्खिए।
धम्मारामे निरारंभे, उवसंते मुणी चरे ७॥१५॥

आत्मा की रक्षा करनेवाला विरतिवन्त व उपशांत मुनि अरति को दूर करके आरंभ रहित धर्म रूप बगीचे में विचरे॥१५॥

अचल पूरी नगरी के जितशत्रु राजा का पुत्र सागर चंद्र और पुरोहित पुत्र इन दोनों ने राधाचार्य के पास दीक्षा अंगीकार की। शास्त्राभ्यास कर के उज्जयनी गये। वहाँ सुना कि यहाँ का राजपुत्र और पुरोहित पुत्र ग्राम में साधुओं को नहीं रहने देते हैं। लोगों के मना करने पर भी वे दोनों पुत्र को प्रतिबोध देने गये। राजपुत्र साधू को देखकर बोला कि क्या तुम नृत्य करोगे? साधु ने कहा कि वार्दित्र बजाओगे? यों सुनकर दोनों पुत्र साधु को मारने आये, परंतु साधु के तप तेज से रक्त का वमन करते हुए मूर्च्छित हो गिर गये। साधु वहाँ से स्वस्थान आ गये। ऐसी अपने पुत्र की स्थिति सुनकर राजा क्रोधित होकर साधु के पास आया, परंतु अपने भाइ को ही साधु देखकर लज्जित हुआ और पूछा कि–राजपुत्र की यह क्या अवस्था की? साधु ने उत्तर दिया कि तुम्हारे नगर में किसी साधु को नहीं रहने देना यह कितना अनर्थ है? अब तेरा पुत्र दीक्षा लेवे तो अच्छा होवे। राजा ने उनकी आज्ञा प्रमाण की और वे दोनों पुत्र अच्छे हो गये। दोनों ने डर से दीक्षा ले ली राजकुमार शुद्ध संयम पालने लगा। परंतु पुरोहित पुत्र जाति अभिमान से द्वेष सहित दीक्षा पालता था। दोनों आयुष्यपूर्ण कर देवता हुए। महा विदेह क्षेत्र में श्री सीमंधर स्वामी के दर्शनार्थ वे दोनों गये और पूछा कि–अहो भगवन्! हम सुलभ बोधि हैं या दुर्लभबोधि हैं? भगवान ने राजपुत्र को सुलभ बोधि कहा और पुरोहित पुत्र को दुर्लभ बोधि कहा। पुरोहित पुत्र ने पुनः प्रश्न किया कि अहो भगवन्! मैं यहाँ से च्यवकर कहाँ जाऊँगा। भगवान ने उत्तर दिया कि–कौशाम्बी नगरी में मूकशेठ का तू भाई होगा। अहो भगवन्! मूकशेठ कौन है? भगवान बोले कि–कौशाम्बी नगरी में श्री नामक शेठ अपने वारस में एक पुत्र छोड़कर मरकर वह शूकर हुआ, उसे किसी प्रयोग से उसके पुत्र ने मार डाला। वह वहाँ से मरकर सर्प हुआ, वहाँ भी उसको पुत्र ने मारा और वहाँ से उसके पुत्र के वहाँ ही पुत्ररूप में उत्पन्न हुआ। वहाँ जातिस्मरण ज्ञान से अपना पूर्व भव जाना और विचार हुआ कि मैं बेटे को बाप कैसे कहूँ? पुत्र वधू को माता कैसे कहूँ? यों विचार वह मौन रहता था। इससे उसका नाम मुक रखा।

वहाँ चार ज्ञान के धारक साधु आये और कहा कि–तू पहले शूकर पीछे सर्प और वहाँ से पुत्र के पुत्ररूप में उत्पन्न हुआ है। अब तू समझ और जिन प्रणीत धर्म अंगीकार कर। उस समय उस मूक ने श्रावक पना धारन किया और धर्म ध्यान करने लगा। हे देव तू उस का भाई होगा। अब वह देवता भगवान को नमस्कार कर मूकशेठ के पास आकर कहने लगा कि मैं तुम्हारी माता को स्वप्न में आम्र वृक्ष बताकर पुत्ररूप में उत्पन्न होऊँगा। तुम मुझे धर्मोपदेश करना। मूक श्रावक ने इस बात का स्वीकार किया। अब वह देवता वहाँ से चलकर यहाँ मूक श्रावक के भाई रूप में उत्पन्न हुआ। वह उस को धर्म का उपदेश सुनाये तब रोने लगे, साधू जी महाराज के पास भी जावे नहीं, पूर्व जन्म की बात कह समझाये तो भी समझे नहीं इस तरह कितने उपाय करते हुए भी उसे धर्म की रुचि हुई नहीं। अनेक दिन बाद मूक श्रावक मर कर देवता हुआ। ज्ञान से अपने भाई को देखकर समझाने आया परन्तु वह समझा नहीं। तब उसको जलोदर का रोगी बना दिया और स्वयं वैद्य का स्वांग बनाकर आया उसने वैद्य से अपना रोग दूर करने का अत्याग्रह किया। वैद्य ने कहा कि तू मेरा नौकर बने तो मैं तेरा रोग दूर करुँ। उसने वह स्वीकार किया। उसका रोग दूर करके अपनी औषधि की थैली बहुत वजनदार बना कर उसको सिर पर देकर ले चला जिससे वह घबराने लगा साधु को देख देवता बोला जो तू साधु होवे तो तुझे छोड़ दूँ! उसने मन नहीं होने पर भी दुःख से छूटने को साधु होना कबूल किया। उसे साधु बनाकर देवता स्वस्थान गया। वह दुर्लाभबोधी संयम छोड़कर घर भाग गया। देवता ने फिर जलोदर का रोग उसके शरीर में कर दिया। यों वह तीन बार भाग गया और देवता ने उसे साधु बनाया। इस तरह भी धर्म में स्थिर नहीं रहने से उसको समझाने के लिये देवता उसके सामने सूखे घास का भारा लेकर अग्नि में प्रवेश करने लगा तब दुर्लभ बोधि बोला–रे मूर्ख! घास का भारा लेकर जाज्वल्यमान अग्नि में क्यों मरने को जाता है? देवता बोला–हाँ जी! मैं एक ही बार जलकर मरूँगा परंतु तुम तो संसार रूप प्रज्वलित अग्नि में जाते हो जिससे तुम को अनंत काल मरना पड़ेगा, साधु मौन रहा। आगे देवता पथिक का रूप बनाकर कांटे वाला मार्ग में खुल्ले पांव से चलने लगा। उसे देख साधु बोले रे मूर्ख! अच्छा मार्ग छोड़कर कंटक रूप संसार मार्ग में क्यों जाता है, ऐसा सुनकर वह संभल गया और पूछा कि तू कौन है? देवता ने कहा कि मैं मूक श्रावक हूँ अथ इति सब वृत्तांत सुनाया–तब वह दुर्लभ बोधि से सुलभबोधि हुआ और शुद्ध मन से संयम ग्रहण कर शुद्ध संयम पालकर देवता हुआ, ऐसा जानकर अन्य साधुओं को अरति परीषह समभाव से सहन करना चाहिए।

संगो एस मणुस्साणं, जाओ लोगम्मि इत्थिओ।
जस्स एया परिन्नाया, सुकडं तस्स सामण्णं॥१६॥
एयमादाय मेहावी, पंकभूयाओ इत्थिओ।
नो ताहिं विणिहन्नेज्जा, चरेज्जऽत्तगवेसए ८॥१७॥

चिंता होने से स्त्री का स्मरण होवे इससे अब आठवाँ स्त्री परीषह कहते हैं–लोक में मनुष्यों को स्त्रियों का संग कर्म बंध करने वाला है। ऐसा जानकर जो स्त्री को त्याग करते हैं उसका ही साधुपना अच्छा है। पंडित पुरुष कीचड़ समान स्त्रियों को जानकर उनसे संयम की घात करे नहीं, परंतु आत्मगुण गवेषक होता हुआ विचरे॥१६-१७॥

भोग के दलदल में रहकर भी अलिप्त रहे थे स्थूलिभद्र। पाटली पुर नगर के नंद राजा का शकडाल प्रधान

के स्थूलिभद्र और श्रीयक नामक दो पुत्र और सात पुत्रियाँ थीं। बड़े पुत्र को कोश्या नामक वेश्या के वहाँ विद्याभ्यास करने के लिए प्रेषित किया। वह उसके भोगों में लुब्ध बनकर वहाँ ही रहने लगा। सातों पुत्रियां विदुषी थी। इनमें से पहली एक बार श्रवण करने से, दूसरी दो बार श्रवण करने से, क्रमशः सातवीं सात बार श्रवण करने से कोई भी ग्रन्थ कंठस्थ कर लेती थी। उसी नगर में वररुचि नामक परदेशी ब्राह्मण था जो नित्य १०८ नवीन श्लोक राजा को सुनाया करता था जिससे राजा संतुष्ट हो सदैव १०८ स्वर्ण मुद्राएं उसको दिया करता था। प्रधान ने विचार किया कि इस तरह देने से राजा का भंडार खाली हो जाएगा इसलिए यह क्रम बंद करना चाहिए। ऐसा विचार कर राजा से बोला कि यह ब्राह्मण नवीन श्लोकों का ढोंग कर आपको प्राचीन श्लोक सुनाता है। राजा ने कहा कि तुझे कैसे मालूम? प्रधान ने कहा कि मेरी सातों पुत्रियों को ये श्लोक कंठाग्र हैं। सातों पुत्रियों को राजसभा में लाया, ब्राह्मण जो श्लोक बोला उसे पहली पुत्री ने एक बार सुनकर सब सुना दिया। फिर दूसरी इस तरह सातों पुत्रियों ने सब श्लोक सुना दिये। तब वह ब्राह्मण खेदित होकर चला गया। अब वह ब्राह्मण गंगा नदी की रेती में एक पटिया डालकर उसके किनारे पर खड़ा रहता और दूसरे किनारे पर गंगा नदी में १०८ स्वर्ण मुद्राओं की थैली रखकर गंगा की स्तुति करता था। स्तुति पूर्ण होने के बाद पांव से पटिया दबाने से दूसरे किनारी पर रखी हुई सुवर्ण महोरों की थैली उछलती थी वह हाथ में झेलकर लोगों को कहता था कि मेरी स्तुति से प्रसन्न होकर गंगा देवी १०८ स्वर्ण मुद्राएं मुझे देती है। राजा ने यह बात सुनकर प्रधान से कहने लगा कि जिस ब्राह्मण को आपने निकाल दिया उसको गंगा नदी द्रव्य देती है। प्रधान बोला यह पाखंड है। गुप्त रीति से छानबीन करने पर प्रधान को उसका भेद ज्ञात हो गया और थैली पानी में से गुप्त रूप से निकाल ली। फिर राजा और प्रधान दोनों वहाँ गये। ब्राह्मण ने स्तुति पूर्ण होने पर पटिया को बहुत दबाया परंतु थैली बाहर नहीं आई, जिससे बड़ा शरमिंदा हो गया। राजा प्रधान दोनों घर आ गये। अब उस ब्राह्मण का अपमान होने से प्रधान को मारने का उपाय करने लगा। प्रधान के छोटे पुत्र श्रीयक के लग्नोत्सव में राजाजी को देने के लिये राजा के आभूषण व शस्त्रादि बनवाते थे। इस बात की वररुचि पंडित को मालूम हुई जिससे गांव के बालकों को एक दोहा बनाकर सिखलाया कि दोहा–**नंदराय नवी जान ही, जो शकडाल करे॥ नंदराय मारी करी, श्रीयक राजठवेश॥१॥** राजा ने बालकों के पास से सुनकर प्रधान के घर में गुप्त रूप से ज्ञात करवाया तो मालूम हुआ कि प्रधान के वहाँ भी छत्र, चामर, व शंख बनवा रहे हैं। यह सुनकर राजा कोपातूर हो गया। प्रधान राजा के पास आया तब राजा ने मुख मोड़ लिया। प्रधान अपने घर गया और पुत्र से कहा कि राजा मेरे से रुष्ट हो गये हैं। इससे वह सब कुल का नाश कर देंगे, इसलिये राजसभा में राजा के सम्मुख तू मुझे खड्ग से मार डाल। तब प्रधान पुत्र के साथ राजा को पुनः नमन करने गया परंतु राजा ने सामने देखा नहीं तब श्रीयक ने उस को खडग से मार डाला। राजा दुःखी होकर कहने लगा कि–अरे तूने यह क्या किया? श्रीयक बोला कि जिस पर स्वामी कोपित हो गये हैं उसका ऐसा ही हाल करना चाहिये। राजा सुनकर प्रसन्न हुआ और उसके पिता का पद उसको ही देने लगा तब उसने कहा कि मेरा बड़ा भाई स्थूलिभद्र है उसको प्रदान करो। स्थूलिभद्र को कोशा वैश्या के वहाँ से बुलाया और प्रधान पद का कहा। उसने विचार किया कि जैसे पिता की दशा हुई वैसी ही मेरी दशा होगी, यदि मैं इस बात को स्वीकार नहीं करूँगा तो हठात् से मुझे उस पद पर नियुक्त करेंगे। इससे बचने का यही उपाय है कि दीक्षा लेना। ऐसा विचार कर साधु का वेष धारण कर राजा के पास आया। राजा बोले कि यह क्या किया? स्थूलिभद्र ने उत्तर दिया कि आत्मा तारने का

यह मार्ग है। राजा बोले अच्छा है परन्तु जैसा लिया वैसा ही पालन करना है। स्थूलिभद्र संभूति आचार्य के पास दीक्षा लेकर नव पूर्व का ज्ञान अर्जित किया। कोशा वेश्या स्थूलिभद्र के दीक्षा का समाचार सुनकर उदास हो गई। उसने श्रीयक से स्थूलिभद्र की दीक्षा का कारण पूछा। श्रीयक ने सम्पूर्ण वृत्तान्त कह सुनाया और वररुचि पंडित को मारने का उपाय किया। वैश्या ने उस वररुचि पंडित को अपने वश में कर मदिरा पान कराया और श्रीयक ने उसे राज्यसभा में पकड़वाकर मंगवाया। औषधि देकर उसको वमन करवाया, जिससे मदिरा निकली सब लोगों ने उसकी घृणा की। राजा ने उसको भ्रष्टाचारी जानकर ऊष्ण ताम्बे का रस पिलवाया, वह मरकर दुर्गति में गया। स्थूलिभद्र संभूति आचार्य के पास ज्ञानाभ्यास करते विचरण कर रहे हैं, चातुर्मास का काल नजदीक आया। एक शिष्य ने कुएँ के बीच में रहा हुआ काष्ट पर कायोत्सर्ग से चातुर्मास व्यतीत करने की आज्ञा मांगी, दूसरे ने सिंह की गुफा में चातुर्मास पूर्ण करने की आज्ञा मांगी, तीसरे ने सर्प की बिल पर चतुर्मास करने की आज्ञा मांगी तब चौथे स्थूलिभद्र ने कोश्या वैश्या के वहाँ चौमासा करने की अनुमति मांगी। गुरुजी ने चारों को सुख होवे वैसे करो–यों चौमासा करने की आज्ञा प्रदान की। चारों इच्छित स्थान गये। स्थूलिभद्र को आते हुए देखकर कोशा प्रसन्न हो गई, साधु ने चौमासा करने के लिये स्थान मांगा। तब वैश्या ने कहा कि यह आप की देह और गृह है। ऐसा कहकर स्थूलिभद्र के पास आई। स्थूलिभद्र ने कहा मैं साधु हूँ, मेरे से दूर खड़ी रहकर बोलना। कोशा वैश्या ने विचार किया कि यह थोड़ी देर का वैराग्य है इसे बाद में वश में कर लूंगी। ऐसा विचार कर कहने लगी की–जैसी आप की इच्छा। अब स्थूलिभद्र चित्रशाला में चातुर्मास कर रहे थे। वह कोशा वैश्या सदैव अनेक हाव भाव व कटाक्ष से उनको चलित करती परंतु स्थूलिभद्र चलायमान नहीं होते और मनोमुग्धकारी वातावरण में रहने पर भी चलित नहीं हुए। अपितु उपदेश देकर वैश्या को दृढ़धर्मी श्राविका बनाया और बारह व्रत प्रदान किये। राजा आज्ञा करे किसी पुरुष को भेजे उसका आगार, और अन्य सब पुरुष से भोग का त्याग किया। चौमासा पूर्ण होने के बाद चारों साधु गुरुजी के पास आये; गुरु जी ने तीन साधुओं को दुष्कर करनी करने वाले कहा परंतु स्थूलिभद्र को महा दुष्कर करनी करने वाले कहा फलस्वरूप तीनों को ईर्ष्या हुई और परस्पर कहने लगे कि काष्ट जैसा शरीर हम बनाकर आये हैं तब दुष्कर नहीं कहा और यह स्थूलिभद्र वैश्या की चित्रशाला में मनोरम षड्रस के भोजन खाकर पुष्ट शरीर बन आया, उसको महा दुष्कर कहा। गुरुजी तो प्रधान के पुत्र का पक्ष लेते हैं। तब गुरु जी ने प्रत्युत्तर में कहा कि वहाँ रागवती वैश्या और नित्य षडरस के भोजन सदा विषय स्थान में रहना और मनोहर शरीर की धारक वैश्या की संगति ऐसी होने पर भी स्थूलिभद्र अविचल रहे। इसलिये वस्तुतः ही महा दुष्कर करणी करने वाले हैं। तब सिंह गुफावासी साधु ने ईर्ष्या से दूसरा चौमासा आया, तब वैश्या के वहाँ रहने की आज्ञा मांगी। गुरु मौन रहे। तब शिष्य ने आज्ञा के बिना ही चल दिया। वह कोशा वैश्या के वहाँ गया। वैश्या उस मुनि को आते हुए देखकर समझ गई कि–यह स्थूलिभद्र की ईर्ष्या से आये हैं। उनको अपनी चित्रशाला में रहने का स्थान दिया, साधु उस का वैभव देखकर विषयाभिलासी बनकर भोग की प्रार्थना करने लगा। तब उसने कहा कि हम तो धन देने वाले को स्वीकारती हैं। साधु ने कहा कि–हमारे पास धन नहीं है तू कहे वहाँ से ले आऊँ। वैश्या ने कहा नेपाल देश का राजा रोगी साधु को रत्न कम्बल देता है वह ला दो। ऐसा सुनकर चातुर्मास में अनेक जीवों की घात करता हुआ नेपाल देश में गया। वहाँ से रत्न कम्बल ली और मार्ग में चोर आदि के भयंकर संकट से बचकर वैश्या के वहाँ आया। वैश्या ने उससे पैर पोंछ कर नाली में डाल दिया साधु ने कहा कि मैं बहुत परिश्रम से लाया

हूँ उसे तू नाली में क्यों डाल देती है? वैश्या ने कहा कि तुम्हारा वैसा ही कार्य है। साधु बोला कैसे? वैश्या ने कहा कि रत्न कम्बल से अधिक मूल्यवान यह संयम रत्न आपको प्राप्त हुआ है। इसको आपने मल मूत्र से भरे हुए मेरे शरीर के लिये नष्ट करने के लिए तत्पर हुए हों। तुझको धिक्कार है। ऐसे घृणित कार्य से स्थूलिभद्र जैसे मुनि ही परे रहने में समर्थ हैं। तुम्हारे जैसे पामर क्या कर सकते हैं। ऐसा सुनकर साधु लज्जित हो गया और गुरु की सेवा में आकर आलोचना कर पुनः संयम धारण किया। जैसे स्थूलिभद्र ने स्त्री परीषह सहन किया वैसे ही सब साधु को स्त्री परीषह सहन करना चाहिये।

एग एव चरे लाढे, अभिभूय परीसहे।
गामे वा नगरे वावि, निगमे वा रायहाणिए॥१८॥

स्त्री परीषह से बचने के लिये विहार करना चाहिये इसलिए नवमें चर्या परीषह कहते हैं–निर्दोष आहार से शरीर का निर्वाह करने वाला, साधु चर्या परीषह जीतकर अकेला राग द्वेष रहित गाम, नगर, निगम व राजधानी में विचरे॥१८॥

असमाणे चरे भिक्खू, नेव कुज्जा परिग्गहं।
असंसतो गिहत्थेहिं, अणिएओ परिव्वए९॥१९॥

वह साधु किसी गुहस्थ की नेश्राय नहीं रखता हुआ घर मनुष्यादिक में ममत्व रूप परिग्रह नहीं करता हुआ और गृहस्थ के साथ संसर्ग नहीं रखता हुआ घर रहित साधु नव कल्पी विहार करता हुआ विचरे॥१९॥

इस चर्या परीषह पर संगमाचार्य की कथा चिंतनीय हैं–श्रावस्ती नगरी में संगामाचार्य वृद्धावस्था के कारण जंघा बल क्षीण होने से स्थिरवास करके रहे। एक बार वहाँ दुष्काल पड़ने से लोगों का मन संकुचित देखकर अपने शिष्यों को विहार करवाया और स्वयं उस नगर के अलग-अलग स्थानों में विचरने लगे। अवसर देखकर गौचरी करते थे और आयंबिल एकाशन अनशन आदि तप करके बारह वर्ष व्यतीत किये। आचार्य की ऐसी उत्कृष्ट क्रिया देखकर नगर रक्षक देव संतुष्ट हुआ। एक बार एक दत्त नामक शिष्य वहाँ आया और गुरु को उस ही स्थान में देखकर उसे द्वेष आया कि यह तो आनंद में यहाँ ही बैठे हैं और हमको तो विहार करवाया। इस प्रकार विचार करता ग्राम में भिक्षार्थ गया और एक श्रेष्ठि पुत्र की व्यंतर व्याधि दूर कर आहार लाया। आचार्य इस बात को जानकर बोले कि सदोष आहार की आलोचना निंदा कर प्रायश्चित लेकर शुद्ध हो। तब शिष्य ने कहा कि आपने ऐसे दुष्काल में यहाँ एक स्थान रहकर कैसे निर्दोष आहार भोगा होगा? ऐसे सुनकर नगर रक्षक देव उस शिष्य से कहने लगा कि अरे तुम तुम्हारा अपराध आचार्य पर डालते हो। तुम तो एक दिन भी निर्मल संयम पाल सके नहीं परन्तु आचार्य ने जंघाबल क्षीण होते हुए भी विहार किया था और निर्दोष आहार पानी से आजीविका की थी। यों सुन दत्त साधु ने गुरु से अपराध की क्षमा याचना की। और प्रायश्चित लेकर शुद्ध हुआ। यों संगमाचार्य की तरह सब साधु को चर्या परीषह सहन करना चाहिये।

सुसाणे सुन्नगारे वा, रुक्खमूले व एगओ।
अकुक्कुओ निसीएज्जा न य वित्तासए परं॥२०॥

चलते हुए को बैठने की इच्छा होवे जिससे अब दसवा निषद्या बैठने का परीषह कहते हैं–विचरता हुआ साधु बैठने का प्रयोजन प्राप्त होने पर श्मशान, शून्य गृह अथवा वृक्ष मूल में

अकेला कुचेष्टा रहित बैठे और वहाँ बैठा हुआ अन्य किसी जीव को त्रास उत्पन्न करे नहीं॥२०॥

तत्थ से अत्थमाणस्स, उवसग्गाभिधारए।
संकाभीओ न गच्छेज्जा, उट्ठित्ता-अन्नमासणं १०॥२१॥

वहाँ बैठते हुये जो कोई देव दानव मानव का उपसर्ग आने पर उसे सहन करे परन्तु उपसर्ग से भयभीत बनकर अपने आसन से उठकर अन्य आसन पर नहीं जाये॥२१॥

इस निषद्यापरीषह पर कुरुदत्त आचार्य की कथा ज्ञातव्य हैं, हस्तिनापुर नगर में कुरुदत्त व्यवहारिया ने दीक्षा धारण कर विहार करते एकदा किसी ग्राम के बाहर रात्रि के चार प्रहर पर्यंत अभिग्रह सहित कायोत्सर्ग में स्थित रहे। उसी रात्रि में गांव में धन की चोरी करके चोर उसी रास्ते से चले गये। गांव के लोगों ने उसका पीछा किया और उस मुनि को पूछने लगे तब उन्होंने कुछ भी उत्तर नहीं दिया। तब गांव के लोग कुपित बनकर मुनि के मस्तक पर मिट्टी की पाली बांधकर उसमें जाज्वल्यमान अग्नि डाल दी। उससे मुनि को अत्यंत असह्य वेदना होने लगी और मुनि शुभ ध्यान सहित आयुष्य पूर्ण कर देवलोक में गये। इस प्रकार सभी मुनियों को निषद्या परीषह सहन करना चाहिये।

उच्चावयाहिं सेज्जाहिं, तवस्सी भिक्खु थामवं।
नाइवेलं विहन्निज्जा, पावदिट्ठी विहन्नई॥२२॥

विशेष काल रहने के लिये मकानादि होना चाहिये इसलिए ग्यारहवां शैय्या परीषह कहते हैं। अच्छी अथवा खराब शैय्या-स्थानक प्राप्त होने पर तप में बलवान साधु स्वाध्यायादिक की मर्यादा का उल्लंघन नहीं करे और जो पाप दृष्टि होते हैं। वे प्रमादी होकर काल उल्लंघन करते हैं॥२२॥

पइरिक्कुवस्सयं लद्धुं, कल्लाणमदुव पावयं।
किमेगराइं करिस्सइ, एवं तत्थऽहियासए ११॥२३॥

अन्य के लिये बनाया हुआ शोभनीय अथवा अशोभनीय स्त्रियादि रहित स्थान प्राप्त करके वहाँ रहे और ऐसा विचार करे कि एक रात्रि यहाँ निकालने की है तो इतने में मेरा क्या हो जाएगा, यों विचार कर परीषह को समतापूर्वक सहन करे॥२३॥

इस विषय में सोमदत्त व सोमदेव की कथा प्रकाश डालती है—कौशाम्बी नगरी में भगदत्त ब्राह्मण के सोमदत्त व सोमदेव ये दोनों पुत्र ने दत्त आचार्य के पास दीक्षा लेकर ज्ञानाभ्यास कर सोमप्रभ आचार्य के दर्शनार्थ उज्जयनी नगरी जाते मार्ग में किसी ने ओसामन बहराया। उसे भोगते हुए दोनों साधु व्याधि से पीड़ित हुए। उस औसामन को विष मिश्रित जानकर एक नदी के किनारे किसी काष्ट के पाट पर अनशन से ध्यानस्त रहे। अकस्मात् वृष्टि होने से साधु सहित वह काष्ट नदी में बह गया। परंतु साधु चलायमान हुए नहीं और आयुष्य पूर्ण कर देवलोक को प्राप्त किया। इसी प्रकार अन्य साधु को भी शैय्या परीषह सहन करना चाहिए।

अक्कोसेज्जा परे भिक्खुं, न तेसिं पडिसंजले।
सरिसो होइ बालाण, तम्हा भिक्खू न संजले॥२४॥

मकान आदि में रहते हुए गृहस्थ आक्रोश वचन सुनावे इससे बारहवां आक्रोश परीषह कहते हैं—जो कोई साधु को आक्रोश वचन कहे उस पर वह साधु क्रोध नहीं करे, क्योंकि क्रोध करने वाला बाल अज्ञानी जैसा होता है। इसलिए साधु को क्रोध नहीं करना चाहिए॥२४॥

सोच्चा णं फरुसा भासा, दारुणा गामकंटगा।
तुसिणीओ उवेहेज्जा, न ताओ मणसी करे १२॥२५॥

कठोर, दारुण और इन्द्रियों को कंटक समान भाषा सुनकर के भी साधु मौन बना हुआ उसकी उपेक्षा करे अर्थात् वैसी भाषा की दरकार करे नहीं और उन बोलने वाले पर द्वेष भी करे नहीं॥२५॥

इस सम्बन्ध में अर्जुन माली की कथा प्रतिपादित है–राजगृही नगरी के बाहर एक बगीचे का अर्जुन माली स्वामी था। उसकी रूपवती बन्धुवती नामक भार्या थी। वे दोनों बगीचे में से पुष्पों को चुनकर वहाँ ही रहे हुए मुद्गल पानी यक्ष के देवालय में उसकी प्रतिमा को प्रधान पुष्पों से पूजा करता था। और वह वहाँ से निकल कर ग्राम में पुष्पादि का विक्रय करता उससे अपनी आजीविका निर्वाह करता था। उसी राजगृही नगरी में छः मित्र पुरुष रहते थे। वे राजा की ओर से निर्भय बने हुए मदोन्मत्त बनकर एकदा उत्सव के लिये उस ही बगीचे में आये। वहाँ उस मालन को देखकर वे विषयाभिलाषी पुरुष परस्पर कहने लगे कि इस मंदिर के पिछले भाग में अपन छिपकर खड़े रहे। जब वह माली उस यक्ष को नमस्कार करने को आएगा तब तुरन्त ही उसको बांधकर उसकी स्त्री से अपना भोग करेंगे। ऐसा कहकर वे वहाँ ही लुक-छिप गये, वह अर्जुन माली अपनी स्त्री सहित वहाँ आया। यक्ष की पूजा करके नमस्कार करने लगा। उतने में ही उन छः ही पुरुषों ने उसको मजबूत बांधकर धकेल दिया, और उसकी स्त्री के साथ दुर्व्यवहार करने लगे। तब माली क्रोधित होकर बोला कि–मेरी कई पीढियों से यह यक्ष पूजित हो रहा है और मैं भी बाल्यावस्था से इसका पूजारी हूँ। यदि इसमें सत्यता होती तो इसके ही सन्मुख मेरी होती हुई यह दुर्दशा वह कदापि सहता नहीं। इससे यह यक्ष नहीं है परंतु काष्ट का पूतला है। वह माली ऐसा विचार कर रहा था। उतने में ही उस यक्ष ने उसके शरीर में प्रवेश कर तत्काल बंधनों को तोड़कर एक हजार पल्य का मुद्गल उठाकर उक्त छः ही पुरुष और स्त्री को मार डाला। फिर वह यक्ष अर्जुनमाली के शरीर में प्रविष्ट होकर राजगृही नगरी के बाहर घूमते-फिरते और नित्य छः पुरुष व एक स्त्री को मारने लगा। राजगृही नगरी के लोग बड़े भयभीत हुए और श्रेणिक राजा ने घोषणा करवाई कि राजगृही नगरी के बाहर अर्जुनमाली मनुष्यों को मारता है। इसलिये किसी को गांव के बाहर जाना नहीं चाहिए। इस प्रकार उपसर्ग होते हुए ५ मास १३ दिन व्यतीत हुए जिसमें ११४१ मनुष्य की घात हुई। लोगों के भाग्योदय से श्रमण भगवान महावीर स्वामी पधारे। गुणशील उद्यान में विराजमान हुए। गांव में लोगों को ज्ञात हुआ, परंतु अर्जुनमाली के डर से कोई भी बाहर जा नहीं सका। उस राजगृही नगरी में सुदर्शन नामक सेठ रहता था। वह सब के मना कहने पर भी भगवान के दर्शन के लिये गांव से बाहर गया। वहाँ अर्जुनमाली को मुद्गल उठाते हुए अपनी ओर आते हुये देखा कि तत्काल ही सुदर्शन सेठ ने नीचे जमीन पूंजकर अरिहंत सिद्ध धर्माचार्य को नमस्कार करते हुए आलोचना निन्हवना सहित सागारी संथारा किया। उतने में अर्जुनमाली वहाँ आ पहुँचा और उसे मारने के लिये मुद्गल उठाया! परंतु मुद्गल हाथ से नहीं छूटा। चारों ओर घूमकर वह मुद्गल मारने लगा तथापि वह हाथ से नहीं छूटा। अतः आश्चर्यभूत बनकर सुदर्शन को देखने लगा। दोनों की दृष्टि एक होते ही यक्ष उस अर्जुनमाली के शरीर में से निकल गया और अर्जुन मूर्च्छित होकर नीचे जमीन पर गिर पड़ा। सुदर्शन संथारा पार कर अर्जुन सहित भगवान के समीप आया। भगवान ने धर्मोपदेश दिया। वहाँ अर्जुन ने दीक्षा अंगीकार की

और भगवान की आज्ञा से जावजीव पर्यंत बेले-बेले के तपस्या करता हुआ विचरने लगा। प्रथम बेले के पारणे में भिक्षा लेने के लिये राजगृही नगरी में आया। उसे देख लोग क्रोधातुर होकर कहने लगे कि इसने हमारे मां-बाप-भाई बहिन आदि को मारा हैं, इसलिए वे उस को भिक्षा के छल से अपने घर में बुला कर यष्टि-मुष्टि आदि से प्रहार करने लगे, तथापि अर्जुन अनगार किंचित्मात्र कोप नहीं करते हुए और कुछ भी प्रत्युत्तर नहीं देते हुए समभाव से सहन करने लगे, जब वे लोग मारना छोड़ देते थे तब स्वयं कहते थे कि मैंने तो तुम्हारे स्वजनादिक को जीवन से पृथक् किये है, परंतु तुम तो मुझे जिंदा छोड़ रहे हो, यह तुम्हारा बड़ा उपकार है। इस तरह समभाव से आक्रोश परीषह सहन करते हुए क्वचित् आहार मिलता तो पानी नहीं मिलता और क्वचित् पानी मिलता तो आहार नहीं मिलता इस तरह जो मिला उस में संतोष मानते हुए छः ही महीने में सर्व कर्मों क्षय कर केवल ज्ञान केवल दर्शन प्राप्त कर मोक्ष गये।

हओ ण संजले भिक्खू, मणं पि न पओसए।
तितिक्खं परमं नच्चा, भिक्खू धम्मं विचिंतए॥२६॥

कदापि मार भी मारे इस से तेरहवाँ वध परीषह कहते हैं–साधु को कोई मार मारे तो मन से भी उस पर क्रोध अथवा कोप करें नहीं, परंतु उस को सहन करने में उत्कृष्ट धर्म है ऐसा जानकर क्षमा धर्म का चिंतवन करे॥२६॥

समणं संजयं दंतं, हणिज्जा कोइ कत्थई।
नत्थि जीवस्स नासु त्ति, एवं पेहेज्ज संजए॥ १३॥२७॥

कोई पुरुष किसी स्थान संयति व दमितेन्द्रिय श्रमण को मारे तो साधु विचार करें कि जीव का नाश कदापि नहीं होता है, यह मात्र पुग्दल पिण्ड को मारता है इस में मेरा कुछ भी बिगाड़ नहीं है॥२७॥

इस सम्बन्ध में यह कथा चिंतनीय है–श्रावस्ती नगरी में जीतशत्रु राजा के धारनी रानी की कुक्षि से खंधक कुमार और पुरंधरा पुत्री उत्पन्न हुए थे। वे दोनों नीतिशास्त्र व धर्म शास्त्र में प्रवीण बने। पुरंधरा का विवाह दंडकारण्य देश के अधिपति के साथ हुआ था। दंडकारण्य के राजा का पालक प्रधान रानी को लेने के लिये श्रावस्ती नगरी में आया और राज्यसभा में धर्म चर्चा करता हुआ नास्तिक मत की स्थापना करने लगा खंदक कुमार ने उसे प्रत्युत्तर दे कर निरुत्तर कर दिया, और जैन मत का महत्व बढ़ाया। इस से पालक अपने मन में अमरोष रखता हुआ रानी को ले अपने देश आया। तत्पश्चात् मुनि सुव्रत भगवान के पास खंधक कुमार ने ५०० पुरुषों के साथ दीक्षा ली और आचार्य पद प्राप्त किया। ५०० साधु सहित विचरते हुए दंडकारण्य देश में पधारे, पालक प्रधान को इस बात की जानकारी होते ही अपना पूर्व का द्वेष जागृत हुआ और जहाँ खंधक अनगार अपने शिष्यों के परिवार के साथ विराजित थे। उस के पीछे नदी की रेती में विविध प्रकार के शस्त्र छुपा दिये और राजा से कहने लगा कि तुम्हारा साला उन के ५०० सुभटों सहित तुम्हारा राज्य लेने के लिये आया है, तुम को धर्म के जाल में फँसाकर मार डालेंगे। राजा ने पूछा कि तुम को यह कैसे ज्ञात हुआ? उसने सारा वृतान्त कह सुनाया तब राजा ने आज्ञा प्रदान की जैसी तुम्हारी इच्छा हो वैसा उनके साथ व्यवहार करो। तब पालक ने पांचसों साधुओं को अपने वश में कर लिया और एक बड़ा लोहे का घाणा मंडवाकर उस में एक-२ साधु

को पीलने लगा। खंधक आचार्य बड़े शब्द से उपदेश करते हुए उनकी आत्मा को शांत करने लगे, यों ४९९ साधु को पील दिया और वे अन्तकृत केवली हो मुक्ति गये। अंत में एक छोटा साधु बच गया तब आचार्य बोले कि मेरे सन्मुख इसे मत मार, परंतु पूरा दुष्ट पालक प्रधान ने उस शिष्य को आचार्य के पास से छीनकर पील डाला, वे भी केवली होकर मुक्ति गये। इस समय आचार्य शांत नहीं रह सकें और निदान किया कि मेरी करनी का फल होवे तो इस घोर कृत्य का मैं वैर लूं। प्रधान ने उन को भी घानी में पील डाला और वे मरकर भवनपति में अग्निकुमार जाति के देव हुए। जब यहाँ पर उस स्कंधचार्य की रक्त से भरी हुई मुख वस्त्रिका को मांस का लोंदा जानकर चील लेकर उड़ गयी, और उसे राजमहल पर डाल दी। राजा की रानी ने उसे देखकर खोज करवाई तो अपने भाई साधु को और उन के पाँच सौ शिष्यों को पालक प्रधान ने मार डाला है, ऐसा सुनकर विलाप करती हुई राजा को कहने लगी कि पालक प्रधान के भ्रम में फँसकर आपने बड़ा अनर्थ किया है, इसका बदला आप को यहाँ ही मिल जायेगा। यों कहकर रानी ने दीक्षा ली, अब अग्नि कुमार देव ने कुपित बनकर राजा व पालक प्रधान अतिरिक्त सब को जलाकर भस्म कर दिया, राजा और प्रधान ने पुनः उस देश को बड़ी कठिनता से आबाद किया। जिस को बारह वर्ष पहले उस देवता ने जला दिया, यों बारह बार देश को जलाया और तेरहवीं बार राजा प्रधान को भी जला दिया पालक अभव्य जीव अनंत संसारी हुआ। जिस प्रकार खंधक अनगार के पांचसों शिष्यों ने वध परीषह सहन किया वैसे ही सब साधु को सहन करना चाहिये।

दुक्करं खलु भो! निच्चं, अणगारस्स भिक्खुणो।
सव्व से जाइयं होइ, नत्थि किंचि अजाइयं॥२८॥

वध से पीड़ित साधु को औषधि आदि की याचना करनी पड़े इससे चौदहवाँ याचना परीषह कहते हैं, गुरु कहते हैं कि अहो शिष्य! साधु की याचना वृत्ति बड़ी दुष्कर है, गृहस्थ का कुछ भी कार्य किये बिना ऐसे ही याचना करनी पड़ती है, तब बहुत लज्जित होना पड़ता है, परंतु याचना किये बिना कुछ भी नहीं मिलता है, जो कुछ मिलता है सो याचना करने से ही मिलता है॥२८॥

गोयरग्गपविट्ठस्स, पाणी नो सुपसारए।
सेओ अगारवासु त्ति, इइ भिक्खू न चिंतए १४॥२९॥

गोचरी के लिये गया हुआ साधु भिक्षा के लिये हाथ बाहर नहीं निकाल सके, (फैला नहीं सके) तब ऐसा विचार करे नहीं कि इस से तो गृहवास अच्छा है।२९॥

इस विषय में बलभद्र मुनि की कथा इस प्रकार है–एक बार नेमीनाथ भगवान से कृष्ण वासुदेव ने प्रश्न किया कि मेरी मृत्यु कैसे होगी? भगवान ने कहा कि कौशाम्बी बन में वट वृक्ष के नीचे पीताम्बर ओड़ कर तू सोता होगा जब जराकुमार का बाण लगने से तुम्हारी मृत्यु होगी। श्री कृष्ण वासुदेव ने दूसरा प्रश्न किया कि द्वारिका नगरी का नाश कैसे होगा? भगवान ने कहा कि मदिरा पान से तुम्हारे राजकुमार द्वीपायन ऋषि को कष्ट देंगे वह अग्नि कुमार देव बनकर तुम्हारी द्वारिका नगरी जलायेगा, परंतु जहाँ तक आयंबिल तप द्वारिका में होता रहेगा वहाँ तक देवता कुछ भी नहीं कर सकेगा। पुनः कृष्ण वासुदेव ने प्रश्न किया कि मैं यहाँ से मरकर कहाँ

जावूंगा? भगवान ने कहा कि तू यहाँ से मरकर तीसरी नरक में जायेगा। यों सुन कृष्ण उदास हुए तब भगवान ने कहा कि–हे कृष्ण! तू उस नरक से निकल कर शतद्वारा नगरी में अमम नामक बारहवाँ तीर्थंकर होकर मुक्ति को प्राप्त करेगा। इतना सुनते ही कृष्ण वासुदेव प्रमुदित हुए और सिंहनाद किया। तत्पश्चात् भगवान को वंदना नमस्कार करके द्वारिका नगरी में आये और ढिंडोरा पिटवाया कि द्वारिका नगरी में दाह होगा इस से नेमीनाथ भगवान के पास जिन को दीक्षा लेने की इच्छा हो उन के कौटम्बिक जनों का मैं संभाल करूंगा। अपनी आठ पटरानियों और अन्य अनेक कुमारादि दीक्षा लेने के लिये तत्पर हुए और कृष्ण वासुदेव ने सब की बड़ी धूमधाम से दीक्षा कार्य सम्पन्न करवाया। द्वारिका के नाश का कारण मदिरा है उसे नगरी में रखने की मनाई कर दी। इधर राजकुमार बन में क्रीडा के लिये गये थे, प्यास लगने से किसी ने छिपाकर रखा हुआ मदिरा का घड़ा पानी समझ कर पी गये इस से वे उन्मत्त बने हुये और वहाँ तप करने वाले द्वीपायन तपस्वी के प्रति अपचेष्टा करेन लगे, उस ने कूपित बनकर श्राप दिया कि मेरे तप का फल हो तो मैं द्वारिका जलाऊ। यों सुनकर कुमारों ने श्री कृष्ण से सब निवेदन किया। कृष्ण व बलभद्र ये दोनों भाई द्वीपायन ऋषि के पास आकर नमस्कार कर कहने लगे कि राजकुमारों के अपराध की क्षमा करो और अनुनय--विनय करने पर द्वीपायन ऋषि ने कहा कि तपस्वी का श्राप और लोगों का अपवाद अन्यथा नहीं होता है, परंतु तुम दोनों को नहीं जलाऊंगा। द्वीपायन ऋषि को बहुत समझाया परंतु वह नहीं माना, तब होनहार जानकर अपने स्थान आये। द्वीपायन वहाँ से काल कर अग्नि कुमार देव हुआ, उसने ज्ञान से सब वृत्तान्त जाना परंतु आयंबिल तप के प्रभाव से द्वारिका नहीं जला सका। किसी दिन ऐसा हुआ कि जिस को आयंबिल करना था उस के घर वाले ने एक एक के भरोसे से आयंबिल किया नहीं। यों संपूर्ण द्वारिका में आयंबिल तप नहीं हुआ। यह जानकर देवता ने शहर को अग्नि का दाह लगा दिया, और किसी उपाय ये अग्नि शांत हुई नहीं। उनमें से जो दीक्षा लेना चाहते थे उनको भगवान नेमीनाथजी के पास पहुँचा दिया। कृष्ण व बलभद्र दोनों अपने पिता वासुदेव व माता देवकीजी को रथ में बैठाकर दोनों ने रथ खींचते हुए द्वारिका के द्वार से निकलने लगे, दोनों भाई बाहर जैसे ही निकले कि तुरंत ही दरवाजा गिरने से उन के माता-पिता का देहान्त हो गया। मथुरा जाते मार्ग में कोशंबी बन आया, कृष्णजी को प्यास लगी बलभद्रजी पानी लेने गये थे। कृष्णजी वट वृक्ष के नीचे पीताम्बर वस्त्र ओड़ कर सो गये, उसी समय वहाँ जरा कुमार आये, उसने दूर से कृष्णजी के पाँव को पद्म को मृग का नयन मानकर उस को मारने के लिये बाण छोड़ा। वह वहाँ आया और कृष्णजी को देखकर घबराया और पाँव में पड़कर क्षमा मांगी। कृष्णजी ने अपना कौस्तुभमणि उस को दिया और कहा कि यह पांडवों को देना और सब वृत्तान्त कहना, अब तू यहाँ से चला जा नहीं तो बलभद्रजी आवेंगे तो तूझे मार डालेंगे, यो सुनकर जराकुमार चला गया। अन्त में उन की गति बिगड़ने की होने से कृष्ण क्रोधातुर हो गये, और बोले कि यह मुझे मारकर कहाँ जाता है, इसे भी मारूं और द्वीपायन जिसने मेरी द्वारिका नगरी जलाकर भस्म कर दी उसे भी मारूँ, यों क्रोधवेश में पैर उठकर जोर से जमीन पर रखने गये कि तुंरत ही वह बाण पाँव में प्रवेश कर गया और कृष्णजी मृत्यु शरण हो गये। बलभद्रजी पानी लेकर आये और कृष्ण को जगाने लगे, परंतु जगे नहीं तब वह बोलने लगे कि मुझे पानी लाने में देर हो गई जिस से क्यों रुष्ट हो गये? यों अपने शरीर पर उसके शरीर को उठाकर घूमने लगे, यों छः महीने बीत गये।[१] एक देवता समझाने के लिये एक मृत्तक गौ का दूध निकालने बैठा उसे देख बलभद्रजी कहने लगे कि रे मूर्ख! मृतक गाय भी क्या दूध देती है? तब देवता ने कहा कि मरा हुआ भी क्या जिंदा हो

१. उत्तम पुरुषों का शरीर छमास पर्यन्त बैसा ही बना रहता है।

सकता है कि जैसे तुम उठाकर फिर रहे हों। बलभद्रजी सुना अनसुना कर आगे चले, तब देवता घानी बना कर रेती पीलने लगा, बलभद्रजी बोले रे मूर्ख! क्या रेती में से तेल निकलता है, देवता ने पूर्वोक्त प्रकार से उत्तर दिया। यों देवता ने समझा कर कृष्ण के शरीर को चंदन काष्ठ से अग्नि संस्कार किया। बलभद्रजी नेमीनाथ भगवान के पास दीक्षित हो एकल विहारी बने। बलभद्रजी का अतीव सुन्दर रूप था जिससे कि जहाँ जाते वहाँ स्त्रियां उन के रूप से मोहित बनकर पीछे फिरने लगे। एक दिन तुंगीया पुरी में बलभद्रजी आये, वहाँ कुएं पर एक स्त्री पानी भर रही थी बलभद्रजी का रूप देखते ही मोहित हो गई और पानी भरते-२ घड़े के भरों से में अपने बालक के गले में फाँसा डाल कर कुएं में उतारा। बलभद्रजी अपने रूप से होता हुआ यह अनर्थ देखकर अपने रूप को धिक्कार देते ग्राम में प्रवेश करने का त्याग कर वन में ही रहने लगे। उन की उत्कृष्ट क्रिया देख कर एक मृग को जाते स्मरण ज्ञान हुआ और वह मृग किसी किसान को मुनि के पास लाया। किसान जो उसी बन में वृक्ष काट रहा था, उस की स्त्री ने उस के लिये जो आहार ले कर आयी थी वह वंदना नमस्कार कर निर्दोष आहार मुनि को दिया। वहाँ मृग भी पश्यातापं करने लगा कि यदि मैं मनुष्य होता तो दान देता उस समय पेड़ से डाली टूटी और मुनि किसान व मृग पर तीनों ही मृत्यु पाये।[१] वे पांचवें देवलोक में अपने-२ पुण्य अनुसार ऋद्धि धारक देवता हुए, बलभद्र मुनि एक भवकर मुक्ति में जावेंगे, यों बलभद्र मुनि की तरह याचना परीषह सहन करना चाहिए।

परेसु घासमेसेज्जा, भोयणे परिणिट्ठिए।
लद्धे पिंडे अलद्धे वा, नाणुतप्पेज्ज पंडिए॥३०॥

याचना करते इच्छित वस्तु की प्राप्ति नहीं होने से अलाभ होवे, इस से पन्द्रहवाँ अलाभ परीषह हैं साधु गृहस्थ के घर में आहार की गवेषणा करे और वहाँ भोजन तैयार होने पर मिले अथवा नहीं मिले तो भी साधु द्वेष करे नहीं॥३०॥

अज्जेवाहं न लब्भामि, अवि लाभो सुए सिया।
जो एवं पडिसंचिक्खे, अलाभो तं न तज्जए१५॥३१॥

आज मुझे आहार का लाभ नहीं मिला तो क्या हुआ, कल मिल जायेगा, इस तरह जो विचार करते हैं उन को अलाभ परीषह नहीं होता है॥३१॥

इस पर ढंढण मुनि की कथा ज्ञातव्य है मगध देश में पूर्वार्ध नगर था, वहाँ पाराशर नामक कुनबी रहता था। वह हल चलाता हुआ सब कृषिकारों का अधिपति था। एकदा व खेत में काम कर रहा था उतने में सब के लिये भोजन आया, तब वह सब को बुलाने लगा कि एक चिला तो खींच लो। उस की आज्ञा से उन्होंने एक चीला खींचा। जिस से पंद्रह सौ जीवों को आहार की अंतराय दी। अंतराय कर्म बाँधकर वह जीव वहाँ से च्यवकर कृष्णजी की ढंढणा रानी की कुक्षि से ढंढण कुमाररूप में उत्पन्न हुआ। बाल्यवस्था से तरुणावस्था में आते ही नेमीनाथ भगवान के पास दीक्षा अंगीकार की। अंतराय कर्म के उदय से गौचरी करने जाते परंतु आहार मिले नहीं। दूसरे कोई साधु उन के साथ जावे तो उन को भी आहार मिले नहीं, तब अपने से अन्य

---

१. अनेक स्त्री और उसका गर्भ भी दान की अनुमोदना करते हुए डाली नीचे दबकर मृत्यु पाये यों पांच जीव कहते हैं।

साधुओं को अंतराय होती हुई जानकर किसी के साथ जाना छोड़ दिया और भगवान के पास अभिग्रह धारण किया कि मेरी लब्धि से मुझे आहार पानी मिले तो ही मैं आहार पानी करूंगा, छः महीने तक आहार पानी मिला नहीं, एकदा नेमीनाथ भगवान के साथ वह द्वारिका आये और आज्ञा लेकर भिक्षार्थ गये, जब भगवान से श्री कृष्ण ने प्रश्न किया कि अठ्ठारह हजार साधुओं में सब से दुष्कर क्रिया करने वाले और आज केवल ज्ञान प्राप्त करने वाले कौन साधु है? भगवान ने कहा ढंढण ऋषि हैं, यों सुनकर कृष्ण जी प्रसन्न हुए और भगवान को वंदना नमस्कार कर द्वारिका में जाते हुए बजार में ढंढण मुनि को देखकर हस्ती पर से नीचे उतरे, तिखुत्तो के पाठ से विधि पूर्वक वंदना की और फिर वहाँ से आगे गये। वहाँ एक गाथापति यह ने देखकर विचार किया कि यह कोई बड़े महात्मा हैं जिन को श्रीकृष्ण ने भी वंदना नमस्कार किया, मैं इन को दान दूँ, यों विचार कर मुनि को गौचरी के लिये विनंति की और मोदक बहोराये। मुनि निर्दोष आहार लेकर नेमीनाथ भगवान के पास गये और कहने लगे कि आज मेरी अंतराय टूटी देखती है, यह मेरी लब्धि से मुझे आहार पानी मिला है। भगवान ने कहा तेरी लब्धि से आहार पानी नहीं मिला है, परंतु कृष्ण वासुदेव की लब्धि से मिला है, छः महीने के उपवास होने पर ढंढण मुनि ने विचार किया कि ऐसा आहार खाना मुझे नहीं कल्पता है, इसे परिठाने के लिये निर्वद्य स्थान पर गये, और विचारने लगे यदि भगवान नहीं होते तो मेरा अभिग्रह भंग हो जाता। धन्य है कि भगवान ने मेरे व्रत की रक्षा की इत्यादि शुभ भावना भाते हुए मोदक के चूर के साथ घनघाति कर्मों का चूर भी कर डाला और केवल ज्ञान प्राप्त कर भगवान के पास आये। बहुत वर्ष संयम पालकर मुक्ति में गये, जिस प्रकार ढंढण मुनि ने अलाभ परीषह सहन किया ऐसे अन्य साधु को भी सहन करना चाहिये।

नच्चा उप्पइयं दुक्खं, वेयणाए दुहट्ठिए।
अदीणो थावए पन्नं, पुट्ठो तत्थऽहियासए॥३२॥

इच्छित वस्तु की प्राप्ति नहीं होने से शरीर में व्याधि होवे इस से सोलहवा रोग परीषह कहते हैं, रोगादिक दुःख उत्पन्न हुआ जानकर वेदना से पीड़ित प्रज्ञावान अदीनता से अन्य को धर्म में स्थिर करे और परीषह सहन करे॥३२॥

तेगिच्छं नाभिनंदेज्जा, संचिक्खऽत्तगवेसए।
एवं खु तस्स सामण्णं, जं न कुज्जा न कारवे १६॥३३॥

आत्मा की गवेषणा करने वाला साधु रोग परीषह वेदनीय कर्म का उदय का कारण जानकर चिकित्सा की प्रशंसा नहीं करे अन्य से नहीं करवाते हैं और करने वाले को अच्छा नहीं जानते हैं उन का ही साधुत्व होता है॥३३॥

मथुरा नगरी में जितशत्रु राजा ने कालाइया नाम की वेश्या में मुग्ध बनकर उस को अपने अन्तःपुर में रखा, उस को जो पुत्र हुवा उस का नाम भी कालाइशया रखा। एकदा रात्रि को शृंगाल का शब्द सुनकर उस की निद्रा खुल गई, उसने शृगाल को पकड़ मंगवाया और मार डाला वह शृगाल वहाँ से काल कर व्यंतर देवता हुआ। एकदा उस कालइशया ने हरस (मसा) के रोग से पीड़ित बनकर प्रतिबोध पा दीक्षा ली और औषधि त्याग कर समभाव से उदित कर्मों क्षय करने के लिये रोग परीषह सहन करते मुशाल नगर के राजगृह में भिक्षार्थ

गये, वहाँ उन की भगिनी ने औषधि मिश्रित आहार वहोराया। मुनि ने औषधि मिश्रित आहार जान परिठा दिया और बन में संथारा कर ध्यानस्थ रहे। उस समय उक्त शृगाल का जीव व्यतंर देव शृगाल का ही रूप बना कर उन मुनि के शरीर का भक्षण करने लगा, परंतु मुनि किंचिन्मात्र चलायमान हुए नहीं, और समभाव से आयुष्य पूर्ण कर देवलोक में गये, ऐसे ही सब मुनियों को रोग परीषह सहन करना चाहिए।

अचेलगस्स लूहस्स, संजयस्स तवस्सिणो।
तणेसु सयमाणस्स, हुज्जा गायविराहणा॥३४॥

रोगी को नरम बिछौना चाहिये जिससे सत्तरवाँ तृण स्पर्श परीषह कहते हैं, वस्त्र वाले, वस्त्र रहित अथवा अल्प वस्त्रधारी तपस्वी साधु को तृण के बिछोने पर शयन करते हुये मात्र विराधना होवे॥३४॥

आयवस्स निवाएण, अउला हवइ वेयणा।
एवं नच्चा न सेवंति, तंतुजं तणतज्जिया १७॥३५॥

बहुत ताप पड़ने से महा वेदना होवे ऐसा जानकर तृण स्पर्श परीषह से स्पर्शाया हुआ मर्यादा से अधिक वस्त्र, का सेवन करे नहीं॥३५॥

इस पर यह कथा ज्ञातव्य है–श्रावस्ती नगरी के जितशत्रु राजा के पुत्र सुकोमल शरीर वाले भद्र कुमार ने दीक्षा धारण की, और परीषह सहने के लिये अनार्य देश में गये। साधु को अज्ञानी लोग पूछने लगे कि तू कौन है? उन की भाषा न समझने से साधु मौन रहे, तब साधु को गुप्तचर जानकर पकड़ लिया और घास के रस्सों से मजबूत बाँध कर घास में ही डाल दिया। घास में रहे हुए कंटक वगैरह से शरीर में बहुत पीड़ा हुई और कुछ दिन बाद उनको छोड़ दिया। इतना कष्ट होने पर भी संयम धर्म से चलित हुए नहीं। ऐसे ही अन्य साधु को भी परीषह सहन करना चाहिए।

किलिण्णगाए मेहावी, पंकेण व रएण वा।
घिंसु वा परितावेण, सायं नो परिदेवए॥३६॥

तृण पर शयन करने से रज मेल लगे इससे अठारवां जलमेल का परीषह हैं, स्नान नहीं करने से, शरीर के मेल से व स्वेद से जिनके गात्र खेदित हो गये हैं, और ग्रीष्म ऋतु अथवा शरद ऋतु के ताप से जो पीड़ित हो रहे हैं वैसे बुद्धिमान साधु साता की वांच्छा करे नहीं॥३६॥

वेएज्ज निज्जरापेही, आरियं धम्ममणुत्तरं।
जाव सरीरभेओत्ति, जल्लं काएण धारए १८॥३७॥

परंतु अनुत्तर आर्य धर्म को जानकर कर्म क्षय करने की इच्छा वाले उक्त परीषह सहन करे और जहाँ तक शरीर का भेद होवे-मृत्यु आवे वहाँ तक शरीर पर मैल धारण कर रखे॥३७॥

इस पर यह कथा द्रष्टव्य है–चंपा नगरी के मुचंद सेठ ने अपने घर आये हुए साधु का मलिन शरीर देख कर दुगंछा की और कहा कि जैन धर्म तो अच्छा है परंतु ये लोग स्नान नहीं करते हैं यह अच्छा नहीं है। ऐसे विचार में कर्म बांधकर आयुष्य पूर्ण होने से कौशाम्बी नगरी में व्यापारी का पुत्र हुआ। उसका शरीर जन्म से ही महा दुर्गंध वाला हुआ। उसे कोई पास आने देवे नहीं। अब वह अपवाद से घबरा कर आत्मघात करने के लिये वन में गया। वहाँ रहे साधु ने उसे धर्मोपदेश देकर साधु बनाया और वह ज्ञान पढ़कर क्रिया करने लगा।

शरीर की दुर्गंध से लोगों को घबराते देख कर वे वहाँ वन में ही निवास करने लगा। एकदा केवली भगवान मिले। पूर्व भव का वृत्तान्त सुनाया और उसे अवधारण कर अभिग्रह किया कि जब मेरे दुगंछा से उपार्जन किये हुए कर्म क्षय होंगे तब ही मैं कायोत्सर्ग से निवृत्त होऊँगा। तप और ध्यान से कर्म क्षय हुए। तब किसी देवता ने उनके शरीर की दुर्गंध हरण की और सुगंधमय शरीर बना दिया। तो भी उसने कायोत्सर्ग पारा नहीं और आयुष्य पूर्ण कर देवलोक गया। यों सबको जलमेल का परीषह सहन करना चाहिए।

अभिवायणमब्भुट्ठाणं, सामी कुज्जा निमंतणं।
जे ताइं पडिसेवन्ति, न तेसिं पीहए मुणी ॥३८॥

जलमेल वाले साधु का सत्कार सन्मान नहीं होता है इससे उन्नीसवां सत्कार पुरस्कार का परीषह हैं–स्तुति करना, साधु आवे तो खड़े होना अथवा राजा वगैरह आहारादि से निमंत्रण करे, इस प्रकार साधु का सत्कार करे तो उनको मुनि इच्छा नहीं करे, अर्थात् इसका अभिमान करे नहीं॥३८॥

अणुक्कसाई अप्पिच्छे, अन्नाएसी अलोलुए।
रसेसु नाणुगिज्झेज्जा, नाणुतप्पेज्ज पन्नवं १९॥३९॥

मन्द कषाय वाले, अल्प इच्छा वाले, अज्ञात कुल में आहार की गवेषणा करने वाले और अलोलुपी प्रज्ञावान साधु रसादिक की आमंत्रण करे तो उसमें लुब्ध होवे नहीं, वैसे ही नहीं देवे तो उन पर तपे नहीं कोप करे नहीं॥३९॥

इस पर यह कथा प्रेक्षणीय हैं–मथुरा नगरी के जयसिंह राजा का मिथ्यामद में भरे हुआ इन्द्रदत्त पुरोहित ने अपने गौख में बैठे हुए किसी महातपस्वी साधु मार्ग में जा रहे थे उनके मस्तक पर पांव लगाया। ऐसा एक श्रावक ने देख लिया। धर्मानुराग से उस पुरोहित के पांव का छेदन कराने का अपना मनोभाव आचार्य को दर्शाया। आचार्य बोले कि–हम साधुओं को मान अपमान सदा एकसा है। श्रावक ने कहा कि–जैन धर्म का अपवाद मिटाने के लिये कुछ करना चाहिये। तब आचार्य बोले कि–मात्र परोपकार के लिये कहता हूँ कि पुरोहित ने जो मकान बनाया है वहाँ राजा देखने आवेगा उस समय तू राजा को मकान में प्रवेश करते हुए पीछे खींच लेना क्योंकि वह मकान गिर जायेगा। श्रावक ने वैसा ही किया। राजा ने पूछा कि–तुम को यह किसने कहा? श्रावक ने कहा हमारे धर्माचार्य ने कहा। राजा और श्रावक आचार्य का महाउपकार मानने लगे। श्रावक को प्रधान पद दिया और आचार्य को गुरु बनाया। फिर श्रावक ने राजा से कहा कि–इस पुरोहित ने अपना पांव आचार्य के सिर पर लगाया था। राजा ने रुष्ट होकर उनका पांव का छेदन करने की आज्ञा दी। आचार्य ने उसको अभय दिलवाया। उस पुरोहित ने आचार्य को परोपकारी जानकर उनको नमन किया। इस प्रकार अन्य साधुओं को भी सत्कार पुरस्कार परीषह सहन करना चाहिये।

से नूण मए पुव्व, कम्माऽणाणफला कडा।
जेणाहं नाभिजाणामि, पुट्ठो केणइ कण्हुई॥४०॥
अह पच्छा उइज्जंति कम्माऽणाणफला कडा।
एवमस्सासि अप्पाणं, नच्चा कम्मविवागयं २०॥४१॥

ज्ञानी का सत्कार सन्मान होवे इससे ज्ञान परीषह कहते हैं–ज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम

होने से ज्ञान प्राप्त हुआ होवे तो उसका मद करे नहीं–परन्तु विचार करे कि मैंने पूर्व भव में ज्ञान की वृद्धि की, ज्ञानी की प्रशंसा विनय वैय्यावृत्यादि ज्ञान प्राप्त होने के शुभ कर्त्तव्य किये हैं। जिससे इस मनुष्य जन्म में ज्ञान प्राप्ति के सन्मुख हुआ हूँ, इसलिये ही मुझे ज्ञानार्थी जीव प्रश्नादि पूछने आते हैं और उनका मैं समाधान कर सकता हूँ। अब जो मैं ज्ञान दान करते घबराऊँगा ज्ञान का अभिमान करूँगा तो आगामी काल में मुझे मेरे ही कर्त्तव्य के फल से अज्ञानता प्राप्त होगी। इस प्रकार ज्ञान द्वारा कर्मों के शुभाशुभ फल का विचार कर अपनी आत्मा को स्वस्थ करके ज्ञान का गर्व करे नहीं।।४०-४१।।

यहाँ पर यह कथा पठनीय है–कालकाचार्य अपने ५०० शिष्यों को प्रमादी अविनीत बने जानकर उनको ज्ञात नहीं होवे वैसे उनको छोड़कर सुवर्णभूमि में अपना प्रशिष्य सागरचंद्र था उसके पास गये। उसने आचार्य को नहीं पहचाना परंतु वृद्ध साधु जानकर उनकी भक्ति करने लगा। एकदा व्याख्यान समाप्त होने के बाद वह साधु आचार्य से पूछने लगे कि कहो वृद्ध मुने! मेरा व्याख्यान कैसा है? तुम वृद्ध हो बहुत साधुओं का व्याख्यान तुमने सुना होगा। आचार्य उसके व्याख्यान की प्रशंसा करने लगे। गुरु के द्वारा छोड़े हुए ५०० साधुओं ने जाना कि आचार्य अपने का छोड़ गये तथा श्रावक अपमान करने लगे हैं तब उन्होंने गुरु की खोज की सुवर्ण भूमि में गये वहाँ सागर चंद्र से गुरु महाराज का समाचार पूछा। सागरचंद्र ने कहा कि–मुझे मालूम नहीं है। उपाश्रय में आये तो एकांत में गुरुजी को ज्ञान ध्यान करते देखकर प्रसन्न और आचार्य को वंदना नमस्कार कर माफी मांगी। सागरचंद्र को यह देख कर आश्चर्य हुवा कि धन्य है! गुरुजी को ऐसे ज्ञानी होने पर भी प्रगट नहीं हुए और मेरे तुच्छ व्याख्यान की भी प्रशंसा की। जैसे आचार्य ने ज्ञान परीषह सहन किया वैसे ही सबको सहन करना चाहिए।

निरट्ठयम्मि विरओ, मेहुणाओ सुसंवुडो।
जो सक्खं नाभिजाणामि, धम्मं कल्लाण पावगं।।४२।।
तवोवहाणमादाय, पडिमं पडिवज्जओ।
एवंपि विहरओ मे, छउमं नी नियट्टई २१।।४३।।

ज्ञान का प्रतिपक्षी अज्ञान हाने से इक्कीसवा अज्ञान का परीषह हैं–धर्म वस्तु का स्वभाव मोक्ष तथा नरक का हेतु और जीवादिक पदार्थ। मैं प्रत्यक्ष नहीं जानता हूँ इससे मैं इन्द्रियों का संवर कर के भोगादि से निरर्थक निवर्तायों साधु विचार करे नहीं परंतु तप उपधान व साधु की ११ प्रतिमा अंगीकार कर विचरता हुआ विचार करे कि मेरी छद्मस्थता ज्ञानावरणीय कर्म का उदय से नहीं हुआ है और मुझे केवलज्ञान नहीं हुआ है।।४२-४३।।

इस पर दो भाई की कथा चिंतनीय हैं–गंगापुर नगर के निवासी दो भाई ने दीक्षा ग्रहण की एक भाई विनय भक्ति से ज्ञान गुण संपन्न बना और दूसरा प्रमादी होने से ज्ञानादि गुण प्राप्त कर सका नहीं। अब जो ज्ञान गुण संपन्न था वह आचार्य पद पर नियुक्त हुआ और उस के पास अनेक साधु साध्वी आदि चारों तीर्थ वांचना पृच्छना आदि धर्म कार्य करते थे, और वे भी सब संघ का निर्वाह करते थे। इससे इन कार्यों में उनको निद्रा लेने का व खाने का भी पूरा समय नहीं मिलने लगा इससे उनके मन में विचार हुआ कि मेरा भाई अज्ञानी

रहा तो वह दु:खी है; मैं तो साधु हुआ तब से ही दु:खी हूँ प्रथम विनयादि भक्ति कर ज्ञान प्राप्त करने में परिश्रम करना पड़ता था और अब ये दु:खों को सहन कर रहा हूँ। इस विचार से उसने ज्ञानावरणीय कर्म का बंध किया और काल के अवसर में काल कर देव हुआ। वहाँ से च्यवकर अहीर कुल में जन्म लिया गुरु बोध होने से ज्ञानाभ्यास करने लगा परन्तु अभ्यास नहीं हुआ तब पश्चाताप करने लगा। गुरु ने बोध दिया कि आयम्बिल तप कर। गुरु के कहने से आयम्बिल तप किया जिससे कुछ बुद्धि की तीव्रता हुई और छजीवनिकाय अध्ययन का पाठ किया। उसी में अपनी आत्मा को रमाता हुआ समाधि भाव रखता हुआ कर्मों का क्षय कर केवलज्ञान प्राप्त कर मुक्ति में गया इस प्रकार ज्ञान का अभिमान करने से अज्ञानी होता है। ऐसा जान साधुओं को अज्ञान परीषह होने पर समभाव से सहन करना चाहिए।

नत्थि नूणं परे लोए, इड्ढी वा वि तवस्सिणो।
अदुवा वंचिओ मि त्ति, इइ भिक्खू न चिंतए॥४४॥

अज्ञानता से समकित में संशय होवे इससे बत्तीसवां दर्शन परीषह करते हैं–निश्चय ही परलोक नहीं है वैसे ही तपस्वी को देवलोक में जो ऋद्धि मिलती है वह भी नहीं है, केशलोचनादि कष्ट सहन करके मेरी आत्मा को मैंने भोग से व्यर्थ वंचित किया। ऐसा साधु चिंतन नहीं करे॥४४॥

अभू जिणा अत्थि जिणा, अदुवावि भविस्सई।
मुसं ते एवमाहंसु, इइ भिक्खू न चिंतए २२॥४५॥

जिन, केवली भूतकाल में हुए हैं वर्तमान काल में भी हैं अथवा भविष्य काल में भी होंगे; यह सब मिथ्या कहते हैं; ऐसा साधु विचार करे नहीं॥४५॥

इस पर अषाढाचार्य की कथा प्रेक्षणीय हैं–एकदा अषाढाचार्य बहुत शिष्यों को शास्त्र का अभ्यास कराते समय संशय हुआ कि शास्त्र में कहा है कि अनंत तीर्थंकर हुए और अनंत होवेंगे, तथा नरक देवलोकादि गति है। परंतु मैंने न तो तीर्थंकर देखे और न किसी देव को देखा। किसी शिष्य का आयुष्य पूर्ण होने आया तब संथारा किया। तब अषाढाचार्य बोले कि यहाँ से कालकर तुम देवता होवेंगे तब आकर मुझे मिलना। उनका आयुष्य पूर्ण होने के बाद आचार्य ने बहुत राह देखी परंतु वह आया नहीं। ऐसे ही दो तीन साधुओं को संथारा हुवा। सभी ने मिलने का वचन दिया परंतु कोई आया नहीं योगानुयोग से किसी छोटे शिष्य की मृत्यु नजदीक आई जान उसे भी संथारा करवाया, देवलोक में गये बाद आकर मिलने के लिए कहा परंतु वह भी आया नहीं। तब आचार्य को निश्चय हुआ कि नरक स्वर्ग आदि कुछ भी नहीं है यह सब बातें मिथ्या हैं। अब संयम का कष्ट व्यर्थ क्यों उठाना। ऐसा विचार कर अपने घर जाने के लिये द्रव्य लिंगी बनकर निकले। उस समय लघु शिष्य देवता का आसन चलायमान हुआ और अवधि ज्ञान से गुरु को अपने घर जाते हुए देख, रास्ते में देव ने नाटक आरंभ किया। वह ऐसा मनोहर बनाया कि छ: महीने पर्यंत देखते हुए भी आचार्य ने समझा की एक मुहूर्त मात्र देखा है–ऐसा विचार कर आगे गये। अब गुरु की दया देखने के लिये देवता ने छ: छोटे बालक का वस्त्र आभूषणों से सुशोभित का वैक्रिय किया। वे आचार्य को नमस्कार करने के लिये आये। उन बालकों को देखकर आचार्य पूछने लगे कि तुम कौन हो? और तुम्हारा नाम क्या है? बालकों ने उत्तर दिया कि हम श्रावक के पुत्र हैं और हमारा नाम–१. पृथ्वीकाय, २. अपकाय, ३. तेउकाय, ४. वायुकाय, ५. वनस्पतिकाय, और ६. त्रसकाय। इस प्रकार छ: के छ: नाम हैं। आचार्य ने विचार किया मैंने आज पर्यन्त षट्काया की रक्षा

की परंतु इसमें कुछ सार नहीं है और गृहस्थ को तो द्रव्य की आवश्यकता रहती है। इसलिए इन छः ही के पास बहुत धन है। इनको मारकर द्रव्य वस्त्र वगैरह छीन लूं, जिससे मैं सुखपूर्वक भोक भोगूँगा। यों विचार कर छहों को मार डाला और उनके वस्त्र आभूषण आदि छीन कर अपने पात्र में भर लिये। शिष्य देवता ने विचार किया कि आचार्य में दया तो नहीं रही, परन्तु अब लज्जा है कि नहीं? जो लज्जा होगी तो मैं इनको धर्म में स्थिर कर सकूँगा। ऐसा विचार कर उसने एक आर्या का रूप बनाया। वह उत्तम वस्त्राभूषणों से सजकर आचार्य को नमस्कार करने लगी आचार्य बोले कि–क्यों धर्म को लजाती है? साध्वी बोली–अपने अवगुण तो नहीं दिखते हैं और दूसरे को झूठ बताते हो, मुझे झोली दे दो फिर मैं बता दूं। इतना सुनते ही आचार्य आश्चर्य चकित हो गये और लज्जित बनकर आगे चले। अब शिष्य देवता ने देखा कि लज्जा तो है। इससे आगे एक ग्राम वैक्रिय किया। वहाँ के श्रावक श्राविका सब आचार्य की विनति करने को आये और गांव में ले गये फिर गौचरी की विनंती की परंतु आचार्य ने अपनी झोली छोड़ी नहीं, जिससे उन लोगों ने झोली खींच ली और भेद खुल गया। सब बालकों के आभूषण उन लोगों ने देखे और अपने-अपने बालक के आभूषण पहचान लिये। तब उन छः ही के मां-बाप रुदन करने लगे और आचार्य की निंदा व तिरस्कार करने लगे। आचार्य भयभीत बने हुए किसी का शरण नहीं देखते विचार लगे कि–अरिहंते सरणं पवज्जामि, केवलि पण्णतं धम्मं शरणं पवज्जामि। इस प्रकार आचार्य को स्थिर हुआ जानकर देवता उसी शिष्य का रूप बनाकर निसीही-शब्द कहता आया। उसके शब्द से आचार्य देखते हैं तो न तो कोई श्रावक श्राविका है और न कोई दूसरा है। मात्र अपना छोटा शिष्य वहाँ है ऐसा देखकर आचार्य आनंदित होकर पूछने लगे कि–तू तो मर गया था सो कहाँ से आया? तब उसने तत्काल अपना देव का रूप बना लिया और अपनी ऋद्धि का वर्णन करने लगा कि–जैसे आपने छः महीने तक नाटक देखते हुए मात्र एक मुहूर्त ही समझा था वैसे ही देवता भी देवलोक के सुख व भोग में लुब्ध बने हुए व्यतीत काल से अज्ञात रहते हैं इसका निश्चय करने के लिये आचार्य ने सूर्य को दक्षिणायन से उत्तरायन में देखा। फिर सम्यक्त्व में निश्चल बनकर आलोचना प्रतिक्रमण कर संयम अंगीकार किया। यों सब साधु को दर्शन परीषह सहन करना चाहिये।

एए परीसहा सव्वे, कासवेण पवेइया।
जे भिक्खू न विहन्निज्जा, पुट्ठो केणई कण्हुई॥४६॥ त्ति बेमि॥
॥ परीसहज्जझयणं समत्तं॥२॥

उक्त बाईस परीषह काश्यप गोत्रीय श्री श्रमण भगवान महावीर स्वामी ने कहे हैं–जिस किसी साधु को उक्त परीषह आएं तो उससे अपने संयम की हानि करे नहीं यों श्री सुधर्मा स्वामी अपने शिष्य श्री जम्बू स्वामी से कहते हैं॥४६॥

यह परीषह नामक दूसरा अध्ययन संपूर्ण हुआ।



तइयं चाउरंगिज्जं अज्झयणं
चुतुरंगा नामकं तृतीय अध्ययनम्

दूसरे अध्ययन में परीषह का कथन किया गया है कि साधक धर्म-साधन के लिये परीषह सहन करते हैं। धर्म की साधना से चार अंगों की प्राप्ति से होती है, जिसे तीसरे अध्ययन में कहते हैं।

चत्तारि परमंगाणि, दुल्लहाणिह जंतुणो।
माणुसत्तं सुई सद्धा, संजमम्मि य वीरिय॥१॥

इस जीव को (१) मनुष्य-जन्म, (२) शास्त्र-श्रवण, (३) शुद्ध धर्म में श्रद्धा और (४) धर्म में पराक्रम करना। ये धर्म के चार अंग हैं कि जो मुक्ति-साधन कराने वाले हैं। इनकी प्राप्ति होना अति दुर्लभ है॥१॥

इन पर दस दृष्टांत उल्लेखनीय हैं–यथा–चुल्लग[१] पासग[२] धन्न[३] जुय[४] रथणेय[५] सुगूण[६] चक्के[७] कुम्भ[८] जुग्ग[९] और परमाणु[१०] दसदिट्ठंति॥१॥

पहले चुल्लग का दृष्टांत–बारहवां ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती बाल्यावस्था में देशाटन करते हुए एकदा किसी अटवी में भटक गया तो एक ब्राह्मण ने मार्ग बताया। उसका उपकार मानकर ब्रह्मदत्त ने उससे कहा कि जब मुझे कांपिलपुर का राज्य प्राप्त हो जाये तब तू मुझसे मिलना। कालान्तर से ब्रह्मदत्त वहां का राजा हो गया। ऐसा सुनकर ब्राह्मण राजा के पासा आया। उक्त ब्राह्मण ने संकट के समय ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती की सहायता की थी, इसका स्मरण कर उसने उस ब्राह्मण का बहुत आदर-सत्कार किया और कहा कि तेरी जो इच्छा हो सो मांग। ब्राह्मण ने कहा कि मैं अपनी स्त्री से पूछकर मागूँगा। अब वह ब्राह्मण वहाँ से जाकर अपनी स्त्री से पूछने लगा। तब स्त्री ने ऐसा सोचा कि अगर यह राजा बना जायेगा तो मुझे छोड़ देगा, इसलिये उसने कहा कि ब्राह्मण को राज्य-पाट की क्या जरूरत है? राज्य में फँसने से ब्राह्मणों की क्रिया का भी नाश होगा और दु:खी बनोगे। इससे अपने को ऐसा मांगना चाहिए कि जिससे अपनी आजीविका सुखपूर्वक चल सके। अपने को चक्रवर्ती के राज्य में प्रत्येक घर में नित्य एक दिन भोजन करने और एक स्वर्ण मुद्रा दक्षिणा मिलने का वचन मांगना चाहिये। ब्राह्मण ने चक्रवर्ती से वैसा ही वचन मांगा। तब चक्रवर्ती ने अभागा जान वैसा ही वचन दिया। पहले दिन चक्रवर्ती के वहाँ सूर्यपाक नामक रसमय भोजन बना कर पति-पत्नी दोनों को खिलाया और एक और स्वर्ण मुद्रा दक्षिणा में देकर विदा किया। दूसरे दिन दूसरे घर भोजन किया, परंतु चक्रवर्ती के भोजन जैसा स्वाद नहीं देखा तब वह ब्राह्मण पछताने लगा कि छः ही खंड राज के सब घरों में भोजन करना पूर्ण होकर फिर चक्रवर्ती

के यहाँ जाने कब भोजन की बारी आवे और बाद में सूर्यपाक भोजन करूँ? जिस प्रकार उसे पुनः सूर्यपाक नामक रसमय भोजन मिलना दुर्लभ हो गया वैसे ही इस जीव को मनुष्य जन्म की सामग्री मिलना बड़ा कठिन है।।१।।

दूसरा पासग का दृष्टांत-पाटलि पुर नगर में एक ब्राह्मण के घर दांतों सहित पुत्र का जन्म हुआ। उसका नाम चाणक्य रखा। निमित्तज्ञ से पूछने पर उसने कहा कि यह बालक राजा होगा। ब्राह्मण ने विचार किया कि जो राजा होता है, उसकी गति अच्छी नहीं होती। ऐसा जान उसके दांत घिस दिये और पुनः निमित्तज्ञ से पूछा तो उसने कहा कि यह राज्याधिकारी होगा। जब चाणक्य योग्य अवस्था को प्राप्त हुआ तब ज्योतिष आदि विद्याओं में प्रवीण बना। उस समय पाटलि पुर का नंद राजा राज्यारूढ़ होने के लिये सुसज्जित हुआ, परंतु किसी कार्य प्रसंग से राज्यसिंहासन पर बैठ नहीं सका। तब चाणक्य उस सिंहासन पर जा बैठा। ऐसा देख राजा क्रोधातुर हो गये। परन्तु ब्राह्मण को अवध्य जानकर उसका देशनिकाल कर दिया। इससे रुष्ट होकर वह पाटलि पुर का राजा बनने का उपाय ढूंढते हुए गांव में आया। वहाँ एक सगर्भा स्त्री को चंद्रमा पीने का दोहद उत्पन्न हुआ। चाणक्य ने उसे दूध में चंद्रमा का प्रतिबिम्ब दिखाकर घोलकर पिलाया। यों चाणक्य ने उसका दोहद पूरा कर दिया और फिर विचार किया कि–यह लड़का राजा होगा। कालान्तर में उस स्त्री के पुत्र का जन्म हुआ और वह बड़ा हुआ। तब घूमता हुआ चाणक्य वहाँ आया तो उस लड़के को बालकों के साथ क्रीड़ा करते देखा कि वह स्वयं तो राजा बना है और अन्य लड़कों को अपना सेवक बनाये सिंहासन पर बैठा है। इससे चाणक्य ने उस लड़के को पहचान लिया कि यह लड़का वही है, जिसकी माता को इसके गर्भ में होने पर चंद्रमा घोलकर पीने का दोहद हुआ था। उसने उस लड़के को भरमा कर अपने साथ लिया। पढ़ाकर सब कलाओं में निपुण बनाया। उस लड़के के पुण्य से बहुत द्रव्य भी मिल गया। द्रव्य के योग से सेना बनाई। किसी छोटे राज्य का अधिकारी बन राज्य वृद्धि करने लगा। यों करते-करते बहुत राजाओं को साथ लेकर पाटलिपुर आया और नंद राजा को पराजय कर उस लड़के को गद्दी पर बिठाया। यही लड़का चंद्रगुप्त राजा के नाम से प्रसिद्ध हुआ। लेकिन उस राज्य का अधिकारी चाणक्य बना। एकदा उसको देवता ने पराजय पासे दिये। इससे कोई भी चाणक्य को जुए में जीत न सके। चाणक्य द्यूत खेलने लगा और स्वर्ण दीनारों से भरा हुआ थाल रखकर बोलने लगा कि–जीतने से एक दीनार लेकर स्वयं हारने पर स्वर्ण दीनारों से भरा हुआ थाल दूंगा। अनेक द्यूत खेलने आये, परंतु कोई जीत नहीं सका। दिनारों से भरा थाल एक बार एक कठियारे का मन ललचाया। मोली अथवा लकड़ियों का गट्ठर बेचकर बहुत दिनों में उस कठियारे ने एक दीनार जोड़ी और उससे चाणक्य के साथ हुआ खेला, पर हार गया। इस प्रकार वह बार-बार एक स्वर्ण मुद्रा जोड़ता और हर बार हार जाता। जिस प्रकार उस कठिआरे को सुवर्णथाल प्राप्त करना दुर्लभ है, वैसे ही इस जीव को मनुष्य-जन्म प्राप्त करना दुर्लभ है।।२।।

तीसरा धान्य का दृष्टांत–किसी देवता ने जम्बूद्वीप के चौबीस ही प्रकार के सब धान्यों को एकत्रित कर मेरु पर्वत जैसा विशाल ढेर बनाया, उसमें पायली दो पायली सरसों के दाने मिलाकर एक वृद्धा स्त्री को सूप देकर बिठाया और कहा कि इसमें से सरसों के दाने अलग निकालो। जैसे उस वृद्ध स्त्री को सरसों के दाने निकालना दुर्लभ है, वैसे ही इस जीव को मनुष्य-जन्म की प्राप्ति होना दुर्लभ है।।३।।

चौथा दृष्टांत जुत का–किसी राजा को सौ पुत्र थे। उसने बड़े पुत्र को युवराज बनाया। राजा के युवराज बने पुत्र ने विचार किया कि यह राजा कब मरे और कब मेरे हाथ राज्य आवे। अतः क्यों न मैं ही इस राजा

को मार कर राज्याधिकारी बनूं। यह बात उसने अपने साथी मित्रों से कही। उनमें से किसी ने जाकर राजा से चुगली कर दी। राजा ने विचार किया कि पुत्र कुपुत्र होता है पर माता कुमाता कभी नहीं होती। यह विचार कर उस राजा ने पुत्रों को निर्विघ्न काल व्यतीत करने के लिये एक भवन बनवाया। उस भवन के एक-एक स्तंभ में १०८ पेल या हांसे बनवाये। ऐसे १०८ स्तंभ बनवाने के बाद राजा ने अपने सभी पुत्रों से कहा कि तुम सब द्वार खोलो। एक वक्त की जीत में एक मेल जीता माना जायेगा; यों १०८ दाव को जीतोगे तब एक स्तंभ जीता माना जायेगा, जो इस तरह एक भी दाव में हारे बिना १०८ स्तंभ जीत लेगा, उसे ही राज्य मिलेगा। अब वे सब पुत्र बड़े पुत्र के साथ द्यूत खेलने लगे। जिस प्रकार उनको वह भुवन जीतना दुर्लभ है वैसे ही इस जीव को मनुष्य भव की प्राप्ति होना दुर्लभ है।।४।।

पाँचवां रत्न का दृष्टांत–किसी बड़े धनी साहूकार ने अपने सब धन से रत्नों का संग्रह किया और मंजूषा में भर कर रख लिया, उस में से एक रत्न से अपना खर्चा चलाता था। उसके पुत्र पिता से भेद पूछते, परंतु वह किसी को नहीं बताता था। नगर के सब लोग कहने लगे कि पहले तुम बड़े व्यापारी थे। अब सब धंधा बन्द कर देने से धन समाप्त हो जायेगा तो क्या खाओगे? सब नगरवासियों ने भेद पूछने के लिये पुत्रों को उस धनी के पास भेजा, पर उसने भेद बताए बिना अपने सभी पुत्रों को वापस कर दिया, परन्तु छोटा पुत्र वापस नहीं गया और पिता के बार-बार भेद बताने से इनकार करने पर भी छोटे पुत्र ने युक्ति पूर्वक पूछा कि पिता जी आप समुद्र की यात्रा करने को जाओगे बहुत दिनों में वापस आओगे। हम पीछे क्या खायेंगे? हमसे निर्वाह का कुछ भी साधन बताओ। प्रेमावेश में आकर सेठ ने रत्नों की मंजूषा का भेद दे दिया। छोटे पुत्र ने घर आकर भाइयों से मंजूषा का भेद कहा। तब वे खुश हो गये। संयोग से एक बार वहाँ परदेशी बनजारे किराना लेकर आये। तब उन पुत्रों ने वे सब रत्नों को देकर किराना खरीद लिया। बनजारे देशांतर में गये और उस रत्नों को बेचकर द्रव्य कर लिया। यहाँ पर सेठ के घर बड़ा व्यापार चलने लग गया। बारह वर्ष में सेठ वापस घर आये, तब घर के आगे धूमधाम देखकर उसका भेद पूछा। रत्नों का भेद मालूम होने से घबराकर जमीन पर गिर पड़े और कहने लगे कि मेरे सब रत्न वापस ला दो। पुत्रों ने बहुत खोज करवाई, परंतु रत्नों का पता नहीं लगा। जैसे उस सेठ को वे ही रत्न प्राप्त होने दुर्लभ हैं, वैसे ही इस जीव को मनुष्य-जन्म पाना दुर्लभ है।।५।।

छठा स्वप्न का दृष्टांत–भूमिभूषण नगर के राजा का पुत्र मूलदेव राजा की तरफ से अपमानित हुआ देशांतर में फिरता हुआ उज्जयनी नगरी में देवदत्ता गणिका के वहाँ रहा। देवदत्ता के वहाँ अचला नाम का व्यापारी आता था। वह मूल देव को देख क्रोधित हो उसे बंधन से बांध मारने लगा। तब मूलदेव बोला कि इस समय तू मुझे छोड़, मैं भी कभी तुझे छोड़ूँगा। ऐसा कहने पर उस अचल व्यापारी ने उसे छोड़ दिया। मूलदेव वहाँ से निकलकर अटवी में गया। वहाँ उसे किसी ब्राह्मण का साथ हुआ। वह ब्राह्मण भोजन खावे परंतु मूलदेव को देवे नहीं। तीन दिन में अटवी पार करने के बाद वह ब्राह्मण दूसरे रास्ते से जाने लगा तब मूलदेव बोला कि मेरा नाम मूलदेव है जब मुझे राज्य मिले तब तू मुझे मिलना। वहाँ से मूलदवे किसी गाम में गया वहाँ उसे उड़द के छिलके मिले जिसे खाने के लिये, सरोवर पर जाते मार्ग में एक मास क्षमन के उपवासी साधु को पारने में वे वो छिलके दिये और स्वयं भूखा ही वेणातट पाटन के बाहर किसी जोगी की झोंपड़ी में सो गया। वहाँ उस जोगी को और मूलदेव को स्वप्न आया कि चंद्रमा अपने पेट में उतर आया है। ऐसा देख जागृत हुए और प्रातःकाल में रास्ते में चलते किसी ब्राह्मण से अपने स्वप्न का फल पूछा, तो उसने कहा कि चंद्र जितना

बड़ा घृतगुड सहित रोटी तुझे मिलेगी। ऐसा सुन वह जोगी खुश हुआ और उसको वैसी ही रोटी मिल भी गयी। मूलदेव बगीचे में से पुष्प चुनकर वेनातट पाटण में गया और वहाँ किसी निमित्तज्ञ जानने वाले ब्राह्मण के घर जाकर पुष्प फल सन्मुख रखकर स्वप्न फल पूछा। तब ब्राह्मण ने कहा कि तुम मेरी कन्या का पाणिग्रहण करो तो मैं तुमें स्वप्न का फल कहूं। मूलदेव ने उसका कथन स्वीकार किया तब ब्राह्मण ने कहा कि आज से सातवें दिन तुमको राज्य मिलेगा। वह उस ब्राह्मण का वचन प्रमाण कर सुख पूर्वक रहने लगा। एकदा मूलदेव क्रीडा निमित्त बगीचे में जाकर चंदन वृक्ष के नीचे सोया था। उस समय उस गांव का राजा अपुत्र मर जाने से राज्याधिकारी वर्ग ने हाथी के सूंड दंड में पुष्पमाला व कलश रखकर छोड़ दिया। वह हाथी जहाँ मूलदेव सोया था वहाँ आया। मूलदेव जाग गया। उस हाथी ने मूलदेव के मस्तक पर वह कलश से अभिषेक किया और पुष्पमाला पहनाई। मूलदेव वहाँ का राजा बन गया। तब उसने देवदत्त गणिका को बुलाकर अपनी रानी बनाई और उसे ब्राह्मण को भी ग्रामादि दिया। अन्यदा वहाँ अचल व्यापारी परदेश से माल लेकर बेनातट आया और राजा के कर की चोरी करने से अधिकारी ने उसे बंधन में डाल मारते हुए राजा के पास लाया। राजा ने उसे पहचान कर तत्काल छोड़ दिया। तब देवदत्ता बोली कि यह तो अपने वचन को निर्वाह कर तुम्हारे उपकार से पूर्ण हुए। अचल मूलदेव को पहचान कर नमस्कार कर स्वस्थान गया। एकदा मूलदेव गजारूढ़ होकर क्रीड़ा करने जाते मार्ग में वह जोगी मिला। उसने मूल देव को पहचान कर पूछा तुम को कैसे राज्य मिला, राजा ने कहा आपकी झोपड़ी में सोते हुए मुझे चंद्रमा का स्वप्न आया था। इससे मुझे राज्य मिल गया जोगी ने कहा कि मुझे भी चंद्रमा का स्वप्न आया था परंतु उससे तो एक रोटी मात्र का ही लाभ मुझे मिला। इस का क्या अर्थ मूलदेव ने कहा कि आपने विधि से उसका फल प्राप्त नहीं किया। अब वह योगी सदैव अपनी झोपड़ी में सोता हुआ चंद्रमा का स्वप्न की प्रतीक्षा करने लगा। जैसे उस जोगी को चंद्रमा का स्वप्न पुनः प्राप्त होना दुर्लभ है वैसे ही जीव को मनुष्य जन्म की प्राप्ति दुर्लभ है।।६।।

सातवां राधावेध का दृष्टांत–इन्द्रपुर नगर के इन्द्र राजा को २२ पुत्र होते हुए भी मंत्री की पुत्री का पाणिग्रहण किया। उसको जो पुत्र हुआ उस का नाम सुरेन्द्रदत्त रखा, एकदा मंत्री पुत्री से नाराज होकर राजा ने उसे अपने पीअर भेज दिया। मंत्री ने सुरेन्द्रदत्त को सभी कलाओं में प्रवीण बनाया। अन्यदा मथुरा नगरी के जितशत्रु राजा ने स्वयंवर मंडल बनाया और सभी राजाओं को आमन्त्रित किया। वहाँ इन्द्रदत्त राजा भी सभी पुत्रों सहित गये और मंत्री सुरेन्द्रदत्त को साथ ले कर गया। जितशत्रु राजा ने स्वयंवर मंडप के मध्य भाग में एक ऊँचे स्तंभ पर चक्र लगाया जिस के आठ और उलटे और आठ ओर सीधे घूमे। उस के मध्य भाग में राधा पूतली बनाई। उस पूतली के नीचे गरम तेल की कड़ाई रखी। उस गरम तेल में दृष्टि रखकर उस फिरते हुए चक्र के मध्य में रहीं हुई राधा पूतली के बाँयें नेत्र को तीर से छेदेगा उसी को ही यह कन्या देंगे। ऐसा सुनकर अनेक राजाओं ने राधावेध करने की कोशिश की। इन्द्रदत्त के बाइस ही पुत्रों ने भी कोशिश की परंतु सभी हार गये। मंत्री के पुत्री के पुत्र ने उसका वेध किया। जैसे राधाबेध का साधन करना दुर्लभ है वैसे ही मनुष्य भव प्राप्त करना भी बड़ा दुर्लभ है।।७।।

आठवां कछुवे का दृष्टांत–किसी वन में एक बहुत बड़ा पानी का द्रह था वह बहुत पुराना होने से उस पर पानी की सेवाल पत्ते वगैरह आच्छादित होने से उसका पानी ढक गया। उसके नीचे अनेक कछुवे आदि प्राणी रहते थे। द्रह के किनारे पर एक बील का वृक्ष था। एकदा उसका फल टूट कर उस पानी में पड़ने से

वहाँ छिद्र पड़ गया। उसमें से एक वृद्ध कछुवा निकल कर शरदपूर्णिमा के चंद्रमा को देखकर आनंदित हो गया। वह कछुवा अपने कुटुम्ब को चंद्रमा दिखाने के लिये पुनः पानी में गया और बोला कि मेरे साथ चलो तो तुमको अपूर्व पदार्थ बताऊँ। तब बहुत से कछुवे शीघ्रता से चले। उनकी भागदौड़ से पानी बहुत हिलने लगा जिससे वहाँ का छिद्र बन्द हो गया। उस वृद्ध कछुवे ने छिद्र बहुत ढूंढा परंतु नहीं मिला। तब सब कछुवे वृद्ध कछुवे का तिरस्कार करने लगे। ऐसे ही संसार रूप द्रह जन्म मृत्यु रूप पानी से पूर्ण भरा हुआ आठ कर्म रूप सेवाल कचरे से आच्छादित है। इसमें संसारी जीव रूप बहुत कछुवे आदि प्राणी रहते हैं। बील वृक्ष समान सद्गुरु जिनके उपदेश रूप फल टूटकर द्रह में पड़ने से कर्मों को छिद्र हुआ। इससे जीव को मनुष्य जन्म रूप चंद्रमा के दर्शन हुए उस समय वह कछुवा द्रह बाहर निकला नहीं तो पछताया। ऐसे ही मनुष्य जन्म पाकर जो आत्महित नहीं साधेंगे और जन्म गवाएँगे वे कछुवे की तरह पछतायेंगे, फिर उनको मनुष्य जन्म रूप चंद्र के दर्शन दुर्लभ होंगे।।८।।

नववां दृष्टांत युग घूसरा सामेले का है जैसे कोई देवता सभी समुद्र से बड़े स्वयंभू रमण समुद्र है उसके पूर्व के कंठ में धूसरा डाले और पश्चिम के कंठ में सामेला डाले उस धूंसरे के छिद्र में समेले का सम्बन्ध मिलना दुर्लभ है वैसे ही मनुष्य जन्म मिलना दुर्लभ है।।९।।

दसवां दृष्टांत परमाणु पुद्गलों का है—जैसे कोई देवता सोलह जाति के प्रकाशित रत्न के स्तंभ का वारिक चूर्ण कर मेरु पर्वत की चूलिका पर खड़ा होकर चूर्ण को बांस की भूंगली में भरकर दशों दिशा में उड़ा देवे। तब कोई कहे कि उनके ही पुद्गलों को एकत्रित कर उस ही प्रकार के रत्नों का स्तंभ बनाओ; तो वैसा स्तंभ बनाना दुर्लभ है। वैसे ही मनुष्य जन्म की प्राप्ति होना दुर्लभ है।।१०।। उक्त दश काम कदाचित् देवयोग से बन भी जावे परंतु मनुष्य जन्म, सूत्र श्रवण करना, धर्म में श्रद्धा करना और धर्म में पराक्रम करने की सुलभता मिलना बहुत दुर्लभ है।

समावन्ना णं संसारे, नाणागोत्तासु जाइसु।
कम्मा नाणाविहा कट्टु, पुढो विस्संभया पया।।२।।

अब मनुष्य जन्म की दुर्लभता सूत्र द्वारा कहते हैं—इस संसार में एकेन्द्रियादि तथा क्षत्रियादि अनेक प्रकार की जाति है कृषि आदि कर्म से अनेक प्रकार के गोत्र हैं उन सब जाति व गोत्रों में अनेक-अनेक भव भ्रमण करके यह जीव संपूर्ण लोक को स्पर्श कर आया है।।२।।

एगया देवलोएसु, नरएसु वि एगया।
एगया आसुरं कायं, आहाकम्मेहिं गच्छइ।।३।।
एगया खत्तिओ होइ, तओ चंडाल बुक्कसो।
तओ कीड पयंगो य, तओ कुंथु पिवीलिया।।४।।

इस प्रकार भवभ्रमण में यह जीव कई बार धर्माचरणादि कृत्यों से सौधर्मादि देवलोक में उत्पन्न हो आया और कई बार पापाचरण से नरक गति में उत्पन्न हुआ। जैसे कई बार असुरकुमारादि भवनपति में उत्पन्न हुआ वैसे ही मनुष्य में हुआ तो वहाँ भी क्षत्रिय राजा महाऋद्धि का भोक्ता हुआ और कभी चाण्डाल के वहाँ भी उत्पन्न हुआ तथा मिश्र जाति वाले अर्थात्

माता-पिता भिन्न-भिन्न जातिवाले व कुश कुल में उत्पन्न हुआ क्वचित पतंग कुंथु, पीपलिका चींटी इतयादि योनि में यह जीव अनंतवार उत्पन्न हुआ। यों जिस प्रकार के कर्म किये वैसी योनि में उत्पन्न होकर इस जीव ने भव भ्रमण किये हैं॥३-४॥

एवमावट्ट-जोणीसु, पाणिणो कम्मकिव्विसा।
न निव्विज्जंति संसारे, सव्वट्ठेसु व खत्तिया॥५॥

जिस प्रकार क्षत्रिय पुत्र को कितना भी राज्य मिल जावे तो भी वह तृप्त होवे नहीं और अधिक राज्य प्राप्त करने के लिये उद्यम करता है इसी प्रकार जीव कर्म के बंध से विचित्र प्रकार की योनियों में परिभ्रमण करता हुआ अनेक विडम्बना भोगता हुआ उनसे तृप्त नहीं होता पुनः-पुनः भवभ्रमण कराने वाले कर्मों का ही संचय करता रहता है॥५॥

कम्म-संगेहि सम्मूढा, दुक्खिया बहुवेयणा।
अमाणुसासु जोणीसु, विणिहम्मंति पाणिणो॥६॥

यों यह जीव कर्म के संबंध से मूढ बन रहा है मनुष्य योनि सिवाय अन्य योनियों में परिभ्रमण करता हुआ जन्म मृत्यु आदि अनेक दुःखों से दुःखी हो रहा है और अनेक प्रकार के शारीरिक व मानसिक व्याधि से पीड़ित हो रहा है॥६॥

कम्माणं तु पहाणाए, आणुपुव्वी कयाइ उ।
जीवा सोहिमणुप्पत्ता, आययंति मणुस्सयं॥७॥

इस प्रकार अनंत भव परिभ्रमण करते-करते अनेक प्रकार के महा कष्ट से पीड़ित होते अनुक्रम से कर्म क्षय होते-होते और विशुद्धि को प्राप्त होते-होते जीव मनुष्य गति को प्राप्त करते हैं॥७॥

माणुस्सं विग्गहं लद्धं, सुई धम्मस्स दुल्लहा।
जं सोच्चा पडिवज्जंति, तवं खंतिमहिंसयं॥८॥

कदाचित जीव को मनुष्य जन्म की प्राप्ति हो भी गई तो क्या हुआ क्योंकि धर्म श्रवण किये बिना आत्मकल्याण नहीं हो सकता है और शास्त्र–जिन वचन सुनने का योग मिलना बहुत दुर्लभ है। सूत्र श्रवण करने से ही जीव द्वादश प्रकार का तप, क्षमा आदि दस प्रकार का धर्म और अहिंसादि महाव्रतों का ज्ञाता हो उसे अंगीकार करने में समर्थ होता है॥८॥

आहच्च सवणं लद्धं, सद्धा परमदुल्लहा।
सोच्चा नेयाउयं मग्गं, बहवे परिभस्सई॥९॥

शास्त्र श्रवन का योग हुआ तो भी क्या हुआ। क्योंकि सूत्र के वचन की श्रद्धा हुए बिना आत्म-कल्याण नहीं हो सकता है और श्रद्धा की प्राप्ति होना परम् दुर्लभ है। बहुत जीव (जमाली आदि) उक्त दोनों बातों की प्राप्ति होने पर भी न्याय पथ अंगीकार कर विवेक बिना धर्मभ्रष्ठ बने हैं॥९॥

यहाँ सात निन्हवों की सात कथा दृष्टव्य हैं–कुंडल पुर नगरी का क्षत्रिय पुत्र भगवान महावीर स्वामी का

संसार पक्ष के जमाता जमाली ने महावीर स्वामी के उपदेश से अपनी स्त्री प्रियदर्शना और अन्य पांच सौ मनुष्य सहित दीक्षा अंगीकार कर ग्यारह अंग का अभ्यास किया। स्वयं स्वच्छंदाचारी होने से श्री महावीर स्वामी से कहने लगा कि–आप की आज्ञा होवे तो मैं अलग विचरूँ। यो दो तीन बार पूछने पर भगवान ने आज्ञा देने में हानि जानकर मौन रहे। तब वह स्वेच्छा से अपने ५०० शिष्यों सहित विचरता-विचरता श्रावस्ती नगरी के तिंदुक उद्यान में आकर रहा। उस समय जमाली के शरीर में दाहज्वर वेदना होने से अपने शिष्यों से संथारा-बिछोना करने को कहा। शिष्य विछोना करने लगे। परंतु व्याधि से पीड़ित होने से जमाली ने शिष्यों से फिर पूछा कि–क्या बिछोना बिछाया? शिष्य ने कहा कि हाँ बिछोना तैयार किया। जब जमाली वहाँ आकर देखता है तो शिष्य बिछोना कर रहे हैं। पूरा बिछोना किया नहीं है। तब जमाली बोलने लगा कि तुम झूठ बोलते हो। अपूर्ण को पूर्ण कैसे कहा? तब शिष्य बोले कि यह झूठ नहीं है, भगवान श्री महावीर स्वामी का भी यही कथन है कि काम करने लगा उसे किया कहना, जैसे–ग्रामान्तर जाने लगा उसे गया कहना परंतु जमाली ने उक्त कथन स्वीकार किया नहीं, और बोला कि महावीर स्वामी का ऐसा कथन मिथ्या है। ऐसा सुनकर अनेक साधु उसे श्रद्धा से भ्रष्ट जानकर उसका त्याग कर महावीर स्वामी के पास गये और अनेक उनके ही पास रहे। प्रियदर्शना साध्वी जमाली के कथन का स्वीकार करती हुई एकदा किसी कुंभकार की शाला में कम्बल का परदा बांध कर रही थी। कुंभार भगवान का श्रावक था। कुंभार को उस साध्वी का कथन जंचा नहीं। इसलिए उनको पुनः धर्म में लाने के लिये कम्बल के कोने पर अंगारा रख जला दिया। तब साध्वी बोली–रे भाई! यह कम्बल क्यों जलाई। कुंभार बोला–साध्वी जी आपका यह कथन झूठा है। ऐसा कथन तो महावीर स्वामी का है। तुम्हारा कथन कम्बल पूर्ण जल गई होवे तब ही जलाई कहना ऐसा है। ऐसा सुनते ही सुदर्शना साध्वी शुद्ध श्रद्धावादी हुई और भगवान महावीर स्वामी के पास गई। एकदा जमाली चंपा नगरी में भगवान के पास आकर कहने लगा कि–मैं तुम्हारे पास से छद्मस्थपना से ही निकल गया था अब केवली बन आया हूँ। तब गौतम स्वामी उसे मिथ्याभिमानी जानकर पूछने लगे कि–हे जमाली! लोक शाश्वत है कि अशाश्वत? जीव शाश्वत है कि अशाश्वत? इन प्रश्नों का उत्तर वह दे सका नहीं। तब भगवान बोले कि हे जमाली! मेरे छद्मस्थ साधु भी इन प्रश्नों का उत्तर दे सकते हैं। द्रव्य से लोक और जीव शाश्वत हैं। पर्याय से दोनों अशाश्वत हैं। ऐसा उत्तर सुनकर जमाली भगवान की वंदना नमस्कार किये बिना ही वहाँ से गया। वह देशान्तर में विचरता हुआ साधु की उत्कृष्ट क्रिया से लोगों को रंजित करता हुआ बहुत जीवों की आत्माओं को संसार में डुबाता हुआ स्वयं आलोचना निंदना ग्रहण किये बिना ही आयुष्य पूर्णकर छट्ठे देवलोक में किल्विषी देवता रूप में उत्पन्न हुआ। आगे चार पांच भव किये बाद शुद्ध श्रद्धा वाला बनकर मोक्ष में जावेगा। यह पहला निन्हव है।

राजगृही नगरी में वसु आचार्य का शिष्य तिष्यगुप्त आत्मप्रवाद पूर्व का पठन करते हुए पाठ आया कि–प्रश्न-आत्मा के एक प्रदेश को जीव कहना? उत्तर नहीं यों दो-तीन यावत् असंख्यात प्रदेश में एक भी प्रदेश कम होवे तो क्या जीव कहना? भगवान ने कहा नहीं। भगवान का आशय यह है कि जीव के जितने प्रदेश हैं उतने सब के संयोग से ही जीव कहा जाता है। परंतु तिष्यगुप्त ने विचार किया कि जीव का जो अंतिम प्रदेश है वही जीव है। यों आत्मा को एक प्रदेशी प्ररूपता हुआ एक श्रावक के वहाँ गौचरी गया श्रावक एक दाना चावल का देकर खड़ा रहा। तब तिष्यगुप्त ने कहा कि क्यों उपहास करते हो? श्रावक ने कहा कि एक प्रदेश की अवगाहना अंगुल के असंख्यातवे भाग की है और इस चावल की अवगाहना अंगुल के संख्यातवें

भाग की है। आप को तो इतना आहार खपना ही मुश्किल है। यों समझाने से वह समझा नहीं। यह दूसरा निन्हव है।।२।।

श्री महावीर स्वामी के निर्वाण बाद १२४वें वर्ष में श्वेताबिम्का नगरी के पलाश उद्यान में आषाढाचार्य अपने शिष्यों को पढ़ाते हुए अकस्मात आयुष्य पूर्ण कर देवता हुए। अब अवधिज्ञान से वृत्तांत जानकर अपने शरीर में पुनः प्रविष्ट हुए। शिष्यों को पढ़ाकर भेद प्रकट किया और पुनः देवलोक में चले गये। शिष्य शंकाशील हो गये कि हमने इतने दिन तक अव्रति को नमस्कार किया। इस ही शंका से वे किसी को नमस्कार करे नहीं। वे विचरते हुए राजगृही आये। वहाँ सूर्यवंशी बलभद्र राजा ने शंका की तो ज्ञात हुआ कि किसी को नमस्कार नहीं करते हैं। उन्हें समझाने के लिए चोर समझकर बन्दी बनाया तब साधु बोले कि तुम श्रावक होकर साधु को दुःख क्यों देते हो? राजा ने कहा आपका ही मत ऐसा अव्यक्त है। न मालूम आप भी साधु के वेष में चोर होवे तो, इतना करने पर भी वे समझे नहीं। यह तीसरा निन्हव है।।३।।

वीर निर्वाण से २१० वर्ष बाद मिथिला नगरी के लक्ष्मी गृह उद्यान में कोडिनाचार्य का शिष्य अश्वमित्र णाणाप्रवाद पूर्व का अभ्यास करते अधिकार आया कि–**सव्व पडिपुण्ण नेरिया वूच्छिज्जंस्संति जाव वेमाणि अंतिए,** इस पर उन्होंने क्षणिकवाद स्थापित किया भगवान का कथन तो क्षण-क्षण में पर्याय पलटने में है और उन्होंने द्रव्य आश्रीत ग्रहण किया। वे विचरते हुए राजगृही नगरी आये। वहाँ खेडरक्ष दानी ने इनका अपमान किया। साधु बोले कि श्रावक होकर साधु का अपमान कैसे करते हो? तब वह बोला कि–क्षणिकवाद से तुम्हारा साधुत्व भी क्षणिक है–यो समझाये परंतु वे समझे नहीं। यह चौथा निन्हव हुआ।।४।।

श्री वीर निर्वाण से २२८ वर्ष पीछे उल्लुका नदी के किनारे पर गंगाचार्य रहते थे और दूसरे किनारे पर उनका शिष्य धनगुप्ती रहता था। वह किसी कारण से नदी पार कर गुरु के पास जाते समय पांव को पानी ठंडा लगा और ऊपर मस्तक को सूर्य का ऊष्ण ताप लगा। तब विचार हुआ कि भगवान जो कहते हैं कि–एक समय में दो उपयोग होवे नहीं सो मिथ्या है; प्रत्यक्ष मुझे दो उपयोग प्रवर्त रहे हैं। आगे एक समय में दो कार्य होवे वैसी प्ररूपना करने लगा। गुरु ने बहुत समझाया और समय की सूक्ष्मता बताई परंतु माना नहीं। एकदा जिनाज्ञानुसार यक्ष ने इनको ऐसी प्ररूपना करते देख कर मुद्गल उठाकर बहुत डराया तो भी अपना कदाग्रह छोड़ा नहीं। यह पांचवा निन्हव हुआ।।५।।

श्रीवीर निर्वाण से ५४४ वर्ष पीछे अतरणक नगर में श्री बलनृप की सभा में एक पंडित पेट को लोहे का पट्टा बांध कर आया। पूछने से बोला कि विद्या से मेरा पेटा फटता है। इसलिये कोई मुझे पराजित कर मेरा पेट हलका करने वाले को ढूंढता हूँ। आपके यहाँ पुष्पक उद्यान में श्री गुप्ताचार्य ज्ञानी सुने हैं। उनसे संवाद करने आया हूँ। तब राजा आदि चतुर्विध संघ ने मिलकर आचार्य से विनंति की। आचार्य ने अपने रोहगुप्त नामक शिष्य को सभा चतुर जानकर विवाद करने के लिये राज सभा में भेजा। उस पंडित से किसी प्रकार से जय नहीं होता देखा तब रोहगुप्त साधु ने एक सूत का डोरा खूब बटकर उसके सन्मुख रखा उससे पूछा कि–यह जीव है या अजीव है! तू जीव कहता है तो सूत का डोरा है और अजीव कहता है तो क्यों हिलता है? इसमें वह पंडित निरुत्तर हो गया। तब रोहगुप्त ने नो जीवा नो अजीवा इस तीसरी राशि की स्थापना से उस पर जयकर अपने गुरु के पास आया। गुरु के सन्मुख सब वृत्तांत कहा। गुरु ने कहा भगवान ने जीव अजीव यों दो राशि कही हैं। तुमने जिनाज्ञा की विराधना की इससे तू राज्य सभा में जाकर मिथ्यादुष्कृत दे। रोहगुप्त ने

गुरु के वचन की उत्थापना कर गुरु के साथ छः महिने तक विवाद किया। वहाँ द्रव्य गुण, कर्म, सामान्य, विशेष और समवाय इन छः वस्तु की स्थापना की। गुरु बोले कि–कृत्रिकापन की दुकान से तीनों वस्तु मंगवा ले। वहाँ उसने जाकर जीव वस्तु मांगी तो दी। अजीव वस्तु मांगी तो दी और जब नो जीव नो अजीव वस्तु मांगी तब उसकी भर्त्सना कर निकाल दिया। इतना होने पर भी अपना दुरागृह का त्याग किया नहीं। यह छठा निन्हव हुआ।।६।। श्री वीर निर्वाण से ५८४ वर्ष पीछे दशारणभद्र पुर के इक्षाग्र उद्यान में श्री आर्य रक्षित सूरि वृद्धावस्था के कारण स्थिरवास रहे थे। उनको १. गोष्ठामहिल, २. फल्गुरक्षित, और ३. इदूर्वलिका पुष्प, इन नाम के तीन बड़े विद्वान शिष्य थे। एकदा मथुरा नगरी में अक्रिया वादी ने बहुत पाखंड मचाया, तब श्री संघ ने दशारनपुर आकर आचार्य को विनती की। आचार्य ने वादी विजय गोष्ठामहिल को चौमासा करने के लिये मथुरा भेजा; वहाँ उन्होंने उसका पराजय किया। इधर आचार्य अपना आयुष्य नजदीक जानकर श्री संघ को बुलाकर बोले कि–दुर्बलिक रक्षित निष्पाय घट समान है फल्गुरक्षित तेल घट समान है और गोष्ठामहिल घृतघट समान है। इतना कह आयुष्य पूर्ण कर देवलोक हुए। श्री संघ ने दुर्बलिक पुष्य को आचार्य पद पर नियुक्त किया। चतुर्मास पूर्ण होने के बाद गोष्ठामहिल आये। दुर्बलिक पुष्प के आचार्य पद मिला जान स्वयं दूसरे उपाश्रय में रहे। आचार्य को मालूम होते ही उनको विनयपूर्वक अपने उपाश्रय में ले गये। तो भी उसका अमरोष मिटा नहीं। एकदा शिष्य सूत्राभ्यास करते-करते ऐसा सूत्र आया कि जीव को कर्म बंध स्पष्ट व निकाचित्त यों दो प्रकार का है। उस पर विचार हुआ कि निकाचित बंध छूटे नहीं और जीव मोक्ष जावे नहीं। इसमें शिष्यों में परस्पर विरोध कराने के लिये गोष्ठामहिल बोला कि–यह कथन मिथ्या है जीव को जो कर्म स्पर्श कर रहे हैं वे जैसे सर्प को कांचली अथवा शरीर को वख्तर रहता है। वैसे है जैसे नाग की कांचुली उतरने से नाग मुक्त होता है, वैसे ही जीव के कर्म दूर होने से जीव मुक्ति में जाता है। शिष्यों को ऐसा कथन जंचा नहीं। इससे आचार्य से पूछने पर कहा कि जो अभव्य है उनके निकाचित कर्म बंध है। उनकी मुक्ति नहीं होती है; जीव को कर्म लोहपिण्ड अग्निवत् है। वे जीव के देश से मिल कर रहे हैं। जैसे लोह पिण्ड अग्नि दूर होती है वैसे ही कर्म भी दूर होते हैं। गोष्ठामहिल ने इस बात को स्वीकार किया नहीं। दूसरी बात प्रत्याख्यान आश्रीत निकली। तब गोष्ठा महिल बोला कि–काल की मर्यादा से कोई प्रत्याख्यान नहीं होते हैं, क्योंकि प्रत्याख्यान पूरे होते ही उस वस्तु को भोगने की इच्छा होती है। आचार्य बोले कि जो कालावधि न होवे तो साधु मरकर देवलोक में गये बाद स्त्रियादि का सेवन करे तो व्रत भंग का दोष लगे। परंतु यह बात गोष्ठामहिल ने मानी नहीं। श्री संघ ने गोष्ठामहिल को समझाने के लिये तेला कर शासन देव की आराधना की। शासन देव द्वारा श्री श्रीमंदर स्वामी से इस बात का खुलासा पुछवाया। शासन देव ने आकर कहा कि आचार्य जो कहते हैं वह सत्य है इतना कहने पर भी गोष्ठामहिल ने माना नहीं। तब श्री संघ ने उसे निन्हव जानकर संघ से बाहिर किया। यह सातवां निन्हव हुआ।।७।। इस प्रकार संयम मार्ग प्राप्त होने पर भी धर्म से भ्रष्ट होते हैं। ये सातों निन्हव उववाइ सूत्र में वर्णित हैं।

सुइं च लद्धुं सद्धं, च वीरियं पुण दुल्लहं।
बहवे रोयमाणाऽवि, नो ए णं पडिवज्जई।।१०।।

कदाचित् मनुष्य जन्म, शास्त्र श्रवण और धर्म में श्रद्धा ये तीनों ही प्राप्त हो जाते हैं। परन्तु धर्म मार्ग में बल वीर्य का पराक्रम दुर्लभ है। ऐसे जीव बहुत हैं कि जो धर्म का सत्य स्वरूप समझते हुए भी उसे अंगीकार नहीं कर सकते हैं।।१०।।

माणुसत्तम्मि आयाओ, जो धम्मं सोच्च सद्दहे।
तवस्सी वीरियं लद्धुं, संवुडे निद्धुणे रयं॥११॥

मनुष्य जन्म को प्राप्त कर, सद्धर्म श्रवण कर, उसमें श्रद्धा रख, और धर्म कार्य करने का वीर्य पराक्रम भी प्राप्त कर आश्रव को समाप्त करने वाले तपस्वी कर्म रज को दूर करते हैं॥११॥

सोही उज्जुयभूयस्स, धम्मो सुद्धस्स चिट्ठइ।
निव्वाणं परमं जाइ, घयसित्ति व पावए॥१२॥

स्वभाव से सरल जीव को कषाय रहित निर्मलरूप प्राप्त होता है और कषायादि रहित जीव धर्म में स्थिर रहता है। फिर जैसे घृत से सिंचन कराई हुई अग्नि ऊँची जाती हुई निर्मल दिखती है वैसे ही वह जीव निर्वाण को प्राप्त होता निर्मल दिखता है॥१२॥

विगिंच कम्मुणो हेउं, जसं संचिणु खंतिए।
पाढवं सरीर हिच्चा, उड्ढं पक्कमई दिसं॥१३॥

मिथ्यात्व, अव्रत, अशुभ योग, कषाय और प्रमाद। इन पांचों धर्म के हेतुओं का त्याग कर क्षमादि दश धर्म से संयम धर्म को जो जीव स्पर्श करते हैं वे पृथ्वी काया के कच्चे भोजन समान औदारिक शरीर का त्याग कर ऊर्ध्व दिशा देवलोक में गमन करते हैं॥१३॥

विसालिसेहिं सीलेहिं, जक्खा उत्तरउत्तरा।
महासुक्का व दिप्पंता, मन्नंता अपुणच्चवं॥१४॥

अनेक प्रकार के व्रतादिक से शुद्ध क्रियाओं से उत्तरोत्तर देवता होते हैं। वे चंदमा समान देदीप्यमान होते हैं और ऐसा मानते हैं कि हम यहाँ से कदापि चलेंगे नहीं॥१४॥

अप्पिया देवकामाणं, कामरूवविउव्विणो।
उड्ढं कप्पेसु चिट्ठंति, पुव्वा वाससया बहू॥१५॥

देवताओं के काम भोगों में आसक्त, इच्छानुसार वैक्रिय करने वाले ऐसे ऊर्ध्व देवलोक में अर्थात् बारह देवलोक नव ग्रैवेयक और पांच अनुत्तर विमान में सैकड़ों पूर्व तक रहते हैं॥१५॥

तत्थ ठिच्चा जहाठाणं, जक्खा आउक्खए चुया।
उवेंति माणुसिं जोणिं, से दसंगेऽभिजायए॥१६॥

वे देवता वहां यथोचित स्थान में सुखपूर्वक रहकर आयुष्य का क्षय होने से वहाँ से च्यवकर मनुष्य, योनि में उत्पन्न होते हैं और वहाँ दश वस्तु प्राप्त करते हैं॥१६॥

खेत्तं वत्थुं हिरण्ण च, पसवो दास-पोरुसं।
चत्तारि कामखंधाणि, तत्थ से उववज्जई[१]॥१७॥

इन दश बोलका नाम हैं। १. खुल्ली भूमिका क्षेत्रादि, २. ढकी भूमि गृहादि, ३. सुवर्णादि धन और ४.पशु आदि दास-दासी प्रमुख। ये चार काम का स्कंध जहाँ होता है वहाँ वह उत्पन्न होता है। उक्त चार बोलका एक ही बोल लिया है॥१७॥

मित्तवं[२] नाइवं[३] होइ, उच्चागोए[४] य वण्णवं[५]।
अप्पायंके[६] महापन्ने[७], अभिजाए[८] जसो[९] बले[१०]॥१८॥

उसके बहुत मित्र होवे, ३. बड़ी ज्ञाति होवे ४. ऊँचा गोत्र होवे। ५. शरीर का वर्ण अच्छा होवे, ६. रोग रहित शरीर होवे, ७. बुद्धिवाला होवे, ८. विनयवान होवे, ९. यशवान होवे, और १०. बलवान होवे। इन दश बोल को वह प्राप्त करे॥१८॥

भोच्चा माणुस्सए भोए, अप्पडिरूवे अहाउयं।
पुव्विं विसुद्धसद्धम्मे, केवलं बोहि बुज्झिया॥१९॥
चउरंगं दुल्लहं नच्चा, संजमं पडिवज्जिया।
तवसा धुयकम्मंसे, सिद्धे हवइ सासए॥२०॥ त्ति बेमि॥
॥ चाउरंगिज्जं अज्झयणं समत्तं॥३॥

अपने आयुष्य पर्यंत मनुष्य संबंधी अनुपम भोग भोगकर विशुद्ध सद्धर्म में पहले कहे निष्कलंक बोध बीज रूप सम्यक्त्व की प्राप्ति करने वाले मनुष्य जन्मादि चार अंग को दुर्लभ मानकर संयम को अंगीकार करते हैं। वे तप से कर्म मेल को दूर करके शाश्वत सिद्ध होते हैं॥१९-२०॥ ऐसा मैं कहता हूँ, यों श्री सुधर्मा स्वामी अपने शिष्य श्री जम्बू स्वामी से कहते हैं।

यह तीसरा अध्ययन संपूर्ण हुआ।



चउत्थं असंखयं अज्झयणं
असंस्कृत जीवित नामकं चतुर्थ मध्ययनम्

तीसरे अध्ययन में चार अंग की प्राप्ति दुर्लभ कही। चार अंग प्राप्त होने पर भी आयुष्य का निश्चय नहीं है, इसलिए ज्ञान में प्रमाद नहीं करना। सो चौथे अध्ययन में कहते हैं।

असंखयं जीवियं मा पमायए, जरोवणीयस्स हु नत्थि ताणं।
एवं वियाणाहि जणे पमत्ते, कण्णु विहिंसा अजया गहिंति॥१॥

टूटा हुआ आयुष्य किसी भी प्रकार संभलता नहीं है। अर्थात् आयुष्य कदापि बढ़ सकता नहीं है और वृद्धावस्था प्राप्त होते इन्द्रियां जब क्षीण हो जाती हैं तब इस जीव को कुटुम्ब वगैरह कोई भी शरण देने वाले नहीं होते हैं। इसलिये जहाँ तक आयुष्य टूटे नहीं और वृद्धावस्था नहीं होवे वहाँ तक तू प्रसाद मत कर। और ऐसा जान कि इन्द्रियों को अपने वश में नहीं करने वाला प्रमादी हिंसक मनुष्य किस की शरण अंगीकार करेगा? अर्थात् उसको धर्म सिवाय और कोई भी शरणभूत नहीं हो सकता है॥१॥

इस पर अट्टणमल की कथा प्रेक्षणीय है। उज्जयनी नगरी के जितशत्रु राजा के समय में वहाँ अट्टणमल नाम का एक प्रसिद्ध मल्ल रहता था। वह मल्लयुद्ध में ऐसा था कि जिसको कोई पराजित नहीं कर सकता था। एकदा वह मल्ल सिंहगिरी राजा की राजधानी में गया और राजा के सन्मुख वहाँ के सब मल्लों का पराजित कर अपने देश में आया। यों दो-तीन बार वहाँ जाकर विजय करने से सिंहगिरि राजा ने विचार किया कि अट्टणमल्ल प्रतिवर्ष यहाँ आकर विजय करता है। इसलिये उसको भी पराजित करे ऐसा मल्ल बनाना। यों विचार करके एक बड़ा बलवान मच्छीमार देखा और उसे मल्लयुद्ध में प्रवीण बनाया। जब अट्टणमल्ल वहाँ आया तब उस मच्छीमार से मल्लयुद्ध किया, जिसमें वह हार गया। और अपमान पाकर अपने देश चला गया। अब उसने अपना अपमान करने वाले का वैर लेने का संकल्प किया। इससे कोई दूसरा खेती करने वाला युवा मनुष्य हृष्ट-पुष्ट देखा। उसके बल की परीक्षा करके उसको अपनी मल्ल विद्या में प्रवीण बनाया और सिंहगिरि राजा की सभा में आकर उस मच्छीमार मल्ल से युद्ध कराया। वहाँ दो दिन के युद्ध में दोनों में से कोई हारा नहीं वैसे ही जीता भी नहीं। मच्छीमार अपने गर्व में अपना दर्द किसी को कहे नहीं वह कृषिकार मल्ल अपनी सब हकीकत उस अट्टण मल्ल से कहे, जिस से वह औषधि आदि प्रयोग से अच्छा बना देता। तीसरे दिन मच्छीमार मल्ल का पराभव कर दिया और राजा से बहुत द्रव्य लिया। वह द्रव्य उस कृषिकार मल्ल को दिया। अब वह मल्ल वैर का बदला लेने से आनंदित होता हुआ अपने घर गया। तब उस के पुत्रों ने कहा कि वृद्धावस्था से

तुम निर्बल हो गये हो। अब तुम को कोई द्रव्य नहीं देंगे तो बैठे-२ क्या खाएंगे, ऐसा कहकर उस के कुटुम्ब ने उस को छोड़ दिया। वह निराश्रित बन कोशाम्बी नगरी आया। वहाँ किसी जोगी के पास से उसने रसायन खाई, उस से वह पुनः बलवान बनकर राज सभा में युद्ध करने गया और उस की जीत हुई। वह दान लेकर घर आया। अब उस ने विचार किया कि सब कुटुम्ब धन के अर्थी हैं। मैंने एक बार धन से विजित किया अब दूसरी बार वृद्धावस्था के कारण से औषधि भी गुण करेगी नहीं। अंत में कुटुम्ब मुझे दुःख देंगे, ऐसा विचार कर कोई महात्मा के पास दीक्षा लेकर देवलोक गया।

जे पावकम्मेहिं धणं मणूसा, समाययन्ती अमइं गहाय।
पहाय ते पास पयट्ठिए नरे, वेराणुबद्धा नरयं उवेंति॥२॥

जो मनुष्य धन को अमृत समान मान कर पाप कर्म से एकत्रित करते हैं। वे पुत्र कलत्रादिक के मोह वश में बंधाए हुऐ धन को छोड़ कर षट्काया से जीवों के बैर से बंधाए हुए नरक में उत्पन्न होते हैं॥२॥

किसी ग्राम में एक चोर ने अपने घर में एक कुआ बनाया था। जो धन लाता वह सब उस में डालता था, उसने एक स्त्री के साथ लग्न किया, वह गर्भवती हुई। तब चोर ने विचार किया कि इस का जो पुत्र होगा वह मुझे मार कर मेरा धन ले लेगा इसलिये उस स्त्री को उस कूएं में मार डाला और दूसरी स्त्री से लग्न किया। वह भी गर्भवती हुई और पूर्वोक्त विचार से उसे भी मार डाला, फिर एक रूपवती स्त्री से लग्न किया और उस को भी गर्भ रहा परंतु उस पर मोह होने से उस को मार नहीं सका। सवा नव मास में उसने पुत्र को जन्म दिया। वह जब नौ वर्ष का हुआ तब चोर ने विचार किया कि मेरे धन का मालिक यह स्त्री व पुत्र हो जायेंगे, इसलिए इन को मार डालूँ। यों विचार कर स्त्री को मार कर कूएं में डाल दिया। यह देख कर उस का लड़का भयभीत हो गया और बाहर आकर रोने लगा। रोने का कारण राज पुरुषों के पूछने पर लड़के ने सब हाल कह सुनाया, इस पर राज पुरुषों ने उस चोर को पकड़ कर शूली पर चढ़ा दिया, और सब धन ले लिया। परंतु वह धन उस को शरण देने वाला नहीं हुआ।

तेणे जहा संधिमुहे गहीए, सकम्मुणा किच्चइ पावकारी।
एवं पया पेच्च इहं च लोए, कडाण कम्माण न मुक्खो अत्थि॥३॥

जैसे पाप कर्म करने वाला चोर अपने चोरी के कर्म सहित सेंध के मुख में सेंध लगाते हुए पकड़ा गया चोर अपने किए हुए पाप कर्मों से मारा जाता है। वैसे ही जीव इस लोक व परलोक में पापकारी कर्मों से पीड़ित होते हैं, उन को उन बंधे हुए कर्मों से बिना भोगवे कदापि मोक्ष नहीं होता है॥३॥

एक सुतार चोर करीगरी में बड़ा चतुर था। जहाँ कहीं चोरी करने जाता था, वहाँ सेंध देते बड़ा नकसीदार सेंध देता था। एक बार किसी धनवान के वहाँ लकड़ी के पटियेवाली दीवार में सेंध देने लगा तब उस में तीक्ष्ण पंखुड़ियों वाला कमल फूल नक्श किया। उस में पाँव रखकर वह जैसे अंदर प्रवेश करने लगा कि–घर के मालिक ने उस के पाँव पकड़ लिये। और बाहर से चोर ने मस्तक पकड़ा अंदर वह बाहर खींचातानी होते-२ लकड़ी की नक्श की हुई कमल की पंखुड़ियां उस के शरीर में चुभ गईं, और वह बड़ा पश्यातापं करने लगा,

कि मेरे ही किये हुए कर्म का यह फल मुझे मिला है। आखिर में सेठ जी उस को नहीं छोड़ता देख तब साथ वाले चोर उसका मस्तक काटकर चले गये। ऐसे ही जो जीव कर्मोजपार्जन में अपनी चतुरता बताते हैं वे अपने कर्म से उस चोर जैसे इस लोक व परलोक में दु:खी होते हैं क्यों की कर्मों के फल भोगे विना कदापि छुटकारा नहीं है।

संसारमावन्न परस्स अट्ठा, साहारणं जं च करेइ कम्मं।
कम्मस्स ते तस्स उ वेयकाले, न बंधवा बंधवयं उवेंति॥४॥

संसार में ऊँच नीच कुल में रहा हुआ जो मनुष्य स्वजन आदि के लिये कि जिस में बहुत का विभाग होवे वैसा साधारण कर्म करता है, उस मनुष्य को जब कभी वे उदय में आते हैं, तब उस के स्वजनादि बंधु बंधुभाव नहीं रखते हैं, अर्थात् कोई भी उसे दु:ख से मुक्त नहीं कर सकते हैं॥४॥

इस पर हलवाई का दृष्टान्त प्रेक्षणीय है–किसी राजा के वहाँ उन के जामाई आये, इस लिए उसने हलवाई को बुलाकर घृत मैदा वगैरह देकर घेवर बनाने को कहा। उसने प्रथम चार घेवर तैयार कर छिपा दिये, और उस की स्त्री ने अपने पुत्र को भेजा। जिस के साथ वे चार घेवर अपने घर पहुँचा दिये। अच्छे ताजे घेवर देख कर उस स्त्री का मन चलायमान हुआ और एक वह स्वयं खा गई। दूसरा पुत्र को दिया और तीसरा पुत्री को दिया। चौथा घेवर अपने पति के लिये रखा था। इतने में उसका जामाई आया, उस को वह रखा हुआ घेवर खिला दिया। सभी काम से निवृत्त होकर वह हलवाई अपने घर आया और भोजन करने बैठा तो उसकी स्त्री ने मामूली भोजन परोस दिया। पूछने पर पूरा वृत्तान्त कह सुनाया। घेवर कम देख राजा को उस हलवाई पर शंका हुई, और सिपाहियों से हलवाई को पकड़ मँगवाया, उसको मारने पर उसने सच सच कह दिया, और कहा कि घेवर मैंने चुराये थे परंतु एक भी नहीं खाया है। राजा ने उस के कुटुम्ब को पकड़ मंगवाया। तब उसकी स्त्री ने कहा कि मैंने ऐसा जाना था कि राजा साहब ने लड़के को घेवर खाने को दिये होंगे हमें क्या ज्ञात था कि यह हमारी पूर्ति के लिये चोरी करता फिरता है। इत्यादि शब्दों में भर्त्सना की, घेवर खाने में तो सब खा गये परंतु संकट में सब बदल गये। उस चोरी का फल हलवाई को ही भोगना पड़ा।

वित्तेण ताणं न लभे पमत्ते, इमम्मि लोए अदुवा परत्था।
दीवप्पणट्ठे व अणंतमोहे, नेयाउयं दट्ठुमदट्ठुमेव॥५॥

प्रमाद से जीव ऐसा माने कि जब कर्म का उदय होगा तब धन देकर इस से मेरी रक्षा करूँगा। परंतु है प्रमादि जीव! इस लोक अथवा परलोक में जीव को धन से शरण नहीं मिल सकता है। जैसे किसी ने रसकूपीका लेने के लिये दीपक लेकर गुफा में प्रवेश किया। वहां दीपक बुझ जाने से मार्ग दीखता नहीं और इधर-उधर परिभ्रमण करने लगा। वहां बिल में रहे हुए किसी प्रचंड विषधर सर्प ने उसे दंश देकर मार डाला। वैसे ही समकित रूप दीपक से मुक्ति मार्ग दिखा है परंतु अनंत मोहनीय कर्म के उदय से देखा हुआ मार्ग भी बिना देखा जैसा होवे वह काल रूप सर्प के दंश से मृत्यु पाकर संसार रूपी चक्र में परिभ्रमण करे॥५॥

वसंतपुर नगर में भद्रसेन राजा ने पटह बजवाया कि आज कौमुदी महोत्सव है इसलिए गांव में किसी पुरुष मात्र को रहना नहीं। प्रधान मंत्री का पुत्र वैश्या व्यसनी होने के कारण उस के घर रह गया। प्रात:काल होते

राज पुरुषों ने उसे पकड़ा और राजा के सन्मुख ले गये। राजा कोपातुर होकर बोला कि राजा की आज्ञा काा भंग करने वाला राजा के प्राण का नाश करने वाला गिना जाता है, इसलिए इसे शूली पर चढ़ा दो। प्रधान यह सुनकर घबराया और अपने घर का सब द्रव्य देकर ही पुत्रभिक्षा मांगी, परंतु राजा ने उसे छोड़ा नहीं। यों धन दोनों लोक के दु:ख से नहीं बचा सकता है।

सुत्तेसु यावी पडिबुद्धजीवी, नवीससे पण्डिए आसुपन्ने।
घोरा मुहुत्ता अबलं सरीरं, भाडपक्खीव चरऽप्पमत्ते॥६॥

द्रव्य निद्रा से सोते हुए परंतु भाव निद्रा से जगते हुए शीघ्रप्रज्ञी पण्डित किसी पर विश्वास करे नहीं। क्योंकि काल बड़ा भयंकर है और शरीर निर्बल है। इसलिये जैसे अढाईद्वीप बाहर रहने वाला भारंड पक्षी अप्रमादी होता हुआ विचरता है वैसे ही साधु विचरे॥६॥

भरत क्षेत्र के शंखपुर नगर के सुंदर राजा की सुंदर रानी से उत्पन्न हुआ अगडदत्त कुमार यौवनावस्था से उन्मत्त बना हुआ स्वेच्छा से नगर में फिर व्यभिचार करने लगा। उस के कष्टों से पीड़ित होकर नगर निवासियों ने राजा से विनती की, कि-राजपुत्र को समझाओ, अथवा हमको रहने के लिये अलग स्थान दो। राजा ने रुष्ट होकर कुमार को देश निकाल कर दिया। अगडदत्त फिरता हुआ बनारसी नगरी में पाठशाला के बाहर बैठा। वहाँ के शिक्षक के पूछने पर अगडदत्त कुमार ने अपना सब वृत्तांत सुना दिया। शिक्षक ने कहा कि तेरे पिता को मैंने पढ़ाया है। उनके दिये हुए द्रव्य से मैं सुख पूर्वक उपजीविका करता हूँ तू भी मेरे यहाँ रह और कलाभ्यास कर। वह कुमार वहाँ रहकर कलाभ्यास करने लगा। अन्यदा राजा का हस्ती मदोन्मत्त बनकर हानि करने लगा। कोई भी उसे वश में कर सका नही, तब अगडदत्त कुमार वृक्ष पर चढ़कर हाथी की पीठ पर कूद पड़ा और मुष्टि प्रहार से उसका मद उतार दिया। वहाँ के राजा ने प्रसन्न होकर अगडदत्त को प्रधान पद दे दिया। अन्यदा वहाँ गांव में चोरी होने लगी। राजा ने पटह बजवाया कि जो कोई चोर पकड़े उसे आधा राज्य और मेरी कन्या देऊँ। अगडदत्त ने सात दिन में चोर को पकड़ने का वचन दिया। छ: दिन चोर की खोज करते हुए चोर नहीं मिला तब दु:खी होकर छठे दिन की रात्रि में वह फिर रहा था। उसने योगी के रूप में चोर को देखा और उसे नमस्कार किया, योगी के पूछने पर कहा कि मैं निर्धनता से अति दु:खी हूँ। उसने कहा चलो धन देता हूँ। यों कहकर वे दोनों एक श्रीमान् के घर आये और मंत्र प्रयोग से घर के सब मनुष्यों को निद्रस्थ कर धन के गठ्ठे बांधकर एक गुफा में आये। दोनों सो गये। जोगी रूप चोर को निद्रा आ गई जान अगडदत्त उसका सूर्य हंस खडग हाथ में लेकर और अपने सोने के स्थान पर अन्य काष्ट रख उस वस्त्र ढक दिया और स्वयं दूर खड़ा रहा। उस चोर ने उठते ही उस लक्कड़ पर प्रहार किया। वहाँ लक्कड़ देख वह चमक गया। इतने में उस राजकुमार ने सूर्य हंस खड्ग से चोर को मार डाला। मरता-मरता चोर बोला कि-हे सत्पुरुष! मुझे अपराजित को तूने पराजित किया। इसलिये इस गुफा का पटिया दूर कर अंदर जाना। वहाँ बहुत धन और मेरी कन्या है। उसे तू ग्रहण करना। वह अगडदत्त चोर को मारकर गुफा में गया और कन्या को वृत्तांत सुनाया। कन्या ने उसे अपने पिता को मारने वाला जाना। इसलिए वह कपटपूर्वक नम्रता से बोली कि-आप इस पलंग पर आराम करो मैं आती हूँ। अगडदत्त विचारपूर्वक समझकर दूर खड़ा रहा। कन्या ने ऊपर जाकर एक बड़ी शिला पलंग पर डाली। अगडदत्त यह देख कोपातूर हो गया और उस कन्या की चोटी पकड़कर सातवें दिन राजा के पास लाया, वह कन्या अगडदत्त के हाथ में से छूटते ही उड़ गई, यह देख सब लोग आश्चर्यचकित

हो गये, अगडदत्त ने राजा को मरा हुआ चोर और गुफा में रहा धन बतलाया। राजा ने जिसका धन था उस को दे कर शेष भंडार में रखा। अगडदत्त को आधा राज्य दिया और राज कन्या से पाणिग्रहण करवाया। अगडदत्त की कीर्ति विस्तृत हुई और उस के माता-पिता उसका वृत्तांत सुनकर प्रधान को भेजकर कुमार को अपने राज्य में बुलाया और उस राजा ने अगडदत्त को राज्य देकर संयम लिया। अगडदत्त की रानी को एकदा सर्प ने दंश दिया इस से वह मूर्च्छित हुई, अगडदत्त मोह में अंध बना हुआ उसके साथ चिता में जलने लगा। किसी विद्याधर ने उसका विष दूर किया और राजा-रानी सुख पूर्वक रहने लगे। एकदा पराजित चोर के पारिवारिक जन अगडदत्त को मारने आये और महल में छिपकर रहे। रानी उस चोर का रूप देखकर मुग्ध हो गई और कहने लगी कि तुम मुझे अंगीकार करो तो मैं राजा को मार डालूँ। चोर ने रानी के वचन सुनकर विचार किया कि जिस के लिये राजा मरता है उसकी यह नहीं हुई तो अपनी क्या होगी? ऐसे संसार को धिक्कार है, यों वैराग्य प्राप्त कर दीक्षा धारण कर वन में ध्यानस्थ रहा राजा कपट निद्रा में रानी की बात सुन रहा था। उस की मोह निद्रा उड़ गई और जागृत हुआ, धिक्कार है मेरे जैसे मोहांध को और इन चोरों को धन्य है, यों वैराग्य प्राप्त कर दीक्षा अंगीकार की, और निर्मल संयम पाल कर्म क्षय कर मोक्ष में गया।

चरे पयाइं परिसंकमाणो, जं किंचि पासं इह मण्णमाणो।
लाभंतरे जीविय बूहइत्ता, पच्छा परिन्नाय मलावधंसी॥७॥

पाप से शंकित होता हुआ व संयम की विराधना नहीं करता हुआ उत्तरगुण में प्रवर्ते और संसार को पाश समान मानता हुआ जहां तक शरीर से तप जप का लाभ होवें वहाँ तक शरीर का पोषण कर संयम जीवितव्य की प्रति पालना करे, जब शरीर से कुछ भी लाभ नहीं मिलता देखे कि अवसर जानकर संथारा कर के शरीर तपाकर पाप कर्म रूप रजमेल दूर करे॥७॥

वेणातट पाटण में मूलदेव राजा राज्य करता था, उस ग्राम में एक मंडित चोर का उपद्रव बहुत था। वह दिन को गाँव में भिक्षा के छल से लोगों के घर देख जाता था, और रात्रि को चोरी करता था। इस चोर से पूरी प्रजा दुःखी हो गई, परंतु चोर हाथ नहीं आया, तब मूलदेव नौकर का वेष पहनकर चोर को ढूंढने निकला। मंडित चोर के साथ वह मूलदेव सेवक के रूप में रहा। वह उसे अपनी गुफा के पास ले गया और वहाँ उसे बाहर रखकर वह अंदर गया और उस की बहन उस सेवक को कूएं में डालने के छल से हाथ पाँव धोने बैठी, पाँव धोते समय उसने राजा के चिह्न देख कर उस पर मोहित हो गई और कहा कि यदि आप मेरे भाई को जीवित रखो तो मैं आपके साथ विवाह करूंगी ओर सब माल बता दूँगी। राजा ने उसका वचन स्वीकार किया, तब उस ने कहा कि मेरा भाई कल दिन को गाँव में भिक्षा माँगने आवेगा उसे तुम पकड़ना। राजा ने वैसे कर के चोर पकड़ लिया और कहा कि तेरी बहन का मेरे साथ शादी करे तो मेरे भंडार का तुझे स्वामी बनावूँ। चोर ने बहन की शादी राजा से कर दी और राजा ने अपने भंडार का स्वामी उस चोर को बना दिया। अब राजा ने उसे समझाकर जिनका धन चोरी से लिया था, उन को वापस दिलवा दिया। राजा ने देखा कि अब इस के पास धन नहीं है। तब उस को मार डाला। जैसे चोर के पास से धन मिलना बन्द हो गया कि उस को मार डाला, वैसे ही इस शरीर रूप चोर को जीव रूप राजा संभाल कर रखते हैं, जब उस के पास से तप संयम रूप माल निकलना बन्द होवे तब साधु उसका त्याग करते हैं अर्थात् संथारा करते हैं।

छन्दं निरोहेण उवेइ मोक्खं, आसे जहा सिक्खिय-वम्मधारी।
पुव्वाइं वासाइं चरेऽप्पमत्तो, तम्हा मुणी खिप्पमुवेई मोक्खं॥८॥

जैसे जातिवंत अश्वशिक्षक से शिक्षित बना हुआ अपनी इच्छा का दमन कर अपने सवार की इच्छानुसार चलता है वह राजा के सवारी योग्य होता है और अनेक प्रकार के दुःख से मुक्त होता है वैसे ही अनेक पूर्व व वर्ष पर्यन्त अप्रमत्त रहकर संयम मार्ग में विचरता हुआ शीघ्र ही मोक्ष प्राप्त कर लेता है॥८॥

स पुव्वमेवं न लभेज्ज पच्छा, एसोवमा सासयवाइयाणं।
विसीयई सिढिले आउयम्मि, कालोवणीए सरीरस्स भेए॥९॥

जो मनुष्य धर्म करने के अवसर में प्रमादी बनकर विचार करे कि बाद में धर्म करूंगा ऐसी शाश्वतवादी लोग कहते हैं। जब आयु के शिथिल हो जाता है, मृत्यु निकट आती है, और शरीर का भेद होता है तब वह खेदित होता है कि मैंने प्रथम धर्माचरण किया नहीं, अब मैं धर्म नहीं कर सकता हूँ, अब मेरा क्या हाल होगा!॥९॥

खिप्पं न सक्केइ विवेगमेउं, तम्हा समुट्ठाय पहाय कामे।
समिच्च लोयं समया महेसी, अप्पाणरक्खी चरेऽमप्पमत्तो॥१०॥

प्राणी करण समय पर तत्काल त्याग रूप धर्म नहीं कर सकता है, इसलिए प्रथम ही काम भोगों का त्याग कर, लोक का स्वरूप सम्यक् प्रकार से देख कर दुर्गति में गिरी आत्मा की रक्षा करने वाले महर्षि अप्रमत्त रूप से विचरण करे॥१०॥

मुहुं मुहुं मोहगुणे जयन्तं, अणेगरूवा समणं चरन्तं।
फासा फुसतिं असमंजसं च, न तेसिं भिक्खू मणसा पउस्से॥११॥

बार-बार मोह-गुणों पर विजय प्राप्त करने वाले और संयम मार्ग पर चलने वाले साधु को कष्ट देनेवाले अनेक प्रकार के अनुकूल अथवा प्रतिकूल स्पर्श स्पर्शित होते रहते हैं, परन्तु भिक्षु उनके साथ मन से भी द्वेष न करे, शरीर और वाणी की तो बात ही क्या है?॥११॥

इस गाथा के पूर्वार्ध के दो पद पर एक ब्राह्मण की कथा ज्ञातव्य हैं, किसी गाँव में एक ब्राह्मण काशी से पढ़कर आया। गाँव के लोगों ने प्रसन्न होकर उसको बहुत द्रव्य दिया। जिससे उसने अपनी स्त्री के लिये आभूषण बनवाये। वह स्त्री दिन रात आभूषण पहन रखती। उस गाँव में चोरों का बड़ा डर होने से ब्राह्मण ने उसकी स्त्री से आभूषण निकाल रखने को कहा परंतु उसने माना नहीं। उस स्त्री का शरीर प्रतिदिन स्थूल होता गया और सभी आभूषण बहुत सज्जड हो गये। उस समय भी ब्राह्मण ने उस को समझाया परंतु माना नहीं और कहा कि चोर आवेंगे तब निकाल लूंगी, एकदा ऐसा ही हुआ कि उस के घर में चोर आये उस समय वह आभूषण निकाल कर छुपा सकी नहीं, जिस से वे आभूषण चोर जल्दी से निकाल ले गये। अहो भव्य जीवो! जैसे उस स्त्री ने आभूषण चोर आने पर निकाल सकी नहीं और सब चोर ले गये, वैसे ही मृत्यु आने के बाद धर्म होगा नहीं, इसलिये प्रथम ही धर्म कर लेना चाहिये।

उत्तरार्ध दो पद पर कथा प्रेक्षणीय है–किसी गाँव का एक वणिक अपनी स्त्री को नौकर आदि, पशु आदि से भरा घर संभलाकर परदेश गया। वह स्त्री प्रमादी बन गई और किसी का संभाल नहीं रखी। इस से नौकर, चाकर भी प्रमादी बन गये, और पूरा वंतन भी नहीं मिलने से वे भाग गये और पशुओं को पूरा खाने को नहीं मिलने से कितने मर गये। वैसे ही व्यापार में भी हानि हुई जब उस वणिक् ने अपने घर आकर स्त्री की प्रमाद अवस्था से होती हुई हानि देखी, तब उसने शीघ्र ही दूसरी स्त्री से शादी की और उसको घर का सब कार्य संभलाकर परदेश जाते वैसे ही कहता गया कि पहली स्त्री जैसे तू प्रमादी मत होना, अगर तू पहली स्त्री जैसी होगी तो तेरा त्यागकर दूसरी स्त्री के साथ शादी करूंगा। इस कथन को ध्यान में रख स्त्री ने नौकर चाकर की अच्छी तरह संभाल की और जानवरों का भी अच्छी तरह भरण-पोषण किया, इस से उस को अच्छा लाभ हुआ। जब वह वणिक आया तब सब नौकर सेठानी की प्रशंसा करने लगे। जिससे वह सेठ प्रसन्न होकर धन, घर सबकी स्वामिनी उस स्त्री को बना दिया, ऐसे ही अहो भव्य जीवो! प्रमाद त्यागकर कायारूप नौकर की संभालकर बारंबार अनेक प्रकार के मोह गुण को जीतने वाले, और ग्रामानुग्राम विचरने वाले श्रमण को असमंजस स्पर्श स्पर्शे तो भी उन पर साधु द्वेष करे नहीं।।११।।

मंदा य फासा बहुलोहणिज्जा, तहप्पगारेसु मणं न कुज्जा।
रक्खिज्ज कोहं विणएज्ज माणं, मायं न सेवेज्ज पहेज्ज लोहं।।१२।।

बुद्धि को मंद करने वाले और मन को लुभानेवाले स्पर्शों में साधु अपने मन को न लगावे, वह क्रोध न करे, मान में न आवे, माया-कपट का सेवन कभी न करे और लोभ को भी मन से त्याग दे।।१२।।

जे संखया तुच्छ परप्पवाई, ते पिज्ज-दोसाणुगया परज्झा।
'एए अहम्मे' ति दुगुंछमाणो, कंखे गुणे जाव सरीरभेउ।।१३।। त्ति बेमि।।
।। असंखयं अज्झयणं समत्तं।।४।।

कितनेक[1] संस्कार रहित असंबन्ध वाक्य बोलने वाले, तुच्छ बुद्धि के धारक, सदैव परप्रवाद में अर्थात् पर के दोष प्रकट करने में आसक्त राग द्वेष रूप शत्रुओं से पराभव पाये हुए व परवश पड़े हैं इसलिये अत्मार्थी मनुष्यों के असंस्कारी वचनों पर तथा कुप्रवाद रूप अधर्म को छोड़ कर जहाँ तक अपने शरीर का नष्ट होवे नहीं वहाँ तक अर्थात् जीव पर्यन्त गुण में रमण करते हुए विचरें।।१३।।

ऐसा मैं कहता हूँ, यों सुधर्मा स्वामी ने अपने शिष्य श्री जम्बू स्वामी से कहा है।

चौथा असंखय अध्ययन संपूर्ण हुआ।

---

१. कितनेक संख्या शब्द का अर्थ संस्कृत भाषा बोलने वाले के पक्ष में और कितनेक संस्कृत भाषा से अज्ञात नहीं बोलने वाले के पक्ष में कहते हैं। परन्तु मैंने गुरुगम से उक्त अर्थ की धारणा की है वैसा ही यहां किया है।



पंचमं अकाममरणिज्जं अज्झयणं
अकाम सकाम मरणं नामकं पंचम अध्ययनम्

आयुष्य की वृद्धि न होवे ऐसा चौथे अध्ययन में कहा, इसलिये मृत्यु का सुधार करना यह पांचवे अध्ययन में वर्णित है–

अन्नवंसि महोहंसि, एगे तिन्ने दुरुत्तरे।
तत्थ एगे महापन्ने, इमं पण्हमुदाहरे॥१॥

महाप्रवाह रूप दुस्तर संसार समुद्र तीरने का उपाय श्री तीर्थंकर भगवान ने देवादिक की महापरिषद में विराजमान हो कर कहा है, उसे श्रवण कर व उस अनुसार प्रवृत्ति करके एक-२ महापुरुष इस संसार रूप समुद्र को तीरे हैं, वही उपाय यहाँ कहते हैं॥१॥

संतिमे य दुवे ठाणा, अक्खाया मारणंतिया।
अकाममरणं चेव, सकाममरणं तहा॥२॥

संसार में जीवों की मृत्यु दो प्रकार की कही है यथा–१ अकाम मरण व २ सकाम मरण॥२॥

बालाणं अकामं तु मरणं असइं भवे।
पंडियाणं सकामं तु उक्कोसेण सइं भवे॥३॥

इस में से अकाम मरण अज्ञानी जीवों को अनेक बार होता है और सकाम मरण पंडित पुरुषों को उत्कृष्ट एक बार होता है॥३॥

तत्थिमं पढमं ठाणं, महावीरेण देसियं।
कामगिद्धे जहा बाले, भिसं कूराइं कुव्वई॥४॥

श्री श्रमण भगवान महावीर स्वामी ने इस प्रकार कहा है–कि जो अज्ञानी काम भोग में गृद्ध होता हुआ क्रूर कर्म करता है उस का अकाम मरण होता है॥४॥

जे गिद्धे काम-भोगेसु, एगे कूडाय गच्छई।
न मे दिट्ठे परे लोए, चक्खुदिट्ठा इमा रई॥५॥

पांचों इन्द्रियों के कामभोग में गृद्ध बने हुए प्रवर्तकार नरकादि स्थानक कहाँ है? वैसी कटु वाणी मृषा, भाषा बोलता है वह ऐसा कहता है कि दूसरा लोक मैंने नहीं देखा है, यह आनंद प्रत्यक्ष दिख रहा है॥५॥

हत्थागया इसे कामा, कालिया जे अणागया।
को जाणइ परे लोए, अत्थि वा नत्थि वा पुणो?॥६॥

इन कामभोगों को छोड़ कर धर्म करो जिस से आगे सुख मिलेगा तो कहते हैं कि–ये काम भोग प्रत्यक्ष अपने हाथ में आये हुए हैं उन को मैं भोगता हूँ, क्योंकि दूसरे जन्म में कामभोग मिलेगा या नहीं यह संशय है, और ऐसा कौन जानता है कि परलोक है या नहीं॥६॥

'जणेण सद्धिं होक्खामि' इइ बाले पगब्भई।
काम-भोगाणुराएणं, केसं संपडिवज्जई॥७॥

और भी अज्ञानी जीव धृष्टपना धारण कर कहते हैं कि क्या हम एक ही पापाचरण करने वाले हैं, इतने जीवों की जैसी गति होगी वैसी ही हमारी भी होगी, यों कामभोग में रक्त बने हुए इस लोक व परलोक यों दोनों लोक के क्लेश-दुःख को प्राप्त होते हैं॥७॥

तओ से दंडं समारभई, तसेसु थावरेसु य।
अट्ठाए य अणट्ठाए, भूयगामं विहिंसई॥८॥

तत्पश्चात् वह त्रस व स्थावर जीवों में दंड का परलोक का समारंभ करता हुआ सार्थक व निरर्थक जीवों के समुह की हिंसा करता है॥८॥

हिंसे बाले मुसावाई, माइल्ले पिसुणे सढे।
भुंजमाणे सुरं मंसं, 'सेयमेयं' ति मन्नई॥९॥

हिंसा करने वाला अज्ञानी मृषा बोलता है, मायावी बनता है, चुगलीखोर व धृष्ट होता है, और मदिरा मांस भोगता हुआ अपने को अच्छा मानता है॥९॥

कायसा वयसा मत्ते, वित्ते गिद्धे य इत्थिसु।
दुहओ मलं संचिणई, सिसुनागो व्व मट्टियं॥१०॥

जैसे अलसिया मट्टी में उत्पन्न होता है, मट्टी ही खाता है और वह सूर्य के ताप में तपने से तड़फ-२ कर मर जाता है, वैसे ही अज्ञानी जीव मन वचन व काया से धन व स्त्रियों में गृद्ध मदोन्मत्त बना हुआ बाह्य तथा आभ्यंतर दोनों प्रकार की कर्म रूप रज एकत्रित करता है॥१०॥

तओ पुट्ठो आयंकेणं, गिलाणो परितप्पई।
पभीओ परलोगस्स, कम्माणुप्पेहि अप्पणो॥११॥

तत्पश्चात् वह कामभोग की सामग्री क्षय होने से रोग से पीड़ित बना हुआ अपने कृतकर्मों का स्मरण करता हुआ और परलोक के दुःख से डरता हुआ वह दुःखी पुरुष खेदित होता है॥११॥

सुया मे नरए ठाणा, असीलाणं च जा गइ।
बालाणं कूरकम्माणं, पगाढा जत्थ वेयणा॥१२॥

अब यहाँ श्री सुधर्मा स्वामी कहते हैं कि मैंने भगवान श्री महावीर स्वामी से सुना है कि जो अज्ञानी जीव उक्त प्रकार के क्रूर कर्म का आचरण करते हैं कि नरक में जाते हैं, वहाँ उन जीवों को अत्यंत वेदना होती है॥१२॥

तत्थोववाइयं ठाणं, जहा मे तमणुस्सुयं।
आहाकम्मेहिं गच्छंतो, सो पच्छा परितप्पई॥१३॥

नरक में उत्पन्न होने का स्थान जैसे मैंने सुना है वैसा कहता हूँ कि वहाँ पर वे जीव यथा संचित कर्म से जीता हुआ पीछे से परिताप पाता है॥१३॥

जहा सागडिओ जाणं, सम हेच्चा महापहं।
विसमं मग्गमोइण्णो, अक्खे भग्गम्मि सोयई॥१४॥

जैसे गाडी चलाने वाला अपनी गाड़ी को सम्यक् (अच्छा) मार्ग छोड़कर विषम मार्ग हो जाता है उसकी गाड़ी का धुरा टूटने से वह पश्यताप करता है॥१४॥

एवं धम्मं विउक्कम्म, अहम्मं पडिवज्जिया।
बाले मच्चुमुहं पत्त, अक्खे भग्गे व सोयइ॥१५॥

ऐसे ही धर्म को छोड़कर धर्म अंगीकार करने वाले अज्ञानी जीव मृत्यु के मुख में पड़े हुए शोक करते हैं, जैसे वह गाड़ी वाल गाड़ी का अक्ष (धूरा) टूटने से शोक करता है॥१५॥

तओ से मरणंतम्मि, बाले सतसई भया।
अकाममरणं मरई, धुत्तेव, कलिणा जिए॥१६॥

जैसे जुवारी एक दाव में अपना सर्वस्व हार कर पश्यताप करता है वैसे ही अज्ञानी अकाम मृत्यु से मरता हुआ भवान्तर के दुःखों से त्रास पाता है कि अब मेरी क्या गति होगी?॥१६॥

एयं अकाममरणं, बालाणं तु पवेइयं।
इत्तो सकाममरणं, पंडियाणं सुणेह मे॥१७॥

अकाम मरण मरने से अज्ञानी जीवों को जो होता है सो तो कहा, अब आगे पंडित पुरुषों को सकाम मरण कैसे होता है सो कहते हैं, उसे तुम श्रवण करो॥१७॥

मरणं पि सपुण्णाणं, जहा मे तमणुस्सुयं।
विप्पसन्नमणाघायं, संजयाणं वुसीमओ॥१८॥

पुण्यवान प्राणी को ऐसा सकाम मरण होता है, यह जैसा मैंने सुना है वैसा ही कहता हूँ यह मरण चित्त को प्रसन्न करने वाला जीवों की घात नहीं करने वाला है, अर्थात् अनेक समय के मृत्यु के दुःख से बचाने वाला होता है, ऐसा मरण संयति साधु पुरुषों को कहा है॥१८॥

न इमं सव्वेसु भिक्खूसु, न इमं सव्वेसु गारिसु।
नाणासीला य अगारत्था, विसमसीला य भिक्खुणो॥१९॥

यह पंडित मरण सब साधुओं को भी नहीं होता है वैसे ही सब गृहस्थों को भी नहीं होता है परंतु सन्तादि के व्रताचरण करने वाले जो गृहस्थ है उन को और कठिन विशुद्ध किया करने वाले साधु को यह पंडित मरण होता है॥१९॥

संति एगेहिं भिक्खूहिं, गारत्था संजमुत्तरा।
गारत्थेहि य सव्वेहिं, साहवो संजमुतरा॥२०॥

अनेक तो द्रव्य लिंगी भ्रष्टाचारी निन्हव तथा कुतीर्थियों साधु से सम्यक्त्व व्रत निर्मल पालने वाले गृहस्थ भी अच्छे हैं, और गृहस्थियों से शुद्ध संयम पालने वाले साधु तो सदैव अच्छे हैं॥२०॥

चीराजिणं निगिणिणं, जडी संघाडि मुंडिणं।
एयाणि वि न तायंति, दुस्सीलं परियागय॥२१॥

अब अन्य तीर्थी का स्वरूप कहते हैं कितने भगवान वस्त्र के धारक मृग चर्म रखने वाले, वस्त्र खंड को जोड़कर कथा बनाकर रखने वाले मस्तक मुंडाने वाले इत्यादि अनेक प्रकार के अन्य लिंग के धारक जो दुराचारी हैं, जिज्ञासा विरूद्ध प्रवृत्ति करने वाले हैं, वेष मात्र से मोक्ष का साधन मानकर बैठे हैं, वे इस संसार में किसी जीव को दुःख से मुक्त नहीं कर सकते हैं॥२१॥

पिंडोलए व्व दुस्सीले, नरगाओ न मुच्चई।
भिक्खाए वा गिहत्थे वा, सुव्वए कमई दिवं॥२२॥

जो कोई साधु भिक्षा से आजीविका करने वाले हैं, परंतु अनाचार व पापकर्म का त्याग करने वाले नहीं हैं, ऐसे दुराचारी नरक से मुक्त नहीं हो सकते हैं, परंतु भिक्षा से आजीविका करने वाले साधु होवे अथवा सदाचार पालने वाला गृहस्थ होवे तो वह स्वर्ग में जाता है॥२२॥

अगारिसामाइयंगाइं, सड्ढी काएण फासए।
पोसहं दुहओ पक्खं, एगराई न हावए॥२३॥

अब गृहस्थ का धर्म कहते हैं–गृहस्थ सामायिक[१] के अंग को श्रद्धा पूर्वक काया से स्पर्श, अर्थात् श्रद्धा पूर्वक शुद्ध सामायिक पाले, कृष्ण पक्ष व शुक्ल पक्ष यों दोनों पक्ष में पोषध करे, इस में एक रात्रि की भी हानि करे नहीं॥२३॥

एवं सिक्खासमावने, गिहवासे वि सुव्वए।
मुच्चई छवि-पव्वाओ, गच्छे जक्खसलोगयं॥२४॥

इस प्रकार की शिक्षा संपन्न जो गृहस्थ होते हैं उनको गृहस्थ होते हुए भी विशुद्ध व्रती

---

१. सामायिक तीन प्रकार की है–१ सम्यक्त्व सामायिक, २ सूत्र सामायिक ३ और देश वृत्ति सामायिक। इन तीनों के २४ अंग हैं–प्रथम सम्यक्त्व के आठ अंग–१ जिन वचन में शंका नहीं करे, २ अन्य मत की वाञ्छा न करे, ३ करनी के फल में संदेह न करे, ४ मिथ्या आडम्बर की प्रशंसा न करे, ५ धर्मात्माओं के गुणानुवाद करे, ६ चलित धर्मिय को स्थिर करे, ७ स्वधर्मियों को हितकर्त्ता होवे और ८ जैन धर्म की उन्नति करे। दूसरी सूत्र सामायिक के आठ अंग–१ कालो काल शास्त्राभ्यास करे २ विनयपूर्वक ज्ञान ग्रहण करे ३ ज्ञान का व ज्ञान देनेवाले का बहुमान करे, ४ ज्ञान का उपधान तप करे, ५ ज्ञान दाता का उपकार न भूले ६-७ सूत्र, अर्थ व उभय को न छिपावे वैसे ही न फिरावे और ८ पाठ तथा अर्थ विपरीत करे नहीं। ३ तीसरी देश विरति सामामिक के आठ अंग–१ स्थुल प्राणाति २ पात स्थुल मृषावाद, ३ स्थुल अदत्तादान, से निवर्तना ४ स्वादारा संतोषी होना, ५ इच्छा प्रमाण ६ दिशा प्रमाण ७ भोग उपभोग प्रमाण और ८ अनर्था दंडविरमण इन आठों का आचरण करे। यह सामामिक के २४ अंग कहे।

कहना, वे इस हड्डी चर्मवाला औदारिक शरीर त्याग कर उत्तम जाति के देवलोक में देवता होते हैं॥२४॥

अह जे संवुडे भिक्खू, दोण्हमन्नयरे सिया।
सव्वदुक्खप्पहीणे वा, देवे वा वि महिड्ढिए॥२५॥

अब साधु का धर्म कहते हैं–जो पांच प्रकार आश्रव का रूंधन करनेवाला भिक्षुक है उन की गति दो प्रकार की है, वे सर्व कर्म का क्षय कर मुक्त होवे अथवा तो कर्म बाकी रह जानेसे महर्द्धि देव होवे॥२५॥

उत्तराइं विमोहाइं, जुइमंताऽणुपुव्वसो।
समाइन्नाइं जक्खेहिं, आवासाइं जसंसिणो॥२६॥

वे देवता किस प्रकार के हैं सो कहते हैं–सौधर्म देवलोक से सर्वार्थ सिद्ध विमान पर्यन्त एक-एक से अधिक पुण्याइवाले तेज कांति के धारक देवताओं देवलोक में संकीर्ण हैं। इन में सर्वोत्तम पांच अनुत्तर विमानासी जो देव हैं उन का मिथ्यात्व मोहनीय नष्ट होने से अपने-२ विमान में सदैव सुखानुभव करने वाले हैं वैसे ही महाकीर्ति के धारक हैं॥२६॥

दीहाउया इड्ढिमंता, समिद्धा कामरूविणो।
अहुणोववन्नसंकासा, भुज्जोअच्चिमालिप्पभा॥२७॥

वे देवता दीर्घ आयुष्यवाले महाऋद्धि समृद्धिवंत, इच्छित रूप करने वाले, जब देखो तब जाने तुरन्त ही उत्पन्न हुए हैं, ऐसे और सूर्य से भी अधिक क्रांतिवाले हैं॥२७॥

ताणि ठाणाणि गच्छंति, सिक्खित्ता संजम तवं।
भिक्खाए वा गिहत्थे वा, जे संतिपरिनिव्वुडा॥२८॥

जो साधु अथवा गृहस्थ कषायों के उपशप से शीतलिभूत बने हुए हैं वे संयम व तप अंगीकार करके आयु का अन्त होने से उक्त प्रकार के देव स्थान में जाते हैं॥२८॥

तेसिं सोच्चा सपुज्जाणं, संजयाणं वुसीमओ।
न संतसंति मरणते, सीलवन्ता बहुस्सुया॥२९॥

पूज्यनीय संयति आचार्य के पास से पूर्वोक्त प्रकार से श्रमण दोनों प्रकार के मरण का स्वरूप श्रवण कर जो साधु अंगीकार करते हैं कि वे शीलवंत बहुश्रुत पंडित मरणांत में खेद पश्यताप नहीं पाते हैं अर्थात् समाधिमरण मरते हुये नहीं घबराते हैं॥२९॥

तुलिया विसेसमादाय, दयाधम्मस्स खंतिए।
विप्पसीएज्ज मेहावी, तहाभूषण अप्पणा॥३०॥

अहो पंडितो! उक्त प्रकार अकाम मरण व सकाम मरण दानों का कथन कहा, अब इसे अपनी बुद्धि से तोल कर बाल मरण का दुःख का हेतु जान कर उसका त्याग कर और पंडित मरण के लिये दया धर्म का आचरण करो, क्षमा आदि दश यतिधर्म का धारक बनो, मिथ्यात्वादि आश्रव का निरूंधन कर तथाभूत अपना आत्मा को बनावो॥३०॥

तओ काले अभिप्पेए, सद्ढी तालिसमंतिए।
विणएज्ज लोमहरिसं, भेयं देहस्य कंखए॥३१॥

जब मरण समय निकट आवे तब मन के भोगों को हीन नहीं करता हुआ शूरवीरता धारण करो, जिन वचन में पूर्ण श्रद्धा रखकर परीषह होने पर भी मन को स्थिर रखो, शरीर के रोम मात्र में खेद नहीं करता हुआ व्याकुलता रहित शरीर के विनाश की अशरीरि होने की इच्छा करो॥३१॥

अह कालम्मि संपत्ते, आघायाय समुस्सयं।
सकाममरणं मरइ, तिण्हमण्णतरं मुणि॥३२॥ त्ति बेमि॥
॥ अकाममरणिज्जं अज्झयणं समत्तं॥५॥

जिस समय मृत्युकाल पास आवे तब तीन प्रकार के सकाम मरण मुनि करे, जिन के नाम कहते हैं, भक्त प्रत्याख्यान सौ तीन अथवा चार आहार का जीव त्याग करे, इंगित मरण क्षेत्रादि मर्यादा बांधकर उसके बाहर गमनागमन का तथा चारों आहार का त्याग करें और ३ पादोपगमन सो आहार और शरीर दोनों का त्याग कर छेदित वृक्ष की डाली समान हलन चलन नहीं करता हुआ आयुष्य पूर्ण करें, इन तीनों प्रकार के मृत्यु में यथा शक्ति कोई भी एक मृत्यु मरकर आयुष्य पूर्ण करे॥३२॥

यों मैं कहता हूँ, ऐसा श्री सुधर्मा स्वामी शिष्य श्री जम्बू स्वामी से कहते हैं कि जैसा मैंने भगवान के पास से श्रवण किया है वैसा ही तुझे कहता हूँ।

अकामसकाम मरण नामक पांचवां अध्ययन संपूर्ण हुआ।

६

छट्ठं खुड्डानियंठिज्जं अज्झयणं
क्षुल्लक निर्ग्रंथ नामकं षष्ठ मध्ययनम्

पांचवें अध्ययन में अकाम सकाम मरण का कहा, विद्यावालों को सकाम मरण और अविद्या वाले को अकाम मरण होता है इसलिये छठे अध्ययन में विद्यावन्त अविद्यावन्त का अधिकार कहते हैं।

जावंतऽविज्जापुरिसा, सव्वे ते दुक्खसंभवा।
लुप्पंति बहुसो मूढा, संसारम्मि अणंतए॥१॥

इस जगत में जितने बाल-अज्ञानी जीव तत्त्व के अजान और कुविद्यावंत ऐसे जो मूर्ख हैं वे सब दुःख भोगने के अधिकारी होते हैं, अनंत संसार में बारंबार परिभ्रमण करते हुए अनेक बार छेदन भेदन आदि पीड़ा सहन करने वाले होते हैं॥१॥

यहाँ कुविद्या पर कथा ज्ञातव्य है–किसी गाँव के ब्राह्मण के तीन पुत्र काशी में विद्या अभ्यास करने के लिये गये। उन में से एक ने व्याकरण, एक ने न्याय और एक ने वैद्य का अभ्यास किया। विद्याभ्यास करके तीनों ब्राह्मण अपने देश जा रहे थे। बीच में किसी ने इन को पंडित जानकर भोजन बनाने के लिए कहा और सब भोजन सामग्री ला दी, अब इन में से एक रसोई बनाने बैठा, दूसरा घृत लेने गया और तीसरा शाक भाजी लेने गया। रसोई बनाने वाले ने चूल्हे पर खीचड़ी खदबदती सुनकर विचार किया ऐसा प्रयोग व्याकरण में नहीं दीखता है, इस से वह उस को बोलने लगा कि ऐसा अशुद्ध प्रयोग क्यों करती है! खीचड़ी में तो वैसा ही उच्चारण निकलने लगा। तब उस ने विचार किया कि हण्डी के मुंह में धूल डालना चाहिये यों विचार कर उसने मुट्ठी भर कर धूल खीचड़ी में डाल दी। जिससे खदबद होना बन्द हो गया, ऐसा देख कर वह प्रसन्न हो गया कि जैसे को तैसा ही होना योग्य है। अब जो दूसरा घृत लाने बाजार में गया था, वह घृत लेकर आते समय न्याय करने लगा कि घृत के आधार से पात्र होगा अथवा पात्र के आधार से घृत होगा? इस का प्रत्यक्ष प्रमाण से निश्चय करने के लिये पात्र को उलटा कर दिया जिसे से सब घृत नीचे गिर गया। अब जो तीसरा शाक भाजी लेने गया था, उसने सब शाक भाजी के गुण दोष देखते हुये मात्र नीम निरोगी मालूम हुआ। वह नीम के पत्ते लेकर आया, यजमान ने देख लिया कि पंडित पढ़े हैं परंतु गुने नहीं हैं। तीनों वहाँ से बिना भोजन किए निकल कर अपने गाँव आये। वहाँ अपनी पंडिताइ को बताने के लिये संस्कृत भाषा में ही बोलने लगे, उन के माता-पिता ने उनको अपनी देश भाषा में बोलने के लिये बहुत समझाया परंतु उन्होंने माना नहीं। एकदा ऐसा ही हुआ कि रात को उन के वहाँ चोर आकर उन की गाय ले जाने लगे, तब वे संस्कृत का अभिमान करने वाले पंडित संस्कृत भाषा में ही लोगों को पुकारने लगे, लोगों ने समझा कि ये विद्याभ्यास करते ऐसे ही

पुकारते हैं, इससे कोई भी आया नहीं, और चोर तो गायों को ले गये। प्रातःकाल होने से लोगों को सारी परिस्थिति ज्ञात हुई और उन की मूर्खता पर उपहास करने लगे। इस अपमान से वे वहाँ से निकल अन्य ग्राम जाते समय मार्ग में कोई वृद्ध ब्राह्मण मिला और उनकी पंडिताइ का अभिमान उतारने के लिये उन से पूछा कि तुम पंडित हो तो इस मृत चिड़िया को जीवित कर दो। वे तीनों वैसा नहीं कर सके, वृद्ध ब्राह्मण ने एक कंकर उस पर मंत्र कर मूर्च्छित पड़ी हुई चिड़िया को उड़ा दिया। ऐसा देखकर वे तीनों ब्राह्मण आश्चर्य चकित हो गये। और उस वृद्ध को घेर कर कहने लगे कि हम को ऐसी विद्या सिखलाओ। वृद्ध ब्राह्मण ने इन को अयोग्य जानकर नहीं कही परंतु वे नहीं माने, तब वह विद्या सिखाकर चला गया, अब वे तीनों आगे जा रहे थे तब उनके मन में संदेह हुआ कि उस ने अपने को सच्ची विद्या सिखाई है या झूठी इस की परीक्षा करनी चाहिये। ऐसा विचार कर रहे थे उतने में क्षुधा से मूर्छित बना हुआ सिंह कलेवर देखा। उन्होंने वहाँ जाकर मंत्र के प्रयोग से उस को कंकर मंत्र कर मारा। उसने सावधान होते ही क्षुधा से पीड़ित होने से उन तीनों ब्राह्मणों को मार डाला इसलिये बिना बुद्धि विद्या निरूपयोगी है।

समिक्ख पंडिए तम्हा, वासजाईपहे बहू।
अप्पणा सच्चमेसेज्जा, मेत्तिं भूएसु कप्पए॥२॥

जो ज्ञानी पंडित होते हैं वे इस जगत में पुत्र कलत्रादि सम्बन्ध को पास रूप व एकेन्द्रियादि जाति में परिभ्रमण कराने वाला देखते हुए अपने आत्मा के सुख के गवेषी बनकर सब जीवों के साथ मैत्रीभाव करते हैं। परंतु किसी से वैर भाव नहीं करते हैं॥२॥

माया पियाण्हुसा भाया, भज्जा पुत्ता य ओरस।
नालं ते मम ताणाय, लुप्पंतस्स सकम्मुणा॥३॥

पंडित पुरुष जानते हैं कि माता-पिता, पुत्र-बधु, भाई-भार्या, पुत्र-पुत्रियों आदि जब मुझे कर्म आकर घेरेंगे तब उस से मेरा रक्षण करने वाले कोई नहीं होंगे॥३॥

एयमट्ठं सपेहाए, पासे समियदंसणे।
छिंदे गिद्धिं सिणेहं च, न कंखे पुव्वसंथवं॥४॥

उक्त अर्थ को सम्यक् दृष्टि जीव अपनी बुद्धि से विचारें और मिथ्यात्व तथा स्नेह रूप पाश का छेदन कर विचरे। पहले जिन के साथ संबंध था उन संबंधियों को मन से अभिलाषा करे नहीं॥४॥

गवासं मणि-कुंडलं, पसवो दास-पोरूसं।
सव्वमेयं चइत्ताणं, कामरूवी भविस्ससि॥५॥

अहो आयुष्मन! गवादि पशु, मणि, कुंडलादि भूषण धन, हाथी, घोड़े, नौकर-चाकर इत्यादि का त्याग कर संयम अंगीकार करेगा तो मनोवांछित वैक्रिय रूप करने वाला देव होगा॥५॥

थावर जंगमं चेव, धणं धन्नं उवक्खरं।
पच्चमाणस्य कम्मेहिं, नालं दुक्खाउ मोयणे॥६॥

दुःख से पीड़ित हुए जीव को घर वगैरह स्थावर परिग्रह और मनुष्य आदि जंगम धन, धान्य आदि घर दुःख को छोड़ने में समर्थ नहीं होते हैं॥६॥

अज्झत्थं सव्वओ सव्वं, दिस्स पाणे पियायए।
न हणे पाणिणो पाणे, भय-वेराओ उवरए॥७॥

पूर्वादि सब दिशा में रहे प्राणी एकान्त सुखाभिलाषी है ऐसी उनकी अध्यात्मवृत्ति ज्ञान प्रज्ञा से देखकर प्रत्याख्यान प्रज्ञा कर उन के प्राणों की घात करे नहीं, इस प्रकार भय से और वैर से अपनी आत्मा को सदा मुक्त रखें॥७॥

आयाणं नरयं दिस्स, नायएज्ज तणामवि।
दोगुंछी अप्पणो पाए, दिन्नं भुंजेज्ज भोयणं॥८॥

किसी का बिना दिया हुआ कुछ भी पदार्थ ग्रहण करना अर्थात् चोरी करना नरक गमन का हेतु है ऐसा जानकर तृणमात्र कोई भी वस्तु बिना सोचे ग्रहण करे नहीं, सदैव पापकर्म की दुगंछा करता हुआ शरीर पोषण के लिये आहार पानी भी गृहस्थ अपनी इच्छा से देवे उसे ग्रहण कर भोगवे॥८॥

इहमगे उ मन्नंति, अपच्चक्खाय पावगं।
आयरियं विदित्ता णं, सव्वदुक्खा विमुच्चई॥९॥

इस संसार में अनेक अविद्यवान् पुरुष हैं वे कहते हैं कि हिंसादि पापकर्म के प्रत्याख्यान करने की कोई जरूरत नहीं है जो जो अपने पूर्वज करते आये हैं वो ही कुलाचरण करते रहेंगे, इससे अपने सब दुःख से मुक्त हो सकेंगे॥९॥

भणंता अकरेंता य, बंध-मोक्खपइणिण्णो।
वायाविरियमेत्तेण, समासासेंति अप्पयं॥१०॥

और भी अनेक अक्रियावादि ऐसा भी कहते हैं कि मात्र ज्ञान में रमणता करने से ही मुक्ति की प्राप्ति हो जाती है, क्रिया करने की कुछ आवश्यकता नहीं है। वे ज्ञानी होकर वचन मात्र आडंबर से बंध मोक्ष के ज्ञानी की प्राप्ति अच्छी तरह करते हैं। और वैसे ज्ञान से अपनी आत्मा को संतुष्ट करते हैं परन्तु क्रिया कुछ भी नहीं करते हैं॥१०॥

न चित्ता तायए भासा, कुओ विज्जाणुसासणं?।
विसन्ना पावकम्मेहिं, बाला पंडियमाणिणो॥११॥

ऐसे वचन के आडम्बरी पुरुष संस्कृत प्राकृतादि अनेक प्रकार की भाषा के भी ज्ञाता होते हैं। परन्तु उन कुविद्या वाले को यह विचित्र प्रकार की भाषा शरणभूत नहीं होती है, वे अपने को पंडित मानने वाले अज्ञानी पाप कर्म से खेंचते हुये दुःख पाते हैं॥११॥

जे केइ सरीरे सत्ता, वन्ने रूवे य सव्वसो।
मणसा काय-वक्केणं, सव्वे ते दुक्खसंभवा॥१२॥

जो अज्ञानी अपने मन वचन व काया के योगों से अपने शरीर के वर्ण सौंदर्य में आसक्त बन शरीर के पोषण में मग्न रहते हैं वे सभी महादुःख के भोगने वाले हैं॥१२॥

आवण्णा दीहमद्धाणं, संसारम्मि अणंतए।
तम्हा सव्वदिसं पस्स, अप्पमत्तो परिव्वए॥१३॥

उक्त प्रकार से अज्ञानी जीव अनादि अनंत संसार के दीर्घ मार्ग में परिभ्रमण कर रहे हैं, उनको देखकर ज्ञानी जीव संयम धर्म में सदैव प्रवर्ते॥१३॥

बहिया उडढमादाय, नावकंखे कयाइ वि।
पुव्वकम्मखयटठाए, इमं देहं समुद्धरे॥१४॥

चार गति से उत्तम मोक्ष गति को अपने मन में रखकर कदापि विषय कषाय की वांच्छा करें नहीं और कर्म क्षय करने के लिये निर्दोष आहार से अपने शरीर को रखे॥१४॥

विगिचं कम्मुणो हेउं, कालकंखी परिव्वए।
मायं पिंडस्स पाणस्सं, कडं लद्धूण भक्खए॥१५॥

आहार पानी गृहस्थ ने अपने लिये बनाया हो उसे ग्रहण करे आप भोगवे और कर्म के हेतु का त्याग कर क्रिया काल को स्वीकार हुआ संयम मार्ग में प्रवृत्ति करें॥१५॥

सन्निहिं च न कुव्वेजा, लेवमायाए संजए।
पक्खी पत्तं समादाय, निरवेक्खो परिव्वए॥१६॥

जितना आहार पानी स्वतः को तथा अपने अन्य स्वधर्मियों को चाहिये उतना ही ग्रहण करें, परन्तु पात्र में लेप मात्र आहारादिक रात्रि को रखे नहीं, और जैसे पक्षी अपनी पंखों को लेकर आकाश में गमन करता है, वैसे ही साधु भी अपने धर्मोपकरण ग्रहण कर किसी प्रकार के प्रतिबंध रहित ग्रामानुग्राम विचरे॥१६॥

एसणासमिओ लज्जू, गामे अनियओ चरे।
अप्पमत्तो पमत्तेहिं, पिंडवायं गवेसए॥१७॥

एषणा समिति में लज्जावान साधु ग्राम नगरादिक में विचरता हुआ गृहस्थों के घर में अप्रमत्त रूप से आहारादिक गवेषणा करे॥१७॥

एवं से उदाहु अणुत्तरनाणी अणुत्तरदंसी अणुत्तरनाण दंसण-धरे।
अरहा नायपुत्ते भगवं वेसालीए वियाहिए॥१८॥ त्ति बेमि॥

अनुत्तर ज्ञान वाले, अनुत्तर दर्शन वाले, अनुत्तर ज्ञान दर्शन के धारक अरिहंत श्री ज्ञात पुत्र महावीर स्वामी ने ऐसा उपदेश कहा है जैसा मैं कहता हूँ॥१८॥

ऐसा श्री सुधर्मा स्वामी अपने शिष्य को श्री जम्बू स्वामी से कहते हैं।

छठा क्षुल्लक निर्ग्रंथ नामक अध्ययन संपूर्ण हुआ।

७

सत्तमं एलइज्जं अज्झयणं
एलयं नामकं सप्तमध्ययनम्

छट्ठे अध्ययन में अविद्या का कथन किया, वह रसगृद्धि जनों को होता है इसलिये सातवें अध्ययन में रस गृद्धता का कथन कहते हैं–

जहाऽऽएसं समुद्दिस्स, कोइ पोसेज्ज एलयं।
ओयणं जवसं देज्जा, पोसेज्जा वि संयगणे॥१॥

जैसे कोई हिंसक मनुष्य यजमान के लिये बकरे को पाले, उसको चावल आदि से अपने आंगन में उसका पोषण करे॥१॥

तओ से पुट्ठे परिवूढे, जायमेदे महोदरे।
पीणिए विउले देह, आएसं पडिकंखए॥२॥

इस तरह वह बकरा चावल वगैरह खाकर मांसादिक से पुष्ट बनता है, उसका उदर भी बड़ा होता है और वह बकरा भी बड़ा हो जाता है, तब वह हिंसक मनुष्य किसी यजमान की प्रतीक्षा करता है॥२॥

जाव न एइ आएसे, ताव जीवइ से दुही।
अहपत्तम्मि आएसे, सीसं छेत्तूण भुज्जई॥३॥

वह दुःखी बकरा का जीवितव्य वहाँ तक ही है कि जहाँ तक यजमान नहीं आवे, जब यजमान आ जाते हैं तब उस के सिर का छेदन कर उस को खाया जाता है॥३॥

इस पर यह कथा ज्ञातव्य है, बकरे के पोषक के घर में एक गाय का बच्चा उस बकरे का सुख देखकर अपनी माँ से कहने लगा कि तू अमृत समान दूध देती तो भी तूझे घास फूस खिलाता है, और यह बकरा कुछ भी नहीं देता है तो भी उसको माल खिलाते हैं इससे मुझे बड़ा आश्चर्य होता है। गाय ने कहा कि बच्चा! अपने को घास फूस ही अच्छा लगता है। अपने को प्राण नाश माल की जरूरत नहीं है। पुत्र ने कहा कि यह कैसे? गाय ने कहा कि तू थोड़े दिन में इस का फल देखेगा। एकदा उस के घर यजमान आये तब घर का मालिक अपनी तलवार से उस बकरे को मारने लगा। ऐसा देखकर वह गाय का बच्चा डरकर चिल्लाने लगा। तब गाय ने कहा कि तू क्यों डरता है **'जो खावेगा गटका वह सहेगा झटका'** इतने में तो उस बकरे की गरदन काट डाली, ऐसा देख वह गाय का बच्चा बोलने लगा कि अपने का ऐसा घास फूस ही अच्छा। इस का भावार्थ सूत्र से कहते हैं।

जहा से खलु उरब्भे, आएसाय समीहिए।
एवं बाले अधम्मिट्ठे, ईहई निरयाउयं॥४॥

जैसे वह बकरा यजमानों के लिये पाता हुआ था, वैसे ही अज्ञानी अधर्म का आचरण करने वला नरक गति योग्य आचरण करने से नरक का आयुष्य कल्पता है अर्थात् वह नरक में जाता है॥४॥

हिंसे बाले मुसावाई, अद्धाणम्मि विलोवए।
अन्नऽदत्तहरे तेणे, माई कण्णुहरे सढे॥५॥
इत्थीविसयगिद्धे य, महारंभपरिग्गहे।
भुंजमाणे सुरं मंसं, परिवूढे परंदमे॥६॥

अब अज्ञानी के लक्षण हैं–१ हिंसा करने वाला, दूसरा मीठा बोलने वाला, तीसरा मार्ग में जाते को लूटने वाल, चौथा चोरी करने वाला, पाचवाँ माया कपट करने वाल, छठा किसे लूटूं ऐसा विचार करने वाल, सातवाँ धूर्त, आठवाँ स्त्री के विषय में गृद्ध, नवाँ छहों काया का महा आरंभ करने वाला, दसवाँ परिग्रह की महाइच्छा वाला, ग्यारवा मांस खाने वाला, बारवाँ मदिरा पान करने वाला और तेरहवाँ दूसरों को दमन करने वाल, ऐसा पापिष्ट मद्य मांस का सेवन करता हुआ हृष्ट पुष्ट होता है॥५-६॥

अयकक्करभोई य, तुंदिले चियलोहिए।
आउयं निरए कंखे, जहाऽऽएसं व एलए॥७॥

करड़-करड़ शब्द करें वैसा बकरे का मांस खाने वाला, अज्ञानी रूधिर मांस से पुष्ट बनकर जैसे वह बकरा यजमानों का इच्छित होता है वैसे ही वह नरक के आयुष्य की इच्छा करता है॥७॥

आसणं सयणं जाणं, वित्तं कामे य भुंजिया।
दुस्साहडं धणं हिच्चा, बहुं संचिणिया रयं॥८॥
तओ कम्मगुरू जंतू, पच्चुप्पण्णपरायणे।
अयव्व आगयाऽऽएसे, मरणंतम्मि सोयई॥९॥

आसन, शयन, धन और काम भोगों को भोगवें कर महादुःख से उपार्जन किया हुआ धन का त्याग कर और बहुत प्रकार का कर्मरूप रजमेल एकत्रित कर विद्यमान काम भोगों में तत्पर व कर्म से भारी बना हुआ जीव उस बकरे जैसे मरणांत में शोक-पश्यातप करता है॥८-९॥

तओ आउ परिक्खीणे, चुया देहा विहिंसगा।
आसुरीयं दिसं बाला, गच्छंति अवसा तमं॥१०॥

तत्पश्चात् आयुष्य पूर्ण होने से वह हिंसा करने वाला वहाँ से च्यवकर परवश रूप से अधंकारमय नरक में जाता है॥१०॥

जहा कागिणीए हेउं, सहस्सं हारए नरो।
अपत्थं अंबगं भोच्चा, राया रज्जं तु हारए॥११॥

जैसे काकिणी के लिए कोई अज्ञानी पुरुष हजार मोहर की हार देता है और कुपथ्य रूप आम्र के फल को खाकर राजा राज्य को हार देता है॥११॥

पूर्वार्ध कांगणी का दृष्टान्त प्रस्तुत हैं–जिस प्रकार किसी मूर्ख वणिक ने एक कांगणी के लिये हजार मोहर गंवायी।, कोई वणिक परदेश में महा परिश्रम से एक हजार मोहरों को कमाकर फिर अपने घर आ रहा था, उसने सब मोहरों को एक वासणी में डालकर कमर से बांध ली। और एक रूपये की ८० काकिणी अपने पास रखी। नित्य एक-२ काकिणी का अपने भोजन के लिये खर्चा करता था। रास्ते में महा अटवी आवेगी ऐसा जानकर उसने एक काकिणी का सौदा लेकर उस को दो काकिणी दे दी। और सौदा लेकर वहाँ से निकल चला, आगे जाते काकिणी गिनते एक काकिणी कम आई जब उसने समझा की उस वणिक ने मुझे ठग लिया। इस से उस के पास जाकर काकिणी ले आऊं, उसके साथ वाले ने उसे बहुत समझाया परंतु नहीं समझा और वापस गया। जंगल में स्वर्ण मोहरों को गाड़कर वह गाँव में गया था उस वणिक् ने उसे एक काकिणी दे दी। वह उसी रास्ते पर गया जहां मोहरें गाड़ी थीं किन्तु मोहरें वहाँ नहीं थीं। वहाँ से घर आया, उसके साथियों ने भी उसका तिरस्कार किया।

उत्तरार्ध दो पद से आम का दृष्टान्त प्रेक्षणीय है–जैसे अपथ्य आम्र को भोगकर राजा अपना राज्य गंवा बैठा, इसका दृष्टान्त निम्न है–किसी राजा को अतिशय आम खाने से अम्बरोग हुआ, उसके लिये बहुत उपाय किये परंतु मिटा नहीं। एक वृद्ध वैद्य ने कहा कि यदि तुम आम खाना छोड़ दो तो तुम्हारा रोग मिटाऊं राजा ने कथन स्वीकार किया। तब वैद्य ने औषधिपचार से रोग मिटा दिया। अब दूसरे वर्ष में जब आम की ऋतु आई तब वह क्रीड़ा करने जंगल में गया, वहाँ प्रधान के न कहने पर भी आम के वृक्ष नीचे बैठा और आम भी खा लिया, इससे पुनः वह अम्बरोग प्रकट हुआ कि जो अनेक उपायों से भी मिटा नहीं और राजा भी मर गया।

एवं माणुस्सगा कामा, देवकामाण अंतिए।
सहस्सगुणिया भुज्जो, आउ कामा य दिव्विया॥१२॥

इस प्रकार मनुष्यों के काम-भोगों के सामने सहस्र गुणा अधिक करने पर भी न्यून ही हैं क्योंकि देवों की आयु पल्योपम और सागरोपम की है एवं उनके काम भोग भी दिव्य हैं॥१२॥

अणेगवासानउया, जा सा पण्णवओ ठिई।
जाणि जीयंति दुम्मेहा, ऊणे बाससताउए॥१३॥

प्रज्ञावान् की देवलोक में जो अनेक नयुत[१] वर्षों की अथवा पल्योपम व सागरोपम की स्थिति है उसको दुर्बुद्धि मूर्ख जीव कुछ कम सौ वर्ष की आयु में विषय भोगों के वशीभूत होकर हार देते हैं॥१३॥

---

१. चौरासी लाख पूर्व को लक्ष गुणा करने से नयुतांग होते और ८४ लाख नयुतांग का एक नयुत होवे।

जहा य तिन्नि वणिया, मूलं घेत्तूण निग्गया।
एगोऽत्थ लभते लाभं, एगो मूलेण आगओ॥१४॥
एगो मूलं पि हारेत्ता, आगओ तत्थ वाणिओ।
ववहारे उवमा एसा, एवं धम्मे वियाणह॥१५॥

अब तीन वणिक का दृष्टान्त कहते हैं–किसी वणिक ने अपने तीन पुत्रो को थोड़ी-२ रकम देकर अलग कर दिया और कहा कि इस द्रव्य को मैं जब माँगूँ तब देना। उन तीनों मे ज्येष्ठ पुत्र ने उससे व्यापार करके अच्छी वृद्धि की। दूसरे ने मूल पूंजी कायम रखी और तीसरे ने द्यूतादि कुकर्म में मूल धन खो दिया। पिता ने पूछा तब पहले ने मूल पूंजी और लाभ दिया। दूसरे ने मूल पूंजी दी और तीसरे ने कुछ भी नहीं दिया। इस पर से सेठजी ने पहले को सब घर कुटुम्ब का स्वामी बना दिया। दूसरे को भंडारी बनाया और तीसरे को निकाल दिया। यह व्यावाहारिक उपमा कहीं है॥१४-१५॥

माणुसत्तं भवे मूलं, लाभो देवगई भवे।
मूलच्छेदेण जीवाणं, नरग-तिरिक्खत्तणं धुवं॥१६॥

जो जीव पुण्य रूपी पिता के पास से मनुष्य गति प्राप्त करके धर्म करणी तप वगैरह कर्म करके मनुष्य से उच्चत्तर देवगति प्राप्त करते हैं, वे पूंजी में वृद्धि करने वाले हैं ऐसा जानना, जो मनुष्य दया नम्रता रखने से पुनः वहाँ से मरकर मनुष्य बनता है वह मूल पूँजी का सही उपयोग है किन्तु जो काम-भोग में आसक्त बनकर नरक, तिर्यंच गति को प्राप्त होता है वहां मूल पूंजी का नाश करने वाला है॥१६॥

दुहओ गई बालस्स, आवई-वहमूलिया।
देवत्तं माणुसत्तं च, जं जिए लोलयासढे॥१७॥

मूल पूंजी गमाने वाले अज्ञानी मांस मदिरा आदि भोग की लोलुपता व धूर्तता से मनुष्य व देव गति को हार कर जहाँ अपार दुःख व वध है वैसी नरक तिर्यंच की दो प्रकार की गति में जाते हैं॥१७॥

तओ जिए सई होइ, दुविहं दोग्गइं गए।
दुल्लहा तस्स उम्मग्गा, अद्धाए सुचिरादवि॥१८॥

वे अज्ञानी कि जो मनुष्य व देव गति को हार कर नरक व तिर्यंच दो प्रकार की गति को प्राप्त हुए हैं उनको आगमिक काल मे उन गति में से निकलना बडा दुर्लभ है अर्थात् वहाँ भ्रमण किया करते हैं॥१८॥

एवं जिए सपेहाए, तुलिया बालं च पंडियं।
मूलियं ते पवेसंति, माणुसिं जोणिमेन्ति जे॥१९॥

अहो भव्यो! उक्त दृष्टान्त को ज्ञान दृष्टि से अपने मन में सोचना बाल और पंडित की

अवस्था का विचार करना और विशेष नहीं होवे तो मूल की पूँजी गंवाना नहीं, अर्थात् मुनष्य जन्म से निकल कर पुनः मनुष्य जन्म की प्राप्ति होवे ऐसी करनी तो अवश्य ही करना॥१९॥

वेमायाहिं सिक्खाहिं, जे नरा गिहि-सुव्वया।
उवेंत्ति माणुसं जोणिं, कम्मसच्चा हु पाणिणो॥२०॥

मनुष्य जन्म किस प्रकार प्राप्त करते हैं सो कहते हैं, सूत्र की तथा सद्गुरू की विविध प्रकार की हित शिक्षा विनीतता, भद्रिकता, दुर्व्यसन का त्याग लौकिक विरुद्ध आचरण नहीं करता सत्यवादी होता है, प्रमाणिकता रखना इत्यादिक को जो गुण धारण करते हैं वे मनुष्य जन्म प्राप्त करते हैं, अर्थात् कि देशव्रती तथा सर्वव्रती बने सिवाय उक्त प्रकार की करनी मनुष्य जन्म देने वाली होती है॥२०॥

जेसिं तु विउला सिक्खा, मूलियं ते अइच्छिया।
सीलवंता सविसेसा, अदीण जंति देवयं॥२१॥

और जो जीव पांच महाव्रतादि उत्तरोत्तर प्रधान जिनेश्वर भगवान की शिक्षा है उसका सम्यक् प्रकार से पालन करें, जो परीषह उत्पन्न होने पर कदापि दीनता धारण करें नहीं, वह ऊपर का लाभ रूप देव गति में जाता है॥२१॥

एवमदीणवं भिक्खुं, अगारिं च वियाणिया।
कहण्णु जिच्चमेलिक्खं, जिच्चमाणो न संविदे॥२२॥

इस तरह दीनता रहित साधु तथा देश विरति गृहस्थ को देवत्व मिलता है। ऐसा जानते हुए भी विषय व कषाय मे लुब्ध होकर विवेकी मनुष्य कभी देवत्व गंवायेंगे? अर्थात् विवेकी पुरुष कदापि खोयेंगे नहीं॥२२॥

जहा कुसग्गे उदगं, समुद्देणं समं मिणे।
एवं माणुस्सगा कामा, देवकामाण अंतिए॥२३॥

जैसे कुशाग्र पर रहा हुआ पानी का बिन्दु समुद्र के पानी से असंख्यातवां भाग हीन हैं, वैसे ही देवताओं के कामभोग के आगे मनुष्य के कामभोग असंख्यातगुने हीन है॥२३॥

कुसग्गमेत्ता इमे कामा, सन्निरूद्धम्मि आउए।
कस्स हेउं पुरेकाउं, जोगक्खेमं न संविदे?॥२४॥

कुशाग्र पर रहा हुआ पानी के बिंदु समान ये मनुष्य के कामभोग हैं, तो भी अतिशय अल्प आयुष्य होने पर भी विषय कषाय में लुब्ध बनकर किस कारण से अज्ञानी मनुष्य योग[१] और क्षेम नहीं जानते हैं॥२४॥

इह कामाऽणियट्टस्स, अत्तट्ठे अवरज्झई।
सोच्चा नेयाउयं मग्गं, जं भुज्जो परिभस्सई॥२५॥

इस संसार में जो जीव न्याय मार्ग श्रवण करके कामभोग से नहीं दूर होता है, वह धर्म से भ्रष्ट होता है और वह अपने आत्मा के स्वर्ग व मोक्ष के सुखों का विनाश होता है॥२५॥

---

१. अप्राप्त धर्म की इच्छा सो योग और प्राप्त धर्म का रक्षण सो क्षेम।

इह कामनियट्टस, अत्तट्ठे नावरज्झई।
पूइदेहनिरोहेणं, भवे देवे त्ति मे सुयं॥२६॥

और इस संसार में जो कामभोग से दूर हुवा है वह अपने आत्मा का विनाश नहीं करता है, और यह रक्त मांस से भरा हुआ औदारिक शरीर छोड़ कर देवता होता है, ऐसा मैंने सुना है॥२६॥

इड्ढी जुई जसो वण्णो, आउं सुहमणुत्तरं।
भुज्जो जत्थ मणुस्सेसु, तत्थ से उववज्जइ॥२७॥

देवता किस प्रकार का होता है सो कहते हैं परिवार की ऋद्धि, शरीर की कांति, लोक में कीर्ति, शुभ शरीर का वर्ण, दीर्घ आयुष्य और अनुत्तर सुख, ये छः बोल देवता में जहाँ होवे वहाँ वह उत्पन्न होता है, और वहाँ से मनुष्य में भी आवे तो मनुष्य गति में जहाँ उक्त छः बोल होवे वहाँ उत्पन्न होवे॥२७॥

बालस्स परस्स बालत्तं, अहम्मं पडिवज्जिया।
चिच्चा धम्मं अहम्मिट्ठे, नरए उववज्जई॥२८॥

उपसंहार–अहो भव्यो! अज्ञानी की अज्ञानता तो देखो! कि सहज में प्राप्त होता धर्म को त्यागकर, अधर्म को अंगीकार कर और अधर्म को प्रिय मानकर नरक गति में उत्पन्न होता है॥२८॥

धीरस्स पस्स धीरत्तं, सव्वधम्माणुवत्तिणो।
चेच्चा अधम्मं धम्मिट्ठे, देवेसु उववज्जई॥२९॥

वैस ही धीर पुरुष की धीरता देखो कि अनादि काल की संगत अधर्म का त्यागकर, सर्वज्ञ प्रणीत क्षमादि दशविधि यतिधर्म को अंगीकार कर और उस धर्म को अपना प्राण प्रिय बनाकर देवलोक में उत्पन्न होता है॥२९॥

तुलियाण बालभावं, अबालं चेव पंडिए।
चइऊण बालभावं, अबालं सेवए मुणि॥३०॥ त्ति बेमि॥

अहो मुनियो! इस प्रकार अज्ञानता तथा पंडितता को न्याय बुद्धि से तोलकर अज्ञानता का त्यागकर पंडितरूप को अंगीकार कर सुखी बनो!॥३०॥

ऐसा मैं कहता हूँ, यों श्री सुधर्मा स्वामी अपने शिष्य श्री जम्बू स्वामी से कहते हैं जैसा मैंने श्री श्रमण भगवान महावीर स्वामी से सुना है वैसे ही कहता हूँ।

सातवाँ एलक नामक अध्ययन संपूर्ण हुआ।

८

अट्ठमं काविलीयं अज्झयणं
काविलियं नामकं अष्टमं अध्ययनम्

सातवें अध्ययन में रसनेन्द्रिय पर विजय करने के लिए कहा, रसना का जय करने वाला तृष्णा का भी जय करता है इसलिये आठवें अध्ययन में तृष्णा का जय करने के लिए कहते हैं। इस अध्ययन के सम्बन्ध में कहते हैं–कोशाम्बी नगरी में जितशत्रु राजा का काश्यप नामक पुरोहित रहता था, उसकी यशा नामक भार्या और कपिल नामक पुत्र था। पुत्र के बचपन में पिता का मृत्यु हो गयी। तब राजा ने उस पुरोहित के स्थान दूसरे पुरोहित को रखा। एकदा वह दूसरा पुरोहित अश्व गज छत्र चामर सहित पुराने पुरोहित के घर के सामने से चला जा रहा था। उसे देखकर पुराने पुरोहित की यशा भार्या रोने लगी। तब उस का कपिल पुत्र कहने लगा कि हे माता! क्यों रोती है? वह बोली हे पुत्र! तू नादान होने से तेरे पिता की संपत्ति इस पुरोहित को मिलने से मुझे रुदन हुआ। तेरा पिता जीता था तब वह भी ऐसी धूमधाम से निकलता था, कपिल ने माता से कहा कि ऐसी ऋद्धि मुझे कैसे मिल सकेगी? माता ने कहा कि जब तू विद्याभ्यास करके अच्छा विद्वान होगा तो तुझे ऋद्धि प्राप्त हो जावेगी, उसने कहा कि मैं विद्याभ्यास करूंगा। माता ने कहा कि यहाँ पर कोई भी इस पुरोहित के डर से तूझे विद्याभ्यास करावेगा नहीं। इसलिये तू यहाँ से श्रावस्ती नगरी जा। वहाँ तेरे पिता का मित्र इन्द्रदत्त ब्राह्मण तूझे पढ़ावेगा। माता की ऐसी आज्ञा सुनकर वह कपिल श्रावस्ती नगरी में इन्द्रदत्त ब्राह्मण के पास गया। इन्द्रदत्त ने पढ़ाना स्वीकार किया और भोजन के लिये वहाँ पर धनदत्त नामक किसी गृहस्थ के वहाँ प्रबंध कर दिया। वहाँ दासी उसको भोजन आदि कराती। दोनों मोह मुग्ध बनकर भाग भोगवने लगे ऐसा करते दासी सगर्भा हुई और कपिल से कहने लगी कि बालक होगा तो उसके पालन पोषण में द्रव्यव्यय करना पड़ेगा, इस से द्रव्य का प्रबंध करना चाहिये, और कहा कि यहाँ के राजा को प्रथम जो आशीर्वाद देता है उस को राजा दो मासा सुवर्ण सदैव देता है। कपिल यह सुन संतुष्ट हो गया। रात्रि में पूरी निंद्रा भी आई नहीं और आधि रात्रि में अपने घर से निकल पड़ा। मार्ग में उस को चोर जानकर कोतवाल ने पकड़ लिया और राजा के सन्मुख उपस्थित किया। राजा ने उसे देखकर पहचाना कि वास्तव में यह चोर नहीं है। उससे पूछा कि तू कैसे पकड़ा गया? कपिल ने अपना वृत्तांत सुना दिया और कहा कि मैं अवश्य ही धर्मभ्रष्ट होने से शिक्षा पात्र हूँ। राजाने इस से संतुष्ट होकर कहा कि तेरी इच्छा होवे सो मांग सो देता हूँ। कपिल ने कहा कि मैं विचार कर माँगूँगा। इसलिए वह अशोक वाटिका में बैठकर विचार करने लगा कि दो मासा सुवर्ण में क्या होगा? चार मासा सुवर्ण मांगू फिर विचार हुआ कि चार मासे सुवर्ण से तो पुत्र का जन्म में ही खर्च भी पूरा नहीं होगा, इससे आठ

मासे सुवर्ण मांगू यों विचार करते-२ सब राज्य मांगने की इच्छा हुई फिर ज्ञान मय बुद्धि होने से विचार हुआ कि इस तृष्णा को धिक्कार होवे कपलि तू जाति से भ्रष्ट हुआ और इतनी विडम्बना पाया तो भी तेरी बुद्धि ठिकाने आई नहीं फिर भी इस संसार जाल में फँसने का उपाय कर रहा है। इसलिए इस विषयतृष्णा को भी धिक्कार होवे, यों विचारते ही जाति स्मरण हुआ जिससे पूर्व जन्म से साधुत्व स्वीकारा जाना पुनः साधु होने की इच्छा हुई, तब शासन देव ने साधु वेष दे दिया। वह साधु वेष पहन कर मस्तक पर के बालों को लोचकर राजा के पास आया। राजा ने आश्चर्यचकित हो कर कहा कि क्या सोचा? साधु ने कहा कि सोचकर लोटा, तत्पश्चात् **"जहा लाहो तहा लोहो"** अर्थात् ज्यों लाभ हैं त्यों लोभ है इत्यादि धर्मोपदेश दिया, राजा प्रतिबोध पाकर श्रावक बना, कपिल अनगार ने वहाँ से विहार किया और छः महीने बाद केवल ज्ञान प्राप्त हुआ। वहाँ से राजगृही नगरी जाते बीच में अठारह योजन की अटवी को पार करते हुए बलभद्र प्रमुख पांचों सौ चोर मिले, वे साधु को देखकर कहने लगे कि अहो साधु! क्या तुम को नृत्य करना आता है? कपिल उनको प्रतिबोध देने के लिये बोले कि तुम वार्दित्र बजावे तो मैं नृत्य करूँ, केवली ने उनको इस आठवें अध्ययन में कथित गाथा सुनाई, बजाने का तान नहीं जमने से वे गायन क्षुब्ध हो वैरागी बने और वे पांच सौ ही कपिल केवली के शिष्य बनकर विचरने लगे। विचरते हुए बहुत उपकार किया और केवली व पांचसौ चोर मोक्ष में गये।

अधुवे असासयम्मी, संसारम्मि दुक्खपउराए।
किं नाम होज्ज तं कम्मयं, जेणाहं दोग्गइ गच्छेज्जा॥१॥

चोरों ने प्रश्न किया पर्याय की अपेक्षा अधृव, द्रव्यादिक पदार्थ की अपेक्षा अशाश्वत और दुःख से परिपूर्ण ऐसे संसार में ऐसी कौन सी करनी की जिस से हम दुर्गति में नहीं जा सके॥१॥

विजहित्तु पुव्वसंजोयं, न सिणेहं कहिंचि कुव्वेजा।
असिणेह सिणेहकरेहिं, दोस-पओसेहि मुच्चए भिक्खू॥२॥

तब कपिल केवली उन चोरों को इस प्रकार उपदेश देते हैं-कि अहो चोरों! पूर्व संयोग से मात पितादि तथा पूर्व का अनादि संयोग विषय कषायादि का त्यागकर साधु बनो और किसी में किंचिन्मात्र भी स्नेह मत करो इस तरह स्नेह नही करने वाला साधु इस लोक व परलोक संबंधि दुःख से मुक्त होता है॥२॥

तो नाण-दंसणसमग्गो हियनिस्सेसाए य सव्वजीवाणं।
तेसिं विमोक्खणट्ठाए भासई मुणिवरो विगयमोहो॥३॥

इस प्रकार उत्तर देकर ज्ञान दर्शन सहित मोह रहित कपिल केवली सब जीवों के हित के लिये और उनको मिथ्यात्वादिक से मुक्त करने के लिये इस प्रकार उपदेश करने लगे॥३॥

सव्वं गंथं कलहं च, विप्पजहे तहाविहं भिक्खू।
सव्वेसु कामजाएसु, पारमाणो न लिप्पई ताई॥४॥

बाह्य और आभ्यंतर यों सब प्रकार के अर्थात् परिग्रह को क्लेश का कारण जानकर छोड़ देना, और सभी कामभोगों को दुष्ट फल देने वाले जानकर उस में लिप्त नहीं होना॥४॥

भोगामिसदोसविसण्णे हियनिस्सेयंबुद्धिवोच्चत्थे।
बाले य मंदिए मूढे बज्झई मच्छिया व खेलम्मि॥५॥

मोहरूप कीचड़ में फंसा हुआ, आत्मा का हित व मोक्ष मार्ग से विपरीत बुद्धि वाला, धर्म में प्रमादी, मूढ़ अज्ञानी जैसे मक्खी का श्लेष में लिपटती है वैसे विषय कषाय में लिपटते हैं॥५॥

दुपरिच्चया इमे कामा, नो सुजहा अधीरपुरिसेहिं।
अह संति सुव्वया साहू, जे तरंति अतरं वणिया व॥६॥

यह शब्दादि तथा स्त्री आदि संबंधी जो कामभोग हैं उनको छोड़ना कायर पुरुषों के लिये बड़ा दुष्कर है, परंतु जो धीरवीर पुरुष होते हैं वे ही छोड़ते हैं, जिस प्रकार व्यापारी नाव से समुद्र तीरते हैं वैसे ही सुव्रति साधु भी दुस्तर संसार समुद्र तीर जाते हैं॥६॥

समणा मु एगे वयमाणा, पाणवहं मिया अजाणंता।
मंदा नरयं गच्छंति, बाला पावियहिं दिंट्ठीहिं॥७॥

कितने तो अन्य साधु हम साधु हैं, ऐसा बोलते हुए प्राणिवध करते हैं, वे मृग समान अज्ञानी मंदबुद्धि वाले पुरुष उक्त प्रकार की पाप दृष्टि से नरक में जाते हैं॥७॥

न हु पाणवहं अणुजाणे, मुच्चेज्ज कयाइ सव्वदुक्खाणं।
एवायरिएहिं अक्खायं, जेहिं इमो साहुधम्मो पण्णत्तो॥८॥

प्राणवधादिक पांच आश्रव की जो अनुमोदना करता है वह सब दुःखों से कदापि मुक्त नहीं हो सकता है, ऐसा श्रावक धर्म व साधु का धर्म श्री तीर्थंकर भगवान ने कहा है॥८॥

पाणे य नाइवाएज्जा, से समिए त्ति वुच्चई ताई।
तओ से पावयं कम्मं, निज्जाइ उदगं थलाओ॥९॥

जो प्राणीवधादिक पांचों आश्रव की अनुमोदना नहीं करता है वह पांच समितिवंत ओर षटकाया का रक्षक कहलाता है और जैसे ऊँचे स्थल से गिरता हुआ पानी चला जाता है वैसे ही उस के पाप कर्म दूर हो जाते हैं॥९॥

जगनिस्सिएहिं भूएहिं, तसनामेहिं थावरेहिं च।
नो तेसिमारभे दंडं, मणसा वयस कायसा चेव॥१०॥

इस जगत में नामकर्म के उदय से त्रस व स्थावर जीव रहे हैं, उन का मन, वचन व काया से समारंभ करे नहीं, करावे नहीं अनुमोदे भी नहीं॥१०॥

सुद्धेसणाउ नच्चाणं, तत्थ ठवेज्ज भिक्खू अप्पाणं।
जायाए घासमेसेज्जा, रसगिद्धे न सिया भिक्खाए॥११॥

एषणा शुद्धि जानकर उस में अपने आत्मा को स्थिर करें। याचना करके आहार के ग्रास की गवेषणा करे, परन्तु भिक्षा के लिये निकला साधु रस में गृद्ध होवे नहीं॥११॥

पंताणि चेव सेवेज्जा, सीयपिंडं पुराणकुम्मासं।
अदु वक्कसं पुलागं वा, जवणट्ठा वा निसेवए मंथुं॥१२॥

शरीर के निर्वाह के लिये आहार की जरूरत पड़ती है इसलिये मसाले तथा घृतादि रहित निरस आहार, शीतल ठंडा आहार, धान्य का आहार, मूंग, उड़द, चने आदि के उबाले हुए बाकुले और बोर का कूटा इत्यादि जो मिले उसे भोगकर शांत भाव से रहे॥१२॥

जे लक्खणं च सुविणं, अंगविज्जं च जे पउं जति।
न हु ते समण वुच्चंति, एवं आयरिएहिं अक्खायं॥१३॥

स्त्री पुरुष के लक्षण, स्वप्न शास्त्र, अंग स्फूरण वगैरह अष्टांग निमित्त तथा उन्नतीस पाप सूत्र जो हैं उनकी प्ररूपणा जो साधु करते हैं साधु नहीं है ऐसा श्री तीर्थंकर भगवान कहते हैं॥१३॥

इह जीविय अनियमेत्ता, पब्भट्ठा समाहिजोगेहिं।
ते कामभोगरसगिद्धा, उववज्जंति आसुरे काए॥१४॥

ऐसे साधु इस मनुष्य जन्म में तप संयमादिक से अपनी आत्मा को वश नहीं करने से और समाधि योग से भ्रष्ट होने से काम भोग में गृद्ध बने हुए असुर कुमार की काया में उत्पन्न होते हैं॥१४॥

तत्तो वि य उव्वट्टिता, संसारं बहुं अणुपरियडन्ति।
बहुकम्मलेवलित्ताणं, बोही होई सुदुल्लहा तेसिं॥१५॥

वे वहाँ से निकल कर बहुत संसार में परिभ्रमण करते हैं, बहुत कर्मों के लेप से लिप्त बने हुए उन साधु को सम्यक्त्व की प्राप्ति होना दुर्लभ है॥१५॥

कसिणं पि जो इमं लोय, पडिपुण्णं दलेज्ज एक्कस्स।
तेणावि से ण संतुस्से, इइ दुप्पूरए इमे आया॥१६॥

किसी लोभी पुरुष को जो कोई इस लोक को धनादिक से संपूर्ण भरकर देती भी दे तो वह लोभी पुरुष इससे संतुष्ट नहीं होता है, अर्थात् लोभ का अन्त कदापि नहीं होता है॥१६॥

जहा लाहो तहा लोहो, लोहा लोहो पवड्ढई।
दोमासकयं कज्जं, कोडीए वि न निट्ठियं॥१७॥

ज्यों-ज्यों लाभ मिलता है त्यों-त्यों लोभ बढ़ता ही जाता है, लाभ से लोभ की वृद्धि होती है, मैं संसार अवस्था में दो मासा सुवर्ण लेने के लिये गया था परन्तु करोड़ों सोन ये होने का विचार करते हुए मेरी तृप्ति हुई नहीं॥१७॥

नो रक्खसीसु गिज्झेज्जा, गंडवच्छासु णेगचित्तासु।
जाओ पुरिसं पलोभित्ता, खेलंति जहा व दासेहिं॥१८॥

जिस के वक्षस्थल में फोड़े समना दो स्तन हैं वैसी और जिस का चित्त अनेक पदार्थ में

रहा है वैसी राक्षसणी समान स्त्रियों में साधु गृद्ध होवे नहीं क्यों की स्त्रियां पुरुषों को लुभाकर जैस दास के काम लिया जाता है वैसे ही उस पुरुष से काम कराती हैं॥१८॥

नारीसु नो पगिज्झेज्जा, इत्थी विप्पजहे अणगारे।
धम्मं च पेसलं णच्चा, तत्थ ठवेज्ज भिक्खु अप्पाणं॥१९॥

अणगार-साधु स्त्रियों में गृद्ध होवे नहीं परंतु स्त्री का त्यागकर और ब्रह्मचर्यादिक साधु का उत्तम धर्म जानकर अपना आत्मा को धर्म में स्थिर करें॥१९॥

इइ एस धम्मे अक्खाए, कविलेणं च विसुद्धपन्नेणं।
तरिहिंति जे उ काहिंति, तेहिं आराहिया दुवे लोगे॥२०॥ त्ति बेमि॥

विशुद्ध प्रज्ञावान कपिल केवली ने ऐसा धर्म कहा है, ऐसा जो कोई भी धर्म करेगा वही इस संसार रूप समुद्र से तरेगा और दोनों लोक में आराधिक व सुखी होगा, ऐसा मैं कहता हूँ॥२०॥

ऐसा श्री सुधर्मा स्वामी अपने शिष्य जम्बू स्वामी से कहते हैं।

आठवाँ कपिल केवली का अध्ययन संपूर्ण हुआ।



नवमं नमिपव्वज्जा अज्झयणं
नमिप्रवर्ज्या नामकं नवम अध्ययनम्

आठवें अध्ययन में तृष्णा का त्याग कहा, जो तृष्णा का त्याग करते हैं वे इन्द्रादिक को पूज्यनीय होते हैं, इसलिये नववें अध्ययन में नमिराजर्षि का कथन हैं। जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र के अवंती देश के सुदर्शन नगर में मणिरथ राजा राज्य करता था, वह अपने छोटे भाई युगबाहु की स्त्री मदनरेखा का रूप देखकर उस पर मोहित हो गया। और अपनी दासी द्वारा भोग के पदार्थ भेजकर अपनी इच्छा दर्शाई। मदनरेखा दासी के पास से ऐसा सुनकर उसकी भर्त्सना कर उसे निकाल दिया। एकदा युगबाहु अपनी स्त्री सहित बन में क्रीड़ा करने गया था। वहाँ रात को मणिरथ राजा अचानक जाकर उस पर खड्ग प्रहार कर भाग गया, मार्ग में उस को सर्प न दंश मारा जिस से वह मृत्यु को पाकर नरक में गया। युगबाहु पर खड्ग प्रहार हुआ देखकर मदनरेखा सती अपने पति के पास गई, और उनका आयुष्य पास आया जानकर उसको अट्ठारह पाप स्थान चारों आहार के प्रत्याख्यान कराये और अंतिम श्वासोश्वास तक नवकार मंत्र का शरण सुनाया। वह युगबाहु धर्म की श्रद्धा करता हुआ काल के अवसर में काल कर देवलोक में गया। उस समय वह मदनरेखा सती सगर्भा थी। वह अपना शील का रक्षण के लिये जंगल में चली गई जहाँ उसने पुत्र को जन्म दिया, उसके हाथ में पति की मुद्रिका डालकर और अपने चीर की झोली में उसे रखकर नवकार मंत्र का शरणा देकर किसी वृक्ष के नीचे लटका दिया और वह तलाब में स्नान करने गई। वहाँ कहीं से हाथी आया और अपनी सूंड में सती को पकड़कर ऊंचा उछाल दिया। वहाँ मणिप्रभ विद्याधर का विमान जा रहा था, उसमें वह सती जाकर गिरी, सती मदनरेखा का सौंदर्य देखकर विद्याधर उस पर मोहित हुआ और अपने घर पर उसे रखने के लिये विमान पीछे किया। सती ने विमान पीछे मोड़ते हुए देखकर प्रश्न किया आप कहाँ जाते हैं? और अब पीछे क्यों फिर गये? विद्याधर ने कहा कि मेरे पिता साधु के दर्शनार्थ में जा रहा था, परंतु तेरे जैसी सुंदरी का लाभ होने से तुझे घर पर छोड़ कर फिर मैं जाऊँगा। इस विचार से मैंने विमान मोड़ा है, सती ने कहा कि आप ऐसा मत करो। आप वहाँ चलेंगे तो आप की कृपा से मुझे दर्शन हो जायेंगे। विद्याधर ने उसका कथन स्वीकार किया और इच्छित स्थान पर विमान लाया। वहाँ परिषद में मणिचूड मुनिराज विराजमान थे, उनके पास आकर दोनों नमस्कार कर सन्मुख बैठे। मुनि ने मनःपर्यव ज्ञान से सब वृत्तांत जाना और शील की महिमा का उपदेश देकर मणिप्रभ विद्याधर को परस्त्री सेवन का प्रत्याख्यान कराया। इस समय मदनरेखा ने उस मुनि से अपने पुत्र का वृत्तांत पूछा, तब मुनि ने कहा मिथिला नगरी का पद्मरथ वन में क्रीड़ा करने आया था, वह तरे पुत्र को ले गया है। उसने अपनी रानी पुष्पचूला को देकर पुत्रवत् मानकर वहाँ जन्म महोत्सव किया है। सती ने पुनः प्रश्न किया कि ऐसा संयोग कैसे बना? अर्थात् उन का पूर्व जन्म में क्या संबंध था! मुनि ने कहा कि इस जम्बूद्वीप

के महाविदेह क्षेत्र के पुष्कलाविजय के मणितोरण नगर के अमितवश चक्रवर्ती का पुष्पावती रानी के दो पुत्र पुष्पसिंह व रत्नसिंह थे। उनको राज्य देकर चक्रवर्ती ने संयम अंगीकार किया, बाद में दोनों भाईयों ने ८४ लाख पूर्व तक राज्य का सुख भोगकर संयम लिया, शुद्ध संयम पाला और आयुष्य पूर्ण कर बारहवें देवलोक में देवता हुए। वहाँ से च्यवकर घात की खण्ड में हरिषेन वासुदेव की समुद्रदत्तारानी के पुत्र रूप में हुए वहाँ सागरदेव व सागरदत्त नाम दिया। वहाँ दोनों ने ग्यारहवें दृढ़ सुव्रत तीर्थंकर के पास दीक्षा ली। दीक्षा लेने के तीसरे दिन ही विद्युतपात उन पर होने से वे काल कर सातवें महाशुक्र देवलोक में देवता हुए। वहाँ से च्यवकर एक मिथिला नगरी का पद्मरथ राजा हुआ और दूसरा यह तेरा पुत्र हुआ। इस के राज्य में गये बाद सब शत्रु नमने से तेरे पुत्र का नाम नमिराय देवेंगे। अहो सति! पूर्व जन्म का बंधुप्रेम होने से तेरे पुत्र को पद्मरथ राजा ले गया है। इस तरह यह कथन चल रहा था इतने में महादीव्य रूपवाला देव अंतरिक्ष से वहाँ आया। उसने प्रथम सती को नमस्कार किया फिर मुनि को नमस्कार किया। ऐसा देख मणिप्रभ हँसने लगा। तब मुनिराज बोले कि यह देव इस सती का पूर्व जन्म का पति है, इसने उसकी मृत्यु के अवसर में धर्म की सहायता दी और इससे यह पांचवें देवलोक में देवता हुआ है। इसने ज्ञान से यहाँ देखकर यह यहाँ आया है और यह उपकार करने वाली होने से इसे प्रथम नमस्कार किया। अब वह देवता मदनरेखा से बोला बड़े पुत्र चंद्रयश को सुदर्शन नगर का राज्य मिला है। अब तुम कहे सो करूँ। सती ने कहा कि मुझे सुव्रता आर्या जी के पास दीक्षा दिलावो। देवता ने वैसा ही किया। सती ने अपने पुत्र को झोली में डालकर लटकाया था वहाँ पद्मरथ राजा वन में क्रीड़ा करने आया था। वह उसे लेकर अपने महल में गया। तत्पश्चात् सभी शत्रु बोले बिना ही आकर राजा के दास बन गये इस से उस पुत्र का गुण निष्पन्न नाम नमि दिया। वह सब कला में प्रवीण होने के बाद यौवनावस्था में आते ही एक हजार राजकन्या के साथ पाणिग्रहण कराया। कुमार को राज्य योग्य जानकर राज्य देकर पद्मरथ राजा ने दीक्षा ग्रहण की। एकदा नमि राजा का सुभद्र जाति का श्वेत हस्ती मदांध होकर भागा। उसे चंद्रयश राजा के सुभट पकड़ कर ले गये। नमि राजा ने यह जानकर दूत भेजा। चंद्रयश ने कहलाया कि नमिराय को राज्य नीति मालूम नहीं है, वास्तव में जो वस्तु जिस के हाथ में आवे उसकी होती है। दूत ने आकर वैसा ही कहा। इस पर से नमिराय अपनी चतुरंगिनी सेना सहित युद्ध करने आया, उसका सामना चंद्रयश ने भी किया। यह समाचार मदनरेखा आर्या जी ने सुना और उपकार का कारण जानकर गुरुणी जी की आज्ञा लेकर नमिराजा के पास गई। नमिराजा ने साध्वी को देख नमस्कार किया, और आने का प्रयोजन पूछा। तब साध्वी जी ने कहा कि तेरे ज्येष्ठ भ्राता के साथ युद्ध करना उचित नहीं है। नमिराजा जी के पूछने पर साध्वी जी ने सब वृत्तांत कह सुनाया। इससे प्रेरित होकर नमिराजा भाई को नमस्कार करने के लिये जाने लगा। तब साध्वी जी उसे रोककर चंद्रयश राजा के पास गई। राजा ने अपनी माता साध्वी को नमस्कार कर किया। साध्वी जी ने नमिराजा का भातृत्व रिश्ता बताया, यह सुनकर वह आश्चर्य चकित हुआ और परस्पर दोनों भाई मिल गये, चंद्रयश अपने छोटे भाई को राज्य देकर दीक्षा लेकर मोक्ष गये। नमिराय दोनों देश का अधिपति हुआ। एकदा नमिराजा के शरीर में दाहज्वर का रोग हुआ। शरीर पर बावना चंदन का लेप करने के लिये रानियां चंदन घीसने लगी उनके हाथ के कंकण के परस्पर संघर्षण होने का शब्द होने से नमिराजाजी को कष्ट होने लगा इससे सब रानियों ने मात्र एक-२ कंकण हाथ में मंगलार्थ रखा। इससे शब्द होना बंद हो गया, नमिराजाजी को इस पर से विचार हुआ कि जब सब कंकण साथ थे तब कोलाहल था। अब अकेला कंकण रहने से आवाज मिट गई। इस प्रकार मैं भी जहाँ तक इन सब में फँसा हुआ हूँ, वहाँ तक ही दु:खी हूँ, सबको छोड़ अकेला हो जाऊँ तो सुखी

होऊँ, ऐसे विचार में निद्रा आ गई। स्वप्न में सातवां देवलोक देखकर जाग्रत हुए, अब आगे का कथन सूत्र द्वारा प्रेक्षणीय हैं–

चइऊण देवलोगाओ, उववण्णो माणुसम्मि लोगम्मि।
उवसंतमोहणिज्जो, सरई पोराणियं जाइं॥१॥

नमिराजा का दर्शन मोहनीय कर्म का उपशम होने से जाति स्मरण ज्ञान की प्राप्ति हुई, जिस से अपना पूर्व जन्म देखा कि मैं सातवें महा शुक्र देवलोक से च्यवकर यहाँ मनुष्य लोक में आया हूँ॥१॥

जाइं सरित्तु भयवं, सहसंबुद्धो अणुत्तरे धम्मे।
पुत्तं ठवित्तु रज्जे, अभिनिक्खमई नमी राया॥२॥

जातिस्मरण ज्ञान से गुरु के उपदेश बिना स्वयं ही वैराग्य प्राप्त कर और अपने पुत्र को राज्यगद्दी पर बैठाकर घर से निकले अर्थात् दीक्षा अंगीकार की॥२॥

सो देवलोगसरिसे, अंतेउरवरगओ वरे भोए।
भुंजित्तु नमी राया, बुद्धो भोए परिच्चयइ॥३॥

नमिराज अपने अन्तःपुर में एक हजार रानियों सहित देवलोक जैसे सुख भोगते हुए विचरते थे। उनका त्याग करके ही स्वयं बुद्ध बने॥३॥

मिहिलं सपुरजणवयं, बलमोरोहं च परिजणं सव्वं।
चेच्चा अभिनिक्खंतो, एगंतमहिट्ठिओ भयवं॥४॥

बहुत जनपद सहित मिथिला नगरी का राज्य, अश्व, हाथी, रथ सुभटों की चतुरंगिनी सेना व स्त्री पुत्रादि सब परिवार का त्यागकर नमिराजा भगवान ने अपने घर से निकलकर द्रव्य से एकांत वन में भाव से राग द्वेष रहित अपनी आत्मा को धर्म में स्थापित किया॥४॥

कोलाहलगब्भूयं, आसी मिहिलाए पव्वयंतम्मि।
तइया रायरिसिम्मि, नमिम्मि अभिनिक्खमंतम्मि॥५॥

नमिराजर्षि ने दीक्षा अंगीकार की इससे मिथिला नगरी व राजा के राज्य महल में कोलाहल हो गया, अर्थात् रानियों के व नगर के लोगों के रूदन से शोर मच गया॥५॥

अब्भुट्ठियं रायरिसिं, पव्वज्जाठाणमुत्तमं।
सक्को माहणरूवेणं, इमं वयणमब्बजी॥६॥

नमिराजर्षि संयम के अत्युत्तम स्थान में सावधान हुए हैं, ऐसा समाचार प्रथम देवलोक के शक्रेन्द्र ने जानकर ब्राह्मण का रूप बनाकर नमिराजर्षि के पास आये और इस प्रकार बोले॥६॥

किणणु भो! अज्ज मिहिलाए, कोलाहलगसंकुला।
सुव्वंति दारूणा सद्दा, पासाएसु गिहेसु य॥७॥

अहो नमिराजर्षि! आज मिथिला नगरी में इतना कोलाहल क्यों हो रहा है और प्रसादों में हृदय का भेदन कर वैसा दारूण शब्द क्यों सुनने में आता है॥७॥

एयमट्ठं निसामित्ता, हेऊ-कारणचोइओ।
तओ नमी रायरिसी, देविंदं इणमब्बवी॥८॥

ऐसा पाँच वचन हेतु[1] और एक वचन रूप कारण सहित वचन सुनकर (अब यहाँ पांच प्रकार हेतु भिन्न-२ कहते हैं-तुम्हारी प्रवर्जा का लेन से अयोग्य है यह पक्ष, क्योंकि आक्रंदादि शब्द होते हैं यह हेतु हुआ, जैसे जीव को प्रहार करने आक्रंदादि दारूण शब्द होते हैं वैसे ही तुम्हारी प्रवज्या से दारूण शब्द होते हैं यह उदाहरण और जिससे आक्रंदादि दारूण शब्द होवे उसे धर्मार्थी पुरुषों को ग्रहण नहीं करना, यह उपनय और तुम्हारी प्रवर्ज्या जीव वध रूप होने से ग्रहण करना उचित नहीं सो पक्ष समाप्ति ऐसे पांव वचन रूप हेतू और आक्रंदादि दारूण शब्द से अनेक जीवों को दुःख होवे इससे तुम्हारी प्रवर्ज्या कल्याण करने वाली नहीं है यह एक कारण) नमिराजर्षि देवेन्द्र से ऐसा बोले॥८॥

मिहिलाए चेइए वच्छे, सीयच्छाए मणोरमे।
पत्त-पुप्फ-फलोवेए, बहूणं बहुगुणे सया॥९॥
वाएण हीरमाणम्मि, चेइयम्मि मणोरमे।
दुहिया असरणा अत्ता, एए कंदंति भो! खगा॥१०॥

मिथिला नगरी के उद्यान मे पत्र, पुष्प व शीतल छाया वाला, पंखी प्रमुख अनेक जीवों को गुणकर्त्ता और अनेक गुणों से रमणीक ऐसा एक वृक्ष था, अब अहो विप्र! वह वृक्ष वायु से एकदा टूट पड़ा। जिससे उस पर बैठने वाले पक्षी वगैरह शरण रहित पीड़ित बने हुए, आक्रंद करते हैं, जैसे वे पक्षी अपने स्वार्थ के लिये आक्रंद करते हैं परंतु वृक्ष के लिये, इससे तुम्हारा हेतु अयोग्य है ऐसा करके उसका हेत्वाभास बनाया, वृक्ष के दृष्टान्त से अपना स्वार्थ के लिये जीव आक्रंद करते होवे उस का धर्मी पुरुषों को आचरण नहीं करना इससे तुम्हारा उपनय भी अयोग्य है। मेरी प्रवर्ज्या के लिये आक्रंदादि नहीं करते हैं, इससे मेरी प्रवर्ज्या ग्रहण करना योग्य है, इससे तुम्हारा पक्ष की समाप्ति भी अयोग्य है, इससे मेरी दीक्षा कल्याण का कारण है, ऐसा पांच वचन रूप हेतु और एक वचन रूप कारण जानना॥९-१०॥

एयमट्ठं निसामित्ता, हेऊ-कारणचोइओ।
तओ नमिं रायरिसिं, देविंदो इणमब्बवी॥११॥

प्रश्नोत्तर नमिराजर्षि के हेतु व अर्थ को सुनकर हेतु व कारण से प्रेरित हुआ इन्द्र इस प्रकार बोलने लगा॥११॥

एस अग्गी य वाऊ य, एयं डज्झति मन्दिरं।
भगवं! अंतेउरंतेणं, कीस णं नाववेक्खह?॥१२॥

अहो भगवन! यह वायु व अग्नि तुम्हारे मंदिर व अंतःपुर को जला रहे हैं, उसको तुम क्यों

---

१. अपनी वस्तु की स्थापना और दूसरे की वस्तु की उत्थापना सो पक्ष, २ जिस वस्तु से अपना पक्ष सिद्ध करे सो हेतु, वस्तु सिद्ध करने के लिये जो दृष्टांत देवे सो उदाहरण, जिससे हेतु व उदाहरण दोनों सिद्ध होवे सो उपनय। जिस हेतु व उदाहरण को उपनय से अपनी वस्तु सिद्ध करके स्थापना और अन्य वस्तु निकालना सो पक्ष समाप्ति।

नहीं देखतें हो? (इसको बचाना यह तुम्हारा धर्म है, यह पक्ष, अपना होने से यह हेतु, जैसे ज्ञानादिक यह उदाहरण, ज्ञानादिक जैसे जो वस्तु अपनी है उसकी रक्षा करना यह उपनय और इससे मंदिरादिक अपनी वस्तु की अवश्य रक्षा करना सो पक्षसमाप्ति, इस मंदिरादिक का रक्षण नहीं करने वाला अपनी वस्तु की रक्षा नहीं कर सकता है, इससे विवेकी अपनी वस्तु का रक्षण करे यह कारण, यह पांच वचन हेतु और एक वचन रूप कारण जानना)॥१२॥

एयमट्ठं निसामित्ता, हेऊ-कारणचोइओ।
तओ नमी रायरिसी, देविंदं इणमब्बबी॥१३॥

देवेन्द्र का ऐसा वचन सुनकर हेतु व कारण से प्रेरित हुए नमिराजर्षि देवेन्द्र को इस प्रकार उत्तर देने लगे॥१३॥

सुहं वसामो जीवामो, जेसिं मो नत्थि किंचणं।
मिहिलाए डज्झमाणीए, न मे उज्झइ किंचणं॥१४॥
चत्तपुत्त-कलत्तस्स, निव्वावारस्स भिक्खुणो।
पियं न विज्जई किंचि, अप्पियं पि न विज्जइ॥१५॥

मैं तो सुख पूर्वक रहता हूँ, और सुख पूर्वक ही जीता हूँ, जिससे मंदिरादिक में मेरा कुछ भी संबंध नहीं है। यह मिथिला नगरी जल रही है इससे मेरा कुछ भी नहीं जलता है। जिस साधु ने पुत्र कलत्रादि का त्याग किया है और सब व्यापार से जो मुक्त है उस साधु को कोई वस्तु प्रिय नहीं है वैसे ही अप्रिय भी नहीं है॥१४-१५॥

बहुं खु मुणिणो भद्दं, अणगारस्स भिक्खुणो।
सव्वओ विप्पमुक्कस्स, एगंतमणुपस्सओ॥१६॥

सर्वथा प्रकार से आरंभ परिग्रह रहित एकत्त्व अकेलापन देखने वाले, घर रहित व भिक्षा से आजीविका करने करने वाले मुनि को सदैव सुख है (यहाँ पर मेरा कुछ भी नहीं है, सो नमिराय का पक्ष अकेला होना सो हेतु जैसे सिद्ध यह उदाहरण, जो एकाकी होते हैं उनको कुछ नहीं होता है, सो उपनय, इससे ज्ञानादि सिवाय हमारा कुछ नहीं है सो पक्ष समाप्ति, इससे हमारी प्रवर्ज्या कल्याणकारी है यह कारण ऐसा कहकर इन्द्र के हेतु की व कारण की उत्थापना की, यह पांच वचन रूप हेतु और एक वचन रूप कारण जानना)॥१६॥

एयमट्ठं निसामेत्ता, हेऊ-कारणचोइओ।
तओ नमिं रायरिसिं, देविंदो इणमब्बवी॥१७॥

प्रश्नोत्तर ऐसा नमिराजर्षि का वचन सुनकर हेतु व कारण से प्रेरित हुआ इन्द्र नमिराजर्षि को पुनः इस प्रकार प्रश्न करने लगा॥१७॥

पागारं कारइत्ताणं, गोपुरऽट्ठालगाणि य।
उस्सूलग सयग्घीओ, तओ गच्छसि खत्तिया!॥१८॥

अहो क्षत्रिय मिथिला नगरी चारों ओर कोट उचित स्थान द्वारों, उनके रूंधन कवाड़ों, मजबूत

अर्गल, कोट के मध्य में बूरज, कोट के चारों और ऊंडी खदान और कोट के बुरजो पर शतघ्नी (तोप) इत्यादि तैयार करवाकर फिर दीक्षा लेना (यहाँ कोट वगैरह तैयार करवाना सो पक्ष, तुम क्षत्रिय हो सो हेतू राज्य की रक्षा के लिये सो उदाहरण जो जो क्षत्रिय होते हैं सो रक्षा के लिये कोट वगैरह बनवाते हैं, यह उपनय, वैसे ही तुम को कोट वगैरह बलवान से पक्ष समाप्ति, कोट वगैरह बनाये बिना क्षत्रियत्व होवे नहीं यह कारण जानना)॥१८॥

एयमट्ठं निसामित्ता, हेऊ-कारणचोइओ।
तओ नमी रायरिसी, देविंदं इणमब्बवी॥१९॥

देवेन्द्र का ऐसा वचन सुनकर हेतु व कारण से प्रेरित हुए नमिराजर्षि देवेन्द्र से इस प्रकार कहने लगे॥१९॥

सद्धं नगरं किच्चा, तवसंवरमग्गलं।
खंतिं निउणपागारं, तिगुत्तं दुप्पधसयं॥२०॥

मैंने श्रद्धा रूपी नगर का, क्षमा रूप कोट, तप, रूप, द्वारा संवर रूप कवाड़, मन योग निरूंधन रूप खाई, वचन योग निरूंधन रूप अर्गल, काया योग निरूंधन रूप शतघ्नी बनाये हैं, इससे मेरा कोट नगर का कोई पराभव नहीं कर सकता है॥२०॥

धणुं परक्कमं किच्चा, जीवं च इरियं सया।
धिइं च केयणं किच्चा, सच्चेणं पलिमंथए॥२१॥

वैसे ही संयम मार्ग में पराक्रम करने रूप धनुष्य, ईर्यादि पांच समिति रूप धनुष्य की पीनव, धर्म रूप धनुष्य की मूठ और सत्य रूप धनुष्य का बंधन है॥२१॥

तवनारायजुत्तेण, भेत्तुणं कम्मकंचुय।
मुणी विगयसंगामो, भवाओ परिमुच्चई॥२२॥

लौकिक संग्राम रहित साधु पूर्वोक्त प्रकार का धनुष्य धारकर तप रूप लोह बाण से कर्म रूप वैरी के समूह को नष्ट कर संसार से मुक्त होवे, (यहाँ जो भाव कोट कहा सो पक्ष, क्षत्रियपना होने से हेतु, भरतादिक का दृष्टान्त भरत राजा ने कोट बनाया यह उपनय, इससे हमने भी कोट वगैरह बनाये हैं, सो पक्ष की समाप्ति कोट वगैरह बिना बनाये क्षत्रियपना होवे नहीं, इससे कोट वगैरह बनाकर हम क्षत्रिय बने हैं, तुमने जो पूर्वोक्त प्रकार के कोट वगैरह बनाने का कहा उससे मोक्ष नहीं इससे कोट वगैरह बनवाना यह तुम्हारा हेतु अयुक्त है)॥२२॥

एयमट्ठं निसामित्ता, हेऊ-कारणचोइओ।
तओ नमिं रायरिसिं, देविंदो इणमब्बवी॥२३॥

प्रश्नोत्तर। ऐसा सुनकर हेतु व कारण से प्रेरित हुआ देवेन्द्र नमिराजर्षि से इस प्रकार पुनः प्रश्न करने लगा॥२३॥

पासाए कारइत्ताणं, बद्धमाणगिहाणि य।
बालग्गपोइयाओ य, ततो गच्छसि खत्तिया!॥२४॥

अहो क्षत्रिय! राज्य योग्य शिखर बंध प्रासाद, बहु मंजिले वाले गवाक्षादि युक्त सामान्य घर

एसे ही चाँदनी सहित चोबारे घर और तलाब में महल वगैरह बनवाकर फिर जाना, यहाँ पर प्रासादिक बनवाना यह पक्ष, क्रीड़ा रसिक होने से यह हेतु, ब्रह्मदत्त का उदाहरण, जो क्रीड़ा रसिक होते हैं, वे प्रासादिक कराते हैं यह उपनय, वैसे ही तुम को ऐसे प्रासादिक बनाना चाहिये यह पक्ष समाप्ति, और प्रासादि बनाये बिना क्रीड़ा में आनंद होवे नहीं यह कारण यों पांच वचन रूप हेतु व एक वचन रूप कारण जानना॥२४॥

एयमट्ठं निसामित्ता, हेऊ-कारणचोइओ।
तओ नमी रायरिसी, देविंदं इणमब्बवी॥२५॥

देवेन्द्र का ऐसा अर्थ सुनकर नमिराजर्षि देवेन्द्र से इस प्रकार बोलने लगे॥२५॥

संसयं खलु जो कुणई, जो मग्गे कुणई घरं।
जत्थेव गंतुमिच्छेज्जा, तत्थ कुव्वेज्ज सासयं॥२६॥

जो मार्ग में घर बनाता है, उसके मन में संशय रहता है कि मुझे आगे घर मिलेगा या नहीं परन्तु मेरे मन में संशय नहीं है, क्योंकि जहाँ में जाने की इच्छा करता हूँ वहाँ मेरा सिद्धि रूप शाश्वत घर बनाता हूँ, यहाँ सिद्धि शाश्वत घर बनाना सो पक्ष क्रीड़ा के रसिकपना से यह हेतु, भरतादिक का दृष्टान्त क्रीड़ा के रसिक शाश्वत घर बनाते हैं सो उपनय, और मैं भी वैसा ही करता हूँ, सो निगमन, शाश्वत घर बनाये बिना क्रीड़ा का रसिमपना होवे नहीं सो कारण॥२६॥

एयमट्ठं निसामित्ता, हेऊ-कारणचोइओ।
तओ नमिं रायरिसिं, देविंदो इणमब्बवी॥२७॥

प्रश्नोत्तर। नमीराजर्षि का ऐसा वचन सुनकर हेतु व कारण से प्रेरित हुआ देवेन्द्र नमिराजर्षि को इस प्रकार कहने लगा॥२७॥

आमोसे लोमहारे य, गंठिभेए य तक्करे।
नगरस्स खेमं काऊणं, ततो गच्छसि खत्तिया!॥२८॥

हे क्षत्रिय! मार्ग में लूटने वाले, प्राण हरण करने वाले गट्ठी छोड़कर ले जाने वाले इत्यादि प्रकार के चोरों के उपद्रव से नगर की रक्षा करने के बाद जाना। यहाँ चोरों को निकाल कर नगर की रक्षा करना यह पक्ष धर्मराज्य होने से हेतु, भरतादिक का दृष्टान्त चोरों को निकाले बिना धर्मपना होवे नहीं, यह उपनय, इससे तुम को नगर की रक्षा करना निगमन व नगर को क्षेम किये बिना धर्म राज्य होवे नहीं यह कारण ऐसे पांच वचन रूप हेतु व एक वचन रूप कारण जानना॥२८॥

एयमट्ठं निसामित्ता, हेऊ-कारणचोइओ।
तओ नमी रायरिसी, देविंदं इणमब्बवी॥२९॥

ऐसा वचन सुनकर हेतु कारण से प्रेरित हुए नमिराजर्षि इस इन्द्र से इस प्रकार बोलने लगे॥२९॥

असइं तु मणुस्सेहिं, मिच्छादंडो पजुन्जई।
अकारिणोऽत्थ बज्झंति, मुच्चई कारओ जणो॥३०॥

अहंकार व अज्ञानता से मनुष्य बारंबार मिथ्या दंड करते हैं इससे मैं निरपराधि को दंड मिलता

है, और अपराधी चोरी कर्म करवो वाला दंड से मुक्त रहते हैं (यहाँ पर हम ऐसा आज्ञानता का कार्य क्षेम नहीं कर सकते हैं यह पक्ष, अनुचित्त होने से हेतु, चोर के उदाहरण से अपराधी मुक्त हो जाता है और निरपाधी को दंड मिलता है यह उपनय और नगर क्षेम होवे नहीं सो निगमन नगर क्षेम किये बिना ही है धर्मराजरूप नहीं होता है यह कारण यों हेतु व कारण जानना॥३०॥

एयमट्ठं निसामित्ता, हेऊ-कारणचोइओ।
तओ नमिं रायरिसिं, देविंदो इणमब्बवी॥३१॥

प्रश्नोत्तर का ऐसा नमिराजर्षि का वचन सुनकर हेतु व कारण से प्रेरित नमिराजर्षि देवेन्द्र पुनः कहने लगा॥३१॥

जे केइ पत्थिवा तुज्झं, नाऽऽणमंति नराहिवा!
वसे ते ठावइत्ताणं ततो, गच्छसि खत्तिया!॥३२॥

अहो नरधिप! जो कोई राजा तेरी आज्ञा में नहीं है अथवा तो तूझे नहीं नमते हैं, उनको वश में करके बाद में जाना (यहाँ शत्रुओं को नमाना सो पक्ष, नरधिप होने से यह हेतु, भरतादिक का उदाहरण जो नरधिप होवे वह शत्रुओं को नमावे यह उपनय इससे तुम को भी वैरी को झुकाना चाहिये यह निगमन, वैरी को नमने के सिवाय नरधिपतिपना होवें नहीं यह कारण या हेतु व कारण जानना॥३२॥

एयमट्ठं निसामित्ता, हेऊ-कारणचोइओ।
तओ नमी रायरिसी, देविंदं इणमब्बवी॥३३॥

देवेन्द्र का ऐसा वचन सुनकर हेतु व कारण सहित नमिराजर्षि इस प्रकार कहने लगे॥३३॥

जो सहस्सं सहस्साणं, संगामे दुज्जए जिए।
एगं जिणेज्ज अप्पाणं, एस से परमो जओ॥३४॥

हजार को हजार गुना करनेसे दश लक्ष होवें, ऐसे दश लक्ष दुर्जय सुभटों को वासुदेव प्रमुख जीतते हैं परंतु अपनी आत्मा को जो तप संयम से जीतता है वह उनसे उत्कृष्ट विजेता है॥३४॥

अपपाणमेव जुज्झाहि, किं ते जुज्झेण बज्झओ।
अप्पाणमेव अप्पाणं, जइत्ता सुहमेहए॥३५॥

इससे अपनी आत्मा के साथ युद्ध करने वाले का अन्य बाहर के युद्ध से क्या प्रयोजन है? ज्ञान आत्मा व चरित्र आत्मा से अज्ञान व कषाय आत्मा को जो जीतता है वह मोक्ष का सुख प्राप्त करता है॥३५॥

पंचिंदियाणि कोहं, माणं मायं तहेव लोभं च।
दुज्जयं चेव अप्पाणं, सव्वमप्पे जिए जियं॥३६॥

पांच इन्द्रियों क्रोध, मान, माया, लोभ और दुराचारी आत्मा को जीतना दुष्कर है ऐसी आत्मा का जिसने जय किया है इससे सब का जय किया हैं, यहाँ अंतरंग क्रोधादि शत्रुओं को नमाये हैं यह पक्ष, नराधिपरूप से यह हेतु, भरतादिक का उदाहरण, जो नरधिप होवे सो वैरी को नमावे

यह उपनय वैसे ही हम को भी नमाना यह पक्ष समाप्ति तुमने परमार्थ जाने सिवाय वाह्य वैरी का जीतने का कहा, यह तुम्हारा हेतु व कारण अयोग्य है, यों पांच वचन रूप हेतु व एक वचन कारण जानना, यहाँ नमिराजर्षि ने देवेन्द्र के हेतु व कारण की स्थापना की॥३६॥

एयमट्ठं निसामित्ता, हेऊ-कारणचोइओ।
तओ नमिं रायरिसिं, देविंदो इणमब्बवी॥३७॥

पूर्वोक्त प्रकार नमिराजर्षि का अर्थ सुनकर हेतु कारण से प्रेरित हुआ देवेन्द्र इस प्रकार कहने लगा॥३७॥

जइत्ता विपुले जण्णे, भोइता समण-माहणे।
दत्ता भोच्चा य जट्ठा य, तओ गच्छसि खत्तिया!॥३८॥

अब सम्यक्त्व की परीक्षा करते हैं–अश्वमेघ आदि महा यज्ञ करके, शक्यादि श्रमण ब्राह्मण को भोजन कराकर, सुवर्ण भूमि गौ इत्यादिक का दान देकर के, शब्दादि पांचों इन्द्रियों के भोग भोगवकर, ज्येष्ठ रूप अर्थात् बड़े को करने योग्य कार्य करके फिर अहो क्षत्रिय! तू जा यहाँ यज्ञादिकधर्म करना यह पक्ष, प्राणियों की प्रीतिरूप से यह हेतु, प्राणियों को भोजन करा के सब जीवों को सुख होवे यह उदाहरण जो जो यज्ञादि धर्म करते हैं वह वे सुखी होते हैं यह उपनय इससे आप को भी वैसा करना यह पक्ष समाप्ति, यज्ञ नहीं करने से तथा ब्राह्मणदिक को नहीं भोजन कराने से प्राणी को प्रीतिरूप होवें नहीं, यह कारण यों हेतु व कारण जानना॥३८॥

एयमट्ठं निसामित्ता, हेऊ-कारणचोइओ।
तओ नमी रायरिसी, देविंदं इणमब्बवी॥३९॥

देवेन्द्र का उक्त अर्थ श्रवण कर हेतु व कारण से प्रेरित हुए नमिराजर्षि देवेन्द्र को इस प्रकार कहने लगे॥३९॥

जो सहस्ससं सहस्साणं, मासे मासे गवं दए।
तस्सावि संजमो सेओ, अदिंतस्स वि किंचणं॥४०॥

जो कोई एक-२ मास में दस-२ लाख गायों को दान करे इससे कुछ भी दान किये बिना चारित्रवरणीय कर्म के क्षयोपशम से जिस को सब आश्रव विरमण रूप चारित्र रूप चरित्र आवे वह श्रेष्ठ हैं यहाँ पर संयम अंगीकार करना यह पक्ष, प्राणियों को अप्रतीत नहीं होने से यह हेतु, अहिंसा के उदाहरण से, प्राणियों को अप्रतीत होवे वैसा धर्मार्थी करें नहीं यह उपनय वैसे ही मैं भी करूँ नहीं यह पक्ष समाप्ति निर्वद्य कार्य किये बिना प्राणी को प्रतीतपना होवे नहीं, यह कारण ऐसा पांच रूप हेतु व एक वचन रूप कारण से नमिराजर्षि ने अपने पक्ष की स्थापनाकी यहाँ समकित में निश्चलता की परीक्षा की॥४०॥

एयमट्ठं निसामेत्ता, हेऊ-कारणचोइओ।
तओ नमिं रायरिसिं, देविंदो इणमब्बवी॥४१॥

पूर्वोक्त प्रकार के वचन सुनकर देवेन्द्र नमिराजा को इस प्रकार कहने लगे॥४१॥

घोरासमं चइत्ताणं, अण्णं पत्थेसि आसमं।
इहेव पोसहरओ, भवाहि मणुयाहिवा!॥४२॥

अब अहो नरधिप! गृहस्थाश्रम का निर्वाह करना अति भयंकर है, क्योंकि १ ब्रह्मचर्याश्रय, २ गृहस्थाश्रम, ३ वानप्रस्थश्रम और ४ सन्यस्ताश्रम इन चार आश्रमों में गृहस्थाश्रम सबको आधारभूत है, इससे अपना पराये दोनों का साधन करने के लिये गृहस्थाश्रम ही श्रेष्ठ है। शूरवीर पुरुषों ही उनका पालन कर सकते हैं तो आप जैसे शूरवीर हो करके भी इसका पालन नहीं कर सकते हो, और सही से गृहस्थाश्रम त्याग कर भिक्षा वृत्ति अंगीकार करते हो। अहो मनुष्यधिप! गृहस्थाश्रम में ही रहो और सामायिक व पौषधोपवासादि मनुष्य की क्रिया करते रहो। वही आप को कल्याणकारी हैं। (यहाँ गृहस्थाश्रम अंगीकार करो यह पक्ष, होने से यह हेतु, शूरवीर का कर्तव्य यह उदाहरण से जो घोर होता है उसे शूरवीर पुरुष अंगीकार करते हैं, यह उपनय और इस से तुम को भी यह अंगीकाहर करना यह निगमन, गृहस्थपना अंगीकार किये बिना शूरवीरपना होवें नहीं यह कारण, यों हेतु व कारण जानना)॥४२॥

एयमट्ठं निसामित्ता, हेऊ-कारणचोइओ।
तओ नमी रायरिंसी, देविंदं इणमब्बवी॥४३॥

ऐसा अर्थ सुनकर हेतु व कारण के प्रेरित हुए नमिराजर्षि इन्द्र को इस प्रकार बोलने लगे॥४३॥

मासे मासे तु जो बालो, कुसग्गेण तु भुंजए।
न सो सक्खायधम्मस्स, कलं अग्घइ सोलसिं॥४४॥

कोई बाल तपस्वी मास-२ के पारणे में कुशाग्र पर रहे इतना अन्न खाये और अंजली भर पानी पीवे तथापि निरवद्य चरित्र धर्म की सोलहवीं कला के तुल्य भी नहीं, क्योंकि वह कृष्णपक्षी और सम्यक् शुक्लपक्षी है, उक्त प्रकार के बाल तपस्वी का कोई पूर्व का तप देशविरति के नवकारसी तुल्य नहीं है, देश विरती की कोई पूर्व की करणी संयमी की एक नवकारसी तुल्य नहीं है, क्योंकि गृहस्थ देशत्यागी और साधु सर्व त्यागी होते हैं। गृहस्थाश्रम में तो सब फंसे हुए हैं, परंतु दुष्कर संयमव्रती पालने वाले ही शूरवीर होते यहाँ गृहस्थाश्रम प्रशंसनीय नहीं है। यह पक्ष, निरवद्यता का अभाव होने से यह हेतु, संयम का दृष्टान्त, निरवद्यपना के अभाव से गृहस्थाश्रम का कार्य अपशंसनीय कहा है, यह उपनय, इससे गृहस्थाश्रम प्रशंसनीय नहीं सो पक्ष समाप्ति, और एकांत निर्वद्य घोरपना का आचरण किये बिना प्रशंसनीयपना नहीं है यह कारण यों पांच वचन हेतु व एक वचन रूप कारण जानना॥४४॥

एयमट्ठं निसामित्ता, हेऊ-कारण-चोइओ।
तओ नमिं रायरिसिं, देविंदो इणमब्ववी॥४५॥

ऐसा सुनकर हेतु व कारण से प्रेरित हुआ इन्द्र नमिराजर्षि को इस प्रकार कहने लगा॥४५॥

हिरण्णं सुवण्णं मणि-मुत्तं, कंसं दूसं च वाहणं।
कोसं वड्ढावइत्ताणं, तओ गच्छसि खत्तिया!॥४६॥

अहो क्षत्रिय! तेरे भंडार में हिरण्य, सुवर्ण, मणि, मौक्तिक कास्यादि के भाजन दृश्य, (वस्त्र)

और वाहन की वृद्धि करके पीछे तू चले जाना (यहाँ इच्छा सहित धर्म करना योग्य नहीं। यह पक्ष इच्छा होने से यह हेतु, मंम्मण वणिक का दृष्टान्त। जो जो इच्छा वाला होता है उसको धर्म करना योग्य नहीं है, यह उपनय और इससे तुम को भी धर्म करना उचित नहीं है यह निगमन। धर्म करने की योग्यता से साकांक्षपना सेवे नहीं यह कारण जानना।)॥४६॥

एयमट्ठं निसामित्ता, हेऊ-कारणचोइओ।
तओ नमी रायरिसी, देविंदं इणमब्बवी॥४७॥

ऐसा वचन सुनकर हेतु व कारण से प्रेरित हुए नमि राजर्षि देवेन्द्र को इस प्रकार कहने लगे॥४७॥

सुवण्ण-रूप्पस्स उ पव्वया भवे, सिया हु केलाससमा असंखया।
नरस्स-लुद्धस्स न तेहि किंचि, इच्छा हु आगाससमा अणंतिया॥४८॥

सोने व चाँदी के मेरु पर्वत जितने असंख्यात पर्वत करके किसी लोभी पुरुष को देवें तो भी उसकी तृष्णा मिटे नहीं क्योंकि तृष्णा आकाशवत अनंत गुनी है और धन असंख्यात है॥४८॥

पुढवी साली जवा चेव, हिरण्णं पसुभिस्सह।
पडिपुण्णं नालमेगस्स, इइ विज्जा तवं चरे॥४९॥

सर्व पृथ्वी, शाली, जवादि सब धन, सोना, चांदी, हाथी घोड़ा आदि पशु से संपूर्ण पृथ्वी भर कर एक लोभी को देवें तो भी उसकी तृष्णा मिटे नहीं, ऐसा जानकर ज्ञानी तप का आचरण करें (यहाँ हम को किसी की इच्छा नहीं है यह पक्ष, संतोषीरूप से यह हेतु, सिद्ध का उदाहरण, जो संतोषी होवे उस को इच्छा होवे नहीं यह उपनय, इससे हम को भी इच्छा नहीं है, सो पक्ष समाप्ति और जहाँ इच्छा है वहाँ संतोष नहीं है यह कारण से प्रेरित हुआ देवेन्द्र नमिराजर्षि से इस प्रकार कहने लगा॥४९॥

एयमट्ठं निसामित्ता, हेऊ-कारणचोइओ।
तओ नमिं रायरिसिं, देविंदो इणमब्बवी॥५०॥

इन्द्र ने देख लिया कि संतोष से इनको अविद्यमान वस्तु में राग द्वेष नहीं है परंतु अब विद्यमान वस्तु में राग द्वेष है अथवा नहीं सो देखना,–अहो नराधिप! मुझे आश्चर्य होता है कि तू यह प्रत्यक्ष अनुपम काम भोगों का त्यागकर अविद्यमान कामभोगों की इच्छा करता है, परंतु वैसे अविद्यमान कामभोग भी नहीं मिलने से संकल्प विकल्प वाला बनकर घात को प्राप्त होगा (यहाँ विद्यमान वस्तु का त्याग नहीं करना यह पक्ष, विवेकीपना का हेतु, ब्रह्मदत्त का दृष्टान्त, जो-२ विवेकी होवे वे अविद्यमान वस्तु के लिये विद्यमान वस्तु का त्याग करें नहीं यह उपनय, इससे तुम को भी इसका त्याग नहीं करना यह पक्ष समाप्ति, अविद्यमान वस्तु के लिये विद्यमान वस्तु का त्याग करनेवाला विवेकी होवे नहीं, यह कारण यों हेतु वे कारण जानना॥५०॥

अच्छेरयमब्भुदए, भोए चयसि पत्थिवा!।
असंते कामे पत्थेसि, संकप्पेण विहण्णसि॥५१॥

ऐसा अर्थ सुनकर हेत व कारण से प्रेरित नमिराजर्षि देवेन्द्र को इस प्रकार कहने लगे॥५१॥

एयट्ठं निसामित्ता, हेऊ-कारणचोइओ।
तओ नमी रायरिसी, देविंदं इणमब्बवी॥५२॥
सल्लं कामा विसं कामा, कामा आसीविसोवमा।
कामेय पत्थेमाणा, अकामा जंति दुग्गईं॥५३॥

जैसे बाण आदि का शल्य अंदर रहने से दुःखप्रद होता है वैस ही ये प्रत्यक्ष कामभोग भी शल्य समान हैं, जैसे तालपुटादिक विष खाने से मधुर होता है, परंतु प्राण हरण करने वाला है वैसे ही ये कामभोग आगे दुःखप्रद हैं। जैसे आसीविष सर्प फणटोप में मणि होने से रमणीक दीखता है परंतु उसका दंश होवे तो तत्काल जीव मरण शरण होता है, वैसे ही ये काम भोग आसीविष सर्प समान हैं। किं बहुनाः कामभोग इससे बहुत खराब हैं, क्योंकि विष खाने से एक बार मृत्यु होती है परंतु कामभोगों से अनंत भव भ्रमण करना पड़ता है, जो कामभोगों के योग्य नहीं है वैसा पुरुष भी कामभोग की वांच्छा करे तो दुर्गति में जाता है, (यहाँ अनर्थकारी वस्तु का त्याग करना यह पक्ष, विवेकीपना का हेतु, विष का उदाहरण, जो-२ विवेकी होवे वह अनर्थ का उपाय दूर करने के लिये प्रवर्ते यह उपनय और ये कामभोग अनर्थ का कारण है इससे इस का त्याग करना यह पक्ष समाप्ति अनर्थ मिटाने में प्रवृत्ति किये बिना विवेकी होवे नहीं यह कारण यों हेतु कारण जानना)॥५२-५३॥

अहे वयइ कोहेणं माणेणं अहमा गई।
माया गइपडिग्घाओ, लोभाओ दुहओ भयं॥५४॥

क्रोध करने से जीव नरक गति में जाता है, मान करने से अधम गति में जाता है, माया करने से अच्छी गति का नाश होता है और लोभ करने से इस लोक में धनादि परलोक में नरकादि यों दोनों लोक का भय रहता है॥५४॥

अवउज्झिऊण माहणरूवं, विउव्विऊण इंदत्तं।
वंदइ अभित्थुणंतो, इमाहि महुराहिं वग्गूहिं॥५५॥

उक्त प्रकार से दस प्रश्न पूछकर देवेन्द्र नमिराजर्षि को संयम से चलित कर सका नहीं तब ब्राह्मण का रूप छोड़कर अपना मूल देवेन्द्र का रूप बनाकर नमिराजर्षि को वंदना कर मधुर वचनों से इस प्रकार स्तुति करने लगा॥५५॥

अहो! ते निज्जिओ कोहो, अहो! माणो पराजिओ।
अहो! ते निरक्किया माया, अहो! लोहो वसीकओ॥५६॥

अहो आश्चर्य दर्शक है, आपने क्रोध शत्रु को अतिशय से जीता है, अहो आपने मान शत्रु का पराजित किया है, अहो आपने माया कपट को भी दूर किया है, अहो आपने लोभ को वश में किया है॥५६॥

अहो! ते अज्जवं साहु, अहो! ते साहु मद्दवं।
अहो! ते उत्तमा खंती, अहो! ते मुत्ति उत्तमा॥५७॥

अहो आपकी सरलता, अहो आपकी मृदुता, निरभिमानपना, अहो आपकी उत्तम क्षमा, और अहो आपका उत्तम वैराग्य॥५७॥

इहं सि उत्तमो भंते!, पेच्चा होहिसि उत्तमो।
लोगुत्तमुत्तमं ठाणं, सिद्धिं गच्छसि नीरओ॥५८॥

अहो भगवन! आज इस मनुष्य लोक में भी उत्तम हैं और परभव में भी उत्तम बनेंगे, आप कर्मरज रहित होकर लोक में उत्तम जो सिद्धि गति का स्थानक है वहाँ जावेंगे॥५८॥

एवं अभित्थुणंतो रायरिसिं उत्तमाए सद्धाए।
पयाहिणं करेंतो, पुणो पुणो वंदई सक्को॥५९॥

इस प्रकार देवेन्द्र नमिराजर्षि की स्तुति करता हुआ व श्रेष्ठ श्रद्धा पूर्वक प्रदक्षिणा करता हुआ वंदना करने लगा॥५९॥

तो वंदिऊण पाए, चक्कंकुसलक्खणे मुणिवरस्स।
आगासेणुप्पइओ, ललियचवलकुण्डलतिरीडी॥६०॥

मुनिवर नमिराजर्षि के चक्र व अंकुश के लक्षणवाले पांव में बारंबार नमस्कार करके मनोहर चपल कुंडल धारण करने वाला देवेन्द्र ऊर्ध्व देवलोक में स्वस्थान गया॥६०॥

नमी नमेइ अप्पणं, सक्खं सक्केण चोइओ।
चइऊण गेहं वइदेहीं, सामण्णे पज्जुवट्ठिओ॥६१॥

देवेन्द्र की प्रेरणा होने पर भी किंचिन्मात्र जो चलायमान नहीं हुये ऐसे नमिराजर्षि ने अपनी आत्मा को संयम मार्ग में प्रवृत्त किया और विदेह देश अपना घर वगैरह का त्यागकर संयम में उद्यमवंत बने॥६१॥

एवं करेंति संबुद्धा पंडिया पवियक्खणा।
विणियट्टन्ति भोगेसु, जहा नमी रायरिसि॥६२॥ त्ति बेमि॥

जैसे नमिराजर्षि ने संयम अंगीकार किया वैसे ही विलक्षण पंडित व तत्त्व के ज्ञाता संयम अंगीकार करें, और कामभोगों से निवृत्त हो॥६२॥

ऐसा मैं कहता हूँ, यों श्री सुधर्मा स्वामी अपने शिष्य श्री जम्बू स्वामी से कहते हैं कि जैसा मैंने श्री श्रमण भगवान महावीर स्वामी से सुना है वैसे ही तुम से कहता हूँ।

यह नमिराजर्षि नवाँ अध्ययन सम्पूर्ण।

१०

दसमं दुमपत्तयं अज्झयणं
द्रुमपत्र नामकं दशम अध्ययनम्

नवें अध्ययन में इन्द्र के पूज्यनीय होने को कहा, इन्द्रादिक के पूज्यनीय होने पर भी प्रमाद करना नहीं यह दशवें अध्ययन में कहते हैं।

दुमपत्तए पंडुयए जहा, निवडइ राइगणाण अच्चए।
एवं मणुयाण जीवियं, समयं गोयम! मा पमायए॥१॥

श्री श्रमण भगवान श्री महावीर स्वामी ने अपने ज्येष्ठ शिष्य श्री गौतम स्वामी को उद्देश कर सब जीवों को प्रमाद[१] का त्याग करने को कहा है, जैसे पांडू रोगादिसे वृक्ष के पत्र जीर्ण होकर नष्ट हो जाते हैं, वैस ही संसार रूपी वृक्ष से मनुष्य का जीवन रात्रि दिन रूप रोग से जीर्ण होकर नष्ट हो जाता है इसलिए अहो गौतम! समय मात्र भी प्रमाद करना नहीं ॥१॥

कुसग्गे जह ओसबिंदुए, थोवं चिट्ठइ लंबमाणए।
एव मणुयाण जीवियं, समयं गोयम! मा पमायए॥२॥

जैसे कुशाग्र पर रहा हुआ ओस का बिंदु वायु से प्रेरित होता हुआ अल्प काल रहता है वैसे ही मनुष्य का जीवन क्षण मात्र में पूरा हो जाता है, ऐसा जानकर अहो गौतम! क्षण मात्र भी प्रमाद मत कर॥२॥

इइ इत्तिरियम्मि आउए, जीवियए बहुपच्चवायए।
विदुणाहि रय पुरे कडं, समयं गोयम! मा पमायए॥३॥

पल्योपम सागरोपम के आयुष्य की अपेक्षा इस समय मनुष्य का आयुष्य बहुत ही अल्प है और वह भी सोप कर्मी (बिना भरोंसे का) है, इसमें भी विविध प्रकार के शारीरिक व मानसिक दुःख प्राप्त होते हैं, इससे पूर्व संचित कर्मों का क्षय करने के लिये अहो गौतम! समय मात्र का प्रमाद करना नहीं॥३॥

दुल्लहे खलु माणुसे भवे, चिरकालेण वि सव्वपाणिणं।
गाढा य विवाग कम्मुणो, समयं गोयम! मा पमायए॥४॥

जिन जीवों को अति कठिन विपाकोदयवाले कर्म हैं, वैसे अकृत पुण्य वाले जीवों की दश

---

१. आठ प्रकार का मद, २३ इन्द्रियों के विषय चार कषाय, पांच प्रकार की निद्रा, और चार प्रकार की विकथा, ये पांच प्रमाद जानना।

दृष्टान्त से बहुत काल में भी मनुष्य जन्म की प्राप्ति होना दुर्लभ है, इससे अहो गौतम! समय मात्र का प्रमाद मत कर॥४॥

पुढवीकायमइगओ, उक्कोसं जीवो उ संवसे।
कालं संखाईयं, समयं गोयम! मा पमायए॥५॥
आउक्कायमइगओ उक्कोसं जीवो उ संवसे।
कालं संखाईयं, समयं गोयम! मा पमायए॥६॥
तेउक्कायमइगओ, उक्कोसं जीवो उ संवसे।
कालं संखाईयं, समयं गोयम! मा पमायए॥७॥
वाउक्कायमइगओ, उक्कोसं जीवो उ संवसे।
काल संखाईयं, समयं गोयम! मा पमायए॥८॥
वणस्सइकायमइगओ, उक्कोसं जीवो उ संवसे।
कालमणंत-दुरंत समयं गोयम! मा पमायए॥९॥

मनुष्य का भव कैसे दुर्लभ है, सो कहते हैं पृथ्वी काया में उत्कृष्ट असंख्यात अवसर्पिणी काल रहे वैसे ही अपकाय, तेउकाय व वायुकाय में गया हुआ जीव वहाँ असंख्यात काल रहे वैसे ही अपकाय, तेउकाय व वायुकाय में गया हुआ जीव वहाँ असंख्यात अवसर्पिणी उत्सर्पिणी काल रहे, वनस्पति काया में दुःख से अंत आवे वैसा अनंत काल तक रहे, इससे अहो गौतम! समय मात्र का प्रमाद मत कर॥५-९॥

बेइंदियकायमइगओ, उक्कोसं जीवो उ संवसे।
कालं सइखज्जसन्नियं, समयं गोयम! मा पमायए॥१०॥
तेइंदियकायमइगओ, उक्कोसं जीवो उ संवसे।
कालं सइखज्जसन्नियं, समयं गोयम! मा पमायए॥११॥
चउरिंदियकायमइगओ, उक्कोसं जीवो उ संवसे।
कालं सइखज्जसन्नियं, समयं गोयम! मा पमायए॥१२॥

द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय व चतुरेन्द्रिय में उत्कृष्ट संख्यात काल तक रहे[1], इससे अहो गौतम! समय मात्र का प्रमाद मत कर॥१०-१२॥

पंचिंदियकायमइगओ, उक्कोसं जीवो उ संवसे।
सत्तट्ठभवगहणे, समयं गोयम! मा पमायए॥१३॥

मनुष्य व तिर्यंच रूप पंचेन्द्रिय काया में गया हुआ जीव सात, आठ भव करे, अर्थात् सात

---

१. द्वीन्द्रिय में ८०, त्रीन्द्रिय में ६० और चौरन्द्रिय में ४० भव लगभव करें।

भव कर्म भूमि के संख्यात वर्ष के और एक भव युग क्रिया का असंख्यात वर्ष का कर तत्पश्चात् देव होवे, अहो गौतम! इसलिये प्रसाद मत कर॥१३॥

देवे नेरइए य अइगओ, उक्कोसं जीवो उ संवसे।
इक्केक्कभवगहणे, समयं गोयम! मा पमायए॥१४॥

नरक व देवता में गया हुआ जीव उत्कृष्ट एक भव करे, इसलिये अहो गौतम! समय मात्र का प्रमाद मत कर॥१४॥

एवं भवसंसारे, संसरइ सुहासुहेहिं कम्मेहिं।
जीवो पमायबहुलो, समयं गोयम! मा परमायए॥१५॥

ऐसे प्रमादी जीव शुभाशुभ कर्म से चर्तुगति रूप संसार में परिभ्रमण करता है इसलिये अहो गौतम! समय मात्र का प्रमाद मत कर॥१५॥

लद्धूण वि माणुसत्तणं, आयरियत्तं पुणरावि दुल्लहं।
बहवे दसुया मिलक्खुया, समयं गोयम! मा पमायए॥१६॥

कदाचित् पुण्योदय से मनुष्य जन्म की प्राप्ति हो गई तो भी आर्यत्व प्राप्त होना दुर्लभ है, क्योंकि मनुष्य क्षेत्र मे भी अनार्य देश बहुत हैं और आर्य देश बहुत थोड़े हैं एक भरत क्षेत्र में बत्तीस हजार देश में से मात्र साढ़े पच्चीस ही आर्य देश हैं और शेष सब अनार्य हैं इससे अहो गौतम! समय मात्र प्रमाद मत कर॥१६॥

लद्धूण वि आयरियत्तणं, अहीणपांचदिययया हु दुल्लहा।
विगलिंदिययया हु दीसई, समयं गोयम! मा पमायए॥१७॥

कदाचित् आर्य क्षेत्र की प्राप्ति भी हो गई तो भी पांचों इन्द्रियों की पूर्णता होना दुर्लभ है क्योंकि इस संसार में बधिर अन्धे, मूक आदि विकल इन्द्रियों वाले मनुष्य दीखते हैं वे धर्माचरण नहीं कर सकते हैं इसलिये अहो गौतम! समय मात्र का प्रमाद मत कर॥१७॥

अहीणपंचेदियत्तं पि से लहे, उत्तमधम्मसुई हु दुल्लहा।
कुतित्थिनिसेवए जणे, समयं गोयम! मा पमायए॥१८॥

कदाचित् पांचों इन्द्रियों की पूर्णता की प्राप्ति हो गई तो भी जिनोक्त सर्वोत्तम श्रुत चारित्र धर्म श्रवण करना बड़ा दुर्लभ है क्योंकि संसार में कुतीर्थियों के शासन का सेवन बहुत हैं इसलिये अहो गौतम! समय मात्र का प्रमाद मत कर॥१८॥

लद्धूण वि उत्तमं सुइं, सद्दहणा पुणरावि दल्लहा।
मिच्छत्तनिसेवए जणे, समयं गोयम! मा पमायए॥१९॥

कदाचित् जिनोक्त उत्तम धर्म का श्रवण करने का संयोग हो गया तो भी धर्म में श्रद्धा सम्यक्त्व की प्राप्ति होना दुर्लभ है, क्योंकि जमाली प्रमुख बहुत जीव धर्म श्रवण करने पर भी मिथ्यात्व का सेवन कर रहे हैं, इससे अहो गौतम! समय मात्र का प्रमाद मत कर॥१९॥

धम्मं पि हु सद्दहंतया, दुल्लहया काएण फासया।
इह कामगणेहिं मुच्छिया, समयं गोयम! मा पमायए॥२०॥

कदाचित् सद्धर्म में श्रद्धा की प्राप्ति भी हो गई तो उसे अंगीकार करना बड़ा दुर्लभ है, कृष्ण श्रेणिकवत् क्योंकि वैसे जीव शब्दादिक कामभोगो में आसक्त बने हुए दिख रहे हैं इसलिये अहो गौतम! समय मात्र का प्रमाद मत कर॥२०॥

परिजूरइ ते सरीरयं, केसा पंडुरया हवंति ते।
से सोयबले य हायई, समयं गोयम! मा पमायए॥२१॥
परिजूरइ ते सरीरयं, केसा पंडुरया हवंति ते।
सं चक्खुबले य हायई, समयं गोयम!॥ मा पमायए॥२२॥
परिजूरइ ते सरीरयं, केसा पंडुरया हवंति ते।
से घाणबले य हायई, समयं गोयम! मा पमायए॥२३॥
परिजूरइ ते सरीरयं, केसा पंडुरया हवंति ते।
से जिब्भबले य हायई, समयं गोयम! मा पमायए॥२४॥
परिजूरइ ते सरीरयं, केसा पंडुरया हवंति ते।
से फासबले य हायई, समयं गोयम! मा पमायए॥२५॥
परिजूरइ ते सरीरयं, केसा पंडुरया हवंति ते।
से सव्वबले य हायई, समयं गोयम! मा पमायए॥२६॥

जो करना हो सो शीघ्र करे क्योंकि सब प्रकार से तेरा शरीर व आयुष्य हीनता को प्राप्त होता है, वृद्धावस्था के कारण से तेरे केश श्वेत होते हैं और कर्ण का बल भी क्षीण होता जाता है वैसे ही चक्षु, घ्राण जिह्वा, स्पर्श और सब इन्द्रियों का बल क्षीण होता है, इसलिये अहो गौतम! समय मात्र का प्रमाद मत कर॥२१-२६॥

अरई गंडं विसूइया, आयंका विविहा फुसंति ते।
विहडइ विद्धंसइ ते सरीरयं, समयं गोयम! मा पमायए॥२७॥

अरति चिन्ता, कंठमालादि गड गुम्बड विशुचिका और विविध प्रकार के रोग तेरे शरीर को स्पर्श कर रहे हैं, उससे ही तेरे शरीर बल का विध्वंस होता है इसलिये अहो गौतम्! समय मात्र का प्रमाद मत कर॥२७॥

वोच्छिंद सिणेहमप्पणो, कुमुयं सारइयं च पाणियं।
से सव्वसिणेहवज्जिए, समयं गोयम! मा पमायए॥२८॥

जैसे कमल शरद ऋतु के पानी को छोड़कर अलिप्त रहता है वैसे ही राग द्वेष रूप आत्मा का त्यागकर सब स्नेह को त्यजता हुआ अहो गौतम! तू समय मात्र का प्रमाद मत कर॥२८॥

चिच्चा ण धणं च भारियं, पव्वइओ हि सि अणगारियं।
मा वंतं पुणो वि आविए, समयं गोयम! मा पमायए॥२९॥

धन स्त्रियादि का त्यागकर घर रहित अनगार बन भिक्षावृत्ति से आजीविका करने वाले बनकर पुनः उस स्नेह जाल के बंधन में नहीं पड़े इस प्रकार रहने में अहो गौतम! समय मात्र का प्रमाद मत कर॥२९॥

अवउज्झिय मित्त-बंधवं, विउलं चेव धणोहसंचयं।
मा तं बिइयं गवेसए, समयं गोयम! मा पमायए॥३०॥

मित्र बंधु व विपुल धन संचय कि जिस का त्याग किया है उस धनादिक की पुनः वांच्छा नहीं करने में अहो गौतम! समय मात्र का प्रमाद मत कर॥३०॥

न हु जिणे अज्ज दइस्सई, बहुमए दइस्सइ मग्गदेसिए।
संपइ नेआउए पहे, समयं गोयम! मा पमायए॥३१॥

वर्तमान काल में जिन (तीर्थंकर) नहीं दिखते हैं[१] परंतु बहुत जीवों को मुक्ति देने वाला जिनेन्द्र का मार्ग दिखता है ऐसा न्यायकारी मार्ग की प्राप्ति होने पर अहो गौतम! समय मात्र का प्रमाद मत कर॥३१॥

अवसोहिय कंटगापहं, ओइण्णोऽसि पहं महालयं।
गच्छसि मग्गं विसोहिया, समयं गोयम! मा पमायए॥३२॥

कंटक पंथ रूप कुमार्ग का त्याग कर महा पंथ रूप मुक्ति मार्ग को अंगीकार किया है, अब चरित्र का पालन करता हुआ मोक्ष मार्ग में जायेगा। इससे अहो गौतम! समय मात्र का प्रमाद नहीं करना॥३२॥

अबले जह भारवाहए, मा मग्गे विसमेऽवगाहिया।
पच्छा पच्छाणुतावए, समयं गोयम! मा पमायए॥३३॥

जैसे कोई निर्बल भारवहक प्रदेश में बहुत द्रव्य कमाकर अपने घर आता था भार का वजन बहुत होने से तथा चोरों के डर से विषम मार्ग में चलने लगा परंतु वैसे मार्ग में भार उठा सका नहीं और वहाँ ही डालकर अपने घर आकर पश्चाताप करने लगा। वैसे ही संयम रूप भार को डालकर तुझे पश्चाताप करना नहीं पड़े इसलिये अहो गौतम! समय मात्र का प्रमाद मत कर॥३३॥

तिण्णो हु सि अन्नवं महं, किं पुण चिट्ठसि तीरमागओ?।
अभितुर पारं गमित्तए, समयं गोयम! मा पमायए॥३४॥

तू संसार रूप महा समुद्र तीर कर उसके किनारे पर आकर खड़ा है। अब मुक्ति प्राप्त करने में क्यों विलम्ब करता है? इसलिये अहो गौतम! समय मात्र का प्रमाद मत कर॥३४॥

---

१. यह कथन पांचवें आरे को उद्देश कर कहा गया है, अर्थात् पांचवें आरे में तीर्थंकर का दर्शन नहीं है।

अकलेवरसेणिमूसिया, सिद्धिं गोयम! लोयं गच्छसि।
खेमं च सिवं अणुत्तरं, समयं गोयम! मा पमायए॥३५॥

अहो गौतम! संयम स्थान में क्षपक प्राणी रूप सीढ़ी पर चढ़कर सब प्रकार के उपद्रव रहित क्षेम कल्याणवाली प्रधान सिद्ध गति को तू प्राप्त करेगा इसलिये समय मात्र का प्रमाद मत कर॥३५॥

बुद्धे परिनिव्वुडे चरे, गाम गए नगरे व संजए।
संतिमग्गं च बूहए, समयं गोयम! मा पमायए॥३६॥

ग्राम अथवा नगर में विचरते हुए तत्त्वज्ञ व शीतलीभूत साधु शांति(दया) मार्ग का उपदेश करते हैं, इसलिये अहो गौतम! इसमें तू समय मात्र का प्रमाद मत कर॥३६॥

बुद्धस्स निसम्म भासियं, सुकहियमट्ठपओवसोहियं।
रागं दोसं च छिंदिया, सिद्धिगइ गए गोयमे॥३७॥ त्ति बेमि॥

इस प्रकार तीर्थंकर भगवान का अच्छी उपमा से सुशोभित पद व अर्थ श्रवण करके और रांग द्वेष का छेदन करके श्री गौतम स्वामी मुक्ति में गये॥३७॥

ऐसा मैं कहता हूँ। श्री सुधर्मा स्वामी अपने शिष्य श्री जम्बू स्वामी से कहते हैं कि अहो जम्बू! जैसा मैंने तीर्थंकर भगवान से श्रवण किया है वैसे ही तुझे कहता हूँ।

दसवां द्रुमपत्र अध्ययन समाप्त हुआ।

११

एगारसमं बहुस्सुयपुज्जं अज्झयणं
बहुश्रुत नामकं एकादश अध्ययनम्

दशवें अध्ययन में प्रमाद त्याग का कहा, जो प्रमाद का त्याग करेगा वह बहुसूत्री होगा। इसलिए ग्यारहवे अध्ययन से बहुसूत्री का कथन करते हैं।

संजोगा विप्पमुक्कस्स, अणगारस्स भिक्खुणो।
आयारं पाउकरिस्सामि, आणुपुव्विं सुणेह मे॥१॥

बाह्य व आभ्यंतर यों दो प्रकार के संयोगों से रहित व निर्वद्य भिक्षा करने वाले अनुसरण का आचार मैं अनुक्रम से कहूँगा सो तुम दत्तचित्त से श्रवण करो॥१॥

जे यावि होइ निव्विज्जे, थद्धे लुद्धे अनिग्गहे।
अभिक्खणं उल्लवई, अविणीए अबहुस्सुए॥२॥

जो पुरुष-१. पुरुष विद्या रहित होवे, २. काम शास्त्रादि कुविद्यावंत होवे, २. अभिमानी होवे, ३. रसना को लुप्त होवे, ४. जिसने इन्द्रियों का निग्रह नहीं किया है वैसा होवे और ५. बारंबार असंबंध भाषा बोलने वाला होवे, वह अविनीत व अबहुसूत्री कहलाता है॥२॥

अह पंचहिं ठाणेहिं, जेहिं सिक्खा न लब्भई।
थंभा[१] कोहा[२] पमाएणं[३], रोगेणालस्सएण य[४-५]॥३॥

१. मान, २. क्रोध, ३. प्रमाद, ४. रोग और ५. आलस्य; इन पांच स्थानक सेवन करने वाले को आसेवणा व ग्रहणा ऐसी दो प्रकार की शिक्षा की प्राप्ति होवे नहीं॥३॥

अह अट्ठहिं ठाणेहिं, सिक्खासीले त्ति वुच्चई।
अहस्सिरे[१] सया दंते[२], न य मम्ममुदाहरे[३]॥४॥
नासीले[४] ण विसीले[५], न सिया अइलोलुए[६]।
अकोहणे[७] सच्चरए[८], सिक्खासीले त्ति वुच्चइ॥५॥

आठ स्थानक सेवने वाले आसेवना व ग्रहण यो दोनों प्रकार की शिक्षा प्राप्त कर सकते हैं जिस के नाम १ बहुत हँसने वाला न होवे, २ इन्द्रियों का दमन करने वाला होवे, ३ किसी का मर्म प्रकाशता न होवे, ४ देश व्रत प्रत्याख्यानादि का भंग करने वाला न होवे, ५ सर्वव्रत महाव्रत का भंग करने वाला न होवे, ६ रसना का लोलुपी न होवे, ७ क्रोधी होवे नहीं और ८ सत्य वचन बोलने वाला होवे॥४-५॥

अह चउद्दसहिं ठाणेहिं, वट्टमाणे उ संजए।
अविणीए वुच्चई सो उ, निव्वाणं च ण गच्छई॥६॥
अभिक्खणं कोही भवइ[१], पबंध च पकुव्वई[२]।
मेत्तिज्जमाणो वमइ[३], सुयं लद्धूण मज्जई[४]॥७॥
अवि पावपरिक्खेवी[५], अवि मित्तेसु कुप्पई[६]।
सुप्पियस्सावि मित्तस्स, रहे भासइ पावयं[७]॥८॥
पइन्नवाई[८] दुहिले[९] थद्धे[१०] लुद्धे[११] अणिग्गहे[१२]।
असंविभागी[१३] अचियत्ते[१४] अविणीए त्ति वुच्चई॥९॥

संयम में प्रवर्तता हुआ भी निम्नोक्त चौदह कारण से अविनीत कहता है, और व मोक्ष में नहीं जाता है, इनके नाम कहते हैं–१ बारंबार क्रोध करे, २ बहुत काल तक क्रोध रखे, ३ मित्रों साथ कृतघ्नता करें, ४ श्रुत ज्ञान प्राप्त करने में अभिमान करें, ५ अपना किया हुआ दोष दूसरे पर डाले, ६ हित शिक्षा देने वाले मित्र पर भी क्रोध करे, ७ अपने मित्र के सन्मुख मधुर वचन बोले और पीछे उसकी बुराई करें, ८ असंबंध वचन बोले, ९ प्रत्येक के साथ द्रोह करे, १० अभिमानी होवे, ११ स्त्री लंपटी होवे, १२ अजितेन्द्रिय होवें, १३ साधुओं के आहारादि का संविभाग करें नहीं और १४ सबको अप्रीतीतकारी होवे, इन चौदह दुर्गुण वाला अविनीत मोक्ष की प्राप्ति नहीं कर सकता है॥६-९॥

अह पण्णरसहिं ठाणेहिं, सुविणीए त्ति वुच्चइ।
नीयावत्ती[१] अचवले[२], अमाई[३] अकुऊहले[४]॥१०॥
अप्पं च अहिक्खिवई[५], पबंध च न कुव्वई[६]।
मेत्तिज्जमाणो भयई[७], सुयं लद्धुं न मज्जई[८]॥११॥
न पावपरिक्खेवी[९], न य मित्तेसु कुप्पई[१०]।
अप्पियस्सावि मित्तस्स, रहे कल्लाण भासई[११]॥१२॥
कलह-डमरवज्जिए[१२], बुद्धे अभिजाइगे[१३]।
हिरिमं[१४] पडिसंलीणे[१५], सुविणीए त्ति वुच्चई॥१३॥

जो साधु निम्नोक्त पन्द्रह स्थानक में प्रवर्तता होवें वह सुविनीत कहाता है–१ गुरु से नीचे आसन बैठे, २ गमनागमन का बैठने का व भाषा चपल होवें नहीं, ३ माया कपट नहीं होवें, ४ इन्द्रजालादि कुतूहल करें नहीं ५ तिरस्कार युक्त वचन बोले नहीं, ६ क्रोध की वृद्धि करें नहीं, ७ कृतघ्नी होवें नहीं, अर्थात् अन्यकृत उपकार मानने वाला होवे, ८ श्रुत ज्ञान प्राप्त कर बहुसूत्री होने का अभिमान करे नहीं, ९ अपना अपराध दूसरे पर डाले नहीं, १० मित्र पर क्रोध करें नहीं, ११ मित्र ने ज्यादा अपराध किया होवें तो भी उसकी निंदा करें नहीं, १२ क्लेशकारी वचन बोले नहीं तथा मिथ्या आडंबर करे नहीं, १३ बुद्धिमान होवे, १४ लज्जावान होवे और १५ गुरु के

समीप सदैव मर्यादा सहित व इन्द्रियों का संवर कर रहे, इन पन्द्रह सद्गुण संपन्न जो होवे उसे सुविनीत कहना॥१०-१३॥

वसे गुरूकुले निच्चं, जोगवं उवहाणवं।
पियंकरे पियंवाई, से सिक्खं लद्धुमरिहई॥१४॥

जो गुरु के समीप सदैव रहता है, मन वचन व काया के योगों को गुरु की आज्ञा में प्रवर्ताता है, आयंबिलादि तप कि जो सूत्रपठन की आदि अंत में उपधान होता है सो करता है, और प्रियकारी वचन बोलने से सबको प्रियकारी होता है वह आसेवणा और ग्रहण यों दोनों प्रकार की शिक्षा को प्राप्त कर सकता है, अर्थात् बहुत सूत्रों का ज्ञाता होता है फिर वह जगत में किस प्रकार शोभा पाता है, उसकी सोलह उपमा आगे कहते हैं॥१४॥

जहा संखम्मि पयं, निहियं दुहओ वि विराहइ।
एवं बहुस्सुए भिक्खू, धम्मो कित्ती तहा सुयं॥१५॥

जैसे दुग्ध अपने स्वभाव से तो निर्मल है, परंतु शंख के आश्रय रूप गुण में अधिक सुशोभित होता है, और उसमें रहा हुआ दुग्ध कदापि नहीं बिगड़ता है, वैसे ही धर्म, कीर्ति व आगम ये तीन पदार्थ अपने स्वभाव से उत्तम सुशोभित हैं, परंतु बहुश्रुत साधु में रहने से आश्रय गुण से अधिक शोभा देते हैं, उनका वहाँ विनाश नहीं होता है॥१५॥

जहा से कंबोयाणं, आइण्णे कंथए सिया।
आसे जवेण पवरे, एवं भवइ बहुस्सुए॥१६॥

जिस प्रकार कम्बोज देश कि अहम जाति वाले माता-पिता के संयोग से उत्पन्न हुए, श्रेष्ठ शिक्षक से भिक्षा पाये हुए, विनयादि गुण वाले, किसी प्रकार के भयंकर शब्द श्रवण करने पर कष्ट नहीं पावे। शस्त्र प्रहार से पीछे भागे नहीं चलने में अति वेग वाले, अपने गुणों से अपने स्वामी को वश में करने वाले होते हैं। वैसे ही विनय विवेकादि गुण संपन्न पाखंड़ियों के पाखंड से क्षुब्ध नहीं होने वाले, वाक् प्रहार से पीछे नहीं हटने वाले, और सद्बोध व सब सम्यक् आचार से सुशोभित भव्य जनों को बहुसूत्री वल्लभ लगते हैं॥२॥१६॥

जहाइण्णे समारूढे, सूरे दढपरक्कमे।
उभओ नदिघोसेणं, एवं भवइ बहुस्सुए॥१७॥

जैसे महापराक्रमी सुभट आकीर्णादि उत्तम जाति के अश्व पर आरूढ़ हुआ दोनों तरफ वार्दित्र के घोष से सुशोभित, बंदी जनों के आशीर्वाद से बंधाया हुआ किसी भी शत्रु से पराभवे नहीं, वैसे ही बहु सूत्री साधु भी श्रुत ज्ञान रूप अश्व पर आरूढ़ बने हुए स्वाध्याय रूप वार्दिव के नाद सहित चारों तीर्थ के आशीर्वाद से बंधाये हुए और परवादी रूप शत्रु से पराभव नहीं पावे हुए शोभते हैं॥३॥१७॥

जहा करेणुपरिकिन्ने, कुंजरे सट्ठिहायणे।
बलवंते अप्पडिहए, एवं भवइ बहुस्सुए॥१८॥

जैसे आठ वर्ष की प्रौढ़ अवस्था को प्राप्त हुआ महाबलवान व हथनियों के परिवार से परवरा

हुआ हाथी किसी वैरी हाथी से पराभव नहीं पावे। वैसे ही बहु सूत्री रूप हाथी ज्ञानाभ्यास की प्रौढ़ता को प्राप्त हुये वाक् चातुरी रूप बल से किसी से पराभूत होवे नहीं, और चार बुद्धि रूप हथनियों के परिवार से विचरण करते हुए शोभते हैं॥४॥१८॥

जहा से तिक्खसिंगे, जायक्खंधे विरायई।
वसहे जूहाहिवई, एवं भवइ बहुस्सुए॥१९॥

जैसे तृष्ण, शृंग और पुष्ट स्कन्धवाला वृषभ (बैल) गायों के ब्रज में अपना अधिपतित्व करके शोभता है, वैसे बहुसूत्री रूप वृषभ निश्चय व्यवहार रूप दोनों शृंग कर तथा स्वसमय पर समय के ज्ञान रूप श्रृंग कर, आचारांगादि सूत्र के ज्ञान रूप पुष्ट स्कन्ध कर संयम रूप भार के निर्वाहक चतुर्विध संघ के यूथ में शोभते हैं॥५॥१९॥

जहा से तिक्ख दाढे, उदग्गे दुप्पहंसए।
सीहे मियाण पवरे, एवं भवइ बहुस्सुए॥२०॥

जैसे सिंह तीक्ष्ण दाढ़ो और पराक्रम के गर्जारव शब्द कर किसी से भी पराभव नहीं पाया हुआ मृगादि पशुओं का अधिपतित्व करता शोभता है, वैसे ही बहुसूत्री रूप सिंह नैगमादि सात नये रूप तीक्ष्ण दाढ़ों कर, देशना के गर्जारव कर क्षमादि गुणों से किसी से भी पराभव नहीं पाते हुये परवादी रूप पशुओं के परिवार से शोभते हैं॥६॥२०॥

जहा से वासुदेवे, संख-चक्क गदाधरे।
अप्पडिहयबले जोहे, एवं भवइ बहुस्सुए॥२१॥

जैस शंख, चक्र, गदा, महारथ, कौस्तुभमणि, धनुष-बाण इस सात रत्नों के धारक अप्रतिहित वैरीयों से पराभव नहीं पावे ऐसे बल के धारक वासुदेव शोभते हैं, वैसे ही बहुसूत्री रूप ज्ञान-शंख का निर्घोष करते दर्शन चक्र से मिथ्या शत्रु का निकंदन करते, चरित्र गदा से पाप वैरी को हनते, शील रूप महारथ पर सवार हुये, द्वादशांगी वाणी रूप कौस्तुभमणि का प्रकाश करते, धैर्य रूप धनुष्य में तप रूप बाण साधकर पाखंड़ियों रूप पर सेना को भगाते हुए बाद में किसी से भी पराभव नहीं पाते हुये शोभते हैं॥७॥२१॥

जहा से चाउरंते, चक्कवट्टी महिडिढ्ए।
चोद्दसरयणाहिवई, एवं भवइ बहुस्सुए॥२२॥

जैसे तीनों दिशा में लवण समुद्र उत्तर में भरत क्षेत्र की सीमा के अन्त तक राज के कर्त्ता, सात एकेन्द्रिय सात पंचेन्द्रिय रत्न नवनिधि चतुरंगिनी सेना आदि महाऋद्धि के धारक चक्रवर्ती महाराजा शोभते हैं। वैसे ही बहुसूत्री रूप चक्रवर्ती चारों गति का अन्त कर चौदह पूर्व रूपी चौदह रत्न युक्त नव तत्त्व के ज्ञान रूपी नवनिधान युक्त अठावीस प्रकार की महाऋद्धि युक्त, ज्ञान दर्शन चरित्र तप रूप चतुरंगिनी सेना युक्त शोभते हैं॥८॥२२॥

जहा से सहस्सक्खे, वज्जपाणी पुरंदरे।
सक्के देवाहिवई, एवं भवइ बहुस्सुए॥२३॥

जैसे एक हजार आंखो[1] का धारक, बज्र नामक महा आयुध का धारक दैत्यों का पछाड़ने

वाला प्रथम देवलोक का अधिपतित्व करते इन्द्र शोभते हैं। वैसे ही बहुसूत्री साधु श्रुतज्ञान रूप हजार चक्षु कर, तपोपाधान रूप बज्र के धारक, कर्म दैत्यों के विदारक चारों तीर्थ के पूज्य सम्प्रदाय का अधिपतित्व करते शोभित हैं॥९॥२३॥

जहा से तिमिरविद्धंसे, उत्तिट्ठंते दिवायरे।
जलंते इव तेएणं, एवं भवइ बहुस्सुए॥२४॥

जैसे अन्धकार का नाश करने वाला सूर्य किरणों का प्रकाशित ज्यों-ज्यों आकाश में ऊँचा चढ़े त्यों-त्यों विशेष प्रकार जाज्वल्यमान दीपता स्वयं के तेज प्रताप से शोभता है, वैसे ही बहुसूत्री जी सूर्य रूप विविध प्रकार के बोध रूप किरणों कर ग्राम नगर आदि रूप आकाश में विचरते हुए मिथ्यात्व अन्धकार का नाश करते हुये संयम के तप के प्रणाम रूप तेज को बढ़ाते हुये स्वयं की शुभ लेश्या रूप तेज कर शोभते हैं॥१०॥२४॥

जहा से उडुवई चंदे, नक्खत्तपरिवारिए।
पडिपुण्णे पुण्णमासीए, एवं भवइ बहुस्सुए॥२५॥

जैसे नक्षत्रादि के परिवार से परिवाराधिपति चन्द्रमा शरद पूर्णिमा की रात्रि को सोले ही कला सम्पूर्ण कर शोभता है, वैसे ही बहुसूत्री जी रूप चन्द्रमा शिष्यादि के परिवार का मूल गुण उत्तम गुण की विशुद्धता कर जैन शासन रूप पूर्णमासी को सोलह उपमा रूप सोलह कला कर शोभते हैं॥११॥२५॥

जहा से सामाइयाणं, कोट्ठागारे सुरक्खिए।
नाणा धन्नपडिपुन्ने, एवं भवइ बहुस्सुए॥२६॥

जैसे कोष्टागार (अनाज का भंडार) सघन द्वारों कर उपद्रवी जन्तु मूषकादि के प्रवेश रहित चौवीस प्रकार के धान्य से भरा हुआ बहुत लोगों को आधारभूत शोभता है वैसे ही बहुत सूत्र रूपी कोष्टागार निश्चय व्यवहार रूप दृढ़ दरवाजों से मुदित अंगोपांगादि चौबीस प्रकार के धान्य से भरे हुये प्रमाद रूप चूहे के उपद्रव रहित चारों तीर्थ के आधारभूत शोभते हैं॥१२॥२६॥

जहा सा दुमाण पवरा, जम्बू नाम सुदंसणा।
अणाढियस्स देवस्स, एवं भवइ बहुस्सुए॥२७॥

जैसे सर्व वृक्षों में प्रधान जम्बू वृक्ष (अपर नाम-सुदर्शन वृक्ष) अनेक अन्य वृक्षों के परिवार कर जम्बूद्वीप के स्वामी अनाढी देवता के निवास स्थान रूप शोभता है। वैसे ही बहुसूत्री रूप जम्बू वृक्ष सब जनों को प्रिय कारक दर्शनवाले अनेक साधुओं के परिवार में परिवरे धर्म के स्वामी तीर्थंकर के ज्ञान के निवास स्थान रूप सूत्र ज्ञान रूप अमृत फल के दाता शोभते हैं॥१३॥२७॥

---

१. पांच सौ सामानिक देव सदैव पास सभा में बैठने से उन को हजार आंखों इन्द्र की रक्षा रूप होने से १००० आंखों इन्द्र की ही गिनी है।

जहा सा नईण पवरा, सलिला सागरंगमा।
सीसा नीलवंतपहवा, एवं हवइ बहुस्सुए॥२८॥

जैसे नीलकंठ पर्वत से निकली हुई निर्मल पानी की भरी हुई पांच लाख नदियों के परिवार से बहती सब नदियों में बड़ी सीता नदी समुद्र में जाकर मिली हुई शोभती है। वैसे ही बहुसूत्रीजी रूप सीता नदी उत्तमकुल रूप नीलकंठ पर्वत से निकले हुए श्रुत ज्ञान रूप निर्मल पानी कर भरे हुए चारों तीर्थ के परिवार से विचरण करते हुए मुक्ति रूप समुद्र में जाकर मिलते हुए शोभते हैं॥१४॥२८॥

जहा से नगाण पवरे, सुमहं मंदरे गिरी।
नाणोसहिपज्जलिए, एवं भवइ बहुस्सुए॥२९॥

जैसे सर्व पर्वतों में बड़ा पर्वत शल्यनिवारण संजीवनी वर्ण संहारिणी, विषहरनी, शस्त्र निवारनी, भूतदमन, नागदमन आदि अनेक प्रकार की औषधियों कर मेरु पर्वत महाजाज्वल्यमान रत्नमय शोभता है वैसे ही बहुसूत्री रूपी मेरु पर्वत सर्व साधु में ऊँचे गुण के धारक लब्धि रूपी औषधी पा कर संयुक्त परवादी रूपी वायुकर अचिन्त जैन शासन रूप पृथ्वी के मध्य में रहे शोभते हैं॥१५॥२९॥

जहा से सयंभुरमणे, उदही अक्खओदए।
नाणारयणपडिपुण्णे, एवं भवइ बहुस्सुए॥३०॥

जैसे सब समुद्रों में बड़ा आधे रज्जु प्रमाणे विस्तार वाला, अनेक रत्नों कर सयंभूरमण समुद्र शोभता है। वैसे ही बहुसूत्रीजी सब साधु में ज्ञान रूप अक्षय पानी कर अतिशय रूप रत्नों कर शोभते हैं॥१६॥३०॥

समुद्दगंभीरसमा दुरासया, अचक्किया केणइ दुप्पहंसया।
सुयस्स पुण्णा विउलस्स ताइणो, खवेत्तु कम्मं गइमत्तमं गया॥३१॥

यों १६ शुभोपमा युक्त अनेक हेतु दृष्टांत नयादी कर रहस्य के जान सिद्धान्त के ज्ञानकर पूर्ण भरे हुए, समुद्र समान गंभीर, किसी भी परवादी से कदापि पराभव नहीं पावें ऐसे, परीषहादि सम्यक् प्रकार से सहने वाले छः ही कार्य जीवों के रक्षक ऐसे बहुसूत्री साधु श्रुत ज्ञान से कर्मों का क्षय कर गये काल में मोक्ष गये। वर्तमान में जाते हैं और अनागत में जावेंगे॥३१॥

तम्हा सुयमहिट्ठिज्जा, उत्तमट्ठगवेसए।
जेणप्पाणं परं चेव, सिद्धिं संपाउणिज्जासि॥३२॥ त्ति बेमि॥

इसलिये मुमुक्ष जीव सूत्र ज्ञान में अपनी आत्मा को स्थापित करे, सूत्र पढ़कर उससे अपना आत्म को मोक्ष प्राप्ति का उत्तम अर्थ सिद्ध हो उसकी गवेषना करे, जिससे अपनी आत्मा को तथा अन्य अनेकों के आत्मा को मोक्ष गति प्राप्त करावे। यों सुश्रर्मा स्वामी जी ने जंबू स्वामी से कहा॥३२॥

बहुश्रुत रूप ग्यारहवां अध्ययन संपूर्ण हुआ।



बारसमं हरिएसिज्जं अज्झयणं
हरिएसबल नामकं द्वादश अध्ययनम्

ग्यारहवें अध्ययन में बहुसूत्री के गुण कहे जो बहुसूत्री होते हैं वे देवों के पूज्यनीय होते हैं इसलिये बारहवें अध्ययन में इसका कथन करते हैं।। गाथा।। **न कुलं अत्थि पहाणं, हरिएस बलस्स किं कुले आसो।। आकांषेआ तवेणं, सुरावितं पज्जुवासंति।।१।।** जगत में कुल का कुछ भी विशेषत्व नहीं है परन्तु धर्म का ही है, क्योंकि हरकेशी मुनि मातंग कुल के होने पर भी तपस्वी होने से देवता ने भी उनकी सेवा की है।। यथा।। मथुरा नगरी के शंख राजा संयम अंगीकार कर तेले-तेले का उग्र तप करते हुये विचर रहे थे। एकदा गजपुर नगर में अष्टम तप के पारने के लिये गौचरी करने निकले। तब वहाँ के पुरोहित ने मिथ्या द्वेष से मुनि को परीषह देने के लिये विद्याबल से चलने की भूमि अत्यंत ऊष्ण कर दी। परंतु मुनि के तप तेज से कुछ भी असर नहीं हुआ। ऐसा देखकर पुरोहित ने जैन धर्म का प्रभाव जाना और दीक्षा अंगीकार की। परंतु अपने कुल व रूप का अभिमान करते हुये नीच कुल व कुरूप का बंध किया। उसकी आलोचना निंदा किये बिना काल कर सौधर्म देवलोक में देवता हुआ। वहाँ से च्यवकर गंगा नदी के किनारे श्मशान का रक्षक कोष्टक नामक श्मशान का चांडाल की गोरी नामक स्त्री की कुक्षि में पल्लवित आम्र का स्वप्न देकर पुत्ररूप उत्पन्न हुआ। नव मास बाद पुत्र का जन्म हुआ। उसका हरे रंगवाला बलिष्ट शरीर देखकर हरिकेशी व हरिएसवल ऐसे दो नाम दिये गये। इसका कुरूप देखकर बहुत लोग दुगंछा करने लगे। जिससे अमरोष में आकर वह प्रदेश जाते मार्ग में बहुत से लोगों को सर्प की घात करते हुए और दुमोई को कुछ भी नहीं करते हुए देखा। तब उसने पूछा कि इस सर्प को क्यों मारते हो और दुमोई को क्यों नहीं मारते हो? लोगों ने कहा कि यह सर्प विषमय है और इस दुमोई को विष नहीं है। यह सुन वह विचार करने लगा कि जहाँ किसी प्रकार का विष है वहाँ सुख नहीं है। यों विचार करते-करते जाति स्मरण ज्ञान हुआ और पूर्व भव में संयम का आराधन किया जाना। वैसे ही यहाँ पर भी स्वत: की बुद्धि से संयम अंगीकार किया। जिन शासन के अधिष्ट देव ने उसको वहाँ साधु वेष दिया। मासखमण की तपश्चर्या करते हुए विचरने लगा। एकदा बनारस नगरी में तिंदुक वृक्ष के नीचे मास खमन के तप सहित संयम व तप से आत्मा को भावते हुए वह मुनि विचर रहे थे। उनके तप के प्रभाव से तिंदुक यक्ष मुनि का सेवक बना। एकदा मास खमन के पारने के दिन हरकेशी मुनि उस यक्ष के देवालय में ध्यानस्थ खड़े थे। वहाँ कौशल राजा की पुत्री भद्रा अपनी सखियों सहित खेलने आई थी। वहाँ उस साधु को कुरूप देखते ही वह राजपुत्री दुगंछा करती हुई वक्र मुख करके मुनि पर थूकने लगी कि तुरंत ही तिंदुक यक्ष क्रोधातुर होकर उसका मुख वक्र कर दिया। तब वह राजपुत्री रुदन करने लगी। यह सुनकर राजा प्रधान वगैरह वहाँ आये और

सब वृत्तांत सुना। सभी ने साधु जी से पुत्री के अपराध की क्षमा मांगी। उस समय तिंदुक यक्ष मुनि के शरीर में प्रवेश कर कहने लगा कि तुम्हारी पुत्री मुझे दे दो तो ये अच्छी होवे। सबने स्वीकार किया। और यक्ष मुनि के शरीर से निकल गया। इधर राजपुत्री मुनि के पास आई तब मुनि बोले कि हम निर्ग्रंथ हैं, स्त्री का स्पर्श करना हमारा धर्म नहीं है। राजा आदि ने भी उन मुनि को उस स्त्री को स्वीकार ने का बहुत आग्रह किया परंतु मुनि वमनवत् स्त्री का त्यागकर और उस दिन आहार का भी त्याग कर वहाँ से अन्य स्थान जाकर ध्यानस्थ रहे। इधर राजा वगैरह चिंतातुर हो गये कि कन्या का अब क्या करना? तब पुरोहित कहने लगा कि ऋषित्यक्ता ब्रह्म पत्नी हो सकती है, इसलिए राजा ने वह कन्या पुरोहित को दी। उसका पाणिग्रहण करने के लिये पुरोहित ने यज्ञ करवाया, अब इसके आगे का कथन सूत्र द्वारा ज्ञातव्य हैं–

सोवागकुलसंभूओ, गुणुत्तरधरो मुणी।
हरिएस् बलो नाम, आसि भिक्खू जिइंदिओ॥१॥

चांडाल कुल में उत्पन्न हुआ ऐसा हरकेशी बल नामक निर्वद्य भिक्षा करने वाला, इन्द्रियों को जीतने वाला व ज्ञानादिक उत्तम गुण धारण करने वाला साधु हुआ॥१॥

इरिएसण-भासाए, उच्चारसमिईसु य।
जओ आयाण-निक्खेवे, संजओ सुसमाहिओ॥२॥

ईर्या समिति भाषा-समिति, एषणा समिति, उच्चार-समिति, आदान और निक्षेप-समिति इन पांच समिति से यत्नवंत संयति हरकेशी मुनि ने समाधि मार्ग में अपनी आत्मा को स्थापित किया॥२॥

मणगुत्तो वयगत्तो, कायगुत्तो जिइंदिओ।
भिक्खट्ठा बंभइज्जम्मि, जन्नवाडे उवट्ठओ॥३॥

वैसे ही मन गुप्ति, वचन गुप्ति, व काया गुप्ति, इन तीनों गुप्ति सहित जितेन्द्रिय मुनि ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए भिक्षा के लिये परिभ्रमण करते उस यज्ञ मण्डप में पहुँचे॥३॥

तं पासिऊणंएज्जतं, तवेण परिसोसियं।
पंतोवहिउवगरणं, उवहसंति अणारिया॥४॥

तप से जिन का शरीर शुष्क हो गया है वैसे, और प्राव (असार) उपकरणादि प्रमुख उपधि वाले हरकेशी मुनि को आते हुए देखकर वे ब्राह्मणादि अनार्य उनको उपहास्य करने लगे॥४॥

जाईमयपडिथद्धा, हिंसगा अजिइंदिया।
अबंभचारिणो बाला, इमं वयणमब्बवी॥५॥

ब्राह्मण जाति के अभिमान करने वाले, हिंसा करने वाले, अजितेन्द्रिय और अब्रह्मचारी ऐसे अज्ञानी लोग मुनि को निम्नोक्त प्रकार बोलने लगे॥५॥

कयरे आगच्छई दित्तरूवे? काले विकराले फोक्कणासे?।
ओमचेलए पंसुपिसायभूए? संकरदूसरं परिहरिय कंठे?॥६॥

अरे! अत्यंत कुरूप शरीर वाला, काले वर्ण वाला, विकराल रूप वाला, वक्रनासिका वाला,

असार वस्त्र वाला, रज से भरा हुआ पिशाच समान, और नाली में डालने जैसा वस्त्र कंठ में रखने वाला?॥६॥

कयरे तुमं इय अदंसणिज्जे?, काए व आसा इहमागओऽसि?।
ओमचेलया! पंसुपिसायभूया!, गच्छ क्खलाहि किमिह ठिओ सि?॥७॥

अरे! ऐसा अदर्शनीय तू कौन है? और किस आशा से तू यहाँ आया है? अरे असार वस्त्रधारी, रज से मलिन बने हुए वस्त्र वाला व पिशाचभूत रूपवाला! तू हमारी दृष्टि से दूर होजा तू यहाँ पर क्यों खड़ा रहा है?॥७॥

जक्खे तहिं तिंदुयरूक्खवासी, अणुकम्पओ तस्स महामुणिस्स।
पच्छायइत्ता नियगं सरीरं, इमाइं वयणाइमुदाहरित्था॥८॥

(यों सुन मुनि फिरने लगे तब) हरकेशी मुनि की भक्ति वश से तिंदुक वृक्ष निवासी यक्ष ब्राह्मणों के उक्त वचन श्रवण कर हरकेशी मुनि के शरीर में प्रवेश कर इस प्रकार कहने लगा॥८॥

समणो अहं संजओ बभयारी, विरओ धण-पयण-परिग्गहाओ।
परप्पवित्तस्स उ भिक्खकाले, अन्नस्स अट्ठा इह मागओ मि॥९॥

मैं श्रमण (साधु) हूँ, स्वयमेव आत्मा को दुष्ट व्यापार से वश करने से मैं संयति हूँ स्त्री संबंधादिक के त्याग से ब्रह्मचारी हूँ, धन, पचन, पाचन व परिग्रह से मैं निवर्ता हूँ, और भिक्षा काल होने से दूसरे के लिये बना हुआ ऐसा आहार के लिये मैं यहाँ पर आया हूँ॥९॥

वियरिज्जइ खज्जइ भुज्जई, अन्नं पभूयं भवयाणमेयं।
जाणहि मे जायाणजीविणु त्ति, सेसावसेसं लभऊ तवस्सी॥१०॥

यहाँ प्रत्यक्ष तुम्हारे वहाँ बहुत पक्वान्नादि बने हुए हैं, जिससे तुम स्वयं खाते हो और अन्य को भी देते हो, ऐसा देखकर मैं यहाँ आया हूँ। यह तो तुम जानते ही हो कि मेरी उपजीविका याचना करने से ही होती है, इससे जो कुछ शेष रह जाय उस का लाभ तुमारी तरफ से तपस्वी को होना चाहिये?॥१०॥

उवक्खडं भोयण माहणाणं, अत्तट्ठियं सिद्धमिहेगपक्खं।
न ऊ वयं एरिसमन्न-पाणं, दाहामु तुज्झं किमिहं ठिओऽसि?॥११॥

तब ब्राह्मण कहने लगे–इस यज्ञ मंडप में जो मेवा मसाले के पक्वान्न भोजन आदि तैयार हुआ है वह मात्र ब्राह्मणों के लिये ही है, दूसरे को देने के लिये नहीं है, इसलिये इसमें से हम तुझे कुछ भी नहीं देंगे, तू व्यर्थ क्यों खड़ा है?॥११॥

थलेसु बीयाइं ववंति कासगा, तहेव निन्नेसु य आससाए।
एयाए सद्धाए दलाह मज्झं, आराहए पुण्णमिणं खु खित्तं॥१२॥

तब यक्षाधिष्टित मुनि कहने लगे–अहो विप्रों जैसे कृषिकार मुझे फल की प्राप्ति होगी इस इच्छा से ऊंची भूमि में और नीची भूमि में यों दोनों प्रकार की भूमि में बीज बोता है, वैसे

ही श्रद्धा से ऊंच नीच का भेद नहीं रखते हुए मुझे पुण्य रूप क्षेत्र जानकर दो, अर्थात् दान करो॥१२॥

खेत्ताणि अम्हं विइयाणि लोए, जहिं पकिण्णा विरूहंति पुण्ण।
जे माहणा जाइ विज्जोववेया, ताइं तु खेत्ताइं सुपेसलाइं॥१३॥

तब ब्राह्मण बोले कि इस लोक में जिस खेत रूप याचक को देने से जन्मांतर में जो पुण्य फल होता है उन क्षेत्रों को हम अच्छी तरह जानते हैं। जो ब्राह्मण जाति व विद्या से सहित होते हैं। वे ही क्षेत्र शोभित व प्रीतिकारी हैं। अर्थात् ब्राह्मण जाति व विद्या से सहित होते हैं, वे ही क्षेत्र शोभित व प्रीतिकारी हैं अर्थात् ब्राह्मण सिवाय पुण्य क्षेत्र नहीं है॥१३॥

कोहो य माणो य वहो य जेसिं, मोसं अदत्तं च परिग्गहं च।
ते माहणा जाइ-विज्जाविहूणा, ताइं तु खेत्ताइं सुपावयाइं॥१४॥

तब यक्षाधिष्टित मुनि कहने लगे अहो विप्रो! जो क्रोध, मान सहित हैं, जो हिंसा करने वाले हैं, मृषा बोलने वाले, चोरी करने वाले, मैथुन सेवन करने वाले, परिग्रह रखने वाले हैं, वे ब्राह्मण जाति व विद्या रहित हैं और क्षेत्र पापकारी हैं, अर्थात् वैसे ब्राह्मणों को देना सो अतीव पाप क्षेत्र है॥१४॥

तुब्भेऽत्थ भो! भारधरा गिराणं, अट्ठं न जाणेह अहिज्ज वेए।
उच्चावयाइं मुणिणो चरंति, ताइं तु खेत्ताइं सुपेसलाइं॥१५॥

और भी अहो विप्रो! इस लोक में तुम वेद संबंधी वाणी के भारवाहन करने वाले हो क्योंकि तुम वेद का अध्ययन करते हुए भी परमार्थ नहीं जानते हो। परन्तु ऊँच नीच व मध्य कुल में जो मुनि भिक्षा के लिये परिभ्रमण करते हैं वे ही शोभनिक पुण्य क्षेत्र हैं॥१५॥

अज्झावयाणं पडिकूलभासी, पभाससे किन्तु सगासि अम्हं।
अवि एयं विणस्सउ अन्न-पाणं, न य णं दाहामु तुमं नियण्ठा!॥१६॥

तब ब्राह्मण बोले–रे निर्ग्रन्थ! तू हमारे सन्मुख हमारे ही उपाध्याय का अवर्णवाद बोलता है और हमारे पास ही याचना करता है। इससे हमारा यह अन्न सड़ जायेगा तो भी नाली में डाल देंगे परंतु तुझे कदापि देंगे नहीं॥१६॥

समिईहि मज्झं सुसमाहियस्स, गुत्तीहि गुत्तस्स जिइंदियस्स।
जइ मे न दाहित्थ अहेसणिज्जं, किमज्ज जन्नाण लहित्थ लाहं?॥१७॥

तब यक्षाधिष्ठित मुनि बोले मैं पांच समिति युक्त व तीन गुप्ति से गुप्त हूँ पांचों इन्द्रियों को जीतने वाला हूँ। इस तरह सर्व प्रकार से समाधि वंत ऐसा जो मैं मुनि हूँ। मुझको तुम एषणिक आहार पानी नहीं दोगे तो तुम को यज्ञ का क्या लाभ हो सकेगा?॥१७॥

के इत्थ खत्ता उवजोइया वा, अज्झावया वा सह खंडिएहिं।
एयं खु दंडेण फलेण हन्ता, कण्ठम्मि घेत्तूण खलेज्ज जो णं॥१८॥

ऐसा उनका वचन सुनकर ब्राह्मण क्रोधातुर हो गये और इस प्रकार कहने लगे अरे यहाँ

कोई क्षत्रिय, अग्नि के पास रहने वाले अथवा विद्यार्थी सहित उपाध्याय क्या है? यदि होवे तो इस साधु को दंडे से, विलादिक के फल से मारकर अथवा इसका गला पकड़कर यज्ञ मंडप से बाहर निकाल दो॥१८॥

अज्झावयाणं वयणं सुणेत्ता, उद्धाइया तत्थ बहू कुमारा।
दंडेहिं वित्तेहिं कसेहिं चेव, समागया तं इसिं तालयंति॥१९॥

इस प्रकार अध्यापक के वचन सुनकर उद्धत बने हुये ब्राह्मणादिक के कुमारों कि जो वहाँ थे एकत्रित होकर दंड छड़ी, चाबुक आदि लेकर मुनि को मारने दौड़े॥१९॥

रन्नो तहिं कोसलियस्स धूया, भद्द त्ति-नामेण अनिंदियंगी।
तं पासिया संजयं हम्मपाणं, कुद्धे कुमारे परिनिव्ववेइ॥२०॥

उस समय मनोहर अंगवाली कोशलीक राजा की भद्रा नामक की पुत्री उस संयती को मारने जाते कुमारों को देखकर उनके क्रोध को शांत करने के लिये इस प्रकार कहने लगी॥२०॥

देवाभिओगेण निओइएणं, दिन्ना मु रन्ना मणसा न झाया।
नरिंद-देविंदऽभिवंदिएणं, जेणामि वंता इसिणा स एसो॥२१॥

अहो कुमारो! यह ऋषि वे ही हैं कि जिनको देवता की प्रेरणा से मेरे पिता ने मुझे इनको अर्पण की थी। परंतु इन्होंने मेरी मन से भी वांच्छा की नहीं और वमन किये हुए आहार समान मेरा त्याग किया। यह नरेन्द्र व देवेन्द्र के पूज्यनीय वही ऋषिवर हैं॥ २१॥

एसो हु सो उग्गतवो महप्पा, जिइंदिओ संजओ बंभयारी।
जो मे तया नेच्छइ दिज्जमाणिं, पिउणा सयं कोसलिएण रन्ना॥२२॥

यह उग्र तप करने वाले, जितेन्द्रिय, संयमी व घोर ब्रह्मचर्य पालन करने वाले महात्मा हैं। इनको खुद मेरे पिता कोशलीक राजा ने मुझे दी परंतु मेरी इच्छा मात्र की नहीं॥२२॥

महाजसो एस महाणुभावो, घोरव्वओ घोरपरक्कमो य।
मा एयं हीलेह अहीलणिज्जं, मा सव्वे तेएण भे निद्दहेज्जा॥२३॥

और भी यह ऋषि महा यशस्वी, अत्यंत शक्तिवाले, घोर व्रताचरण करने वाले और घोर पराक्रम करने वाले हैं। इनकी हीलना मत करो। यह साधु निन्दा करने योग्य नहीं है। कहीं ऐसा न हो कि यह अपने तप तेज से तुम सबको जलाकर भस्म कर डाले॥२३॥

एयाइं तीसे वयणाइं सोच्चा, पत्तीइ भद्दाइ सुभासियाइं।
इसिस्स वेयावडियट्ठयाए, जक्खा कुमारे विणिवारयंति॥२४॥

उस सोमदेव पुरोहित की भद्रा भार्या उक्त उत्तम वचन श्रवण करके मुनि की सेवा में रहा हुआ यक्ष उन उद्धत बने हुए कुमारों को निवारने लगा॥२४॥

ते घोररूवा ठिय अंतलिक्खे, असुरा तहिं तं जणं तालयंति।
ते भिन्नदेहे रूहिरं वमंते, पासित्तु भद्दा इणामाहु भुज्जो॥२५॥

तब वह यक्ष घोर भयंकर रूप धारण करके उस यज्ञ मंडप के ऊपर आकाश से उन बालकों

को ताड़ना दी। जिससे वे बालक भूमि पर पड़ गये उनके मुख में से रुधिर निकलने लगा। अपनी हितशिक्षा का स्वीकार नहीं करने से दुःख पाते हुए कुमारों को देखकर वह भद्रा राज पुत्री इस प्रकार कहने लगी॥२५॥

गिरिं नहेहिं खणह, अयं दंतेहिं खायह।
जायतेयं पाएहिं हणह, जे भिक्खुं अवमन्नह॥२६॥

तुम इस साधु का अपमान करते हो यह नख से पर्वत खोदने जैसा करते है। दांत से लोहमय चने खाने के जैसा करते हो और पाँव से अग्नि बुझाने के जैसा करते हो। अर्थात् नखों से पर्वत खोदने से पर्वत का कुछ भी नुकशान नहीं होता है। परन्तु नख ही टूट जाते हैं दांतों से लोह के चने चाबने से दांत ही टूटते हैं और पाँव से अग्नि बुझाने से पाँव ही जलते हैं। वैसे ही ऋषि का अपमान करने से ऋषि का कुछ भी हानि नहीं है परन्तु हानि तुम्हारी ही है॥२६॥

आसीविसो उग्गतवो महेसी, घोरव्वओ घोरपरक्कमो य।
अगणिं व पक्खंद पयंगसेणा, जे भिक्खुयं भत्तकाले वहेह॥२७॥

यह ऋषिश्वर उग्रतप करने वाले, घोर व्रत व घारे पराक्रम करने वाले, असीविष सर्प समान कोपित दृष्टी मात्र से स्त्रीभूत करने में समर्थ हैं। ऐसे ऋषिश्वर को जो कोई भोजन काल में दुःख देते हैं वे जैसे पंतगिये अग्नि में पड़गर भस्म होते हैं वैसे ही उनके तप तेज से व भस्म हो जाते हैं॥२७॥

सीसेण एयं सरणं उवेह, समागया सव्वजणेण तुब्भे।
जइ इच्छह जीवियं वा धणं वा, लोगं पि एसो कुविओ डहेज्जा॥२८॥

यदि जीवितव्य की इच्छा करते हो तो तुम सब मिलकर इन ऋषिश्वर के पांव में जाकर पड़ो। नही तो कूपित बने हुए वे सच में लोक को जला देंगे॥२८॥

अवहेडियपिट्ठसउत्तमंगे, पसारियाबाहु अकम्मचेट्ठे।
निब्भेरियच्छे रूहिरं वमंते, उड्ढम्मुहे निग्गयजीह नेत्ते॥२९॥

उस समय यज्ञ करते हुए ब्राह्मणों भी बाहर आये और देखते हैं तो उन पड़े हुए बालकों के मस्तक मुड़े हुए पीठ तक गये हैं दोनों बाँह पसार कर मुख में से रक्त का वमन करते हुए फटी हुई आंखों, मुख से बाहर निकली हुई जिह्वा सहित, हलन चलनादि जीवितव्य की चेष्टा रहित पड़े हैं॥२९॥

ते पासिया खंडिय कट्ठभूए, विमणो विसण्णो अह माहणो सो।
इसिं पसाएइ सभारियाओ, हील च निंद च खमाह भंते!॥३०॥

वहाँ पड़े हुए कुमारो को काष्ठभूत देखकर दुःखित मन वाले ब्राह्मण अती ही खेदित होकर और भद्रा भार्या सहित ऋषि को प्रसन्न करने के लिये कहने लगे कि अहो भगवन्! हमने जो आप की आशातना एवं निंदा की है यह हमारे अपराध को क्षमा करो॥३०॥

बालेहिं मूढेहिं अयाणएहिं, जं हीलिया तस्स खमाह भंते!।
महप्पसाया इसिणो हवंति, न हू मुणी कोवपरा हवंति॥३१॥

अहो भगवन्! मूढ अज्ञानी बालकों ने आप की जो हिलना निंदा की है उसके अपराध को आप क्षमा करें क्योंकि ऋषि प्रसन्न चित्त वाले होते हैं, मुनिश्वर को कदापि क्रोध होवे ही नहीं॥३१॥

पुव्विं च इण्हिं च अणागयं च, मणप्पदोसो न मे अत्थि कोई।
जक्खा हु वेयावडियं करेंति, तम्हा हु एए निहया कुमारा॥३२॥

इस समय मुनि के शरीर में वह यक्ष नहीं होने से शुद्धि में आये हुए हरकेशी मुनि ब्राह्मणों के ऐसे वचन सुनकर कहने लगे कि अहो विप्रो! मुझे अतीत, वर्तमान व अनागत काल में किसी पर द्वेष नहीं है। (तब ब्राह्मणों कहने लगे कि अहो महानुभाव! इन कुमारों की ऐसी खराब अवस्था किसने की? तब मुनि बोले) अहो महानुभाव! मेरी वैय्याकृत्य करने वाला यक्ष ने इन कुमारों को मारकर काष्ट जैसे कर दिया है॥३२॥

अत्थं च धम्मं च वियाणमाणा, तुब्भे न वि कुप्पह मूइपन्ना।
तुब्भं तुपाए सरणं उवेमो, समागया सव्वजणेण अम्हे॥३३॥

तब ब्राह्मण बोले अहो सूत्र अर्थ व क्षांति आदि धर्म के ज्ञाता व दीर्घ प्रज्ञावान महामुने! आपने कोप नहीं किया तो भी हम आपके चरणों का शरण अंगीकार करते हैं॥३३॥

अच्चेमु ते महाभाग!, न ते किंचि न अच्चिमो।
भुंजाहि सालिमं कूरं, नाणावंजणसंजुयं॥३४॥

अहो महानुभाव! हम आप के सब अंगोपांग पूजते हैं। आपके चरणरजादिक आदि कुछ भी अपूजनीय नहीं हैं। विविध प्रकार शाक सहित ये चावल पके हुए हैं, इन्हें ग्रहण कर आप भोगवे॥३४॥

इमं च मे अत्थि पभूयमन्नं, तं भुंजसू अम्ह अणुग्गहट्ठा।
बाढं त्ति पडिच्छइ भत्तपाणं, मासस्स ऊ पारणए महप्पा॥३५॥

हमारे पर अनुग्रह करके हमारे यहाँ बहुत अशनादि जो हुए हैं उसे आप ग्रहण करो, इस प्रकार उन ब्राह्मणों का अत्याग्रह देखकर महात्मा हरकेशी मुनि ने उनके वहाँ से मास खमण के पारने के लिये शुद्ध निर्दोष आहार पानी आदि ग्रहण किया॥३५॥

तहियं गंधोदय पुप्फवासं, दिव्वा तहिं वसुहारा य वुट्ठा।
पहयाओ दुंदुहीओ सुरेहिं, आगासे अहो! दाणं च घुट्ठं॥३६॥

उस समय देवता ने उस यज्ञ मंडप में सुगंधी जल, सुगंधी पुष्प व सुवर्ण द्रव्य की वृष्टि की और आकार में देवदुंदभी-वार्दित्र बजाकर अहो दान महादान यों उद्घोषणा की॥३६॥

सक्खं खु दीसइ तवोविसेसो, न दीसई जाइविसेस कोई।
सोवागपुत्त हरिएससाहूं, जस्सेरिसा इड्ढि महाणुभागा॥३७॥

ऐसा देखकर ब्राह्मण कहने लगे कि यह तप की महिमा प्रत्यक्ष में दिख रही है परंतु किसी

जाति की विशेषता नहीं दीखाती है! यह हरकेशी मुनि चांडाल कुल में उत्पन्न हुए हैं परंतु उनकी कैसी ऋद्धि व महिमा है!!॥३७॥

किं माहणा! जोइसमारभंता, उदएण सोहिं बहिया विमग्गहा?।
जं मग्गहा बाहिरियं विसोहिं, न तं सुइट्ठं कुसला वयंति॥३८॥

इस समय ब्राह्मणों को प्रतिबोध देने के लिये मुनि उपदेश करने लगे, अहो ब्राह्मणो! अग्नि का आरंभ क्यों करते हो? पानी से बाह्य शुद्धि की गवेषण क्यों करते हो? बाहर की विशुद्धि की जो गवेषण करते हैं उनको कुशल पुरुषों ने (तीर्थंकरों ने) अच्छा नहीं कहा है॥३८॥

कुसं च जूवं तणकट्ठमग्गिं, सायं च पायं उदगं फुसंता।
पाणाइं भूयाइं विहेडयंता, भुज्जो वि मंदा! पकरेह पावं॥३९॥

दर्भ, यज्ञ, स्तभं तृण, काष्ट व अग्नि इनको स्पर्श करते हो और संध्याकाल व प्रातःकाल यों दोनों समय पानी को स्पर्श करते हो, अर्थात् स्नान करते हो, इस तरह करने में प्राण व भूत की हिंसा करते हुए अहो मंद पुरुषों तुम पुनः पाप क्यों करते हो?॥३९॥

कहं चरे भिक्खु! वयं जयामो, पावाइं कम्माइं पुणोल्लयामो?।
अक्खाहि णे संजय! जक्खपूइया!, कहं सुइट्ठं कुसला वयंति?॥४०॥

तब ब्राह्मण कहने लगे कि अहो भिक्षु! हम किस तरह चलें और कैसी क्रिया करें किस से हमारे पाप कर्म दूर होवें? अहो यक्ष के पूज्यनीय मुनि! कुशल पुरुषों (तीर्थंकरों) ने अच्छा क्या कहा है सो कहो॥४०॥

छज्जीवकाए असमारभंता, मोसं अदत्तं च असेवमाणा।
परिग्गहं इत्थिओ माण मायं, एयं परिन्नाय चरंति दंता॥४१॥

तब हरकेशी मुनि कहने लगे कि षड्जीवनिकाय का आरंभ करें नहीं, मृषावाद बोले नहीं, चोरी करें नहीं, परिग्रह रखे नहीं, वैसे ही स्त्री सेवन करें नहीं। मान माया को ज्ञान परिज्ञा से जानकर प्रत्याख्यान परिज्ञा में त्याग कर दमितेन्द्रिय साधु विचरे॥४१॥

सुसंवुडा पंचहिं संवरेहिं, इह जीविंयं अणवकंखमाणा।
वोसट्ठकाया सुचिचत्तदेहा, महाजयं जयइ जन्नसिट्ठं॥४२॥

पांच संवर से पांच आश्रव का रूंधन करने वाले, असंयम रूप जीवितव्य नहीं वांछने वाले, ममता नहीं करने से काया का जिन्होंने त्याग किया है, शरीर की शुश्रूषा नहीं करने से शरीर को त्यागने वाले व महाकर्म रूप शत्रु का जीतने वाले ऐसे साधु जो है वहीं उत्तम यज्ञ करते हैं॥४२॥

के ते जोई? के व ते जोइठाणे? का ते सुया? किं व ते कारिसंगं?
एहा य ते कयरा सन्ति भिक्खू? कयरेण होमेण हुणासि जोइं?॥४३॥

तब विप्र कहने लगे कि अहो मुनि! तुम्हारे यज्ञ में कौन सी अग्नि है? अग्नि का स्थानक

कौन सा है? अग्नि में घृत का हनन करने का चाटुआ कौन सा है? इंधन कौन सा है? अग्नि को संधकनेका संधुकर्ण कौन सा है? शांति पाठ रूप मंत्र कौन सा है? और आहुति कौन सी है?॥४३॥

तवो जोई जीवो जोइठाणं, जोगा सुया सरीरं कारिसंगं।
कम्मेहा संजमजोगसंती, होमं हुणामि इसिणं पसत्थं॥४४॥

तब साधु बोले हमारे यज्ञ में तपरूप अग्नि है, जीवरूप अग्नि स्थान है, मन वचन काया के शुभ योगों की प्रवृत्ति रूप चाटू है, शरीर रूप कारिश (गोर) है, आठ कर्म रूप इंधन है, और संयम व्यापार रूप शांति पाठ है, महर्षियों ने इस प्रकार के यज्ञ की प्रंशसा की है, इससे हम भी इसका सेवन करते हैं॥४४॥

के ते हरए? के य ते संतितित्थे? कहिं सिणाओ व रयं जहासि?।
आइक्ख णे संजय! जक्खपूइया! इच्छामो नाउं भवओ सगासे॥४५॥

फिर ब्राह्मण बोले–अहो यक्ष के पूज्यनीय संयति? तुम्हारे करने का तलाब कौन सा है? संसार से तारने का पुण्य क्षेत्र तीर्थ कौन सा है? और किसी प्रकार स्नान करके अपना मैल दूर करते हो? हम इतना अर्थ आप के पास से जानना चाहते हैं सो कृपा करके कहो॥४५॥

धम्मे हरए बम्भे संतितित्थे, अणाविले अत्तपसन्नलेसे।
जहिंसिणाओ विमलो विसुद्धा सुसीइभूओ पजहामि दोसं॥४६॥

तब मुनि कहने लगे अहो विप्रो! अहिंसा धर्म रूप सरोवर है, ब्रह्मचर्य रूप पुण्यक्षेत्र तीर्थ है, मिथ्यादि मैल रहित शुक्लादि लेश्या है, ऐसे धर्म रूप सरोवर में स्नान करने से आत्मा कर्म मैल से कलंक रहित शुद्ध होवे, इस तरह मैं शीतलीभूत बना हुआ सब कर्म रूप दोष का त्याग करता हूँ॥४६॥

एयं सिणाणं कुसलेहिं दिट्ठं, महासिणाणं इसिणं पसत्थं।
जहिं सिणाया विमला बिसुद्धा, महारिसी उत्तमं ठाणं पत्ते॥४७॥ त्ति बेमि॥

॥ हरिएसिज्जं समत्तं॥१२॥

ऐसा स्नान तत्त्वज्ञानी ने कहा है, ऐसा उत्तम स्नान की ऋषिश्वरों ने प्रंशसा की है, ऐसे स्थान में स्नान करने से विमल विशुद्ध बनकर जीव उत्तम मोक्ष स्थान को प्राप्त होते हैं॥४७॥

ऐसा मैं कहता हूँ यों श्री सुधर्मा स्वामी अपने शिष्य श्री जम्बू स्वामी से कहा कि जिस प्रकार मैंने सुना है वैसे ही तुझे कहता हूँ।

हरिकेशीबल नामक बारहवाँ अध्ययन संपूर्ण हुआ।

१३

तेरसमं चित्त-संभूइज्जं अज्झयणं
चित्तसंभूति नामकं त्रयोदशमध्ययनम्

बारहवें अध्ययन में देवता के पूज्यनीय होने का कहा। साधक यदि निदान नहीं करे तो करनी का फल यथातथ्य प्राप्त कर सके और निदान करे तो तपस्या का फल गंवा देता है, इसलिये यह अध्ययन-निदान के संबंध में कहते हैं–

साकेतपुर नगर में चंद्रावतंसक राजा के पुत्र मुनिचंद्र ने सागरचंद्र नामक अनगार के पास दीक्षा अंगीकार की। विहार करते-करते मार्ग भूल जाने से वन में भ्रमण करते एकदा क्षुधा से पीड़ित बने हुए किसी गोकुल में आये। वहाँ चार गोपालकों ने भावपूर्वक मुनिराज को दूध दिया। मुनि का शांत वैराग्यमय उपदेश सुनकर चारों गोपालकों ने दीक्षा अंगीकार की। इनमें दो ने शुद्ध निर्मल संयम पाला और दो ने धर्म की दुगंछा की इसलिए वहाँ से च्यवकर प्रथम सोधर्मदेवलोक में देवतापने से उत्पन्न हुए। उसमें से जिन्होंने संयम की दुगंछा की थी, वे दो देव वहाँ से च्यवकर शंखपुर नगर में शांडिल की यशोमती के दासी के वहाँ पुत्ररूप में उत्पन्न हुए। वहाँ दोनों भाइयों को सर्प दंश होने से काल कर गये और कालिंजर पर्वत में मृग हुए। वहाँ पारधिने उनको मार डाला फिरसे वहाँ से गंगा नदी के किनारे दोनों हंस हुए। वहाँ से मरकर बानारसी नगरी में भूदत्त नामक चांडाल के वहाँ दोनों साथ ही पुत्ररूप में हुए। एक का नाम चित्त और दूसरे का नाम संभूति रखा। उस बनारसी नगरी में शंख राजा का नमुचि नामक प्रधान था। उसने राजा की स्त्री के साथ व्यभिचार सेवन किया। इससे राजा ने प्रधान को मारने के लिये भूदत्त चांडाल को कहा। भूदत्त ने नमुचि को अपने घर ले जाकर बोला यदि तुम मेरे घर में रहकर मेरे पुत्र को पढ़ाओ तो मैं तुम को जिंदा रखूं। प्रधान उसके घर में रहकर दोनों पुत्रों को पढ़ाने लगा। वहाँ चांडालनी के साथ उसने व्यभिचार का सेवन किया। यह देख दोनों लड़के बोले कि आप यहाँ से भाग जाओ, नहीं तो हमारा पिता आपको मार डालेगा। ऐसा सुन नमुचि हस्तीनापुर चला गया और सनत्कुमार चक्रवर्ती का प्रधान हुआ। इधर दोनों भाई कला में प्रवीण होने से नगर में गायन करने लगे। इनकी गायनकला पर मोहित होकर स्त्री-पुरुष आदि देखने आने लगे। वहाँ स्पर्शास्पर्श का कुछ भी विचार रहा नहीं। इससे नगर के प्रतिष्ठित गृहस्थों ने राजा से विनंति की और राजा ने उक्त दोनों भाईयों को गांव के बाहर रहने के लिये आज्ञा दी। वे वहाँ से तिरस्कार पाये हुए पर्वत पर से नीचे गिरकर अपघात करने गये। वहाँ किसी साधु मुनिराज का उपदेश सुन दीक्षा ली। वे दोनों साधु बनकर उग्र क्रिया करते हुए एकदा हस्तिनापुर नगर में आये। वहाँ नमुचि प्रधान ने उनको देखकर अपना अवगुण छिपाने के लिये, उनको गांव के बाहर निकाल दिया। दोनों ने गांव के बाहर जाकर संथारा किया। संभूति को क्रोधाग्नि प्रदीप्त होने से तेजो लेश्या प्रगट हुई और मुख में से ज्वाला की लपटें निकलने लगे। चित्त मुनि ने अपने हाथ से उनका मुख दबा रखा, इससे ज्वाला तो रुक गई, परन्तु धूम्र से सारा नगर आच्छादित

हो गया। यह देखकर सनत्कुमार भयभीत हुए और अपनी श्री देवी सहित तत्काल गाँव के बाहर आये साधु को नमस्कार कर अपराध की क्षमा मांगने लगे। उस समय श्री देवी ने अपना सिर नीचा नमाकर नमस्कार किया और उसके बाल में से बावना चंदन के तेल का एक बूंद संभूति मुनि के चरणों में गिरी। इससे शीतलता की अनुभूति होने से चक्षु खोल कर उसके सामने देखा, उसका रूप देख मोहित होकर निदान किया कि मेरे इस तप का फल होवे तो मुझे ऐसी ही स्त्री रत्न मिले। वहाँ से दोनों आयुष्य पूर्ण कर सौधर्म देवलोक में देवता हुए, वहाँ आयुष्य का क्षय होने से चित्त का जीव, परिमताल नगर में किसी इब्भरो के वहाँ पुत्रपने उत्पन्न हुआ, और संभूति का जीव कंपिलपुर नगर में ब्रह्मभूति राजा की चुलणी रानी की कुक्षि में चौदह स्पप्न देकर पुत्रपने उत्पन्न हुआ। इसका नाम ब्रह्मदत्त दिया। ब्रह्मभूति राजा को असाध्य रोग होने से अपने चारों मित्रों को राज्य दिया और कहा कि जब यह ब्रह्मदत्त वय योग्य होवे तो उसे राज्य देना। चारों मित्रों में से प्रथम दीर्घ राजा राज्य की रक्षा करता रहा। वह चुल्लनी रानी में लुब्ध बना। ब्रह्मदत ने यह जाना और एकदा काक व हंसनी का जोड़ा देखकर दीर्घ राजा के सन्मुख बोला कि रे काक! तूने बहुत अयोग्य कार्य किया है, इससे तुझे मृत्यु दंड दूंगा। दीर्घ राजा यह समझ गया और चुल्लनी रानी से जाकर बोला कि तेरा पुत्र अपने को निःसंदेह दुःखदायी होगा, इसलिये मैं तो मेरे स्थान जाता हूँ। चुल्लनी मोह मुग्ध बनकर बोली कि मैं ब्रह्मदत्त को मार डालूंगी, आप चिंता मत करो। फिर रानी ने एक लाक्षागृह बनाया और ब्रह्मदत्त की शादी करवाकर वहाँ ही सुलाकर उसे जलाने का निश्चय किया। यह बात प्रधान द्वारा उसने जानी और गाँव के बाहर किसी स्थान से एक सुरंग खुदवाकर लाख के महल में की, और प्रधान ने अपने पुत्र वरधनु को ब्रह्मदत्त के पास रखा। ब्रह्मदत्त के महल में सोने जाने पर चुल्लनी रानी ने महल में अग्नि लगवा दी। तब प्रधान पुत्र उसे जागृतकर बोला कि सावधान होवो! महल चारों तरफ जल रहा है, अब क्या करना? प्रधान पुत्र ने कहा कि आप यहाँ पर लात का प्रहार करो जहाँ सुरंग है, यहाँ से अपने सुरक्षित निकल सकेंगे, कुमार ने वैसे ही किया और सुरंग में से होते हुए दूर निकल गये। दीर्घ राजा को इस बात की मालुम होने से उसको मारने के लिये कितने ही प्रयत्न किये परंतु कुछ उपाय चला नहीं। देशाटन में ब्रह्मदत्त ने अनेक राजपुत्रियों के साथ पाणिग्रहण किया और बहुत राजाओं की सेना सहित कंपिलपुर आया। दीर्घ राजा को मारकर अपना राज्य लिया बाद में चक्रादि चौदह रत्न की प्राप्ति हुई, छः खण्ड राज्य का विजित किया। एकदा नाटक देखते-देखते देवलोक में देखा हुआ नाटक का स्मरण हुआ। यों विचारते वहाँ जातिस्मरण ज्ञान हुआ अपने पूर्व के पांच भव देखे परंतु पांच भव तक साथ रहने वाले भाई को इस समय साथ देखा नहीं। अब इनकी खोज करने के लिये आधा पद बनाया, **'गोप दासौ मृगौ हंसौ मत्तंगामंरो यथा'** ऐसा पद बोलकर बोला कि इसका जो कोई पूरा करेगा उसे आधा राज्य दूँगा। उस समय चित्त मुनि अवधिज्ञान से अपने भाई को जानकर उनसे मिलने के लिये उग्र विहार करते हुए कंपिलपुर नगर के बाहर उद्यान में आकर विराजमान हुये थे। वहाँ चउस चलाने वाला वैसे वहीं आधा श्लोक बोलता हुआ चउस चलाता था, सो उस मुनि ने सुना और शेष पद पूर्ण कर दिया उत्तरार्ध **"एषा नौ षष्ठिका जातिरन्योऽन्याभ्यां वियुक्तयोः"**।।१।। ऐसा उत्तरार्ध पद सुनकर वह चउस चलाने वाला चक्रवर्ती के पास गया और पद सुनाया सुनकर चक्रवर्ती यह आश्चर्य चकित हुआ कि क्या मेरा भाई ऐसा कृषिकार हुआ है। यों वह मूर्च्छित हो कर पृथ्वी पर गिर गया, तब लोग उसे पकड़ कर मारने लगे। वह बोला कि गाँव के बाहर कोई साधु है उसने मुझे यह कहा है। ऐसा सुन चक्रवर्ती सावधान हुए और चतुरंगिनी सेना सहित साधुजी के दर्शन के लिये निकले। वहाँ जाकर कहने लगे कि मेरा पूरा श्लोक करने वाले को आधा राज्य दूंगा, ऐसा मेरा नियम है, इस तरह आपने यह श्लोक पूर्ण किया है, इससे आप मेरा आधा राज्य लो, ऐसा सुन मुनि व राजा का परस्पर जो संवाद हुआ है, वह आगे इस अध्ययन में सूत्र द्वारा कहते हैं।

जाईपराजिओ खलु, कासि नियाणं तु हत्थिणपुरम्मि।
चुलणीए बंभदत्तो, उववन्नो पउमगुम्माओ॥१॥
कंपिल्ले संभूओ, चित्तो पुण जाओ पुरिमतालम्मि।
सेट्ठिकुलम्मि विसाले, धम्मं सोऊण पव्वइओ॥२॥

पूर्व भव में जाति से पराभव पाये हुए हस्तिनापुर नगर के बाहर संभूति मुनि ने निदान किया वहाँ से आयुष्य पूर्ण कर प्रथम देवलोक में नलिनीगुल्म विमान में उत्पन्न हुआ और वहाँ से च्यवकर संभूति का जीव कंपिलपुर नगर में ब्रह्मभूति राजा की चुल्लनी रानी की कुक्षि में ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती रूप में उत्पन्न हुआ और चित्त का जीव पूरिमताल नगर में इभशेठ के वहाँ पुत्ररूप में उत्पन्न हुआ। वह स्थविरों के पास से धर्म श्रवण कर दीक्षित हुआ॥१॥२॥

कंपिल्लम्मि य नयरे, समागया दो वि चित्त-संभूया।
सुह-दुक्खफलविवांग, कहेंति ते एगमेक्कस्स॥३॥

कंपिलपुर नगर के उद्यान में चित्त व संभूति ये दोनों भाई परस्पर मिले और सुख-दुःख के जो फल भोगे उसकी परस्पर वार्तालाप करने लगे॥३॥

चक्कवट्टी महिड्ढीओ, बंभदत्तो महायसो।
भायरं बहुमाणें, इमं वयणमब्बवी॥४॥

महाऋद्धि का धारक बारहवां ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती अपने भाई से बहुत मान पूर्वक इस प्रकार बोलने लगा॥४॥

आसिमो भायरा दोवि, अन्नमन्नवसाणुगा।
अन्नमन्नमणुरत्ता, अन्नमन्नहिएसिणो॥५॥

अहो भ्रात! पिछले के भव में हम दोनों भाई थे, हम दोनों साथ रहते थे, परस्पर दोनों में प्रीति बहुत थी और एक दूसरे का हित चाहने वाले थे॥५॥

दासा दसण्णे आसी[१], मिया कालिंजरे नगे[२]।
हंसौ मयंगतीराए[३], सोवागा कासिभूमिए[४]॥६॥

पहले भव में दशारण देश में हम दोनों दास थे। दूसरे भव में कालिंजर पर्वत में मृग हुए। तीसरे भव में मृतगंगा किनारे पर हम दोनों हंस हुए और चौथे भव में काशी नगर में चांडाल हुए॥६॥

देवा य देवलोगम्मि[५], आसि अम्हे महिड्ढिया।
इमा णो छट्ठिया जाई, अन्नमन्नेण जा विणा॥७॥

पांचवें भव में देवलोक में महाऋद्धि के धारक हम दोनों देव हुए, और इस छठे भव में हम अलग-अलग हुए॥७॥

कम्मा निदाणप्पगडा, तुमे राय! विचिंतिया।
तेसिं फलविवागेण, विप्पओगमुवागया॥८॥

तब चित्त मुनि कहने लगे–हे राजन! सनत्कुमार नामक चौथे चक्रवर्ती की सुनन्दा स्त्री रत्न को देखकर भोग भोगवने के विचार से तुमने निदान रूप कर्म किया, इसलिये हम दोनों अलग-अलग उत्पन्न हुये हैं, और वियोगी बने॥८॥

सच्च-सोयप्पगडा, कम्मा मए पुरा कडा।
ते अज्ज परिभुंजामो, किं नु चित्ते वि से तहा॥९॥

तब ब्रह्मदत्त बोला कि अहो मुने! मैंने गत जन्म में संयमाचरण कर माया शल्य सहित सत्यवंत बनकर पवित्र तपादि कर्तव्य किये हैं, और इसका फल यह प्रत्यक्ष मुझे मिल रहा है। परन्तु मेरे साथ मेरे जैसी ही तुमने क्रिया की तो उसका फल कहाँ गया? अर्थात् गत जन्म में भिक्षुक थे और वर्तमान में भी भिक्षुक हैं॥९॥

सव्वं सुचिण्णं सफलं नराणं, कडाण कम्माण न मोक्खो अत्थि।
अत्थेहिं कामेहिं य उत्तमेहिं, आया ममं पुण्णफलोववेए॥१०॥

तब चित्त मुनि कहने लगे–हे ब्रह्मदत्त मनुष्य जो-जो पुण्य करते हैं उनका फल उनके अवश्य उदय में आते हैं क्योंकि किये हुए कर्म को भोगवे बिना मोक्ष नहीं हैं, द्रव्य से तथा शब्दादि काम भोग से मेरी आत्मा भी पुण्य फलवाला है, यह तू अवश्य जान॥१०॥

जाणासि संभूय! महाणुभागं, महिड्ढियं पुण्णफलोववेयं।
चित्तं पि जाणाहि तहेव रायं! इड्ढी जुई तस्स वि य प्पभूया॥११॥

हे संभूति! (पूर्व जन्म के नाम से) जिस प्रकार तू तेरी आत्मा को महात्म्यपना, महर्द्धिकपना व पुण्यफल युक्त जानता है, वैसे ही हे राजन! चित्त मुनि को तू जान, अर्थात् मुझे भी ऋद्धि द्युति कांति वगैरह बहुत मिली थी॥११॥

महत्थरूवा वयणऽप्पभूया गाहाऽणुगीयानरसंघमज्झे।
जं भिक्खुणो सीलगुणोववेया, इह जयंते समणोमि जाओ॥१२॥

अहो राजन! एकदा हमारे वहाँ कोई साधु पधारे उनके दर्शन के लिये गये मनुष्य के समुदाय में वचन थोड़ा व अर्थ बहुत ऐसी गाथा उन साधु ने कही, ऐसी गाथा में साधु ज्ञान दर्शन चारित्रादि गुण सहित जिन वचन में उद्यमवन्त होवे। ऐसा मैं सुनकर वैरागी हो संयति बना॥१२॥

उच्चोअए महु कक्के य बंभे, पवेइया आवसहा य रम्मा।
इमं गिहं चित्तधणपभूयं, पसाहि पंचालगुणोववेयं॥१३॥
नट्टेहिं गीएहिं य वाइएहिं, नारीजणाइं परिचारयंतो।
भुंजाहि भोगाइं इमाइं भिक्खू! मम रोयई पव्वज्जा हु दुक्खं॥१४॥

तब ब्रह्मदत्त बोला–अहो चित्त! उच्च उदय, मध, कर्क और ब्रह्म इन पांच नाव के अत्यन्त

रमणीय देवता के बनाये हुए महल हैं, उनमें रहकर बहुत द्रव्य का व्यय कर। बत्तीस प्रकार के नाटक सहित छः राग तीस रागनी उनपच्चास वादिंत्र व स्त्रियों के वृन्द से परिवृत हुए आप पांचाल देश का राज्य करो, यही बात मुझे पसंद है और साधुपना तो मुझे दुःखदायी दिखता है॥१३-१४॥

तं पुव्वनेहेण कयाणुरागं, नराहिवं कामगुणेसु गिद्धं।
धम्मस्सिओ तस्स हियाणुपेही, चित्तो इमं वक्कमुदारहित्था॥१५॥

पूर्व भव के स्नेह से राग करने वाले व काम भोग में मूर्च्छित ऐसे नराधिप ब्रह्मदत्त को उसका हित देखकर धर्म में आसक्त चित्त मुनि इस प्रकार बोलने लगे॥१५॥

सव्वं विलवियं गीयं, सव्वं नट्टं विडंबियं।
सव्वे आभरणा भारा, सव्वे कामा दुहावहा॥१६॥

हे राजन्! सब गीत गान विलाप समान है और सब नृत्य विडम्बना समान है सब आभरण भारभूत हैं और सब काम भोग दुःख के दाता हैं॥१६॥

बालाभिरामेसु दुहावहेसु, न तं सुहं कामगुणेसु रायं!।
विरत्तकामाण तबोधणाणं, जं भिक्खुणं सीलगुणे रयाणं॥१७॥

हे राजन्! काम भोग से विरक्त बने हुए तप रूप वाले व शील गुण में रक्त साधु को जो सुख मिलता है वह सुख अज्ञानियों को अभिराम परंतु दुःख देने वाले ऐसे काम भोग में नहीं मिलता है॥१७॥

नरिंद! जाई अहमा नराणं सोवागजाई दुहओ गयाणं।
जहिं वयं सव्वजणस्स वेस्सा वसीअ सोवागनिवेसणेसु॥१८॥

अहो नरेन्द्र! मनुष्य जाति में सबसे नीच जाति चांडाल की है वहाँ हम दोनों उत्पन्न हुए थे और वहाँ सब लोक को निन्दनीक व अप्रतीतकारी बने हुए अपने रहते थे॥१८॥

तीसे य जाईइ उ पावियाए, वुच्छा मु सोवागनिवेसणेसु।
सव्वस्स लोगस्स दुगुंणिज्जा, इहं तु कम्माइं पुरेकडाइं॥१९॥

पाप करने वाले ऐसे चांडाल के घर में रहे हुए सब लोगों को निन्दनीय हुए थे अब इस भव में जो उत्तम जाति व ऋद्धि पाये हैं वह पूर्व भव में शुभ कर्म किया उसका (संयम का) ही फल है॥१९॥

सो दाणि सिं राय! महाणुभागो, महिड्ढिओ पुण्णफलोववेओ।
चइत्तु भोगाइं असासयाइं, आदाणहेउं अभिणिक्खमाहि॥२०॥

हे राजन्! अधुना तू महा महात्म्य वाला, महा ऋद्धिवाला व पुण्यफल सहित है। इससे इन अशाश्वत कामभोगों का त्याग कर मोक्ष के हेतु से तू निकल अर्थात् चारित्र अंगीकार कर॥२०॥

इह जीविए राय! असासयम्मि, धणियं तु पुण्णाइं अकुव्वमाणो।
से सोयई मच्चुमुहोवणीए, धम्मं अकाऊण परम्मि लोए॥२१॥

हे राजन्! मनुष्य का जीवितव्य अशाश्वत है, इसमें धर्म अथवा पुण्य नहीं करने वाला मृत्यु मुख में पड़ा हुआ अथवा दूसरे लोक में गया हुआ पश्चाताप करेगा॥२१॥

जहेह सीहो व मियं गहाय, मच्चू नरं नेइ हु अंतकाले।
न तस्स माया व पिया व भाया, कालम्मि तम्मसंहारा भवंति॥२२॥

जैसे सिंह मृग को पकड़कर मार डालता है वैसे ही काल मनुष्य को अंत काल में ले जाता है अर्थात् मारता है। उस मरण समय पर उसके माता, पिता, भ्राता आदि कोई भी उसको बचा नहीं सकते हैं॥२२॥

न तस्स दुक्खं विभयंति नाईओ, न मित्तवग्गा न सुया न बंधवा।
एक्को सयं पच्चणुहोइ दुक्खं, कत्तारमेवा अणुजाइ कम्मं॥२३॥

ज्ञाति, मित्र वर्ग पुत्र व बांधव आदि कोई भी दुःख का विभाग नहीं कर सकते हैं, परन्तु दुःख का अनुभव करने वाला जीव अकेला ही है और कर्म करने वाले के साथ ही कर्म जाते हैं॥२३॥

चिच्चा दुपयं च चउप्पयं च, खेत्तं गिहं धण धन्नं च सव्वं।
सकम्मबीओ अवसो पयाइ, परं भवं सुंदरं पावगं वा॥२४॥

मनुष्यादि द्विपद, गवादि चतुष्पद, खुली भूमि क्षेत्रादि। ढकी भूमि सो घरादि, धन, व धान्य इन सबको छोड़कर अपने कर्म के वश पड़ा हुआ प्राणी अच्छे या बुरे कर्म अनुसार अच्छी व बुरी गति में जाता है॥२४॥

तं एक्कगं तुच्छसीररगं से, चिईगयं, दहिय उ पावगेण।
भज्जा य पुत्तो वि वा, नायओ य दायारमण्णं अणुसंकमंति॥२५॥

जब जीव रहित शरीर को अग्नि की चिता में डालकर भस्म कर देते हैं तब भार्या, पुत्र ज्ञाति आदि दूसरे दातार (पोषक) के पीछे जाते हैं, अर्थात् एक को छोड़कर दूसरे का सेवन करते हैं॥२५॥

उवणिज्जई जीवियमप्पमायं, वण्णं जरा हरइ नरस्स रायं!।
पंचालराया! वयणं सुणाहि, मा कासि कम्माइं महालयाइं॥२६॥

अहो राजन! जो आयुष्य निरंतर क्षय होता है, उसे अविचय मरण कहते हैं। वैसे मरण से जीव सदैव मरते हैं और वर्णादिक को वृद्धावस्था हरण करती है अहो पांचाल देश के अधिपति! ऐसे वचन सुनकर महा आरंभ और रौद्र कृत्य का आचरण तू मतकर॥२६॥

अहं पि जाणामि जहेह साहू! जं मे तुम साहसि वक्कमयं।
भोगा इमे संगकरा हवंति, जे दुज्जया अज्जो! अम्हारिसेहिं॥२७॥

तब ब्रह्मदत्त राजा कहने लगा कि अहो चित्त साधु! आप मुझे जो उपदेश करते हो वह अच्छी तरह मैं जानता हूँ, ये भोग मुझे प्रतिबंध करने वाले व अंतराय देने वाले हैं। परंतु मेरे जैसे अज्ञानी को यह काम भोग छोड़ना अति दुष्कर हैं॥२७॥

हत्थिणपुरम्मि चित्ता! दट्ठूण परवइं महिड्ढियं।
कामभोगेसु गिद्धेणं, निदाणमसुहं कडं॥२८॥

अहो चित्त! हस्तिनापुर नगर में महर्द्धिक नरपति को देखकर मैंने कामभोग में गृद्ध बनकर निदान किया-असुख किया॥२८॥

तस्स मे अपडिकंतस्स इमं एयारिसं फलं।
जाणमाणो वि जं धम्मं कामभोगेसु मुच्छिओ॥२९॥

इसकी आलोचना प्रतिक्रमण मैंने नहीं किया जिसका यह फल मैं भोग रहा हूँ और धर्म को जानता हुआ भी काम भोग में मूर्छित हो रहा हूँ॥२९॥

नागो जहा पंकजलावसन्नो, दट्ठु थलं नाभिसमेइ तीरं।
एवं वयं कामगुणेसु गिद्धा, न भिक्खुणो मग्गमणुब्बयामो॥३०॥

जैसे हाथी पानी व कीचड़ युक्त तलाब में फंसा हुआ किनारा देख सकता है परन्तु वहाँ पर नहीं पहुँच सकता है वैसे ही मैं काम भोग में लुब्ध बना हुआ संयम योग को प्राप्त नहीं कर सकता हूँ॥३०॥

अच्चेइ कालो तूरंति राइओ, न यावि भोगा पुरिसाण णिच्चा।
उविच्च भोगा पुरिसं चयंति, दुमं जहा खीणफलं व पक्खी॥३१॥

तब चित्त मुनि कहने लगे अहो राजन्! रात्रि दिन रूप काल शीघ्र ही चला जाता है और पुरुषों के भोग नित्य नहीं है। वे जैसे फल रहित वृक्ष का पक्षी त्याग करते हैं, वैसे ही भोग भी पुरुषों को त्याग करते हैं॥३१॥

जइ तं सि भोगे चइउं असत्तो, अज्जाइं कम्माइं करेहि रायं!।
धम्मे ठिओ सव्वपयाणुकंपी, तो होहिसि देवो इओ विउव्वी॥३२॥

हे राजन्! यदि तू भोग का त्याग करने में असमर्थ हो तो जीवदयादि आर्य कर्म का आचरण कर। गृहवास रूप धर्म में रहकर भी सब जीवों की दया करनें वाला होगा तो भी यहाँ से च्यवकर परलोक में देवता होगा॥३२॥

न तुज्झ भोगे चइऊण बुद्धी, गिद्धो सि आरंभ-परिग्गहेसु।
मोहं कओ एत्तिओ विप्पलावो, गच्छामि रायं! आमंतिओ सि॥३३॥

जब राजा को प्रतिबोध लगा नहीं तब मुनि कहने लगे कि–हे राजन्! भोग का त्याग करने की तेरी बुद्धि नहीं है और आरंभ परिग्रह में गृद्ध बना हुआ है। इससे मैंने तुम्हारे साथ यह जो प्रलाप किया वह मिथ्या किया। अब अहो राजन्!! मैं यहाँ से चला जाता हूँ॥३३॥

पंचालराया वि य बंभदत्तो, साहुस्स तस्स वयणं अकाउं।
अणुत्तरे भुजिय कामभोगे अणुत्तरे सो नरए पविट्टो॥३४॥

पांचाल देश का अधिपति ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती चितमुनि के वचन का अनादर कर और अनुत्तर

काम भोग भोगकर सातवीं नरक के अनुत्तर अप्रतिष्ठान नरकावास में उत्कृष्ट तैतीस सागरोपम की स्थितिरूप में उत्पन्न हुआ॥३४॥

ब्रह्मदत्त जब परिभ्रमण दूसरे देशों में कर रहा था तब उसने एक ब्राह्मण को वचन दिया था। वह ब्राह्मण अब वहाँ आया और उनके राज्य में प्रतिदिन एक घर में भोजन करने को कहा। राजा ने पहले दिन उस ब्राह्मण के अत्याग्रह से अपने वहाँ अपने खाने का क्षीरादि व भोजन उस ब्राह्मण को व उनके कुटुम्ब को खिलाया। परन्तु उनका वे पाचन वे कर सके नहीं और महादुःख पाए, तीन-चार दिन बाद होश में आये तब ब्राह्मण ने विचारा कि ब्रह्म दत्त ने हमको भ्रष्ट करने के लिये ऐसा किया है इससे इनके वैर का बदला अवश्य लेना है। ऐसे विचार से उससे वैर लेने के लिये खोज कर रहा था। एकदा वह जंगल में गया था वहाँ उस ब्राह्मण ने किसी भील को कंकर मार वृक्ष के अनेक पत्र का छेदन करते देखा। उससे उसके पास जाकर ब्राह्मण ने कहा कि जब ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती बाहर निकले तब तू इस तरह कंकर मारकर उनकी दोनों आंखों फोड़ डाल। उसने वह स्वीकार किया और वैसे ही ब्रह्मदत्त की आंखें भी फोड़ डालीं, इससे राजपुरुषों ने उस भील को पकड़ा और मारा। तब उसने सब ब्राह्मण की बात कह दी। इस पर से राजा को बहुत क्रोध आया और ब्राह्मणों का संहार करने की आज्ञा दी वैसे ही सदैव पांचसौ ब्राह्मणों की आँखें अपने पांव नीचे कुचल डालने का निश्चय किया। प्रधान समय सूचक था इसलिए वह आँखों के स्थान गुंदा ला देता था और उनको वह सदैव कुचल डालता था। ऐसे अशुभ अध्यवसाय सहित वह काल के अवसर में कालकर सातवीं नरक में अप्रतिष्ठान नरकावास में उत्पन्न हुआ।

चित्तो वि कामेहिं विरक्तकामो, उदत्तचरित्त-तवो महेसी।
अणुत्तरं संजम पालइत्ता अणुत्तरं सिद्धिगइं गओ॥३५॥ त्ति बेमि॥
चित्त-संभूइज्जं समत्तं॥१३॥

चित्त मुनि काम भोग से विरक्त बनकर उत्तम चारित्र व तप अंगीकार कर महर्षि बनकर व प्रधान संयम पालकर अनुत्तर सिद्ध गति में गये॥३५॥ यह मैं कहता हूँ यों श्री सुधर्मा स्वामी अपने शिष्य श्री जम्बू स्वामी से कहते हैं।

चित्त व संभूति नाम का तेरहवां अध्ययन संपूर्ण हुआ।

१४

चउदसमं उसुयारिज्जं अज्झयणं
इक्षुकार नामकं चतुर्दशमध्ययनम्

तेरहवें अध्ययन में निदान करने का फल कहा। चौदहवें अध्ययन में निदान नहीं करने वाले का फल कहते हैं। गत अध्ययन में चार गोपालक ने मुनि के पास दीक्षा अंगीकार की थी जिसमें से दो साधु ने धर्म की दुगंछा की इससे चित्त व संभूति हुए, जिनका कथन तो कहा। अब जो दो गोपाल शुद्ध चारित्र संयम पाल रहे थे वे वहाँ से काल कर देवलोक में गये और देवलोक से च्यवकर क्षितिप्रतिष्ठ नगर में किसी प्रधान श्रेष्ठि के वहाँ दोनों पुत्ररूप में उत्पन्न हुए। वहाँ पर दूसरे चार व्यवहारी के साथ मित्रता हुई और छः ही जनों ने साथ दीक्षा ली। उन छः में से चार ने माया कपट रहित संयम पाला और दो ने माया कपट का सेवन किया वे छः ही काल के अवसर में काल कर सौधर्म देवलोक में नलिनी गुल्म विमान में देवतापने उत्पन्न हुए। गोपालक के दो जीव को छोड़कर बाकी के चार जीव वहाँ से च्यवकर इक्षुकार नगर में एक इक्षुकार राजा हुआ, दूसरा कमलावती रानीरूप में हुआ। तीसरा भृगपुरोहित हुआ और चौथा भृगु पुरोहित की स्त्रीरूप में हुआ। भृगु पुरोहित को पुत्र नहीं होने से अहर्निश चिंता में रहते थे। अब इधर देवलोक में रहे हुए दो देवता का आयुष्य छः मास शेष रह गया तब अवधि ज्ञान से अपने उत्पत्ति स्थान को देखा वे दोनों वहाँ से निकल कर भृगु पुरोहित के पास आकर कहने लगे कि तुम चिंता मत करो, तुम को दो पुत्र होंगे परन्तु बाल्यावस्था से ही संयम अंगीकार करेंगे, तुम उनको बचपन से ही साधु की संगति करवाकर ज्ञानाभ्यास करवाना। यों कहकर दोनों देव स्वस्थान गये। कालांतर से उनको पुत्र हुए। तब भृगु पुरोहित ने विचार किया कि इनको साधु का दर्शन मात्र नहीं होने देना चाहिये, जिससे उनको साधु बनने का विचार ही नहीं आ सकेगा। ऐसा विचार कर एकांत में चोर पल्ली में जाकर रहे और पुत्रों को समझाया कि जो पुरुष मुखपर वस्त्र का खण्ड बांधते हैं। हाथ में चमरी रखते हैं, नीचे देखकर चलते हैं ऐसे जो होते हैं वे घातक होते हैं। वे बालकों को पकड़कर ले जाते हैं और मार डालते हैं। ऐसा समझाने से वे बालक अज्ञानता से साधु से दूर ही रहने लगे। एकदा वे दोनों बालक वन में खेलने गये थे उस समय कोई साधु मार्ग भूलने से उस चोर पल्ली में आ गये। पुरोहित ने उनको आहार पानी दिया और कहा कि हमारे पुत्र साधु के द्वेषी हैं वे आपको देखकर परीषह देंगे, इसलिये आप यहाँ रहना नहीं, परंतु आगे पधारकर आहार पानी करना साधु ने ऐसा सुन आगे विहार किया। इधर दोनों भाई वन में से खेलकर घर की तरफ आ रहे थे, वे साधु को देखकर भयभीत होके वृक्ष पर चढ़ गये। वे साधु भी उस वृक्ष के नीचे आये और चारों और देखा कि यहाँ कोई नहीं है इससे उस ही वृक्ष के नीचे आहार पानी करने बैठे। वहाँ वस्त्रादिका की। सब प्रतिलेखना की यह दोनों कुमारों ने नीचे दृष्टि रखकर देखा परंतु उनके पास न तो शस्त्र दृष्टिगत हुए और न मांसादि देखा और आहार देखते हैं तो अपने घर का ही भोजन मालूम हुआ। यह देख उनका भय दूर हो गया और ऐसा रूप पूर्व परिचित है ऐसा विचार करने

लगे विचार करते-करते जाति स्मरण ज्ञान प्राप्त हुआ और अपना पूर्व भव देखकर वैरागी बनकर नीचे उतरे। मुनिराज को नमस्कार कर अपना सब वृत्तांत सुनाया और कहा कि आप इक्षुकार नगर में ठहरना, हम माता-पिता की आज्ञा लेकर वहाँ आयेंगे और दीक्षा लेंगे। मुनि ने कहा जैसे तुम को सुख होवे वैसा करो। दोनों कुमार वहाँ से घर आये और माता-पिता से संवाद किया। उक्त चार और राजा व रानी यों छः ही ने संयम लिया। इसका कथन आगे सूत्र द्वारा कहते हैं–

देवा भवित्ताण पुरे भवम्मी, केई चुया एगविमाणवासी।
पुरे पुराणे उसुयारनामे, खाए समिद्धे सुरलोयरम्मे॥१॥

पूर्व भव में देवता बनकर नलिनीगुल्म विमानवासी अनेक देवता वहाँ से च्यवकर बहुत पुराना व ऋद्धिवंत देवलोक समान रमणीय व दर्शनीय ऐसे इक्षुकार नगर में उत्पन्न हुए॥१॥

सकम्मसेसेण पुराकएणं, कुलेसु दग्गेसु य ते पसूया।
निव्विण्ण संसारभया जहाय, जिणिंदमग्गं सरणं पवन्ना॥२॥

पूर्व भव में किये हुए शुभ कर्म भोग बने शेष रह जाने से उत्तम कुल में उत्पन्न हुए और संसार के भय से उद्विग्न बने हुए भोगों को छोड़कर तीर्थंकर प्रणीत मार्ग का शरण अंगीकार किया॥२॥

पुम्मत्तमागम्म कुमार दो वी, पुरोहिओ तस्स जसा य पत्ती।
विसालकित्ती य तहोसुयारो, रायऽत्थ देवी कमलावई य॥३॥

दो ब्राह्मण के पुत्र, एक पुरोहित और उसकी यशा भार्या ये चार ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हुए और विस्तीर्ण कीर्ति वाले इक्षुकार राजा व कमलावती रानी ये दोनों क्षत्रिय कुल में उत्पन्न हुए। यों छः जीव इक्षुकार नगरी में पूर्व पुण्योदय से उत्पन्न हुए॥३॥

जाई-जरा-मच्चुभयाभिभूया, बहिंबिहारभिनिविट्ठचित्ता।
संसारचक्कस्स विमोक्खणट्ठा, दट्ठूण ते कामगुणे विरत्ता॥४॥

प्रथम दो पुत्र को कैसे वैराग्य हुआ सो कहते हैं। जन्म जरा व मृत्यु के भय से अभिभूत बने हुए व मोक्ष में जिन्होंने चित्त स्थापित किया है वैसे दोनों कुमार साधु को देखकर संसार चक्र से अपने आत्मा को मुक्त करने के लिये काम भोगों से विरक्त हुए॥४॥

पियपुत्तगा दोन्नि वि माहणस्स, सकम्मसीलस्स पुरोहियस्स।
सरित्तु पोराणिय तत्थ जाइं, तहा सुचिण्णं तव-संजमं च॥५॥

अपने यज्ञ तर्पणादि षट् कर्म में सावधान भृगु पुरोहित के दोनों प्रिय पुत्र को जाति स्मरण ज्ञान होने से पूर्व भव में निदान रहित जो तप संयम का आचरण किया था उसका स्मरण हुआ॥५॥

ते कामभोगेसु असज्जमाणा, माणुस्सएसुं जे यावि दिव्वा।
मोक्खाभिकंखी अभिजायसड्ढा। तातं उवागम्म इमं उदाहु॥६॥

वे मनुष्य व देवलोक के काम भोगों में अनासक्त बने हुए, मोक्ष की अभिलाषा वाले व तत्त्व की श्रद्धा करने वाले ऐसे दोनों पुत्र पिता के पास आकर इस प्रकार कहने लगे॥६॥

असासयं दट्ठु इमं बिहारं, बहुअंतरायं न य दीहमाउं।
तम्हा गिहंसि न रइं लभामो, आमंतयामो चरिस्सामु मोणं॥७॥

अहो तात! यह मनुष्य जन्म अशाश्वत है और इसमें भी रोगादिक अनेक प्रकार की अंतराय आती है और आयुष्य भी लम्बा नहीं है इससे हमको घर में रहते किसी प्रकार का आनंद नहीं मिलता है अहो तात! हम आपको कहते हैं कि–अब हम चारित्र अंगीकार करेंगे॥७॥

अह तायगो तत्थ मुणीण तेसिं, तवस्स वाघायकरं वयासी।
इमं वयं वेयविदो वयंति, जहा न होई असुयाण लोगो॥८॥

ऐसा पुत्रों का वचन सुनकर उन भाव मुनियों के तप में व्याघात होवे वैसा वचन पुरोहित बोलने लगा। जिसको पुत्र नहीं है उसको स्वर्ग की गति नहीं है।[1] ऐसा अपने वेद में कहा है॥८॥

अहिज्ज वेए परिविस्स विप्पे, पुत्ते परिट्ठप्प गिहंसि जाया।
भोच्चाण भोए सह इत्थियाहिं, आरण्णगा होइ मुणी पसत्था॥९॥

अहो पुत्रो! वेद का अभ्यास कर ब्राह्मणों को भोजन कराकर, घर में ज्येष्ठ पुत्र को छोड़कर और स्त्रियों के साथ भोग भोग कर फिर तुम अटवी में रहने वाले प्रशस्त मुनि बनो॥९॥

सोयग्गिणा आयगुणिंधणेणं, मोहाणिला पज्जलणाहिएणं।
संतत्तभावं परितप्पमाणं, लालप्पमाणं बहुहा बहुं च॥१०॥

वह पुरोहित आत्मा के रागादिक गुणरूप इंधन वाली व मोहरूप पवन से प्रज्वलित शोक रूप अग्नि से सर्वथा प्रकार से तप्त बना हुआ व मोहनीय कर्म के वश हो विलाप करता हुआ उक्त प्रकार से अति दीन वचन बोला॥१०॥

पुरोहियं तं कमसोऽणुणतं, निमंतयंतं च सुए धणेणं।
जहक्कमं कामगुणेहिं चेव, कुमारगा ते पसमिक्ख वक्कं॥११॥

अपने दोनों पुत्र को धनादिक से काम भोगों की आमंत्रणा करते हुए पुरोहित को वे दोनों कुमार इस प्रकार विचार कर बोलने लगे॥११॥

वेया अहीया न हवन्ति ताणं, भुत्ता दिया णिति तमं तमेणं।
जाया य पुत्ता न हवन्ति ताणं, को णाम ते अणुमण्णेज्ज एयं?॥१२॥

अहो तात! वेदों के अभ्यास करने से जीवों को शरण नहीं होता है। ब्राह्मणों को भोजन कराने से मिथ्यात्व की प्राप्ति होती है। वैसे ही पुत्रादिक की प्राप्ति होने से भी त्राण शरण नहीं होता है अर्थात् यह इस लोक व परलोक यों दोनों लोक से मुक्त नहीं कर सकते हैं इससे अहो तात! हम इस का कैसे स्वीकार करे?॥१२॥

---

१. अपुत्रस्य गतिर्नास्ति स्वर्गो नैवच॥ तस्मात् पुत्र मुखेद्रष्टवा पश्चादाधर्मसमाचरेत्॥१॥ अर्थात् अपुत्रीय को स्वर्ग नहीं मिल सकता है, इसीलिये पुत्र का मुख देखकर धर्माचरण करना।

खणमित्तसुक्खा बहुकालदुक्खा, पकामदुक्खा अनिकामसुक्खा।
संसारमोक्खस्स विपक्खभूया, खाणी अणत्थाण उ कामभोगा॥१३॥
परिव्वयंते अणियत्तकामे, अहो य राओ परितप्पमाणे।
अन्नप्पमत्ते घाणप्पेसमाणे, पप्पोति मच्चुं पुरिसे जरं च॥१४॥

अहो तात! ये काम भोग क्षणमात्र सुख देने वाले व बहुत काल दुःख देने वाले हैं। इससे इन में सुख तो अल्प है और दुःख बहुत है और भी जीव को मुक्ति में नहीं जाने देने से ये काम भोग अनर्थ की खदान है और प्राप्त काम भोगों से नहीं निवर्तने वाला अहोरात्रि परिताप सहन करता घबराता हुआ इधर-उधर भटकता ही रहता है स्वजनादिक में आसक्त बना हुआ व धन की गवेषणा करने वाला पुरुष मृत्यु व जरा को प्राप्त होता है॥१३-१४॥

इमं च मे अत्थि इमं च नत्थि, इमं च मे किच्च इमं अकिच्चं।
तं एवमेवं लालाप्पमाणं, हरा हरंति त्ति कहं पमाओ?॥१५॥

अहो पिता जी! इस जगत में तृष्णा से पीड़ित हुए जीव संलाप करते हैं कि–यह सुर्णादि मेरे हैं परन्तु रत्नादि नहीं है। यह गृह वगैरह मैंने कराये हैं परन्तु महल वगैरह नहीं कराये हैं। ऐसे करने वाले का आयुष्य रात्रि दिन रूप चोर हरण करके उसे परलोक में ले जाता है तो ऐसा जानकर क्या धर्म में प्रमाद करना उचित है? अर्थात् प्रमाद नहीं करना॥१५॥

धणं पभूयं सह इत्थियाहिं, सयणा तहा कामगुणा पगामा।
तवं कए तप्पइ जस्स लोगो, त सव्व साहीणमिहेव तुब्भं॥१६॥

तब भृगु पुरोहित कहने लगा। अहो पुत्र! लोग जिस की प्राप्ति के लिये तप करते हैं वह सब तुम को यहाँ पर ही मिल गया है। जैसे कि तुम्हारे पास तो बहुत धन है। स्त्रियाँ भी हैं, बांधव प्रमुख स्वजन भी हैं और यथेच्छ कामभोग भी हैं॥१६॥

धणेण किं धम्मधुराहिगारे सयपण वा कामगुणेहिं चेव?।
समणा भविस्सामु गुणोहधारी, बहिविहारा अविगम्म भिक्खं॥१७॥

तब पुत्र बोलने लगे कि अहो तात्! जैसे बैल के स्कंध पर धूरा रखने से वह भार का वहन कर सकता है वैसे ही धर्म रूप भार वहन करने में धन, स्वजन अथवा काम भोग से क्या होता है? इससे अप्रतिबंध विहारी बनकर भिक्षा से आजीविका करने वाले हम श्रमण बनेंगे॥१७॥

जहा य अग्गी अरणीअसंतो, खीरे धयं तेल्लमहा तिलेसु।
एवमेव जाया! सरीरंसि सत्ता, सम्मुच्छई नासइ नावचिट्ठे॥१८॥

अब पिता परलोक की नास्ति रूप वचन कहने लगा। अहो पुत्र! जैसे अरणी में अविद्यमान अग्नि उत्पन्न होती है जैसे दूध में अविद्यमान घृत उत्पन्न होता है और तिल में अविद्यमान तेल उत्पन्न होता है वैसे ही स्त्री-पुरुष के संयोग से पांच भूत मिल कर अविद्यमान जीव उत्पन्न होता है और इस शरीर का नाश होने से जीव का भी नाश हो जाता है॥१८॥

नो इंदियग्गेज्झ अमुत्तभावा, वि य होइ निच्चो।
अज्झत्थहेउं नियमऽस्स बंधो, संसारहेउं च वयंति बंधं॥१९॥

तब पुत्र इस का उत्तर देने लगे–जीव आत्मा अरूपी होने से इन्द्रियों का ग्राह्य नहीं है। वह अमूर्त व शाश्वत है यह आत्मा मिथ्यात्वादि हेतु से बांधता है और उन कर्मों के फल को भोगने के लिये चतुर्गति रूप संसार में परिभ्रमण करता है॥१९॥

जहा वयं धम्ममयाणमाणा पावं पुरा कम्ममकासि मोहा।
ओरूब्भमाणा परिरक्खियंता, तं नेव भुज्जो वि समायरामो॥२०॥

जिस प्रकार हम इतने दिन धर्म से अनजान होने से तुम्हारे बंधन में बंध रहे थे, तुमने हम को रोक रखा थे और अब तक हम जो पाप कर्म कर रहे थे उन पाप कर्मों का अब हम आचरण नहीं करेंगे॥२०॥

अब्भाहयम्मि लोगम्मि सव्वओ परिवारिए।
अमोहाहिं पडंतीहिं गिहंसि न रइं लभे॥२१॥

यह मनुष्य लोक पीड़ित हो रहा है, यह लोक चारों ओर घिरा हुआ है और इसमें अमोघधारा वाली शस्त्र की वृष्टि हो रही है, ऐसे लोक में रहने से हमे आनंद नहीं मिलता है॥२१॥

केण अब्भाहओ लोगो? केण वा परिवारिओ?।
का वा अमोहा वुत्ता? जाया! चिंतावरो हुमे॥२२॥

अब पिता कहने लगा कि अहो पुत्र! किससे लोक पीड़ित हो रहा है, किससे लोक घिरा हुआ है, कौन से शस्त्र की धारा अमोघ पड़ रही है? अहो पुत्र! मैं चिंतातुर हो रहा हूँ, इसलिये मुझे कहो॥२२॥

मच्चुणाऽब्भाहओ लोगो, जराए परिवारिओ।
अमोहा रयणी वुत्ता, एवं ताय! वियाणह॥२३॥

तब पुत्र कहने लगे कि मृत्यु से लोक पीड़ित हो रहा है, और जरा (वृद्धावस्था) से घिरा हुआ है, रात्रि दिन रूप तीक्ष्ण शस्त्र की अमोघधारा पड़ रही है, अहो तात् ऐसे तुम जानो॥२३॥

जा जा वच्चइ रयणी, न सा पडिनियत्तई।
अहम्मं कुणमाणस्स, अफला जंति राइओ॥२४॥

जो रात्रि दिन जाते हैं वे पीछे नहीं आते है, उससे अधर्म करने वाले के रात्रि दिन निष्फल जाते हैं॥२४॥

जा जा वच्चइ रयणी, न सा पडिनियत्तई
धम्मं च कुणमाणस्स, सफला जंति राइओ॥२५॥

जो जो रात्रि दिन जाते हैं, वे पीछे नहीं आते हैं, इससे धर्म करने वाले के रात्रि दिन सफल हो जाते हैं॥२५॥

एगओ संवसित्ता णं, दुहओ सम्मत्तसंजुया।
पच्छा जाया! गमिस्सामो, भिक्खमाण कुले कुले॥२६॥

तब पिता कहने लगा कि–अधुना तुम हम सब सम्यक्त्व सहित देशवृत्तिपना अंगीकार कर गृहवास में रहें, और वृद्धावस्था प्राप्त होने पर संयम अंगीकार करके प्रत्येक कुल में भिक्षा की याचना करते हुए विचरेंगे॥२६॥

जस्सऽत्थि मच्चुणा सक्खं, जस्स वऽत्थि पलायणं।
जो जाणे न मरिस्सामि, सो हु कंखे सुए सिया॥२७॥

तब पुत्र कहने लगे अहो तात् जिसकी मृत्यु के साथ मित्राचारी है, जो मृत्यु आने पर भाग सकता हैं और जानता होवे कि मैं मरूंगा ही नहीं वही भविष्य काल में मैं धर्म करूंगा ऐसा कह सके॥२७॥

अज्जेव धम्मं पडिवज्जयामो, जहिं पवण्णा न पुणब्भवामो।
अणागयं नेव य अत्थि किंचि, सद्धाखमं णे विणइत्तु रागं॥२८॥

इसलिये अहो पिताजी! हमारी मृत्यु से न तो प्रीति है, न भागने की शक्ति है, और न हम अमर हैं, जो विषय सुख पहले नहीं पाया होवे तो उनसे प्रेम करें, परंतु विषय सुख हम को पहले अंनती बार मिल चुके हैं इससे हमारा कुछ भी कल्याण हुआ नहीं, इससे इनको छोड़कर जिस धर्म को अंगीकार करने से पुनर्भव होवे नहीं वैसा धर्म हम आज ही अंगीकार करेंगे॥२८॥

पहीणपुत्तस्स हु नत्थि वासो, वसिट्ठि! भिक्खायरियाए कालो।
साहाहि रूक्खो लभई सुमहिं, छिन्नाहि साहाहि तमेव खाणुं॥२९॥

पुत्रों को इस प्रकार विरक्त बने हुए जानकर वैरागी बना हुआ पुरोहित अपनी स्त्री से कहने लगा–हे वाशिष्ठे! (वशिष्ठ गोत्र धारण करने वाली) मुझे व्रत ग्रहण कर भिक्षा वृत्ति करने का समय वर्तता है, क्योंकि शाखा प्रतिशाखा से वृक्ष सुशोभित दीखता है और शाखा न होने से ठूंठ दीखता है, वैस ही पुत्र रहित मुझे गृहवास में रहना उचित नहीं है॥२९॥

पंखाविहूणो व्व जहेह पक्खी भिच्चविहूणो व्व रणे नरिंदो।
विवण्णसारो वणिओ व्व पोए, पहीणपुत्तो मि तहा अहं पि॥३०॥

जैसे पांख बिना पक्षी सुशोभित नहीं दीखता है संग्राम के अग्र में रहा हुआ राजा सेवक बिना चिंताग्रस्त बना हुआ नहीं शोभता है, और द्रव्य बिना का व्यापारी जहाजों में नहीं शोभता है, वैसे ही मैं भी पुत्र बिना गृहवास में रहा चिंताग्रस्त होने से नहीं शोभता हूँ॥३०॥

सुसंभिया कामगुणा इमे ते, संपिंडिया अग्गरसप्पभूया।
भुंजामु ता कामगुणे पगामं, पच्छा गमिस्सामु पहाणमग्गं॥३१॥

तब पुरोहित की स्त्री कहने लगी (पुत्र जाते होवे तो जाने दो परंतु) तुमने यह कामभोग भोगवने योग्य शयनासन वस्त्र भूषणादि का संग्रह कर ढेर लगा रखे हैं, वैसे ही विविध प्रकार

के पकवान, रसवती, पाक, आदि का संग्रह किया है, इसको अच्छी तरह भोगकर फिर जब भुक्त भोगी बनेंगे और वृद्धावस्था प्राप्त होगी तब हम दोनों दीक्षा रूप उत्तम मार्ग अंगीकार करेंगे॥३१॥

भुत्ता रसा भोइ! जहाइ णे वओ, न जीविट्ठा पयहामि भोए।
लाभं अलाभं च सुहं च दुक्खं, संचिक्खमाणो चरिस्सामि मोणं॥३२॥

तब पुरोहित बोला–अहो भद्रे! जिस वय में भोग भोगवे हैं वह अवस्था अब चली जाती है, मैं असंयम रूप जीवितव्य के लिये इन भोगों का त्याग नहीं करता हूँ परंतु संयम पालने के लिये इन भोगों का त्याग कर लाभ अलाभ, सुख अथवा दुःख जो होवे उनमें समान भाव रखता हुआ संयमाचरण करूंगा॥३२॥

मा हु तुमं सोयरियाण सम्भर, जुण्णो व हंसो पडिसोत्तगामी।
भुंजाहि भोगाइ मए समाणं, दुक्खं खु भिक्खाचरिया विहारो॥३३॥

तब यशा भार्या बोली जैसे वृद्ध हंस प्रतिश्रोत (नदी के पूर सम्मुख) में चलता हुआ बड़ा दुःखी होकर पश्चाताप करता है वैसे ही तुम दीक्षा लेकर शोक करोगे कि मैंने दीक्षा वृत्ति ही अंगीकार की। इससे अच्छा तुम मेरे साथ भोग भोगो क्योंकि अप्रतिबन्ध विहार रूप भिक्षाचर्या का व्रत अति कठिन है॥३३॥

जहा य भोई! तणुयं भुयंगो, निम्मोयणिं हिच्च पलेइ मुत्तो।
एमेए जाया पयहंति भोए, ते हं कहं नाणुगमिस्समेक्को?॥३४॥

तब पुरोहित कहने लगा जैसे सर्प अपने शरीर पर की कांचली का त्याग कर चला जाता है वैसे ही अपने दोनों पुत्र सब भोगों का त्याग कर जा रहे हैं तो मैं अकेला उनके अनुगामी क्यों नहीं होऊं॥३४॥

छिंदित्तु जालं अबलं व रोहिया, मच्छा जहा कामगुणे पहाय।
धोरेयसीला तवसा उदारा, धीरा हु भिक्खायरियं चरंति॥३५॥

जैसे रोहित जाति वाला मत्स्य अपनी तीक्ष्ण पूंछ से जीर्ण जाल तोड़कर चला जाता है, वैसे ही वे दोनों पुत्र मोह रूपी जाल का छेदन कर जाते हैं। और धोरी बैल के समान तप संयम रूप महाभार उठाने में प्रवर्तते हैं तो क्या मैं इनके जितनी भी दृढ़ता नहीं कर सकूंगा? अर्थात् मैं भी व्रत अंगीकार करूंगा॥३५॥

नहेव कुंचा समइक्कमंता, तयाणि जालाणि दलित्तु हंसा।
पलेंति पुत्ता य पई य मज्झं, ते हं कहं नाणुगमिस्समेक्का?॥३६॥

अब यशा भार्या भी वैरागीनी बन विचारने लगी, जैसे क्रोंच पक्षी व हंस पक्षी जाल को तोड़कर आकाश में विचरते हैं और बहुत देशों का उल्लंघन करते हैं वैसे ही मेरे दोनों पुत्र व पति मोह माया रूप जाल का छेदन कर देशांतर में विचरने वाले बनते हैं तो मुझे अकेली घर में रहकर क्या करना है मुझे उनके साथ ही जाना उचित है॥३६॥

पुरोहियं तं ससुयं सदारं, सोच्चाऽभिनिक्खम्म पहाय भोए।
कुडुंबसारं विउलुत्तमं च, रायं अभिक्खं समुवाय देवी॥३७॥

पुत्र के पास से धर्म सुनकर पुरोहित उनके दो पुत्र और भार्या ये चारों भोगों को छोड़कर दीक्षा अंगीकार करते हैं और इनका धन इक्षुकार राजा अपने राज्य भंडार में लाता है, ऐसा सुनकर कमलावती रानी राजा के पास आकर कहने लगी॥३७॥

वंतासी पुरिसो रायं! न सो होइ पसंसिओ।
माहणेण परिच्चत्तं, धणं आदाउमिच्छसि॥३८॥

अहो राजन्! जो पुरुष वमन किया हुआ आहार ग्रहण करे वह प्रशंसनीय होवे नहीं ऐसे ही आप ब्राह्मण के त्यागे हुये धन की इच्छा करते हैं सो आपको उचित नहीं है॥३८॥

सव्वं जगं जई तुहं, सव्वं वावि धणं भवे।
सव्वं पि ते अपज्जत्तं, नेव ताणाय तं तव॥३९॥

कदाचित् जगत् का सब दव्य तुमको मिल जाय तो भी धनादिक से तुम्हारी तृष्णा पूर्ण हो सकती नहीं है, ऐसे ही हे राजन्! उक्त धनादि तुमको दुःख से बचाने में समर्थ नहीं है॥३९॥

मरिहिसि रायं! जया तया वा, मणोरमे कामगुणे पहाय।
एक्को हु धम्मो नरदेव! ताणं, न विज्जए अन्नमिहेह किंचि॥४०॥

अहो राजन्! ये मनोहर काम भोगों का त्याग कर किसी समय तुम भी मर जाओगे। अहो! नरदेव धर्म के सिवाय अन्य कोई भी तुम को शरण-भूत नहीं होंगे॥४०॥

नाहं रमे पक्खिणि पंजरे वा, संताणछिन्ना चरिसामि मोणं।
अकिंचणा उज्जुकडा निरामिसा, परिग्गहारंभनियत्तदोसा॥४१॥

(तब राजा बोला कि जब तुझे इतना ज्ञान है तो इस राज्य में क्यों बैठी है, तब रानी बोली) हे राजन्! जैसे पिंजरे में रही हुई पक्षिणी आनन्द नहीं मानती है, वैसे ही मैं भी तेरे राज्य में रही हुई आनन्द नहीं मानती हूँ अब मैं आरम्भ परिग्रह का त्याग कर सरल कृत्य करने वाली, विषय कषाय रूप मांस रहित, किसी वस्तु की इच्छा नहीं करती हुई स्नेह रूप जाल का छेदन कर संयम अंगीकार करूंगी॥४१॥

दवग्गिणा जहाऽरणे, डज्झमाणेसु जंतुसु।
अन्ने सत्ता पमोयंति, राग-दोसवसं गया॥४२॥
एवमेव वयं मूढा कामभोगेसु मुच्छिया।
डज्झामाणं न बुज्झामो, राग-दोसग्गिणा जगं॥४३॥

जिस प्रकार अटवी में दावाग्नि से जलते हुए जन्तुओं को देखकर उससे दूर रहे हुये अन्य जीव राग द्वेष होनेसे आनंदित होते हैं वैसे ही काम भोग में गृद्ध बने हुए अपने मूढ़ राग द्वेष अग्नि से जलता हुआ जगत को नहीं जानता है, और प्रतिबंध में बन्ध रहे हैं॥४२-४३॥

भोगे भोच्चा वमित्ता य, लहुभूयविहारिणो।
आमोयमाणा गच्छन्ति, दिया कामकमा इव॥४४॥

परंतु जो विवेकी होते हैं वे जिस प्रकार पक्षी आकाश में स्वेच्छाचारी होते हैं, वैसे ही वे भी भोगते हुए भोगों का त्यागकर तथाविध साधु के आचार में हर्षित हुए अप्रतिबंध विहार करते हैं॥४४॥

इमे य बद्धा फंदंति, मम हत्थऽज्जमागया।
वयं च सत्ता कामेसु, भविस्सामो जहा इमे॥४५॥

ये शब्दादिक काम भोग की सामग्री तुम्हारे व हमारे हाथ में जो आई है और उसमें आसक्त बने हुए हैं परन्तु ये अस्थिर हैं अर्थात् इनको अवश्य त्यागना पड़ेगा, इसलिये जिस प्रकार पुरोहित आदि ने किया वैसे ही हमको करना उचित है॥४५॥

सामिसं कुललं दिस्स, बज्झमाणं निरामिसं।
आमिसं सव्वमुज्झिता, विहरिस्सामो निरामिसा॥४६॥

प्रत्यक्ष में देखो जो मांस का टुकड़ा सहित गीध पक्षी होता है उसके पीछे अन्य कितने पक्षी लगते हैं और दुःखी करते हैं परन्तु मांस रहित पक्षी को कोई दुःखी नहीं करता है वैसे ही विषय कषाय रूप मांस को हम छोड़कर विचरेंगे॥४६॥

गिद्धोवमा उ नच्चा णं, कामे संसारवड्ढणे।
उरगो सुवण्णपासे व्व, संकामाणो तणुं चरे॥४७॥

इन गीध पक्षी के दृष्टान्त से कामभोगों को संसार की वृद्धि करने वाले जानकर जैसे सर्प गरुड़ पक्षी से डरता हुआ चलता है वैसे ही हम भी पाप से डरते हुए चलेंगे॥४७॥

नागो व्व बंधाणं छित्ता, अप्पणो वसहिं वए।
एयं पत्थं महारायं! उसुयारि! त्ति मे सुयं॥४८॥

अहो इक्षुकार राजन्! मैंने सुना है कि जैसे हस्ती अपना बंधन तोड़कर विंध्याचल अरण्य में जाकर स्वतंत्रता पूर्वक गमन करता है, वैसे ही धीर पुरुष मोह रूप शृंखला को तोड़कर मोक्ष रूप विंध्याचल अटवी में सुख पूर्वक विचरते हैं, अहो राजन्! ऐसा तुम भी करो॥४८॥

चइत्ता विउलं रज्जं, कामभोगे य दुच्चए।
निव्विसया निरामिसा, निन्नेहा निप्परिग्गहा॥४९॥

कमलावती रानी के ऐसे वचन सुनकर इक्षुकार राजा प्रतिबोध पाया, और राज्य व बहुत कठिनता से त्याग सके ऐसे काम भोगों को त्यागकर विषयवासना, धन रूप ऐश्वर्य, स्नेह व परिग्रह रहित बने॥४९॥

सम्मं धम्मं वियाणित्ता, चिच्चा कामगुणे वरे।
तवं पगिज्झऽहक्खायं, घोरं घोरपरक्कमा॥५०॥

घोर पराक्रम करने वाले उक्त छः ही पुरुषों ने धर्म जानकर, व श्रेष्ठ कामभोगों का त्यागकर तप व घोर व्रत का आचरण किया॥५०॥

एवं ते कमसो बुद्धा, सव्वे धम्मपरायणा।
जम्म-मच्चुभउव्विग्गा, दुक्खस्संतगवेसिणो॥५१॥

इस तरह वे छः ही जीव क्रमशः बोध प्राप्त कर धर्म में परायण बने, जन्म मरण के भय के उद्विग्न बने और दुःख के अंत की गवेषणा करने वाले हुए॥५१॥

सासणे विगयमोहाणं, पुव्विं भावणभाविया।
अचिरेणेव कालेण, दुक्खस्संतमुवागया॥५२॥

जिन शासन में मोह रहित पुरुषों, अपने पूर्व जन्म को जाति स्मरण ज्ञान से जानकर भावित आत्मा होने से वैराग्य पाये और बहुत अल्प समय में दुःखों का अंत किया मोक्ष पाये॥५२॥

राया सह देवीए, माहणो य पुरोहिओ।
माहणी दारगा चेव, सव्वे ते परिनिव्वुड॥५३॥ त्ति बेमि॥

१. इक्षुकार राजा, २. कमलावाती रानी, ३. भृगु पुरोहित, ४. यशा भार्या, ५. देवभद्र और ६. यशोभद्र ये दोनों कुमार, यों छः ही जीव कर्म रूप दावानल बुझाकर शीतली भूत बने॥५३॥

यों श्री सुधर्मा स्वामी अपने शिष्य श्री जम्बू स्वामी से कहने लगे कि अहो जम्बू! जैसा मैंने सुना है वैसे ही तुझे कहता हूँ।

इक्षुकार नामक चौदहवां अध्ययन संपूर्ण हुआ।

१५

पण्णरसमं सभिक्खुयं अज्झयणं (भिक्षु के लक्षण)
सभिक्षु नामकं पञ्चदशमध्ययनम्

चौदहवें अध्ययन में निदान रहित क्रियानुष्ठान करने को कहा, ऐसी करनी साधु की होती है, इसलिये इस १५वें अध्ययन में साधु का आचार कहते हैं–

मोणं चरिस्सामि समिच्च धम्मं, सहिए उज्जकडे निदाणछिन्ने।
संथवं जहिज्ज अकामकामे, अण्णाएसी परिव्वए स भिक्खू॥१॥

जो कोई शुद्धमन से श्रुत धर्म व चारित्र धर्म अंगीकार करके अन्य साधुओं के साथ सरल स्वभावी, व निदान रहित बनकर सांसारिक स्वजन संबंधियों का परिचय का त्याग करें और कामाभिलाषा रहित अज्ञात कुल में आहार की गवेषणा करता हुआ विचरे वही भिक्षु कहलाता है॥१॥

राओवरयं चरेज्ज लाढे, विरए वेयवियाऽऽयरक्खिए।
पन्ने अभिभूय सव्वदंसी, जे कम्हिंवि न मुच्छिए स भिक्खू॥२॥

प्रधान साधु रागद्वेष से निवृत्त कर विचरे, सूत्र का ज्ञाता, बनकर अपनी आत्मा को दुर्गति से बचाने वाला, प्रज्ञावान, परीषह जीतकर सर्वदर्शी बने हुये जो कोई किसी वस्तु में मूर्च्छित होवे नहीं वही भिक्षु है॥२॥

अक्कोस-वहं विइत्तु धीरे, मुणी चरे लाढे निच्चमायगुत्ते।
अव्वग्गमणे असंपहिट्ठे, जे कसिणं अहियासए स भिक्खू॥३॥

देशांतर में विहार करते किसी स्थान पर कोई आक्रोश वचन से निर्भत्सना करें तथा कोई प्रहार करें तब अपने कर्मोदय हुए हैं ऐसा जानकर उन कर्मों को क्षय करने का उत्तम अवसर प्राप्त हुआ जानकर क्रोध करे नहीं, असंयम से आत्मा को गोपावे, अपना मन स्थिर रखें, संसार के झगड़े में पड़े नहीं, विषमवाद करें नहीं, वैसे ही अहंकार करे नहीं, आकुल-व्याकुल होवे नहीं, इस तरह जो समभाव से सब आक्रोशकारी वचन व ताड़न सहन करे वही साधु कहलाता है॥३॥

पंतं सयणसणं भइत्ता, सीउण्हं विविहं च दंस-मसगं।
अव्वग्गमणे असंपहिट्ठे, जे कसिणं अहियासए स भिक्खू॥४॥

निस्सार (बचे हुये) शयनासान का सेवन करके शीत ऊष्ण व विविध प्रकार दंश मच्छर के परीषह को आकुल-व्याकुल चित्त रहित व विषाद रहित हो सहन करे वहीं भिक्षु कहलाता है॥४॥

नो सक्कियमिच्छई न पूयं, नो वि य वंदाणगं कुओ पसंसं?।
से संजए सुव्वए तवस्सी, सहिए आयगवेसए स भिक्खू॥५॥

जो सत्कार, पूजा, वंदना और प्रंशसा की वाञ्छा करे नहीं और संयति सुव्रती तपस्वी ज्ञान क्रिया सहित व आत्मगवेष होवे वही भिक्षु कहलाता है॥५॥

जेण पुणो जहाइ जीवियं, मोहं वा कसिणं नियच्छई।
नर-नारिं पजहे सया तवस्सी, न य कोऊहलं उवेइ स भिक्खू॥६॥

जिन स्त्री पुरुषों की संगति करने से संयम रूप जीवितव्य की घात होवे तथा कषाय नो कषाय रूप संपूर्ण मोहनीय कर्म की उत्पत्ति होवे उन पुरुषों का परिचय करे नहीं वैसे ही संसार अवस्था में भोगवे हुए भोगों का स्मरण भी करे नहीं, वही भिक्षु कहलाता है॥६॥

छिन्नं सरं भोममन्तलिक्खं, सुविणं लक्खण-दंड-वत्थुविज्जं।
अंगवियारं सरस्स विज्जयं, जे विज्जहिं न जीवई स भिक्खू॥७॥

१. वस्त्रादि वस्तु अथवा अंगोपांग छेदन की विद्या, २. पक्षियों अथवा मनुष्य के स्वर जानने की विद्या, ३. भूकम्प अथवा भूमि के लक्षण जानने की विद्या, ४. खगोल (ग्रहचारादि) विद्या, ५. शुभाशुभ स्वप्न के फल जानने की विद्या, ६. स्त्री पुरुष आदि के शुभाशुभ लक्षण जानने की विद्या, ७. काष्ट के लक्षण अथवा काष्ट से अन्य वस्तु बनाने की विद्या, ८. घरादि बनाने की विद्या, ९. अंगस्फुरण का ज्ञान, १०. सातस्वर से गायन करने की विद्या, इत्यादि पापविद्या से जो कोई अपनी आजीविका करे नहीं उसे साधु कहना॥७॥

मंतं मूलं विविहं वेज्जचिंतं, वमण-विरेयण-धूम-नेत्त-सिणाणं।
आउरे सरणं तिगिच्छियं च, तं परिण्णाय परिव्वए स भिक्खू॥८॥

१. व्यंतरादिक के मंत्र, २. जड़ी बूटी आदि मूल, ३. औषधोपचार, ४. वमन कराने का औषधि, ५. विरेचन जुलाब का औषधि, ६. धूम्रपान करने की विद्या अथवा गुदा द्वार को धूम्र देकर रोगादि निवृत्ति के उपाय, ७. वस्त्रादिक को धूम्र देना ८. आंख का अंजन करना, ९. पुत्रादिक के लिये स्नान कराना इत्यादि वैद्यक शास्त्र का अभ्यास करना, रोगादिक से पीड़ित हो माता-पिता आदि का स्मरण करना, इतने कर्मों का प्रत्याख्यान करके जो कोई संयम मार्ग में प्रवर्ते उसे साधु कहना॥८॥

खत्तिय-गण-उग्ग-रायपुत्ता, माहण भोइय विविहा य सिप्पिणो।
नो तेसिं वयइ सिलोग-पूयं, तं परिन्नाय परिव्वए स भिक्खू॥९॥

क्षत्रिय के समूह, कोतवाल, राजापुत्र, ब्राह्मण, राजा, प्रधान, भोगी पुरुष और चित्रकारादि विविध प्रकार की कला में कुशल पुरुषों की प्रशंसा व पूजा करना अनर्थ का कारण जान जो निवृत्त हो उसे साधु कहना॥९॥

गिहिणे जे पव्वइयण दिट्ठा, अपव्वइएण व संथुया हविज्जा।
तेसिं इहलोइयफलट्ठा, जो संथवं न करेइ स भिक्खू॥१०॥

दीक्षा अंगीकार किये पहले किसी गृहस्थ को देखे होवे अथवा दीक्षा लिये बाद किसी गृहस्थ को देखे होवे तो उनका परिचय इस लोक के फल की प्राप्ति के लिये जो करे नहीं उसे साधु कहना॥१०॥

सयणासण-पाण-भोयणं, विविहं खाइम-साइमं परेसिं।
अदए पडिसोहिए नियंठे, जे तत्थ न पउस्सई स भिक्खू॥११॥

शयन, आसन, भोजन व विविध प्रकार के खादिम स्वादिम की गृहस्थ के पास याचना करे और वह देवे नहीं तो उस पर जो द्वेष करे नहीं, उसे साधु कहना॥११॥

जं किंचिआहारपागं विविहं, खाइम-साइमं परेसिं लद्धुं।
जो तं विविहेण नाणुकंपे, मण-वय-कायसुसंवुडे स भिक्खू॥१२॥

जो गृहस्थ के घर से अशन पानी पकवान मुखवास विविध प्रकार के ग्रहण करके अपने स्वधर्मी साधुओं का संविभाग करे मन वचन व काया के योगों को वैसा ही आश्रव तथा कषाय उत्पत्ति के स्थान को सम्यक् प्रकार से गोप कर रखे उसे साधु कहना॥१२॥

आयामगं चेव जवोदणं च, सीयं सोवीर-जवोदगं च।
नो हीलए पिण्डं नीरसं तु, पंतकुलाई परिव्वए स भिक्खू॥१३॥

जो ओसामन में के दाने, जब का भोजन, ठंडा आहार, आंतप्रांत रुक्षशुष्क यव का भोजन कांजी आदि का पानी इत्यादि निरस आहार पानी प्राप्त होने पर उसकी निंदा करे नहीं उसे साधु कहना॥१३॥

सद्दा विविहा भवंति लोए, दिव्वा माणुस्सगा तिरिच्छा।
भीमा भयभेरवा उराला, जो सोच्चा ण वहिज्जई स भिक्खू॥१४॥

इस लोक में अनेक प्रकार के द्वेष उत्पन्न करने वाले दुःखकारी महा कठिन व अत्यंत रौद्र ऐसे देव मनुष्य तिर्यंच के शब्द सुनकर जो धर्म ध्यान से चलित होवे नहीं उसे साधु कहना॥१४॥

वायं विविहं समिच्च लोए, सहिए खेयाणुगए य कोवियप्पा।
पन्ने अभिभूय, सव्वदंसी उवसंते अविहेडए स भिक्खू॥१५॥

इस लोक में तर्क शास्त्र, व्याकरण शास्त्र आदि पठन करने वाले बहुत पाखंडी लोग शास्त्र के परमार्थ के अजान हो परस्पर अनेक प्रकार का विवाद करते हैं। ऐसे क्लेश में नहीं पड़ते हुए उनके तरफ से जो परीषह होवे उसे समभाव से सहे परंतु किसी प्रकार से उनको पीड़ा उत्पन्न करे नहीं, स्वतः के आत्मा को आगम का ज्ञाता मानकर सदैव उपशांत बनकर सदैव ज्ञान दर्शन व चारित्र में रमण करे उसे साधु कहना॥१५॥

असिप्पजीवी अगिहे अमित्ते, जिइंदिए सव्वओ विप्पमुक्के।
अणुक्कसाई लहुअप्पभक्खी, चिच्चा गिहं एगचरे स भिक्खु॥१६॥ त्ति बेमि॥
॥ सभिक्खुयऽज्झयणं पण्णरसमं समत्तं॥१५॥

सर्वथा प्रकार से घर को ममत्व का त्याग कर बाह्य आभ्यंतर परिग्रह से मुक्त बनकर चित्रकार प्रमुख की कला से उपजीविका करे नहीं और अल्प भोजनादि से इन्द्रियों का जय कर कषायों को उपशांत कर अभिमान व राग द्वेष रहित जो विचरे उसे साधु कहना॥१६॥

ऐसा मैं कहता हूँ। यों श्री सुधर्मा स्वामी अपने शिष्य श्री जम्बू स्वामी से कहने लगे कि जैसे मैंने श्री श्रमण भगवान महावीर स्वामी से सुना है वैसे ही तुझे कहा है।

भिक्षु के धर्म नामक पन्द्रहवां अध्ययन संपूर्ण हुआ।

१६

सोलसमं बंभचेरसमाहिट्ठाणां अज्झयणं
ब्रह्मचर्य समाधि स्थानक नामकं षोडशमध्ययनम्
(दस ब्रह्मचर्य समाधि स्थान)

सुयं मे आउसं! तेणं भगवया एवमक्खायं–इह खलु थेरेहिं भगवंतेहिंदस बंभचेरसमाहिट्ठाणा पण्णत्ता, जे भिक्खू सुच्चा निसम्म संजमबहुले, संवरबहुले, समाहिबहुले गुत्ते गुत्तिंबंभयारी सयाअप्पमत्ते विहरेज्जा॥ कयरे खलु ते थेरेहिं भगवंतेहिं दसबंभचेर समाहि ठाणा पण्णत्ता, जे भिक्खू सोच्चा निसम्म संजम बहुले संवर बहुले समाहि बहुले गुत्ते, गुत्तिंदिए गुत्तबंभयारी, सया अप्पमत्ते बिहरेज्जा?॥ इमे खलु ते थेरेहिं भगवंतेहिं दस वंभचेरसमाहिठाणा षण्णत्ता, जे भिक्खू सोच्चा निसम्म-संजम बहुले, संवर बहुले समाहि बहुले, गुत्ते, गुत्तिंदिए, गुत्तबंभयारी, सया अप्पमत्ते विहरेज्जा॥ तंजहा-विवित्ताइं सयणासणाइं सेवेज्जा से निग्गंथे। नो इत्थी-पसु-पंडग-संसत्ताइं सेवित्ता भवति से निग्गंथे तं कहमितिचे? आयरियाह-निग्गंथस्स खलु इत्थि-पसु-पंडग-संसत्ताहं सायणासणाइं सेवमाणस्स बंभयारिस्स बंभचेरे संकावा, कंखावा, वितिगिच्छावा, समुपज्जिज्जा भेदवा लभेज्जा, उम्मायंव। पाउणिज्जा, दीहकालियंवा रोगायंकं हवेज्जा, केवलि पण्णत्ताओ धम्माओ भंसेज्जा॥ तम्हा नो इत्थि-पसु-पंडग-संसत्ताइं सयणासणाइ सेविज्जा॥१॥

पन्द्रहवें अध्ययन में साधु के गुण कहे। साधु जो होते हैं वे ब्रह्मचारी होते हैं इसलिये इस सोलहवें अध्ययन में ब्रह्मचर्य का कथन कहते हैं, श्री सुधर्मा स्वामी कहते हैं कि अहो आयुष्मन् जम्बू! मैंने सुना है कि भगवान ने इस प्रकार कहा है श्री स्थविर भगवान ने ब्रह्मचर्य में समाधि रहने के दस स्थानक कहे हैं। इनको सुनकर व अवधार कर संयम को वृद्धि करने वाले, संवर की वृद्धि करने वाले, समाधि की वृद्धि करने वाले, मन वचन काया के योगों का गोपन करने वाले, गुप्त इन्द्रियों वाले व गुप्त ब्रह्मचर्य पालने वाले, संयमी सदैव अप्रमादि बनकर विचरे। प्रश्न-स्थविर भगवान ने ऐसे दस ब्रह्मचर्य में समाधि के स्थान कौन-कौन से कहे हैं कि जिनको सुनकर व अवधार कर संयम,

संवर व समाधि की वृद्धि करने वाले, तीनों योगों का गोपन करने वाले, गुप्तेन्द्रिय, व गुप्त ब्रह्मचारी सदैव अप्रमत्तरूप से विचरे? उत्तर–ये निम्नोक्त दस ब्रह्मचर्य में समाधि स्थानक कहे हैं कि जिनको सुनकर संयम, संवर व समाधि की वृद्धि करने वाले गुप्त गुप्तेन्द्रिय व गुप्त ब्रह्मचारी सदैव अप्रमत्तपने विचरे तद्यथा–जिस स्थान पर स्त्री, पशु पंडग रहता होवे उस स्थान में वैसे ही शैय्या आसन पाट पाटले आदि जो भोगवे नहीं उसे साधु कहना। प्रश्न-स्त्री पशु पंडग सहित स्थानक पाट पाटला का सेवन किस कारण नहीं करना? उत्तर-जो साधु निर्ग्रंथी, स्त्री, पशु व नपुंसक सहित स्थानक पाट पाटले का सेवन करेगा, उस ब्रह्मचारी को ब्रह्मचर्य का पालन करने में शंका होगी कि मैं ब्रह्मचर्य पालूं या नहीं अथवा अन्य को भी उसके ब्रह्मचर्य पालन में शंका होगा कि यह स्त्री आदि के संसर्ग में रहता है तो क्या ब्रह्मचर्य पालता होगा या नहीं। २. स्त्री आदि के साथ व्यभिचार सेवन करने की इच्छा होगी, ३. वितिगिच्छा मैं ब्रह्मचर्य पालता हूँ जिसका फल मुझे मिलेगा या नहीं यह व्यर्थ कष्ट तो नहीं है ऐसे व्रत के फल में शंका होगी, ४ इस विचार से मन से ब्रह्मचर्य का विनाश होवे, ५ विषय की अभिलाषा होने से चित्त मन उन्मादी बने, ६ विषय की बहुत अभिलाषा होने से अनेक प्रकार के दीर्घ काल रहे वैसे रोग की प्राप्ति होवे और ७ केवली प्रणीत धर्म से भ्रष्ट होवे। इस तरह के दुर्गुण को जानकर स्त्री, पशु व नपुंसक सहित स्थानक पाट पाटला को सेवन करने वाला होवे नहीं॥१॥

नो इत्थीणं कहं कहित्ता भवति से निग्गंथे। तं कहमिति चे? आयरियाह-निग्गंथस्स खलु इत्थीणं कहं कहमाणस्स बंभयारिस्स बंभचेरे संकावा, कंखावा, वितिगिच्छा वा समुपज्जिज्जा, भेदंवा लभेज्जा, उम्मायं वा पाउणिज्जा, दीह कालियं वा रोगायंकं हवेज्जा, केवलि पण्णत्तओ धम्माओ भंसेज्जा। तम्हा नो इत्थि कहं कहेज्जा॥२॥

दूसरा स्थानक जो स्त्री के शृंगार की कथा करे नहीं उसे साधु कहना। प्रश्न–स्त्री के शृंगार की कथा करने वाले को साधु क्यों नहीं कहना? उत्तर–जो ब्रह्मचारी स्त्री के शृंगार की कथा करेगा उसके ब्रह्मचर्य में १ शंका, २ कांक्षा, ३ वितिगिच्छा, ४ संयम का भंग, ५ उन्माद की प्राप्ति, ६ दीर्घ काल का रोग और ७ केवली प्रणीत धर्म से भ्रष्टता इन सात दुर्गुनों की प्राप्ति होगी, ऐसा जान साधु स्त्री के शृंगार की कथा करे नहीं॥२॥

नो इत्थीणं सद्धिं सन्निसेज्जागए विहरित्ता भवइ से निग्गंथे। तं कहमितिचे? आयरियाह-निग्गंथस्स खलु इत्थीहिं सद्धिं सन्निसेज्जागयस्स बंभयारिस्स बंभचेरे-संकावा, कंखावा, वितिगिच्छावा, समुपज्जिज्जा, भेदंवा लभेज्जा, उम्मायंवा पाउणिज्जा, दीहकालियंवा रोगायंकं हवेज्जा, केवलि पण्णत्ताओ धम्माओ भंसेज्जा। तम्हा नो इत्थीहिं सद्धिं सन्निसेज्जागए विहरेज्जा॥३॥

तीसरा स्थानक स्त्री के साथ एक आसन पर बैठे नहीं उसे निर्ग्रंथ कहना, प्रश्न स्त्री के साथ

एक आसन पर ब्रह्मचारी को क्यों नहीं बैठना? उत्तर जो ब्रह्मचारी स्त्री के साथ एक आसन पर बैठेगा उसको उक्त प्रकार १ शंका, २ कांक्षा, ३ वितिगिच्छा, ४ व्रत भंग, ५ उन्माद, ६ दीर्घ काल का रोग और ७ केवली प्रणीत धर्म से भ्रष्टता यों सात दुर्गुणों की प्राप्ति होती है, ऐसा जानकर निर्ग्रंथ स्त्री के साथ एक आसन पर बैठे नहीं॥३॥

नो इत्थीणं इंदियाइं मणोहराइं मणोरमाइं आलोइत्ता निज्झाइत्ता भवति, से निग्गंथे। तं कहमिति चे? आयरियाह–निग्गंथस्स खलु–इत्थीणं इंदियाइं मणोहराइं मणोहराइं आलोएमाणस्स निज्झाएमाणस्स बंभयारिस्स बंभचेरे संका वा कंखावा वितिगिच्छा वा समुपज्जिज्जा, भेदं वा लाभेज्जा, उम्मायंवा पाउणिज्जा, दीह कालियं वा रोगायंकं हवेज्जा, केवलि पण्णत्ताओ भंसेज्जा,। तम्हा नो इत्थीणं इंदियाइं मणोहराइं मणोरमाहं ओलोएज्जा निज्झाएज्जा॥४॥

चौथा स्थानक स्त्री के मनोहर व मनोरम स्तन जंघा वगैरह अंगोपांग को जो निरखे नहीं उसे निर्ग्रंथ कहना, जो स्त्री के मनोहर अंगोपांग निरखे उसे साधु क्यों नहीं कहना? उत्तर–जो ब्रह्मचारी स्त्री के मनोहर मनोरम अंगोपांग निरखेगा उसके शंका, २ कांक्षा, ३ वितिगिच्छा, ४ व्रतभंग, ५ उन्माद, ६ दीर्घ काल का रोग और ७ धर्म से भ्रष्टता ये सात दुर्गुणों की प्राप्ति होती है, ऐसा जान साधु को स्त्री के अंगोपांग नहीं देखना॥४॥

नो इत्थीणं कुड्डुतरं सि वा, दुसंतरंसि वा, भित्तंतरंसि वा, कुइयसद्दं वा, गीयसद्दं वा, हसिय सद्दंवा, थणियसद्दं वा, विलवियसद्दं वा, सुणेत्ता भवति, से निग्गंथे। तं कहमितिचे? आयरियाह–निग्गंथस्स खलु इत्थीणं कुड्डंतरंसि वा, दूसंतरंसि वा, भित्तंतरंसि वा कुइयसद्दंवा, रुइयसद्दंवा, गीयसद्दं वा, थजियसद्दं वा, कंदियसद्दं वा, विलवियसद्दं वा सुणेमाणस्स बंभयारिस्स बंभचेरे-संकावा कंखावा वितिगिच्छा वा समुपज्जिज्जा, भेदंवा लभेज्जा, उम्मायं वा पाउणिज्जा, दीहकालियं वा रोगायंकं हवेज्जा, केवलि पण्णत्ताओ धम्माओ भंसेज्जा। तम्हा नो इत्थीणं कुड्डुंतरं सिवा, दूसंतरंसि वा, कुइयसद्दं वा, रुइयसद्दं वा, गीयसद्दं वा, हसियसद्दं वा, थणियसद्दं वा कंदियसद्दं वा सुणेमाणे विहरेज्जा॥५॥

पांचवां स्थानक ब्रह्मचारी मैथुन सेवन के समय होते हुये स्त्री के कोकिल जैसे शब्द, रूदन के शब्द, गीत गायन के शब्द, हास्य, स्नेह लुब्ध के शब्द, आक्रंदन के शब्द, पति के विरह से व्याकुलता के शब्द, विलविलाट के शब्द, इत्यादि कामोत्पादक शब्द पाषाणदिक की भित्ति के अंतर से, तट्टी, व वस्त्रादिक के परदे अंतर से जो सुने नहीं उसे निर्ग्रन्थ कहना, प्रश्न–ऐसा क्यों कहा? उत्तर जो कोई निर्ग्रन्थ स्त्री के कोकिल जैसे शब्द, रोने के शब्द, गीत गायन के शब्द हास्य, स्नेह व भय के शब्द, आक्रंद कारी शब्द और विलापात के शब्द तट्टी, वस्त्र व भित्ति के अंतर से सुनते हैं उनके ब्रह्मचर्य में १ शंका, २ कांक्षा, ३ वितिगच्छा, ४ व्रत भंग, ५ उन्माद, ५ दीर्घ काल का रोग और ७ धर्म से भ्रष्टता होती है, इन सात दुर्गुणों को जानकर निर्ग्रंथ को स्त्री के उक्त प्रकार के शब्द श्रवण नहीं करते हुए विचरना॥५॥

नो इत्थीणं पुव्वकीलियं अणुसरित्ता हवइ से निग्गंथे। तं कहमिति चे? आयरियाह– निग्गंथस्स खलु इत्थीणं पुव्वरयं पुव्वकीलियं अणुसरेमाणस्स बंभयारिस्स बंभचेरे संकावा कंखावा वितिगिच्छावा समुपज्जिज्जा, भेदं वा लभेज्जा, उम्मायं वा पाउणिज्जा, दीहकालियं वा रोगायंकं हवेज्जा, केवलिपण्णत्ताओ धम्माओ भंसेज्जा। तम्हा नो इत्थीणं पुव्वरयं पुव्वकीलियं अणुसरेज्जा॥६॥

छठा स्थानक–संसार अवस्था में स्त्री के साथ रति सेवन व काम क्रीड़ा किया होवे उसका जो स्मरण करें नहीं उसे साधु कहना प्रश्न–पहले स्त्री के साथ रति सेवन हुए का स्मरण करे उसे साधु क्यों नहीं कहना? उत्तर–जो ब्रह्मचारी प्रथम भोगावस्था में स्त्री आदि के साथ रति सेवन व काम क्रीड़ा की होवे उसे याद करेगा, तो उसे १ शंका, २ कांक्षा, ३ वितिगच्छा, ४ व्रत भंग, ५ उन्माद, ५ दीर्घ काल का रोग और ७ धर्म से भ्रष्टता होती है, ऐसा जानकर निर्ग्रंथ पूर्वकृत रति व काम क्रीड़ा का स्मरण करे नहीं॥६॥

नो पणीयं आहारं आहारित्ता हवइ, से निग्गंथे। तं कहमिति चे? आयरियाह–निग्गंथस्स खलु पणीयं आहारं आहारेमाणस्स बंभयारिस्स बंभचेरे संकावा कंखावा वितिगिच्छावा समुपज्जिज्जा; भेदं वा लभेज्जा, तम्हा नो पणीयं आहारं आहारेज्जा॥७॥

सातवाँ स्थानक जो सदैव घृतादि वाला स्निग्ध आहार करे नहीं उसे साधु कहना। प्रश्न–ब्रह्मचारी सदैव सरस आहार क्यों करे नहीं? उत्तर ब्रह्मचारी सदैव रस स्निग्ध आहार करेगा उसे १ शंका, २ कांक्षा, ३ वितिगच्छा, ४ व्रत भंग, ५ उन्माद, ५ दीर्घ काल का रोग और ७ धर्म से भ्रष्टता होता है, इन सात दुर्गुणों को जान साधु सदैव स्निग्ध आहार करे नहीं॥७॥

नो अतिमायाए पाणभोयणं आहारेत्ता भवति, से मिम्मंथे। तं कहमिति चे? आयरियाह–निग्गंथस्स खलु अतिमायाए पाणभोयणं आहारेमाणस्स बंभयारिस्स बंभचेरे संकावा कंखावा वितिगिच्छावा समुपज्जिज्जा, भेदं वा लभेज्जा, उम्मायं वा पाउणिज्जा, दीह कालियं वा रोगायंकं हवेज्जा, केवलि पन्नत्ताओ धम्माओ भंसेज्जा। तम्हा नो अतिमायाए पाण भोयणं आहारेज्जा॥८॥

आठवां स्थानकजो मर्यादा (क्षुधा) उपरान्त आहार पानी भोगवे नहीं उसे साधु कहना। प्रश्न–मर्यादा उपरान्त आहार पानी भोगनेवाले को साधु क्यों नहीं कहना? उत्तर–जो मर्यादा उपरान्त आहार पानी करेगा, उनको १ शंका, २ कांक्षा, ३ वितिगच्छा, ४ व्रत भंग, ५ उन्माद, ५ दीर्घ काल का रोग और ७ धर्म से भ्रष्टता होकर है, इन सात दुर्गुणों को जानकर मर्यादा उपरांत आहार पानी करे नहीं॥८॥

नो विभूसाणुवादी भवति से निग्गंथे। तं कहमिति चे? आयरियाह–निग्गंथस्स खलु विभूसावत्तिए भूसिय सरीरे इत्थियजणस्स अभिलसणिज्जे हवति, तओणं इत्थिजणेणं अभिलसिज्ज माणस्स बंभयारिस्स बंभचेरे संका वा कंखा वा वितिगिच्छा वा समपिज्जज्जा, भेदं वालभेज्जा, उम्मायंवा पाउणिज्जा, दीह कालियं वा रोगायंकं हवेज्जा, केवलिपन्नत्ताओ धम्मओ भंसेज्जा। तम्हा नो विभूसाणुवादी हविज्जा॥९॥

नवां स्थानक स्नानादिक शृंगार से शरीर की विभूषा जो नहीं करे उसे साधु कहना, प्रश्न–ऐसा क्यों कहा? उत्तर–जो ब्रह्मचारी स्नानादि से शरीर की विभूषा करेगा उसके ब्रह्मचर्य में १ शंका, २ कांक्षा, ३ वितिगच्छा, ४ व्रत भंग, ५ उन्माद, ५ दीर्घ काल का रोग और ७ धर्म से भ्रष्टता होगा, इन सात दुर्गुणों को जानकर निर्ग्रंथ स्नानादिक से शरीर की विभूषा करे नहीं॥९॥

नो सद्द रूव रस गंध फासाणुवादी हवेज्जा से निग्गंथे। तं कहमितिचे? आयरियाह–निग्गंथस्स खलु सद्द रूव रस गंधफासाणुवादिस्स बंभयारिस्स बंचचेरे संका वा कंखा वा वितिगिच्छावा समुपज्जिज्जा, भेदंवा लमेज्जा, उम्मायंवा पाउणिज्जा, दीहकालियंवा रोगायंकं हवेज्जा, केवलि पण्णत्ताओ भंसेज्जा। तम्हा खलु नो सद्द-रूव-रस-गंध-फासाणुवाई हवइ से निग्गंथे।

दसमे बंभचेरसमाहिट्ठाणे हवई।१०॥

अब दसवां स्थानक कहते हैं–जो मनोहर शब्द, रूप, रस, गंध व स्पर्श इन पांच इन्द्रियों के विषय का सेवन करने वाला होवे नहीं, उसे साधु कहना, प्रश्न–ऐसे किसलिये कहा? उत्तर–जो ब्रह्मचारी शब्द, रूप, रस, गंध व स्पर्श में लुब्ध बनेगा उसके ब्रह्मचर्य में १ शंका, २ कांक्षा, ३ वितिगच्छा, ४ व्रत भंग, ५ उन्माद, ५ दीर्घ काल का रोग और ७ धर्म से भ्रष्टता होता है, ऐसे सात दुर्गुणों को जानकर इन्द्रियों के विषय के भोक्ता बने नहीं॥१०॥

भवंति चात्र श्लोका, तं जहा–जं विवित्तमणाइण्णं,
रहियं इत्थिजणेण य। बंभचेरस्स रक्खट्ठा, आलयं तु निसेवए॥१॥

यह दश ब्रह्मचर्य के समाधि स्थानक हुए, अब आगे इन दशों का कथन संक्षेप से गाथा द्वारा कहते हैं, ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिये स्त्री पशु नपुंसक रहित स्थानक का सेवन करे॥१॥

मणपल्हायजणणी, कामरागविवड्ढणी।
बंभचेररओ भिक्खू, थीकहं तु विवज्जए॥२॥
समं च संथवं थीहिं, संकहं च अभिक्खणं।
अंभचेररओ भिक्खू, निच्चसो परिवज्जए॥३॥

मन को आनंद देने वाली, विषय राग बढ़ाने वाली स्त्री सम्बन्धी शृंगार प्रमुख की कथा, ब्रह्मचर्य में रत मुनि नहीं करे और ब्रह्मचर्य में रमण करने वाला साधु स्त्री के साथ संसर्ग व उसके साथ बारंबार वार्तालाप का त्याग करें॥२-३॥

अंग-पच्चगसंठाणं, चारुल्लविय-पेहियं।
बंभचेररओ थीणं चक्खुगिज्झं विवज्जए॥४॥
कुइयं रुइय गीयं, हसिय थणिय-कंदियं।
बंभचेररओ थीणं, सोयगेज्झं विवज्जए॥५॥

ब्रह्मचर्य में रक्त साधु स्त्री का मनोहर बोलना, कटाक्ष से देखना, स्त्री के स्तन, मुख मस्तकादिक का आकार लुभावने सराग दृष्टि से देखे नहीं, ब्रह्मचर्य में रक्त साधु स्त्री का कोकिला

जैस शब्द, रुदन के गीत, हँसने स्नेह लुब्धता के आक्रंद के वगैरह को गृद्ध करे ऐसे शब्दों का त्याग करें॥४-५॥

हासं किड्डं रइं दप्पं, सहभुत्तत्तासियाणि य।
बंभचेररओ थीणं, नाणुचिंते कयाइवि॥६॥

ब्रह्मचर्य में रक्त साधु संसार अवस्था में स्त्री के साथ हास्य, कामक्रीड़ा, रति सेवन किया होवे स्त्री को त्रास उपजाया होवे और साथ भोजन किया होवे उसकी चिंतवना मात्र भी करे नहीं॥६॥

पणीयं भत्त-पाणं तु खिप्पं मयविवड्ढणं।
बंभचेररओ भिक्खू निच्चसो परिवज्जए॥९॥

ब्रह्मचर्य में रक्त साधु विषय की वृद्धि करने वाला स्निग्ध आहार सदैव करे नहीं॥७॥

धम्मलद्धं मियं काले, जत्तत्थं पणिहाणवं।
नाइमत्तं तु भुंजेज्जा, बंभचेररओ सया॥१०॥

ब्रह्मचर्य में रक्त साधु-साधु का धर्म निर्वाह करने के लिये निर्दोष आहार मिले उसे गृद्धता रहित क्षुधा जितना आहार करे परंतु मर्यादा से अधिक आहार करे नहीं॥८॥

विभूसं परिवज्जेज्जा, सरीरपरिमंडणं।
बंभचेररओ भिक्खू, सिंगारत्थं न धारए॥९॥

ब्रह्मचर्य में रक्त साधु स्नान करना, केशसंमार्जन करना वगैरह शरीर का श्रृंगार करे नहीं॥९॥

सद्दे रूवे य गंधे य रसे फासे तहेव य।
पंचविहे कामगुणे, निच्चसो परिवज्जए॥१०॥

ब्रह्मचर्य में रक्त साधु कामगुण के उत्पादक शब्द, रूप, गंध, रस व स्पर्श का सेवन करें नहीं॥१०॥

आलओ थीजणाइण्णो[१] थीकहा य मणोरमा[२]।
संथवो[३] चेव नारीणं, तासिं इंदियदरिसणं[४]॥११॥[१३]
कूइयं रुइयं गीयं[५], सहभुत्तासियाणि य[६]।
पणीयं भत्त-पाणं[७] च, अइमायं पाण-भोयणं[८]॥१२॥
गत्तभूसणमिट्ठं च[९], कामभोगा य दुज्जया[१०]।
नरस्सऽत्त-गवेसिस्स, विसं तालउडं जहा॥१३॥

अब यहीं दश स्थानक विशेष संक्षेप से कहते हैं, १ स्त्री सहित स्थान में रहना, २ स्त्री की मनोरम कथा करना, ३ स्त्री का परिचय, ४ स्त्री की इन्द्रियों का निरीक्षण, ५ विषय समय के रुदन गीत वगैरह शब्द सुनना, ६ पहले की हुई हास्य क्रीड़ा का स्मरण करना, ७ सरस आहार

करना, ८ मर्यादा उपरांत भोजन करना, ९ शरीर की विभूषा करना और १० दुर्जय पांच प्रकार के शब्दादिक काम भोग, ये दश बोल आत्मा को ताल पुट विष समान आत्मगुण के घातक हैं॥११-१३॥

दुज्जए कामभोगे य, निच्चसो परिवज्जए।
संकाठाणाणि, सव्वाणि वज्जेजा पणिहाणवं॥१४॥

इसलिये इन दुर्जेय काम भोगों को एकाग्रचित्त वाला साधु सदैव वर्जे वैसे ही ब्रह्मचर्य में रक्त साधु सब शंका के स्थान का त्याग करें॥१४॥

धम्मारामे चरे भिक्खू, धिइमं धम्मसारही।
धम्मारामरते दंते, बंभचेरसमाहिए॥१५॥

इस प्रकार शील रूप रथ चलाने वाले सारथी समान साधु ध्यानरूप बगीचे में रमन करके मस्त बने और इन्द्रियों को दमन करके ब्रह्मचर्य में समाधि भाव युक्त धर्मध्यान मे रमन करें॥१५॥

देव-दाणव-गंधव्वा, जक्ख-रक्खस-किन्नरा।
बंभयारिं नमंसंति, दुक्करं जे करंति तं॥१६॥

जिस ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करना अति दुष्कर हैं ऐसे व्रत को पालन करने वाले ब्रह्मचरी साधु को वैमानिक देव, दानव-ज्योतिषी देव, भुवनपति देव, गंधर्व, राक्षस, किन्नरादि वाणव्यतंरयों सब देवता नमस्कार करते हैं॥१६॥

एस धम्मे धुवे निच्चे सासए जिणदेसिए।
सिद्धा सिज्झंति चाणेण, सिज्झिस्संति तहाऽवरे॥१७॥ त्ति बेमि॥
॥बंभचेरसमाहिट्ठाणं सोलसमं अज्झयणं॥१६॥

यह ब्रह्मचर्य रूप धर्म ध्रुव है, सदैव शाश्वत है, ऐसे ब्रह्मचर्य पालने वाले गत काल में अनंत सिद्ध हुए, वर्तमान में संख्यात सिद्ध होते हैं और अनागत में अनन्त सिद्ध होंगे॥१७॥

ऐसा मैं कहता हूँ, यों श्री सुधर्मा स्वामी अपने शिष्य श्री जम्बू स्वामी से कहने लगे कि अहो जम्बू! जैसा मैंने सुना है वैसे ही तुझे कहता हूँ।

ब्रह्मचर्य समाधि नामक सोलहवां अध्ययन संपूर्ण हुआ।

१७

सत्तरहमं पावसमणिज्जं अज्झयणं
पापश्रमणीयं सप्तदशमध्ययनम्

सोलहवें अध्ययन में ब्रह्मचर्य की गुप्ति का कथन किया, उसका पालन पापी साधु नहीं कर सकता है इसलिये सतरहवें अध्ययन में पापी साधु का कथन करते हैं–

जे केइ उ पव्वइए नियंठे, धम्मं सुणित्ता विणओवन्ने।
सुदुल्लहं लहिउं बोहिलाभं, विहरेज्ज पच्छा य जहासुहं तु॥१॥

जो कोई साधु निर्ग्रंथ प्रथम विनय मार्ग संपन्न धर्म सुनकर और अति दुर्लभ ऐसा समकित (भाव संयम) प्राप्त कर फिर शिथिलाचारी बनकर जैसे शरीर को सुख होवे वैसे विचरे॥१॥

सिज्जा दढा पाउरणं मे अत्थि, उप्पज्जई भोत्तु तहेव पाउं।
जाणामि जं वट्ठइ आउसु ति, किं नाम काहामि सुएण भंत्ते!॥२॥

उसे गुरु हित शिक्षा देवे तो वह कहे कि अहो पूज्य! मुझे तो रहने को अच्छा स्थान मिलता है, पहनने को वस्त्र मिलते हैं, खाने-पीने को अच्छा आहार पानी मिलता है, और जीवादिक पदार्थ जिस तरह वर्तते हैं, यह मैं जानता हूँ तो अब शास्त्राभ्यास करके क्या करना है?॥२॥

जे केई उ पव्वइए, निद्दासीले पगामसो।
भुच्चा पिच्चा सुहं सुवई, पावसमणि त्ति वुच्चई॥३॥

अब ऐसे साधु के कर्तव्य कहते हैं–जो कोई प्रव्रजित बनकर बहुत निद्रा लेवे और आहार पानी करके बहुत काल तक सुख से सोता रहे उसे पाप श्रमण (साधु) कहते हैं॥३॥

आयरिय-उवज्झाएहिं, सुयं विणयं च गाहिए।
ते चेव खिंसई वाले, पावसमणि ति वुच्चई॥४॥

आचार्य उपाध्याय के पास से श्रुत व विनय मार्ग का अभ्यास कर उनमें प्रवीण हुए बाद में वही अज्ञानी उन आचार्यादि की हीलना निंदा करे उसे पाप श्रमण कहते हैं॥४॥

आयरिय-उवज्झायाणं, सम्मं न पडितप्पई।
अप्पडिपूयए थद्धे, पावसमणे त्ति वुच्चई॥५॥

जो कोई अभिमान में मस्त बना हुआ आचार्य उपाध्याय व गुरुवादिक की शुद्ध मन से सेवा करे नहीं और उनकी पूजा श्लाघा करे नहीं उसको पाप श्रमण कहते हैं॥५॥

सम्मद्दमाणे पाणाणि, बीयाणि हरियाणि य।
असंजए संजयमननमाणे, पावसमणे त्ति बुच्चई॥६॥

जो कोई द्वीन्द्रियादि त्रस प्राणी धान्य बीज तृणादि हरिकाय को पांव से दाबता हुआ चले इस प्रकार असंयम करता हुआ भी स्वतः को संयत माने उसे पाप श्रमण कहते हैं॥६॥

संथारं फलगं पीढं, निसिज्जं पायकंबलं।
अपमज्जिय मारुहइ, पावसमणि त्ति वुच्चई॥७॥

संथारा (बीछोना) पाट, पाटला, शैय्या व कम्बल को बिना पूंजे उपभोग में लेवे उसे पाप श्रमण कहते हैं॥७॥

दवदवस्स चरई, पमत्ते य अभिक्खणं।
उल्लंघणे य चंडे य, पावसमणि त्ति वुच्चई॥८॥

जो कोई साधु बहुत शीघ्रता में चले, ईर्या समिति में प्रमादी होवे, बारंबार यथा कर्म क्रिया करने का उल्लंघन करे और क्रोधी होवे उसे पाप श्रमण कहते हैं॥८॥

पडिलेहेइ पमत्ते, अवउज्झइ पाय-कंबलं।
पडिलेहणाअणाउत्ते, पावसमणे त्ति वुच्चई॥९॥

जो प्रमादी बन प्रतिलेखना करते कुछ देखे कुछ न देखे, कम्बल पात्रादि उपकरण जहाँ-तहाँ डाल देवे और प्रतिलेखना में असावधान होवे पाप श्रमण कहते हैं॥९॥

पडिलेहेइ पमत्ते, से किंचि हु निसामिय।
गुरुपरिभावए निच्चं, पावसमणि त्ति वुच्चई॥१०॥

जो प्रतिलेखना करता हुआ बात करे अथवा बात सुनता हुआ उपयोग शून्य हो प्रतिलेखन करे गुरु के वचन का पराभव करे, और सदैव असाता उत्पन्न करे, उसे पाप श्रमण कहते हैं॥१०॥

बहुमाई पमुहरी, थद्धो लुद्धे अणिग्गहे।
असंविभागी अवियत्ते, पावसमणि त्ति वुच्चई॥११॥

जो बहुत मायावी, बहुत बोलने वाला (वाचाल) अभिमानी, रसलुब्ध, अजितेन्द्रिय, असंविभागी, और अप्रतीतकारी होवे उसे पाप श्रमण कहते हैं॥११॥

विवायं च उदीरेइ, अधम्मे अतपन्नहा।
वुग्गहे कलहे रत्ते, पावसमणि त्ति वुच्चई॥१२॥

जो विवाद की उदीरणा करे, अधर्मी होवे, अपनी प्रज्ञा से दूसरे की घात करने वाला होवे, और क्लेश में रक्त होवे उसे पाप श्रमण कहते हैं॥१२॥

अथिरासणे कुक्कुइए, जत्थ तत्थ निसीयई।
आसणम्मि अणाउत्ते, पावसमणे त्ति वुच्चई॥१३॥

जो डगमगाते अस्थिर आसन पर बैठे, कचकचाट होवे वैसे आसन पर बैठे और सावधानपना रहित आसन पर बैठे उसे पाप श्रमण कहते हैं॥१३॥

ससरक्खपाए सुवई, सेज्जं न पडिलेहए।
संथारए अणाउत्ते, पावसमणि त्ति वुच्चई॥१४॥

सचित्त रज से भरे हुए पांव का बिना पूंजे तथा बिछोने को भी बिना पूंजे उस पर सो जावे वैसे स्थानक की पूंजना प्रतिलेखना करे नहीं, उसे पाप श्रमण कहते हैं॥१४॥

दुद्ध-दही विगईओ, आहारेइ अभिक्खणं।
अरए य तवोकम्मे, पावसमणि त्ति वुच्चई॥१५॥

जो दुग्ध, दधि आदि विगय का बारंबार आहार करे और तपश्चर्या करने में अरति धारण करें, उसे पाप श्रमण कहते हैं॥१५॥

अत्थन्तम्मि य सूरम्मि, आहारेइ अभिक्खणं।
चोइओ पडिचोएइ, पावसमणि त्ति वुच्चई॥१६॥

सूर्योदय से सूर्यास्त पर्यन्त बारंबार आहारादि भक्षण किया करे और गुरु आदि शिक्षा देवे तो सामने बोले उसे पाप श्रमण कहते हैं॥१६॥

आयरियपरिच्चाई, परपासंडसेवए।
गाणंगणिए दुब्भूए, पावसमणि त्ति वुच्चई॥१७॥

जो सदगुरु की संगति छोड़कर पाखंड़ियों की संगति करें, अपनी उत्तम संप्रदाय का त्यागकर अन्य की संप्रदाय में जावें और बहुत लोग निंदा करे वैसा कर्तव्य करे उसे पाप श्रमण कहते हैं॥१७॥

सयं गेहं परिच्चज्ज, परगेहसि वावरे।
निमित्तेण य ववहरई, पावसमणो त्ति वुच्चई॥१८॥

अपना स्थान छोड़कर अन्य संसारी पुरुषों के घरादि में लुब्ध बनकर फिरे ज्योतिषी आदि निमित्त प्रकाशे, उसे पाप श्रमण कहते हैं॥१८॥

सन्नाइपिंडं जेमेइ, नेच्छई सामुदाणियं।
गिहिनिसेज्जं च वाहेइ, पावसमणि त्ति वुच्चई॥१९॥

स्वज्ञाति के आहार की इच्छा करें परंतु सामुदायिक आहार की गवेषणा करें नहीं, वृद्धावस्था, रोग अथवा तपश्चर्या के कारण सिवाय गृहस्थ के वहाँ बैठे उसे पाप श्रमण कहते हैं॥१९॥

एयारिसे पंचकुसीलऽसंवुडे, रूवंधरे मुणिपवराण हेट्ठिमे।
अयंसि लोए विसमेव गरहिए, न से इहं नेव परत्थ लोए॥२०॥

उपसंहार–उक्त गुण युक्त पार्श्वस्थ, उसन्ना, अपछंदा, संसक्त और कुशीलबाले, ये पांच

कुशील कुआचार, युक्त, ज्ञान दर्शन चरित्र तप और वीर्य इन पांचों आचारकादर्शक वेष मात्र धारण करने वाले, हीन आचार वाले जो होते हैं, वे इस लोक में विष समान निंदनीय होते हैं और परलोक में भी सुख प्राप्त नहीं कर सकते हैं॥२०॥

जे वज्जए एए सया उ दोसे, से सुव्वए होइ मुणीण मज्झे।
अयंसि लोए अमयं व पूइए, आराहए दुहओ लोगमिणं तहापरं॥२१॥ त्ति बेमि॥
॥ पावसमणिज्जं समत्तं॥१७॥

और जो पूर्वोक्त दोषों का सदैव त्याग कर साधुओं के वृंद में सुव्रती होते हैं, वे साधु इस लोक में अमृत समान पूज्यनीय होते हैं और परलोक में आराधक बनकर मोक्ष अथवा इन्द्रादिक की पदवी प्राप्त कर सुखी होते हैं॥२१॥

यों मैं कहता हूँ ऐसा श्री सुधर्मा स्वामी अपने शिष्य श्री जम्बू स्वामी से कहने लगे कि अहो जम्बू! जैसे मैंने सुना है वैसा ही तुझे कहता हूँ।

पाप श्रमण नाम का सत्रहवां अध्ययन संपूर्ण हुआ।

१८

अट्ठारसमं संजइज्जं अज्झयणं
संजयीयमष्टादशमध्ययनम्

सत्तरवें अध्ययन में पाप त्याग करने का कहा क्योंकि पापों को छोड़ने से वह संयति कहलाता है इसलिये इस अठारवें अध्ययन में संयति का कथन करते हैं–

कंपिल्ले नयरे राया, उदिन्नबल-वाहणे।
नामेणं संजओ नामं मिगव्वं उवणिग्गए॥१॥

पंचाल देश के काम्पिलपुर नगर का प्रधान बलवाहन वाला संयति नामक राजा मृगया करने के लिए निकला॥१॥

हयाणीए गयाणीए, रहाणीए तहेव य।
पायत्ताणीए महया, सव्वओ परिवारिए॥२॥
मिए छुहित्ता हयगओ, कंपिल्लुज्जाणकेसरे।
भीए संते मिए तत्थ, वहेइ रसमुच्छिए॥३॥

हाथी घोड़े, रथ व पदाति के बड़े परिवार मे पोषित हुआ रस गृद्ध राजा ने अश्व पर आरूढ़ होकर काम्पिलपुर नगर के बाहर केसर नाम उद्यान में अनेक के भयभीत बने हुए व कष्ट पाये हुए मृगों का वध किया॥२-३॥

अह केसरम्मि उज्जाणे, अणगारे तवोधणे।
सज्झाय-ज्झाणसंजुत्तो, धम्मज्झाणं झियायइ॥४॥

उस समय केसरी उद्यान में तपोधन अनगार स्वाध्याय ध्यान युक्त धर्म ध्यान कर रहे थे॥४॥

अप्फोवमंडवम्मि, झायई क्खवियासवे।
तस्सागए मिगे पासं, वहेइ से नराहिवे॥५॥

अफोव-द्राक्षा और नागवल्ली आदि लताओं के मण्डपों के नीचे वह मुनि पांच आश्रव का निरूधंन कर ध्यान कर रहे थे, उनके पास एक मृग आया और राजा ने उसको बाण मार कर घायल कर दिया था वह उस मुनि के समीप गिर गया॥५॥

आह आसगओ राया, खिप्पमागम्म सो तहिं।
हए मिए उ पासित्ता अणगारं तत्थ पासई॥६॥

घोड़े पर बैठा हुआ संयति राजा भी वहाँ आया, वहाँ मारा हुआ मृग और एक अणगार देखा॥६॥

अह राया तत्थ संभंतो अणगारो मणाहओ।
मए उ मंदपुन्नेणं, रसगिद्धेण घत्तुणा॥७॥

तब वह राजा संभ्रात बनकर विचार करने लगा कि रस लुब्ध व मंदपुण्य वाले मैंने इस मुनि के मृग[१] को मार डाला॥७॥

आसं विसज्जइत्ता णं, अणगारस्स सो निवो।
विणएण वंदए पाए, भगवं! एत्थ मे खमे॥८॥

राजा ने तत्काल घोड़े पर से नीचे उतर का मुनि के चरणों में विनय पूर्वक वंदना नमस्कार किया, और कहा अहो भगवन! मृग वध रूप मेरे अपराध को क्षमा करो॥८॥

अह मोणेण सो भगवं, अणगारो झाणमस्सिओ।
रायाणां न पडिमंतेइ, तओ राया भयद्दुओ॥९॥

इस समय मुनि मौन सहित धर्म ध्यान में लीन हो रहे थे, इसलिये राजा को पुनरोत्तर दिया नहीं, तब राजा विशेष भयभीत हुआ॥९॥

संजओ अहमम्मीति भगवं! वाहराहि मे।
कुद्धे तेएण अणगारे, डहेज्ज नरकोडिओ॥१०॥

अहो भगवन! मैं संयति राजा हूँ एक बार तो आप मुझसे बोलो, क्योंकि क्रुद्ध बने हुए अनगार अपने तेज से करोड़ों मनुष्य को जला देते हैं॥१०॥

अभओ पत्थिवा! तुब्भं अभयदाया भवाहि य।
अणिच्चे जीवलोगम्मि, किं हिंसाए पसज्जसी?॥११॥

(उक्त वचन सुनकर राजा को भयभीत जानकर ध्यान पारकर मुनि बोले) हे पार्थिव! तुझे अभय है, और तू भी अभयदाता हो, इस अनित्य मनुष्य लोक में जीव हिंसा में क्यों आसक्त होता है॥११॥

जया सव्वं परिच्चज्ज, गंतव्वमवसस्स ते।
अणिच्चे जीवलोगम्मि, किं रज्जम्मि पसज्जसी?॥१२॥

जब कभी सब का परित्याग कर पशवश बनकर जाना तो है इस अनित्य लोक में तथा राज्य में क्यों आसक्त हो रहा है॥१२॥

जीवियं चेव रूवं च, विज्जुसंपायचंचलं।
जत्थ तं मुज्झसी रायं! पेच्चत्थं नावबुज्झसे॥१३॥

हे राजन! यह जीवितव्य व रूप विद्युत्पात समान चंचल है इसमें तू मुग्ध बनकर परलोक को नहीं जानता है॥१३॥

---

१. संयति राज को पहले साधु की संगति का अभाव होने से घायल हुआ मृग मुनि के पास आकर पड़ा देखकर अनुमान से ऐसा समझा कि यह मृग मुनि का ही होगा।

दाराणि य सुया चेव, मित्ता य तह बंधवा।
जीवंतमणुजीवंति, मयं नाणुवयंति य॥१४॥

स्त्री, पुत्र, मित्र व बांधव वगैरह जहाँ तक घर का स्वामी जीता है वहाँ तक ही उसके सहाय से अपनी आजीविका करते हैं, परंतु मरने के बाद उसके साथ वे नहीं जाते हैं॥१४॥

नीहरंति मयं पुत्ता, पियरं परमदुक्खिया।
पियरो वि तहा पुत्ते, बंधू रायं! तवं चरे॥१५॥

जगत की यह रीति है कि महा दुःखी बने हुए पुत्र भी मृत पिता को ले जाते हैं, पिता पुत्र को ले जाता है, भाई-भाई को ले जाता है, और श्मशान में जला देते हैं, ऐसा जानकर हे राजन! तप का आचरण कर॥१५॥

तओ तेणऽज्जिए दव्वे, दारे य परिरक्खिए।
कीलंतिऽन्ने नरा रायं! हट्ठतुट्ठमलंकिया॥१६॥

घर के स्वामी ने जो धन उपार्जन किया था और जिस स्त्री की रक्षा की थी, उस स्वामी के मरने के बाद उस धन व दारा से हृष्ट-तुष्ट वे आभरणालंकार अलंकृत बनकर अन्य पुरुष क्रीड़ा करते हैं, अर्थात् उनके ही वस्त्राभरण से अलंकृत बनकर अन्य पुरुष उसकी ही स्त्री के साथ क्रीड़ा करते हैं॥१६॥

तेणावि जं कयं कम्मं, सुहं वा जइवा दुहं।
कम्मुणा तेण संजुत्ते। गच्छई उ परं भवं॥१७॥

और वह मृत पुरुष अपने शुभाशुभ किये हुये कर्मों सहित दूसरे भव में जाता है॥१७॥

सोऊण तस्स सो धम्मं, अणगारस्स अंतिए।
महया संवेग-निव्वेयं समावन्नो नराहिवो॥१८॥

अनगार के पास से ऐसा धर्म सुनकर वह संयति राज संवेग (वैराग) और निर्वेद काम भोग में अरूचि को प्राप्त हुआ॥१८॥

संजओ चइउं रज्जं, निक्खंतो जिणसासणे।
गद्दभालिस्स भगवओ, अणगारस्स अंतिए॥१९॥

उस संयति राजा ने अपने राज्य का त्याग कर गर्दभालि अनगार के पास जिन शासन की दीक्षा अंगीकार की॥१९॥

चिच्चा रट्ठं पव्वइए, खत्तिओ परिभासई।
जहा ते दीसई रूवं, पसन्नं ते तहा मणो॥२०॥

संयति राजा ने उक्त प्रकार राज्य छोड़कर अपने गुरु के पास आसेवना ग्रहण रूप ज्ञान की और आचार की शिक्षा का अभ्यास कर गुरु आज्ञा से एकल विहारी हुए। विहार करते मार्ग में

क्षत्रिय राजर्षि मिले, वह संयति मुनि को कहने लगे, अहो मुनि! जैसे तुम्हारा प्रसन्नकारी रूप है वैसा ही तुम्हारा मन है॥२०॥

किंनामे किं-गुत्ते?, कस्सट्ठाए व माहणे?।
कहं पडियरसी बुद्धे, कहं विणीए त्ति वुच्चसी॥२१॥

अब उनसे प्रश्न करने लगे–अहो मुनि! १ तुम्हारा नाम क्या है? २ तुम्हारा गोत्र क्या है? ३ किसलिये तुम साधु बने? ४ तुम किस गुरु के शिष्य हो? और ५ विनीत शिष्य किस को कहना? यों पांच प्रश्न पूछे॥२१॥

संजओ नाम नामेणं, तहा गुत्तेण गोयमो।
गद्दभाली ममायरिया, विज्जा-चरणपारगा॥२२॥

अब संयति मुनि उन क्षत्रिय राजर्षि को इस प्रकार उत्तर देने लगे–१ संयति मेरा नाम है, २ गौतम मेरा गोत्र है, ४ विद्या चारित्र में पारगामी गर्द्दभालि मेरे गुरु धर्माचार्य हैं, ३ हिंसा के मार्ग से बचने कि लिये साधु बना हूँ, और ५ गुरु की सेवा करे वह विनीत शिष्य है। इस तरह पांचों प्रश्न का उत्तर दिया॥२२॥

किरियं[१] अकिरियं[२] विणयं[३], अण्णाणं[४] च महामुणी!।
एएहिं चउहिं ठाणेहिं, मेयन्ने किं पभासई॥२३॥
इइ पाउकरे बुद्धे, नायए परिनिव्वुए।
विज्जा-चरणसंपन्ने, सच्चे सच्चपरक्कमे॥२४॥

अब गुरु के पास से प्राप्त किया हुआ ज्ञान संयति मुनि क्षत्रिय राजार्षि को बताने लगे–१ क्रियावादी ज्ञान बिना क्रिया को ही प्रधान्यपना माननेवाले, इसके १८० भेद हैं, २ अक्रियावादी क्रिया को नहीं माननेवाले, इसके ८४ भेद हैं, ३ विनयवादी मात्र विनय से मोक्ष माननेवाले इसके ३२ भेद हैं, और ४ अज्ञानवादी-अज्ञानता को ही श्रेष्ठ स्थापन करनेवाले इसके ६७ भेद हैं यों चारों के सब मिलाकर ३६३ पाखंडी के मत जानना, क्रियावादी के १८० भेद कहते हैं। १ कालवादी, २ स्वभाववादी, ३ नियतवादी, ४ कर्मवादी और उद्यमवादी इसमें कालवादी कहता है कि सब वस्तु काल से होती हैं, तीर्थंकारादि उत्तम पुरुष काल में होते हैं, काल में स्त्री गर्भ धारण करती है, काल से पुत्र होता है, वगैरह सब काल से ही होता है, २ तब स्वभाववादी कहता है कि सब वस्तु स्वाभाव से होती हैं, भव्य का स्वभाव मोक्ष में जाने का है और अभव्य का स्वभाव परिभ्रमण करने का है, मयूर पंख की विचित्रता, अग्नि की ऊष्णता पानी की शीतलता, वगैरह, सब स्वभाव से ही होते हैं। तब नियतवादी कहता है कि सब वस्तु ही भवितव्यता से होती है, भवितव्यता को कोई भी नहीं टाल सकता है। कर्मवादी कहता है कि सब वस्तु कर्म से ही होती है, देव नरक मनुष्य, तिर्यंच सब कर्माधीन है आदि। और उद्यमवादी कहता है कि सब वस्तु उद्यम से ही होती हैं जगत् में कला कौशल्य सब उद्यम से प्रकट हुई है। तप संयम में उद्यम करने से ही मुक्ति मिलती है। यों पांचों वादियों १ जीव, २ अजीव, ३ पुण्य, ४ पाप,

५ आश्रव, ६ संवर, ७ निर्जरा, ८ बंध और ९ मोक्ष इन नव तत्त्वों को चार प्रकार के मानते हैं? कितने तो कहते हैं कि यह ९ ही अपनी इच्छा से नित्य है २ कितने कहते हैं कि अपनी इच्छा से अनित्य हैं, ३ कितने कहते हैं कि ये नव ही पर की इच्छा से नित्य है और ४ कितने कहते हैं कि यह पर की इच्छा से अनित्य हैं यों नव पदार्थ को चौगुने करने से ३६ होते हैं, और उक्त ३६ पांचवादी से पांच गुना करने १८० क्रियावादीके भेद होते हैं। यह क्रियावादी का कथन हुआ। अब अक्रियावादी का कहते हैं–नैय्यायिक मत वाले तो ईश्वर को कर्त्ता मानते हैं और मीमांसक मत वाले आत्मा को सर्व व्यापी मानते हैं दोनों कहते हैं कि पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु और आकाश इन पांच के संयोग से शरीर की उत्पत्ति होती है, इसमें ईश्वर का तेज पड़ता है। इससे ही सब क्रिया होती है जब ईश्वर अपना तेज खींच लेते हैं तब पांचों भूत भिन्न-भिन्न होकर अपने स्वभाव में लीन हो जाते हैं। इससे जीव को पुण्य पापादि कोई भी क्रिया नहीं लगती है, नरक स्वर्ग आदि कुछ भी नहीं है। इस मताबलम्बी उक्त काल, स्वभाव नियत कर्म और पुरुषार्थ इन पांच को मानकर छट्ठा यदच्छा अर्थात् अकस्मात् को मानते हैं। यों ६ वस्तु मिलने से तीसरी वस्तु की उत्पत्ति मानते हैं। जैसे दूध में खटाई मिलने से दही बने, यहाँ जीवादिक नव पदार्थ में से पुण्य पाप ये दो पदार्थ छोड़कर शेष सात तत्त्वों को बारह भेद पर उतारते हैं कि उक्त सातों तत्त्व अपनी इच्छा से हैं परंतु काल से नहीं है, २ पर की इच्छा से हैं परंतु काल से नहीं है, ३ कोई कहे अपनी इच्छा से है, परंतु स्वभाव से नहीं है, ४ अपनी इच्छा से है परंतु नियत से नहीं है, ६ पर की इच्छा से है नियत से नहीं है, ७ अपनी इच्छा से है कर्म से नहीं है, ८ अन्य की इच्छा से परंतु कर्म से नहीं है, ९ अपनी इच्छा से है उद्यम से नहीं है, १० परकी इच्छा से उद्यम से नहीं, ११ अपनी इच्छा से यह इच्छा से नहीं, १२ अन्य की इच्छा से नहीं, यों सातों पदार्थ को बारह गुना करने से ८४ होते हैं यह अक्रियावादी का कथन हुआ। ३ विनयवादी का कथन करते हैं–विनयवादी विनय को ही सबसे श्रेष्ठ मानते है, वे कहते हैं कि १ सूर्य का, २ राजा का, ३ ज्ञाति का, ४ साधु का, ५ वृद्ध का, ६ धर्म का, ७ माता का और ९ पिता का, इन आठों का मन, वचन, काया से और दान देकर विनय करें, यों आठ को चार गुना करने से विनयवादी के ३२ भेद होते हैं, ४ अज्ञानवादी के ६७ भेद होते हैं, वे कहते हैं कि जो पाप अज्ञानवस्था में हो उसके पाप की निवृत्ति हो सकती है, जैसे अज्ञान में किसी को पांव लगने से वह अपराध माफ कर देते है इससे अज्ञानी ही रहना अच्छा है। नरक स्वर्ग वगैरह किसने देखे हैं, कि जिससे शास्त्रोक्त कथन सत्य माने, इसके ६७ भेद कहते हैं–१ कौन जाने सत्य है, २. कौन जाने असत्य है, ३. कौन जाने जीव का सदा सत्यापना है, ४. वाच्यपना है, ५. अवाच्यपना है। ६. सद्वाच्यपना है और ७. असद्वाच्यपना है, यों नव तत्त्वों के साथ इन सात को गुना करने से ६३ भेद होते हैं इस प्रकार १ सत्यपना, २ असत्यपना, ३ सद्सत्यपना और ४ वाच्यपना ये चार मिलने से ६७ होते है, इस प्रकार ३६३ पाखंड़ियों के तत्त्व के जान क्षायिक ज्ञान, क्षायिक चरित्र के धारक सत्यवादी कर्म रूप अग्नि बुझाकर शीतलीभूत बने हुए श्री ज्ञातपुत्र श्रमण भगवान महावीर स्वामी ने द्वादश विध परिषद में उक्त ३६३ मत प्रसिद्ध कहे हैं॥२३-२४॥

पंडति नरए घोरे, जे नरा पावकारिणो।
दिव्वं च गइं गच्छंति, चरित्ता धम्ममारियं॥२५॥

जो असत्य प्ररूपणा से पाप कर्म की वृद्धि करने वाले पाखंडी हैं वे घोर भयंकर नरक में पड़ते हैं जो जिन प्रणीत धर्म का आचरण करते हैं वे देव गति अथवा मोक्ष गति में जाते हैं॥२५॥

मायावुइयमेयं तु, मुसाभासा निरत्थिया।
संजममाणोऽवि अहं, वसामि इरियामि य॥२६॥

उक्त क्रियावादी का मत माया कपट सहित है और उनका उपदेश भी माया कपट सहित है, यह मोक्ष रूप परमार्थ साधन में शून्य रूप है, इसलिये इन मिथ्यात्वियों के वचन का अनादर करता हुआ जिन प्रणीत दीक्षा धारण कर पांच समिति में प्रवर्तता हूँ॥२६॥

सव्वे ते विइया मज्झं, मिच्छादिट्ठी अणारिया।
विज्जमाणे परे लोए, सम्मं जाणामि अप्पयं॥२७॥

पूर्वोक्त मिथ्यात्तियों के मतांतर जितने जगत में प्रवृत रहे हैं वे मेरे जाने हुए हैं। वे विद्यमान परलोक की नास्ति कहते हैं किसी का कथन नहीं स्वीकारते हैं। मैंने तो मेरे आत्मा के परभव को सम्यक् प्रकार से जाना है॥२७॥

अहमासी महापाणे, जुइमं वरिससओवमे।
जा सा पाली महापाली, दिव्वा वरिससओवमा॥२८॥

वह इस प्रकार है मैं पूर्व भव में पांचवें ब्रह्म देवलोक के महाप्राण विमान में महाद्युति वंत देवता था। वहाँ मेरा यहाँ की सौ वर्ष की अपेक्षा रूप पल्योपम की उपमा से सागरोपम रूप दश सागरोपम[1] का आयुष्य था॥२८॥

से चुए बंभलोगाओ, माणुस्सं भवमागए।
अप्पणो य परेसिं च, आउं जाणे जहा तहा॥२९॥

उस पांचवे ब्रह्म देवलोक से च्यवकर यहाँ मनुष्य भव में मैं आया हूँ और मेरा यहाँ का यथातथ्य आयुष्य जानता हूँ॥२९॥

नाणा रुइं च छंदं च, परिवज्जेज्ज संजओ।
अणट्ठा जे य सव्वत्था, इइ विज्जामणुसंचरे॥३०॥

अहो क्षत्रिय राजर्षिजी उक्त क्रियावादी प्रमुख मिथ्यात्वियों की बहुत प्रकार की रुचि, बहुत प्रकार कल्पना, बहुत प्रकार के अभिप्राय हैं उनको साधु सर्वथा प्रकार वर्जे। वही विद्या संयम युक्त बना मुनि संयम मार्ग में प्रवृत्ति करे॥३०॥

---

१. चार कोश का लम्बा चौड़ा व कुएँ में देवकुरू उत्तरकुरु क्षेत्र के मनुष्य बालाग्र आंख में डालते खटके नहीं उससे भरे और हजारों वर्ष में एक बालग्र निकालते जब वह कुआँ खाली हो जाए एक पल्योपम रूप और दश क्रोडा क्रोड पल्योपम हो उतने वर्ष का एक सागरोपगम।

पडिक्कमामि पसिणाणं, परमंतेहिं वा पुणो।
अहो! उट्ठिओ अहोरायं, इइ विज्जा तवं चरे॥३१॥

अहो क्षत्रिय राजर्षि! ज्योतिषी निमित्तादिक के प्रश्नोत्तर देने से तथा गहस्थों के गुह्य वार्तालाप से निवर्त कर सदैव सावधान बनकर अहर्निश संयम व तप में उद्यमी बना हूँ यह मेरा विनय मार्ग है और इस प्रकार ही अन्य पंडित पुरुष प्रवर्त रहे हैं॥३१॥

जं च मे पुच्छसी काले, सम्मं सुद्धेण चेयसा।
ताइं पाउकरे बुद्धे, तं नाणं जिणसासणे॥३२॥

तब क्षत्रिय राजर्षि संयति मुनि के वार्तालाप से संतुष्ट होकर कहने लगे कि हम दोनों का एक ही जैन धर्म है, इससे हम स्वधर्मी हैं। अब तुम मन की शुद्धतापूर्वक जो प्रश्न मुझे पूछना होवे सो पूछो। इसका उत्तर जिस प्रकार केवल ज्ञानी तीर्थंकरों ने प्रगट किया है वैसा ही मैं कहूंगा। तुम्हारा कथन सत्य है कि जैसा ज्ञान जैन दर्शन में है वैसा अन्य मिथ्यात्वियों में नहीं है॥३२॥

किरियं च रोयए धीरो, अकिरियं परिवज्जए।
दिट्ठीए दिट्ठिसंपन्ने, धम्मं चर सुदुच्चरं॥३३॥

जैन मत के ज्ञान का तात्पर्य संक्षेप में इतना ही है कि धैर्यवंत साधु ज्ञान व सम्यक्त्व सहित क्रियानुष्ठान की रुचि करे और मिथ्या क्रिया का त्याग करे। अहो संयति मुने! कायर पुरुष नहीं आचरण कर सके वैसा ज्ञान सम्यक्त्व व संयम की क्रिया में सदैव भक्तों यही मेरा आशीर्वाद है॥३३॥

एयं पुण्णपयं सुच्चा, अत्थ-धम्मोवसोहियं।
भरहो वि भारहं वासं, चिच्चा कामाइं पव्वए॥३४॥

(अहो संयति मुने! तुम्हारे जैसे शूरवीर जिन शासन में हुए हैं उनका गुण कीर्तन मैं करूँगा सो तुम दत्त चित्त से श्रवण करो) पूर्वोक्त मुक्तिफल रूप अर्थ और जिन शासन में ज्ञान-दर्शन व चारित्र रूप धर्म से सुशोभित पुण्यपद को श्रवण कर भरत राजा ने संपूर्ण भरत क्षेत्र का व काम भोग का त्याग कर चारित्र अंगीकार किया॥३४॥

भरत चक्रवर्ती की कथा प्रेक्षणीय है—सर्वार्थ सिद्ध विमान से च्यवकर अयोध्या नगरी में ऋषभ देव राजा की सुमंगला रानी को चौदह स्वप्न सहित पुत्र हुआ। जिसका नाम भरत रखा। ७७ लाख पूर्व कुबेररूप रहे पीछे श्री ऋषभेदव जी ने भरत राजा को राज्य देकर दीक्षा धारण की। भरत राजा की आयुधशाला में चक्र रत्न उत्पन्न होने की बधाई आई थी। उस समय ऋषभ देव स्वामी को केवल ज्ञान उत्पन्न होने की बधाई भरत को मिली। परम धर्मानुरागी होने से पहले केवल ज्ञान की महिमा की। चक्र रत्न ने छः ही खंड विजय का मार्ग बताया। जिससे साठ हजार वर्ष में छः ही खंड की विजय पताका फहराई। फिर चौरासी लाख हाथी, चौरासी लाख घोड़े, चौरासी लाख रथ छयान्वे क्रोड पदाति, चौदह रत्न, नव विधान दो हजार अंग रक्षक देव और चौदह हजार चौदह रत्न के रक्षक देव, नव विधान के नव हजार देव, मागधादि तीर्थ के देव, गंगादि नदियों की देवियां वगैरह अनेक देवता। संपूर्ण भरत क्षेत्र के छः खण्ड के बत्तीस हजार देश व छयान्वे क्रोड ग्राम इत्यादि महाऋद्धि भोगनेवाले हुए। छः लाख पूर्व राज्य

भोगने के बाद एकदा सब शृंगार से सज्जित बनकर अपने आरिसा भवन में अपना रूप देखने गये। वहाँ एक अंगुली में से मुद्रिका नीचे गिरने से वह अशोभनिक दिखी, तब एक-एक आभूषण उतारते-उतारते सब वस्त्र व आभूषण निकालकर अपना नग्न रूप देखने लगे तो बड़ा अशोभनिक मालूम हुआ। इस से अनित्य भावना का विचार करने लगे कि यह शोभा सब पर पुद्गलों से होती है मेरा मूल शरीर का स्वरूप तो बड़ खराब है और इसके लिये इतना कष्ट उठाना पड़ता है, यों विचार करते-करते क्षपक श्रेणी पर चढ़कर चारों घनघाति कर्म का क्षय कर केवल ज्ञान केवल दर्शन प्राप्त किया। शासन देव ने साधु का वेष दिया, जो पहन कर वे केवली साधु बनकर राज्य सभा में आये। दस हजार मुकुट बंध राजाओं को प्रतिबोध देकर दीक्षा अंगीकार करवाई और एक लाख पूर्व दीक्षा पालकर मुक्ति में गये।

सगरोऽवि सागरंतं, भरहवासं नराहिवो।
इस्सरियं केवलं हिच्चा, दयाए परिनिव्वुडे॥३५॥

दूसरे सगर नामक चक्रवर्ती राजा तीनों दिशा में समुद्र पर्वत राज्य करने वाले और उत्तर में चुल्ल हिमवंत पर्वत पर्यंत संपूर्ण भरत क्षेत्र के राज्य का और संपूर्ण स्वामित्व का त्याग कर छही काया के जीवों की पूर्ण रक्षा रूप दया, धर्म करने वाले संयम धर्म का आचरण कर मोक्ष में गये॥३५॥

यहाँ सगर चक्रवर्ती की कथा ज्ञातव्य हैं–अयोध्या नगरी में विजय राजा की विजया रानी को चौदह स्वप्न सहित पुत्र हुआ जिसका नाम अजित रखा और उसके छोटे भाई सुमित्र की यशोमती को चौदह स्वप्न सहित जो पुत्र हुआ उसका नाम सगर रखा। कालांतर से धर्मघोष अणगार का उपदेश सुनकर अजित कुमार को राज्य देकर दोनों भाई ने दीक्षा अंगीकार की। फिर अजित राजा ने सगर को राज्य देकर दीक्षा अंगीकार की और चारों घनघाती कर्म क्षय कर केवलज्ञान व केवलदर्शन प्राप्त कर चार तीर्थ को स्थापना कर दूसरे अजित नाथ तीर्थंकर हुए। इधर सगर राजा को चक्रवर्ती की सब ऋद्धि प्राप्त हुई और वे चक्रवर्ती बने। सगर राजा को पुत्र नहीं होने से हरिणगमेषी देवता की आराधना की। देव ने साठ हजार गोलियाँ दी वह गोलियाँ उसने अपनी प्रिय रानी को दी। उसने ऐसा विचार किया कि यदि मैं यह गोली दूसरी को दूंगी तो उसके पुत्र होगा जिससे उसका भी सम्मान बढ़ेगा। इससे अन्य किसी को नहीं देती हुई ईर्षाग्नि से खुद ही खा गई। उसके प्रभाव से उसकी कुक्षि में एक साथ ६० हजार जीव गर्भ रूप उत्पन्न हुए। उस रानी को महा वेदना हुई जिससे राजा ने पुनः देव का आराधन किया। उसके योग से साठ हजार कुमारों का एक ही कुक्षि से जन्म हुआ। देव सहाय से सब कुमार बड़े हुए। नगर के बाहर नदी नहीं होने से सगर राजा उदास हुए और गंगा नदी लाने का विचार किया। उनके सभी कुमार गंगा नदी खोदने लगे तो महा विकराल दृष्टि से कुपित बनकर गंगा देवी ने उन साठ हजार पुत्रों को जलाकर भस्म कर दिया। वह गंगा देवी राजा को समझाने के लिये एक वृद्धा का रूप बनाकर मृत पुत्र को ले सागर राजा के पास आकर रुदन करने लगी राजा ने उसका कारण पूछा तब उसने कहा कि मुझे अंध को लकड़ी समान एक ही पुत्र था और वह सर्प दंश से मर गया। राजा ने कहा कि एक पुत्र मर गया इससे क्या हुआ? वृद्धा ने कहा कि हे राजन्! तुम्हारे तो साठ हजार पुत्र हैं इसमें से आधे मर जावें तो भी तुम रुदन नहीं करोगे तो चलेगा परंतु मेरा यह एक ही पुत्र था। तब सगर राजा ने कहा कि मेरे आधे तो क्या परंतु साठ हजार ही पुत्र मर जावें तो भी मैं क्या कर सकूंगा। यह किसके वश की बात है? उस समय उस देवी ने अपना

मूल रूप प्रगट किया और बोली कि हे राजन्! तेरे साठ हजार पुत्र गंगा नदी में मर गये हैं। राजा मूर्च्छित होकर नीचे पृथ्वी पर गिर पड़ा और संसार को असार जान वैराग्य प्राप्त कर दीक्षा अंगीकार की। अनेक वर्ष पर्यंत संयम पालकर केवली बन सिद्ध हुए।

चइत्ता भारहं वासं, चक्कवट्ठी महड्ढिओ।
पव्वज्जमब्भुवगओ, मघवं नाम महाजसो॥३६॥

तीसरा मघवा चक्रवर्ती महा यशवंत महाऋद्धिवंत भरत क्षेत्र का राज्य छोड़कर प्रवर्ज्या अंगीकार करने में सावधान हुआ॥३६॥

तीसरा मघवा चक्रवर्ती की कथा ज्ञातव्य हैं। श्रावस्ती नगरी के समुद्र विजय राजा की भद्रारानी को चौदह स्वप्न देखकर पुत्र हुआ उसका नाम मघवा रखा। यौवनावस्था में भरत क्षेत्र के छः खंड पर आधिपत्य किया और चक्रवर्ती की ऋद्धि प्राप्त की। फिर वैराग्य प्राप्त कर दीक्षा ले उग्र तप से कर्म क्षय कर मोक्ष गये। (कुछ कहते हैं कि देवता हुए। वहाँ से च्यवकर महाविदेह क्षेत्र में इभ्य श्रेष्टि के वहाँ जन्म लेकर मोक्ष पाएंगे)।

सणंकुमारो मणुस्सिन्दो, चक्कवट्ठी महड्ढिओ।
पुत्तं रज्जे ठवित्ताणं, सोऽवि राया तवं चरे॥३७॥

मनुष्यों का इन्द्र महार्द्धिक चक्रवर्ती सनत्कुमार ने अपने पुत्र को राज्य देकर तप संयम का आचरण किया॥३७॥

सनत्कुमार चक्रवर्ती की कथा-कंचन पुर नगर में सिद्धकर्ण यश नामक राजा था उसके अंतःपुर में ५०० रानियाँ थीं। उसी नगर में नागदत्त सार्थवाह रहता था उसकी विष्णु नाम की स्त्री अति रूपवती थी। राजा उसे देखकर मोहित हो गया और अपने महल में बुलवा कर उसके साथ भोग विलास करने लगा। अन्य रानियों ने ईर्ष्याग्नि से उस विष्णु स्त्री को मार डाला परन्तु राजा का उससे इतना प्रेम था कि मृत शरीर को भी जीवित मान रहा था, और उसके कलेवर को जलाने नहीं देता था। जब उसमें बहुत दुर्गन्ध उत्पन्न हो गई तब प्रधान ने राजा को समझा कर उसके कलेवर को जला दिया और राजा वैराग्य भाव से मृत्यु पाकर रतनपुर नगर में धनदत्त श्रेष्ठि के वहाँ पुत्रपने हुआ। बचपन से ही धर्म का ज्ञान होने से जैनधर्मी श्रावक बना। अब नागदत्त सार्थवाह का जीव स्त्री वियोग से भ्रमित चित्त वाला बनकर दुःखित होता हुआ काल के अवसर में कालकर सिंहपुर नगर में अग्निशर्मा ब्राह्मण हुआ और संसार का त्याग कर त्रिदंडी साधु बना। वहाँ का राजा नरवाहन त्रिदंडी साधु का भक्त था। इससे उसको भोजन का निमन्त्रण दिया। वहाँ उस त्रिदंडियों को लोग कहने लगे कि-धनदत्त सेठ का पुत्र दृढ जैनधर्मी होने से आपको वंदन नहीं करता है। इसलिये उसने राजा को कहलाया कि धनदत्त सेठ का पुत्र अपनी पीठ पर थाल रखकर मुझे भोजन देवे तो तेरे वहाँ भोजन करूंगा। राजा ने इस बात को स्वीकार किया और भोजन करने बुलाया। सेठ का पुत्र अवसर का ज्ञान होने से अपने व्रत में राजा का आगार रखा था। इस से वह वहाँ आया और उसकी पीठ पर गर्म-गर्म रसोई वाली थाली रखकर वह त्रिदंडी भोजन करने लगा। भोजन के बाद वह थाली उसकी पीठ पर से लेते सब चमड़ी निकल गई और उसको महा वेदना हुई। उसने घर आकर संसार असार जान दीक्षा ली और वहाँ से काल कर पहले देवलोक में इन्द्र हुआ और त्रिदंडी का जीव वहाँ से मरकर पहले देवलोक में ऐरावत हाथी हुआ। यह हाथी वहाँ से मरकर अनेक भव में यक्ष हुआ और इन्द्र का जीव वहाँ से चलकर हस्तिनापुर नगर में अश्वसेन राजा की सहदेव रानी की कुक्षि में चौदह

स्वप्न सहित पुत्र रूप में उत्पन्न हुआ। मात-पिता ने उसका नाम सनत्कुमार रखा। बड़े होने पर राज्य प्राप्त हुआ। नवविधान चौदह रत्न और चक्रवर्ती की सब ऋद्धि मिली। छः खंड पर आधिपत्य एक हजार वर्ष में किया। उस समय प्रथम देवलोक के इन्द्र ने अपना पूर्व भव का मित्र सनत्कुमार को राज्याभिषेक का समय देखकर धनदेव को कहा कि मृत्यु लोक में सनत्कुमार चक्रवर्ती का राज्याभिषेक इन्द्र जैसा करो। उसने इन्द्र की आज्ञानुसार कार्य किया। ऐसे राज्याभिषेक में बारह वर्ष व्यतीत हुए। इधर एकदा सनत्कुमार चक्रवर्ती अपनी राज्यसभा में बैठे हैं। उस समय पहले देवलोक के इन्द्र भी अपनी इन्द्र सभा में बैठे थे। उस समय संगम नामक देव दूसरे देवलोक में से आया। वह इतना दिव्य रूप वाला था कि जिसके तेज से वहाँ बैठे हुए दूसरे देवों का रूप हीन हो गया। जब वह देव अपने स्वस्थान गया तब वहाँ बैठे दूसरे देवों ने इन्द्र से प्रश्न किया कि इस देव को इतना रूप कैसे मिला है? इन्द्र ने उत्तर दिया कि पूर्व भव में इसने आयंबिलवर्द्धमान तप किया था इससे इतना रूप मिला है। फिर प्रश्न हुआ कि ऐसा रूप और किसी का है? इन्द्र ने कहा कि इस समय जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में सनत्कुमार चक्रवर्ती का जैसा रूप है वैसा रूप और किसी का नहीं है। ऐसा सुन दो देव ईर्ष्या से उनको देखने के लिये ब्राह्मण का रूप बनाकर भरत क्षेत्र के हस्तिनापुर में आये और द्वारपाल से राजा को देखने को कहा। द्वारपाल राजा के पास ले गया इस समय राजा स्नानगृह में स्नान कर रहे थे। उसने उनसे आने का कारण पूछा, तब दोनों ने कहा कि हम बहुत दूर से इस देश में आप के रूप की कीर्ति सुनकर आपको देखने आये हैं और देखने से ज्ञात हुवा जैसा सुना था वैसा ही आप का रूप है। इससे सनत्कुमार चक्रवर्ती को रूप का गर्व हुआ और कहा कि इस समय तो मैं स्नान कर रहा हूँ, परंतु जब शृंगार सज्जकर राज्य सभा में सिंहासन पर बैठूं तब मेरा रूप देखना। इस प्रकार गर्व करने से उनका रूप बिगड़ गया और शरीर में कृमी पड़ गये। वह अपने स्नान क्रिया से निवृत्त कर शृंगार सज्जकर राज्यसभा में जा बैठा और उन दोनों ब्राह्मणों को अपना रूप देखने को बुलाया उन दोनों ने उनका रूप देखकर उदास होकर अपना सिर हिलाया, और कहा कि–हे राजन्! अब तेरा वह रूप नहीं रहा है कि जो पहले था। यह सच न मानता होवे तो मुख का तंबोल थूककर देख, राजा ने वैसा किया और देखता है तो अनेक कृमि दृष्टिगत हुए। देव शक्रेन्द्र को सब वृत्तांत कहकर अपने स्थान गये। सनत्कुमार चक्रवर्ती ने शरीर को क्षणभंगुर जानकर दीक्षा अंगीकर की। तत्पश्चात् वही रोग बाहर दिखने लगा। सनत्कुमार मुनि ने सात सौ वर्ष पर्यन्त मास २ खमण की महा तपश्चर्या की और सात सौ वर्ष पर्यंत रोग परीषह समभाव से सहन किया। इन्द्र ने इन रोग का परीषह समभाव से सहने की देव सभा में प्रशंसा की। परीक्षा निमित वैद्य का रूप बनाकर देव चलायमान करने को आये और कहा कि हम तुम्हारा रोग मिटावे। सनत्मकुमार मुनि ने कहा कि–मेरा शरीर का रोग मिटाने की शक्ति तो मेरे में है। यों कहकर अपनी अंगुली पर थूक ली और शरीर पर लगाई तो वह शरीर कंचन वर्ण वाला हो गया। अब कर्म रोग मिटाने की तेरी शक्ति होवे तो मेरा रोग मिटाओ। देव प्रसन्न होकर उनको नमस्कार कर स्वस्थान गये और सनत्कुमार मुनि कर्म क्षय कर मोक्ष में गये।

चइत्ता भारहं वासं, चक्कवट्टी महड्ढिओ।
संती संतिकेरे लोए, पत्तो गइमणुत्तरं॥३८॥

लोक में शांति करने वाले महाऋद्धिक शांतिनाथ चक्रवर्ती ने भरत क्षेत्र का राज्य त्याग कर दीक्षा अंगीकार की और मोक्ष पाये॥३८॥

शांतिनाथ जी की कथा–महा विदेह क्षेत्र की पुष्कलावती विजय की पोंडरिकिनी नगरी का सिंहरथ राजा का पुत्र मेघरथ राजा की शक्रेन्द्र ने देव सभा में प्रशंसा की, कि मेघरथ राजा जेसा दयावान इस समय अन्य कोई नहीं

है। उनकी परीक्षा निमित्त दो देव आये। एक ने कबूतर का और दूसरे ने बाज का रूप बनाया। कबूतर घबराया हुआ मेघरथ राजा के चरणों में गिर गया। तब बाज का रूप बनाया हुआ देवता आया और कहने लगा कि मुझे मेरा भक्ष्य दो। राजा ने इनकार किया। तब उसने का कि एक की रक्षा कर एक को मारना यह कैसी दया है? राजा ने कहा कि यह मेरा शरणागत है। इसलिए इसको मारने नहीं दूंगा। तुझे मेवा मिष्टान्न जो खाना होवे सो मांग ले। वह बाज बोला कि मै मांसाहारी हूँ। तुझे यदि इस कबूतर परा दया होवे तो तेरे शरीर का मांस इसके बाराबर मुझे दे। राजा ने यह स्वीकार किया और तराजू के एक पल्ले में कबूतर को बैठाकर दूसरी तरफ अपने शरीर का मांस काटकर वह मेघरथ राजा रखने लगे। परन्तु देव शक्ति से उसका वजन बराबर हुआ नहीं। तब अपना सारे शरीर के देने से भी उसको बचाने का संकल्प किया। देवता ने अवधि ज्ञान से उस के मनोभाव देखे तो पहले जैसे ही शुद्ध मालूम हुए तब देव आश्चर्य चकित होकर अपना रूप प्रगटकर राजा को नमस्कार कर उनको दिव्य कुंडल देकर अपने स्थान चले गये। शरीर का मांस काटने लगे थे तब रानी प्रधान आदि बोले कि इस कबूतर को तुम छोड़ दो। इसका पाप भले हम को लगे। परन्तु कोई ऐसा बोला नहीं कि तुम्हारे बदले हमारा मांस देवे। इससे कुटुम्ब की स्वार्थ परायनता देख मेघरथ राजा को वैराग्य भाव प्राप्त हुआ और दीक्षा अंगीकार कर बीस स्थानक का अराधन कर तीर्थंकर गोत्र उपार्जन किया। वहाँ काल के अवसर में काल कर सर्वार्थ सिद्ध महा विमान में देवता हुए। वहाँ से च्यवकर हस्तिनापुर नगर में विश्वसेन राजा को अचिरा रानी को चौदह स्वप्न देकर पुरुष रूप उत्पन्न हुए। उस समय देश में मृगी नाम के रोग से बहुत लोग पीड़ित हो रहे थे। अचिरा रानी के दोहद उत्पन्न हुआ कि–लोक में शांति होवे। इस से उसने अपने प्रसाद पर चढ़कर अवलोकन किया और सब लोक में शांति हो गई। नव मास में पुत्र का जन्म हुआ, लोक में शांति करने वाले होने से गुण निष्पन्न शांति कुमार नाम रखा। पच्चीस हजार वर्ष कुमारअवस्था में रहे पच्चीस हजार वर्ष मांडलिक राजापने रहे। तत्पश्चात् चक्र रत्नादि उत्पन्न होने से पच्चीस हजार वर्ष चक्रवर्तीपने रहे वर्षीदान देकर दीक्षा ली और पच्चीस हजार वर्ष संयम पालकर सर्व कर्म का क्षय कर मोक्ष पधारे।

इक्खागुरायवसभो, कुन्थू नाम नरेसरो।
विक्खायकित्ती धिइमं, मुक्खं गओ अणुत्तरं॥३९॥

इक्षाग वंश में वृषभ समान व विख्यात कीर्ति वाले श्री कुंथुनाथ दीक्षा अंगीकार कर मोक्ष पधारे॥३९॥

छठे चक्रवर्ती कंथुनाथजी की कथा है–हस्तिनापुर नगर में सूर राजा की श्री रानी को चौदह स्वप्न सहित कुंथुनाथ जी उत्पन्न हुए। उनके जन्म के साथ उनके तेज से अन्य सब मांडलिक राजा कुंथुवे जैसे नम्र होकर रहे। उनकी आज्ञा मानने लगे। इस पर से कुंथुनाथ नाम दिया। योग्य अवस्था में राज्य मिले बाद चक्ररत्नादि चक्रवर्ती की ऋद्धि उत्पन्न हुई और छः खंड का राज्य किया। फिर राज्य का त्याग कर दीक्षा अंगीकार की और चार घनघाती कर्मों का नाश करके केवल ज्ञान प्राप्त किया चारों तीर्थों को स्थापन कर मोक्ष पधारे।

सागरंतं जहित्ता णं, भरहवासं नरेसरो।
अरो य अरयं पत्तो, पत्तो गइमणुत्तरं॥४०॥

तीनों दिशा में समुद्र व चौथी दिशा में चुल हिमवंत पर्वत पर्यंत भरत क्षेत्र का राज्य त्याग कर पुरुषोत्तम अरनाथ जी दीक्षा अंगीकार कर मोक्ष में गये॥४०॥

अरनाथ जी की कथा-गजपूर नगर के सूदर्शन राजा की देवी रानी की कुक्षि से चौदह स्वप्न सहित पुत्र रत्न हुआ, प्रथम स्वप्न में रत्न का आरा देख था इससे अरनाथ ऐसा नाम दिया। तरुणावस्था में राज्य प्राप्त किया। फिर चक्र रत्नादि सब चक्रवर्ती के ऋद्धि मिली और छः खंड का राज्य किया। दीक्षा धारण कर चार घनघातिक कर्म क्षय कर केवल ज्ञान पाया। चार तीर्थ की स्थापना की और तीर्थंकर हुए। २१ हजार वर्ष कुमार रहे। २१ हजार वर्ष मंडलिक राजा रहे, २१ हजार वर्ष चक्रवर्ती रूप में रहे और २१ हजार वर्ष संयम पाला। यों ८४ हजार वर्ष का आयुष्य भोग कर मोक्ष पधारे।

चइत्ता भारहं वासं, चक्कवट्ठी महिड्ढिओ।
चिच्चा य उत्तमे भोए, महापउमे तवं चरे॥४१॥

नववें महापद्म नामक चक्रवर्ती ने महा भोग व महाऋद्धि का त्यागकर तपसंयम अंगीकार किया॥४१॥

अब नववां महापद्म चक्रवर्ती की कथा कहते हैं-गजपुर नगर का इक्षागवंश का पद्मोत्तर राजा की ज्वाला रानी को सिंह का स्वप्न आकर पुत्र हुआ जिसका नाम विष्णु कुमार दिया और दूसरी बार चौदह स्वप्न सहित पुत्र हुआ जिसका नाम महापद्म दिया। विष्णु कुमार ने बाल्यावस्था में ही साधु बनकर महा तप किया। इससे उनको अनेक लब्धियां हुई। पद्मोत्तर राजा महापद्म कुमार को राज्य देकर दीक्षा अंगीकर कर मोक्ष गये। महापद्म कुमार को कालांतर से चक्रादि चौदह रत्न आदि चक्रवर्ती की ऋद्धि मिली और छः खण्ड का राज्य करने लगे। इस समय यवंति नगर में जैन धर्म का द्वेषी श्रीधर्म नामक राजा राज्य करता था। उसका नमुचि प्रधान था। उस समय वहाँ सुव्रताचार्य पधारे इनके साथ चर्चा करने के लिये नमुचि प्रधान गया। परंतु एक शिष्य ने अनेक प्रश्नोत्तर में नमुचि प्रधान को निरुत्तर कर दिया। इससे अपमान समझ कर रात को खडग लेकर आचार्य को मारने आया। परंतु शासन देव ने उसको स्तंभित कर दिया, प्रभात में लोग उनको देखकर तिरस्कार करने लगे, और राजा ने नमुचि को वहाँ से निकाल दिया। वह गजपुर में महापद्म चक्रवर्ती के वहाँ प्रधान हुआ। महापद्म ने उसको खमदूर्ग निवासी बलसिंह भूमिये को विजय करने भेजा। वह उस पर विजय करके आया जिस पर से राजा उस पर संतुष्ट हो वचन मांगने को कहा। नमुचि ने कहा कि प्रसंगवशात मैं वचन मांगूंगा। एकदा वहाँ सुव्रताचार्य ग्रामानुमाम विचरण करते उस ही नगर में आ गये, चक्रवर्ती वंदन करने गये। नमुचि ने द्वेषी बनकर उस समय राजा से वचन मांगा, राजा उसका भेद समझ गये और मौन रहा। परंतु उस नमुचि प्रधान ने अपना हठाग्र छोड़ा नहीं तब निरूपाय से उसकी इच्छानुसार चक्रवर्ती ने सात दिन का राज्य नमुचि प्रधान को दे दिया। उसने यज्ञ का आरंभ किया, सब लोग आये परंतु सुव्रताचार्य आये नहीं, ऐसा देख सुभट के साथ बुलवाया। आचार्य वहाँ आये तब नमुचि बोला तुम मेरे राज्य में रहकर मुझे ही नमस्कार नहीं करते हो इससे मेरे राज्य से बाहर निकल जाओ। आचार्य ने बहुत समझाया परंतु वह समझा नहीं, तब आचार्य स्वस्थान आये और बोले कि यदि विष्णुकुमार श्रमण इस समय पर होते तो ठीक होता। एक साधु बोला कि मेरू पर्वत पर वे तप कर रहे हैं, उनके पास जाकर सब बात मैं विदित कर सकता हूँ, परंतु वापस आने की मेरी शक्ति नहीं है। आचार्य बोले कि विष्णु कुमार ही तुम को ले आवेगा। विद्या के प्रभाव से एक मुनि ने मेरू पर्वत पर जाकर विष्णु कुमार मुनि से सब बात निवेदन की। तत्काल विष्णु कुमार उस साधु सहित आये। अपने संसार के भाई चक्रवर्ती से मिले और ऐसा अनुचित कार्य के लिये उपालंभ दिया तब चक्रवर्ती बोला मैं वचन से बंधाया हूँ सात दिन तक कुछ नहीं बोल सकता

हूँ आगे देख लूंगा। तब वह विष्णुकुमार मुनि नमुचि के पास आये। सब परिषद चक्रवर्ती का भाई जानकर उपस्थित हुई, नमुचि भी भयभीत हुआ। मुनि बोले तेरा छः खण्ड में राज्य है हम कहाँ जावें? तब उसने कहा कि मात्र तुम्हारे लिये तुम मांगो इतना स्थान देता हूँ, अन्य साधु के लिये नहीं। मुनि ने क्रोधावेश में तीन पांव जमीन मांगी, नमुचि ने वह स्वीकार की। उसी समय वैक्रिय लब्धि से एक लाख योजन का रूप बनाकर एक पांव जम्बूद्वीप को जगती पर, व एक पांव चुल्ल हिमवंत पर्वत पर रखकर बोले कि अब तीसरा पांव कहाँ रखूं? नमुचि भयभीत हो गया, मुनि ने तीसरा पांव उसके मस्तक पर रखा और वह मरकर पाताल में गया। तत्पश्चात् चक्रवर्ती अपने अन्तःपुर सहित आये। विष्णु कुमार की बहिन भी आई और मधुर स्वर से स्तुति करने लगी, फिर विष्णुकुमार मुनि क्रोध उपशांत कर अपना मूल रूप बनाकर आचार्य के पास आये और प्रायच्छित्त ले शुद्ध बनकर तप संयम का आचरण करते उनको केवल ज्ञान प्राप्त हुआ, छः हजार वर्ष केवल पर्याय पाल कर मोक्ष गये, महापद्म चक्रवर्ती भी दीक्षा अंगीकार कर तीस हजार वर्ष का आयुष्य पालकर मोक्ष गये।

एगछत्तं पसाहिता, महिं माणनिसूणो।
हरिसेणो मणुस्सिदो, पत्तो गइमणुत्तरं॥४२॥

सब शत्रुओं के मान का मर्दन करने वाले हरिषेण चक्रवर्ती छः खण्ड पृथ्वी में एक छत्र राज्य किया था, ऐसा मनुष्येन्द्र भी दीक्षा ले मोक्ष गया॥४२॥

यहाँ पर दसवां हरिषेण चक्रवर्ती की कथा अंकित है—कंपिलपुर नगर के महाहरी राजा की मेरा रानी को चौदह स्वप्न सहित पुत्र हुआ। उसका नाम हरिषेण दिया, इसने भी भरत क्षेत्र के छः खण्ड का राज्य किया और दीक्षा ली। हजार वर्ष का आयुष्य पालकर मोक्ष में गये।

अन्निओ रायसहस्सेहिं सुपरिच्चाई दमं चरे।
जयनामो जिणक्खायं पत्तो गइमणुत्तरं॥४३॥

सहस्त्रों राजाओं का अधिपति ग्यारहवाँ चक्रवर्ती जिनेन्द्र प्रणीत संयम का पालन कर मोक्ष गये थे॥४३॥

कथा—राजगृही नगरी के समुद्र विजय राजा की विमारानी को चौदह स्वप्न सहित पुत्र हुआ उसका नाम जयसेन रखा, कालान्तर में चक्रवर्ती की सब ऋद्धि होने के बाद उसको छोड़कर दीक्षा अंगीकार की, केवल ज्ञान प्राप्त किया और सब मिलकर तीन हजार वर्ष का आयुष्य भोगवकर मोक्ष में गया।[१]

दसण्णरज्जं मुइयं, चइत्ता णं मुणी चरे।
दसण्णभद्दो निक्खंतो, सक्खं सक्केण चोइओ॥४४॥

अब आगे अन्य राजाओं का कथन कहते हैं—शक्रेन्द्र की प्रेरणा प्रेराया हुआ दशारन देश का त्याग कर दशारनभद्र राजा ने संयम अंगीकार किया॥४४॥

यहाँ दशारन भद्र राजा की कथा उत्कीर्ण हैं—दशारन देश के दशारनपुर नगर का दशारन भद्र राजा श्री श्रमण भगवान महावीर स्वामी का अनुरागी था, सदैव भगवान के समाचार सुनने के बाद भोजन करता था। एकदा भगवान

---

१. इन में आठवां स्वयंभू व बारहवां ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती का कथन नहीं किया है, क्योंकि इन दोनों ने संयम अंगीकार नहीं किया। इसीलिए वे दोनों नरक में गये हैं। यहां तो जिन्होंने मोक्ष प्राप्त किया उन्हीं दस चक्रवर्ती का कथन किया गया है।

दशारनपुर पधारे और और बन पालक ने खबर दी राजा बहुत खुश हुआ और वनपालक को बधाई में बारह लाख रूपये दिये। पूरे नगर को सुशोभित बनाया और लोगों से कहा अपनी-अपनी शक्ति अनुसार सब सजाई कर भगवान के दर्शन के लिये चलो, यदि किसी के पास द्रव्य न होवे तो भंडार में से लो। राजा अपने १८ हजार हाथी, २४ लाख घोड़े, २१ हजार रथ, १ हजार पालकी, ६१ करोड़ पदाति, १६ हजार ध्वजा और ५०० रानियों को खूब ठाठबाट से और स्वयं भी वस्त्राभूषण से सुसज्जित बनकर अपने पाटवीय हस्ती पर आरूढ़ होकर छत्र चामर सहित प्रजाजनों के आशीर्वाद सहित भगवान के दर्शन के लिये निकला। इस ठाठ से निकलते हुए उनको गर्व हुआ कि जिस प्रकार मैं भगवान के दर्शन के लिये जाता हूँ वैसे अन्य कोई नहीं गया होगा। उस समय शक्रेन्द्र भी भगवान के दर्शन के लिये आये थे। उन्होंने अवधि ज्ञान से दशारनभद्र का अभिमान जाना। तीर्थंकर भगवान के दर्शन को जाते अभिमान करना अनुचित जानकर, उसक मान का मर्दन करने के लिये हाथी की सेना के अधिपति देव को आज्ञा दी, उस देव ने आकाश में ६४ हजार हाथी वैक्रिय कर मेघाडम्बर समान राजा की सारी सेना आच्छादित कर दी, हाथीयों के दीव्य भूषण दामिनी जैसे चमकने लगे और गजों का गुलगुलाट शब्द महा मेघ समान गर्जने लगा. उनमें एक-एक हाथी को ५०० मुख, एक मुख पर आठ दंतमूल पर आठ २ वावड़ियों, एक-एक वावड़ी में आठ-आठ कमल, एक-एक कमल की एक लाख पांखड़ियों, एक पांखड़ी पर बत्तीस प्रकार के नाटक, कमल के बीच की कर्णिका पर इन्द्र भवन, जिसमें इन्द्र का सिंहासन, ईशान कौन में चौरासी हजार सामनिक के चौरासी हजार सिंहासन, पूर्व में आठ अग्रमहिपियों के आठ हजार सिंहासनयों सव परिवार जानना, इस प्रकार सब हाथियों में से मात्र एक हाथी नीचे उतारा। इस हाथी को देखने अन्य सब लोग गये। उस समय दशारनभद्र राजा रह गया। वह चिन्ताग्रस्त हो विचारने लगा कि मेरा सम्मान कैसे रहे? अब संयम सिवाय और कोई उपाय नहीं है ऐसा विचार कर भगवान के पास जाकर संयम अंगीकार कर साधु समुदाय में बैठे। इन्द्र भगवान को नमस्कार कर साधुओं को नमस्कार करने लगा तो दशारनभद्र को साधु बने हुए देखा इन्द्र उनको बारंबार धन्यवाद दे अपना अपराध क्षमा कर स्वस्थान गया। दशारनभद्र मुनिराज अपने कर्मों का क्षय कर मोक्ष गये।।

नमी नमेइ अप्पाणं, सक्खं सक्केण चोइओ।
चइऊण गेहं वइदेही, सामण्णे पज्जुवट्ठिओ।।४५।।

संयम में आत्मा रमाने वाले नमि राजर्षि को साक्षात् शक्रेन्द्र चलित करने आये तथापि वे विदेह देश व गृहादि का त्याग कर संयम मार्ग में स्थित रहे।।४५।।

करकंडू कलिंगेसु पंचालेसु य दुम्मुहो।
नमी राया विदेहेसु, गंधारेसु य नग्गई।।४६।।

१. कलिंग देश का करकंडु राजा, २. पांचाल देश का दुमइ राजा, विदेह देश का नमिराजा और गांधार देश का निग्गइ राजा। इन चारों प्रत्येक बुद्ध ने साथ ही दीक्षा अंगीकार की। साथ ही केवल ज्ञान प्राप्त किया और साथ ही मोक्ष गये।।४६।।

इनमें से नमिराजर्षी की कथा तो इसके नवमें अध्ययन में कही गई है शेष तीन प्रत्येक बुद्ध का कथन कहते हैं। करकंडु राजा कलिंग देश की चंपानगरी के दधिवाहन राजा की रानी व चेडा की पुत्री पद्मावती को गर्भ के तीसरे मास में दोहद हुआ कि पुरुप का वेश पहनकर हाथी पर सवार होकर राजा के साथ वन क्रीड़ा करने जाऊँ। राजा उसी ही प्रकार रानी के साथ वन क्रीड़ा करने गया इतने में हस्ती मदोन्मत्त बनकर भागा। राजा वृक्ष की शाखा

पकड़कर नीचे उतरकर अपने राज्य में आया और रानी उतर सकी नहीं, वह हस्ती भागता हुआ एक तलाब में गया, तब रानी पानी में से तैरती हुई बाहर आई और किसी तापस के आश्रम में गई। तापस अपना धर्ममित्र चेडा राजा की पुत्री जानकर उसे दंतनगर के बाहर तक पहुँचाने आया। वह पद्मावती वहाँ से गांव में साध्वी जी का उपाश्रय पूछती हुई गई और उनके पास दीक्षा ली। फिर गर्भ के सब चिह्नों को देखकर आर्जिका पूछने लगे यह क्या? तब पद्मावती ने सब वृत्तांत कहा और बोली कि यदि पहले से ही यह बात कहती तो तुम मुझे दीक्षा नहीं देते इससे मैंने गर्भ छिपाया। साध्वीजी ने उपालंभ दिया और धर्म की लज्जा रखने के लिये पद्मावती को गुप्त रखा। सवा नव मास में पुत्र का जन्म हुआ। उसे गुप्तरूप में शमशान में परिठा दिया। उसे चंडाल उठाकर ले गया। उसे देखकर पद्मावती साध्वी उपाश्रय में आई और प्रायच्छित लिया। उस साध्वी का पुत्र पर प्रेम होने से चांडाल के वहाँ गुप्तरूप से जाती और पयःपान कराकर पीछे चली आती। बचपन से चांडाल के वहाँ का भोजन करने से बालक को खुजली का रोग हुआ, जिससे उसका नाम करकण्डु दिया। वह होशियार हो बालकों के साथ खेलता हुआ स्वयं राजा बने किसी को प्रधान बनावे, बदमाश छोकरों को दंड देवे। यह देखकर साध्वी जी को विचार हुआ कि यह राजा होगा। एकदा वह करकंडु शमशान में सोया था। वहाँ कोई साधु अपने शिष्य से बोले कि–इस बांस को चार अंगुल जमीन में खोद कर अपने पास रखे तो सातवें दिन राजा होवे। यह बात एक ब्राह्मण व करकण्डु यों दोनों ने सुनी। ब्राह्मण उस बांस को लेकर चला। करकण्डु बोला कि–मेरे श्मशान का दंड चोरने वाला तू कौन। दोनों में क्लेश हो गया। लोगों ने करकण्डु को समझाया, तब करकंडु बोलो कि–इस दंड से सातवे दिन में मुझे राज्य मिलने वाला है। लोग हंसते हुए बोलने लगे कि जब तुझे राज्य मिले तब एक गांव ब्राह्मण को भी देना। उसने यह बात मानी। अब गांव के लोग चांडाल पर नाराज हो गये। जिस से करकंडु उस लकड़ी को लेकर परदेश में गया। सातवें दिन कंचनपुर के बाहर आकर दंड सिराने रख कर सोया। उस समय उस गांव का राजा अपुत्रिया मर जाने से सामंतो ने पांच द्रव्य प्रगट किये। हाथी की सूंड में पुष्पमाला जलकलश दिये उसके पीछे सब परिवार निकला। वह हस्ती जहां करकंडु सोया था वहाँ आया। उसको उठाकर उसके गले में पुष्प माला डाली। सिर पर कलश से अभिषेक किया। सूंड से उठाकर अपनी पीठ पर बिठाया। कुल देव ने पुष्प वृष्टि की। करकंडु का पुण्य प्रभाव देख सब आश्चर्य पाये। राज्यारोहण किया और सुखपूर्वक राज्य करता विचरने लगा। अब उस ब्राह्मण को ज्ञात होते ही वह करकंडु राजा के पास आया और बोला कि मैं कलिंग देश में रहता हूँ। इसलिए उस देश में मुझे एक ग्राम दो करकंडु ने कलिंग देश की चंपा नगरी के दधिवाहन राजा पर अपनी मुद्रा सहित एक पत्र इस ब्राह्मण को एक ग्राम देने के लिए लिखा और साथ सुभट भेजा। दधिवाहन राजा हँसकर बोले कि क्या चांडाल को राज्य मिलने से वह मदमस्त बन निकला है। ऐसा कहकर उनके सुभटों को निकाल दिया। सुभटों ने करकंडु राजा से कहा। करकंडु क्रोधित बनकर अपनी चतुरंगिनी सेना सहित युद्ध करने आया। दधिवाहन राजा ने उसका सामना किया। यह समाचार पद्मावती आर्या जी ने सुना और उपकार का कारण जानकर अपनी गुरुणी जी की आज्ञा लेकर करकंडु के पास आई। करकंडु ने नमस्कार कर आने का कारण पूछा। तब सब वृत्तांत कहा। फिर वहाँ से दधिवाहन राजा के पास आई और अपना गर्भ का सब वृत्तांत कहा कि–यह तुम्हारा ही पुत्र है यों दोनों पुत्र पिता को मिलाया। दधिवाहन राजा करकंडु को राज्य देकर संयम लेकर मोक्ष में गये। करकंडु राजा एकदा गोकुल देखने गया था वहाँ एक बछड़े का सुन्दराकार देख उस पर प्रेम उत्पन्न हुआ और कहा कि इसको खूब दुग्ध पानकर अच्छी तरह पालना और स्वतंत्र फिरने देना। इस तरह अच्छा खान-पान मिलने से वह एक बड़ा सांड बन गया और राजा के महल के नीचे रहने लगा। जब उसको वृद्धावस्था प्राप्त हुई तब शिथिल शरीर होने से

वह पृथ्वी पर गिर पड़ा और कोई भी उसके पास आवे नहीं राजा को यह देखकर वैराग्य भाव प्राप्त हुआ कि इस औदारिक शरीर की यही रचना है। यों स्वयं प्रतिबोध पाकर दीक्षा धारण कर विचरने लगे।

तीसरा प्रत्येक बुद्ध दुमोई राजा की कथा–पांचाल देश के कंपिलपुर नगर का जब राजा मंडप के लिये भूमि खोदवाते थे जिसमें से एक चमत्कारिक मुकुट निकला। उसे धारण करने से राजा के दो मुख दिखने लगे जिससे लोग उस राजा को दुमोइ नाम से बुलाने लगे। उज्जयनी नगरी के चंद्रपद्योतन राजा को यह बात ज्ञात हुई और अपना लोहजंघ दूत द्वारा वह मुकुट देने को कहलाया। दुमोई राजा ने कहा कि–हे पुण्यहीन! दूसरे की वस्तु देख ललचाता है। तो तेरे चार रत्न १. अग्निभिसरथ, २. लोहजंघ दूत, ३. अनिलगिरी हस्ती और ४. शिवादेवी रानी, ये मुझे दे दो। दूत ने वह समाचार अपने राजा से कहा इस से वह क्रुद्ध बनकर दो लाख हाथी, पांच लाख घोड़े, दो लाख रथ, सात क्रोडपदातियों चतुरंगिनी सेना लेकर आया। दुमोइ राजा भी चतुरंगिनी सेना सहित सन्मुख आया। दोनों का परस्पर युद्ध हुआ चंडप्रद्योतन राजा हार गया। उसको पकड़ कर दुमोइ राजा अपने राज्य में लाया। और उसको अपनी कन्या देकर उज्जयनी पहुँचा दिया। दुमोइ राजा के राज्य में सौ-सौ वर्ष में इन्द्र महोत्सव होता था इसके लिये इन्द्र स्तंभ सुसज्जित किया जाता था, बहुत लोग उसकी पूजा करते थे। अन्यदा वह स्तंभ जीर्ण होकर गिर गया और लोग उसे जलाने ले गये। यह देख दुमोइ राजा को वैराग्य प्राप्त हुआ कि जहाँ तक पुण्य है वहाँ तक उसकी पूजा होती है। पुण्य क्षय होने पर इस स्तंभ जैसी रचना हो जाती है। यों स्वयं प्रतिबोध पाकर दीक्षा लेकर विचरने लगे।

अब चौथे प्रत्येक बुद्ध निग्गइ राजा की कथा कहते हैं–गांधार देश के पुंडरवर्धन नगर का सिंहरथ राजा ने सौदागर के पास से नये घोड़े खरीदे। उसकी परीक्षा के लिये वह अश्वारूढ़ बनकर फिरने लगा। उस घोड़े की लगाम खींचते पवनवेग से जाता हुआ बारह योजन की भयंकर अटवी में ले गया। राजा ने वृक्ष की शाखा पकड़ लगाम छोड़ दी कि वह घोड़ा वहां ही खड़ा रह गया। राजा को अपना दोष मालूम हुआ कि वह घोड़ा विपरीत लगाम का है। ऐसा मुझे मालूम नहीं होने से दोनों को व्यर्थ दु:ख हुआ। राजा ने वहाँ फिरते-फिरते एक सात भूमिका वाला महल देखा। उसमें जाकर देखता है तो एक महारूपवती कन्या रह रही है। उसे देख आश्चर्य चकित हुआ। कन्या ने अपने आसन से उठकर राजा का सत्कार सन्मान किया। राजा उसका हाल पूछने लगा कि तू यहाँ अकेली कैसे है? कन्या ने कहा कि–मेरे पाणिग्रहण करने के बाद मैं सब कहूंगी। राजा ने उससे गंधर्व लग्न किया और खान-पानकर भोग विलास कर सुखपूर्वक दोनों बैठे। वह कन्या कहने लगी कि क्षितिप्रतिष्ठ नगर के जितशत्रु राजा ने चित्रसभा बनवाने के लिये वहाँ के चित्रकारों को बुलाया और सारी सभा चारों चित्रकारों को सम विभाग में बांट दी। तीन चित्रकार तो अपने-अपने परिवार सहित आकर काम करते थे परंतु चौथा वृद्ध चित्रांगद नामक चित्रकार को मात्र एक कन्या कनकमंजरी नाम की परिवार में थी, इससे वह अहर्निश वहाँ ही रहकर अपना कार्य किया करता था। एकदा उसकी कन्या उस चित्रकार के लिये भोजन लेकर आ रही थी। वहाँ राजा का साला घोड़ा फिराता हुआ मध्य बाजार में आ रहा था। चित्रकार की कन्या यह देखकर पीछे खिसक गई और बच गई। वह भोजन लेकर अपने पिता के पास आई और भोजन रखा तब चित्रकार दिशा-शौच को गया। इतने में कन्या ने एक मयूर अपने पिता के चित्रम के स्थान बनाया। राजा भी उस दिन वहाँ चित्रसभा देखने आया और चित्रित मयूर को सच्चा मयूर ही मानकर पकड़ने झपट मारते दीवार की टक्कर लगी जिससे नख टूट गये। तब वह कन्या हँसकर बोली कि चौथा मूर्ख भी यह देख लिया है। राजा ने उससे पूछा कि चार मूर्ख कौन-कौन हैं? तब वह बोली कि प्रथम मूर्ख मेरा पिता कि जब मैं भोजन लाई तब वह दिशा शौच को गया। दूसरा मूर्ख राजा का साला कि जो मध्य बाजार में घोड़ा फिराता है और किसी को

नहीं देखता है तीसरा मूर्ख प्रधान कि जिसने इस चित्रसभा में वृद्ध जवानका भेद समझे बिना ही सबको जगह का समविभाग कर दिया और चौथा मूर्ख तुम कि जो इतने मनुष्य के बीच में चित्रित मयूर को सत्य मयूर मानकर उसे पकड़ने लगा। ऐसा सुन राजा ने उस कन्या को विदुषी (बुद्धिमती) जान उससे पाणिग्रहण किया। प्रथम रात्रि में जब राजा उसके शयन मंदिर में आया तब पूर्व संकेत अनुसार मदना दासी बोली—रानी जी कोई कथा कहो। रानी ने कहा राजा सो जायेंगे तब कहूंगी राजा कपट निद्राकर सो गया। तब रानी ने कहा कि वसंत पुर नगर में एक सेठ ने एक हाथ के मंदिर में चार हाथ की प्रतिमा रखी। मदना दासी बोली यह किस तरह? रानी ने कहा आज मुझे निद्रा आती है कल कहूँगी, राजा सुनकर विस्मित हुआ और इसका अर्थ सुनने के लिये दूसरे दिन भी उस ही रानी के महल में आया। राजा के कपट निद्रा में सोने पर दासी ने कल का अर्थ पूछा, तब रानी ने कहा कि वह सेठ कृष्ण का भक्त था जिसने मंदिर बनवाकर चार भुजा वाले (कृष्ण) की मूर्ति रखी थी पुनः दासी ने कहा कि और कोई कथा कहो, तब रानी ने कहा कि किसी राजा ने एक चोर को संदूक में डालकर पानी में बहा दिया, आगे किसी ने सन्दूक निकाला और पूछा कि तुझे कितने दिन से सन्दूक में डाला है? तब उसने कहा कि तीन दिन हुए हैं। दासी ने प्रश्न किया कि उस चोर को तीन दिन की कैसे मालूम हुई? रानी ने कहा आज मुझे निद्रा आती है कल कहूँगी। राजा इस प्रश्न का उत्तर सुनने के लिये तीसरे दिन भी वहाँ आया और कपट निद्रा में सो गया। रानी ने दासी के प्रश्न का उत्तर कहा कि उसको तेजरे का ज्वर आता था। ३. फिर दासी ने कोई नवीन कथा कहने का कहा तब रानी ने कहा कि किसी राजा ने अनेक सोनार को अंध भूआरे में बैठा कर दीपक के प्रकाश में गहना बनावाते पूछा कि—रात्रि हुई कि नहीं? तब एक सोनार बोला नहीं हुई। तब दासी ने पूछा कि अंध भूआरे में उसे कैसे मालूम हुआ? रानी ने उसका उत्तर दूसरे दिन देने का कहा। राजा उस दिन भी वहाँ आया। रानी ने आगे के प्रश्न का उत्तर दिया कि वह सोनारा राति अंधा था। ४. पुनः रानी ने कथा कही कि एक गुरुजी के पास चार लड्डू थे जिनमें से एक स्वतः ने खाया, दूसरा पहले चेले को दिया तीसरा दूसरे को दिया और चौथे को दिया। दासी ने कहा यह कैसे? रानी ने कहा इसका उत्तर कल दूंगी। उस दिन राजा वहाँ सोने को आया तब रानी ने कहा कि तीसरे का नाम चौथमल था। ५. एक सेठ के भंडार में से एक चोर तीसरे भाग का धन ले गया, दूसरा आधा और तीसरा सब ले गया। तीनों मिले और देखा तो सबके पास बराबर धन निकला तो वह धन कितना था? दासी ने कहा आप ही कहो? रानी ने कल का उत्तर देने को कहा। राजा भी उत्तर सुनने को रानी के सदैव वहाँ आया करता था। तब रानी ने कहा कि सब मिलकर छः सौनिये थे। पुनः रानी ने कथा की—एक ऊँट बड़ा वृक्ष देखकर उसको खाने गया परन्तु उसका मुँह वहाँ पहुँचा नहीं तब उस पर मलमूत्र कर चला गया। दासी ने पूछा यह किस तरह? रानी के कल उत्तर देने का कहा। उस दिन राजा भी वहाँ आया और रानी ने उत्तर कहा कि वह वृक्ष कुँए में था इस तरह राजा सदैव वहाँ ही आने लगा। तब अन्य ईर्ष्यालु रानियाँ उसके दोष देखने लगी। वह रानी सदैव मध्यान्ह में एकांत में बैठकर आत्मनिंदा किया करती थी। इसको बताकर राजा ने कहा कि यह आपको वश में करने का मन्त्र कर रही है। राजा ने कान लगाया तो इस प्रकार वह सुनने लगा। तू चित्रकार की पुत्री है न कि राजा की रानी, तुझे किसी बात का अभिमान नहीं चाहिये। नम्रतापूर्वक सबसे मिलकर रहना। ऐसा सुन राजा संतुष्ट हुआ और उसे पटरानी बनाई। कालान्तर से विमलाचार्य का उपदेश सुनकर राजा-रानी दोनों ने व्रत अंगीकार किया। आयुष्य का अंत देखकर संथारा किया और काल के अवसर में कालकर दोनों देवलोक गये। वहाँ से कनकमंजरी का जीव च्यवकर वैताढ्य पर्वत पर तोरणपुर नगर में कनकमाला नाम की राजपुत्री हुई। एकदा वासव विद्याधर ने उसका रूप देखकर हरन किया और यह महल बनाकर इसमें रखी। बाद में

से कनकमाला का भाई आया और आपस से युद्ध किया। दोनों मृत्यु पाये कनकमाला भाई के लिये विलाप कर रही थी उतने में एक विद्याधर आकर कहने लगा कि मैं तेरा पूर्व जन्म का पिता चित्रांगद चित्रकार का जीव हूँ। तूने मेरे अंत समय में मुझे धर्म की सहायता दी थी जिस प्रभाव से मैं विद्याधर हुआ हूँ। मेरा चित्रगुप्त नाम है, तू चिंता मत कर। यहाँ सिंहरथ राजा आवेगा वह तेरा पति होगा। यों कहकर वह चला गया और उनके कहने पर से मैं आपकी मार्ग प्रतीक्षा करती बैठी थी आपने पधारकर मेरे मनोरथ फलित कर दिये तत्पश्चात एक मास वहाँ रहकर कनकमाला की गगन गामिनी विद्या से विमान में बैठ कर राजा अपने राज्य में आया। बारंबार विमान में बैठकर गमनागमन करने से उस राजा का नाम निग्गइ दिया। एकदा वन क्रीड़ा करने जाते मनोहर आम्र वृक्ष देखकर मंजरी तोड़ी। बाद में से सब सेना ने पत्र शाखा वगैरह तोड़कर वृक्ष को ठूंठ बना दिया। राजा ने पुनः आते वही वृक्ष देखा और वैराग्य पाया, यौवनादि संपदा से ही शरीर की शोभा है इससे बोधित होकर दीक्षा अंगीकार कर विहार किया, ये चारों प्रत्येक बुद्ध साथ ही दीक्षा लेकर शिवजी के चोमुख मंदिर में अलग-अलग रहे, फिर परस्पर वार्तालाप हुआ चारों केवल ज्ञान पाकर मोक्ष गये।

एए नरिंदवसभा, निक्खंता जिणसासणे।
पुत्ते रज्जे ठवित्ताणं, सामण्णे पज्जुवट्ठिया॥४७॥

राजाओं में वृषभ समान पूर्वोक्त राजा अपने पुत्र को राज्य देकर जिन मार्ग में दीक्षा अंगीकार की और संयम में सावधान हुए॥४७॥

सोवीररायवसभो, चइत्ता णं मुणी चरे।
उदायणो पव्वइओ, पत्तो गइमणुत्तरं॥४८॥

सिंधु सोवीर देश का धोरी वृषभ समान उदायन राजा ने राज्य का त्यागकर दीक्षा अंगीकार की और वह मोक्ष गति को प्राप्त हुआ॥४८॥

यहाँ उदायन राजा की कथा उल्लिखित हैं–सिंधु सोवीर देश के वीतभयपाटण में उदायन राजा रहता था, उसकी प्रभावती रानी व कुब्जा दासी थी, एकदा गांधार देश का कोई श्रावक वहाँ आया और वह वहाँ बीमार पड़ा। कुब्जा दासी ने उसकी अच्छी तरह सेवा भक्ति की। जिस से उस श्रावक ने संतुष्ट हो दो गुटिका दी। जिसमें से एक गोली खाने से मनोहर रूप होवे और दूसरी गोली खाने से इच्छित पुरुष मिल सके। उसने प्रथम एक गुटिका खाई जिससे उसका शरीर सुवर्ण समान हो गया और उसका नाम सुवर्ण गुटिका रखा। फिर दूसरी गुटिका खाकर चंद्र प्रद्योतन राजा का स्मरण किया वह अनिलगिरि हाथी पर चढ़कर आया और उसे ले गया। उदायन राजा को इस बात का ज्ञान होने पर चौदह हजार मुकुटबंध राजाओं को साथ लेकर आया और चंद्र प्रद्योतन राजा का संग्राम में पराजित कर बंधन से बाँध कर ले चला। मार्ग में चार्तुमास लगने से चंद्र प्रद्योतन राजा से पूछा कि आपके लिये क्या रसोई बनाऊं? चंद्र प्रद्योतन राजा ने आज रसोई के पूछने का कारण पूछा तब उसने कहा कि उदायन राजा ने संवत्सरी पर्व होने से पौषध किया है, इससे आप की इच्छानुकुल भोजन बनाने का है। चंद्रप्रद्योतन राजा ने विचारा कि आज मुझे यह विष देकर मार डालेंगे। इससे उस ने भी उपवास करने को कहा, और उदायन राजा के पास जाकर वह भी पौषध लेकर बैठ गया। संध्या को संवत्सरी प्रतिक्रमण करके उदायन राजा चंद्रप्रद्योतन से माफी मांगने लगे। तब वह उदायन राजा से बोला कि मुझे तो कैद कर रखा है और क्षमा चाहते हो। उदायन राजा ने उसे सुवर्ण गुटिका दासी के साथ

माणिग्रहण कराया और उज्जयनी भेज दिया। उदायन राजा बीत भय पाटन आये। एकदा उदायन राजा को पौषध में भगवान के दर्शन की अभिलाषा हुई, भगवान भी विचरते-विचरते वहाँ पधारे गये, उदायन राजा बड़ी धूमधाम से वंदन करने निकला। देशना सुकर वैरागी बना, और विचार किया कि मेरा अभीच कुमार मुझे बहुत ही प्रिय है। यदि मैं इस को राज्य दूँगा तो वह उसमें लुब्ध बनकर नरकगामी होगा, और पुत्र के साथ ऐसा करना मुझे उचित नहीं है, इस विचार से केशीकुमार नामक भाणेज को राज्य देकर उदायन राजा ने दीक्षा अंगीकार की। अभीच कुमार को आश्चर्य हुआ कि मेरे में क्या अपलक्षण है कि जिससे मुझे छोड़कर भाणेज को राज्य दिया। इससे क्रोधित हो कर चंपा नगरी में मासी का पुत्र भाई कूणिक राजा के पास जाकर रहा। रागद्वेष से उदायन राजा को वंदना करना छोड़ दिया, उदायन राजर्षि ने ग्यारह अंग कंठस्थ किये और भगवान की आज्ञा लेकर एकल बिहारी हो विचरते बीतभय पाटन आये, केशी राजा ने यह समाचार सुनकर विचार किया कि न मालूम इनका मन राज्य में ललचाया हो और राज्य लेने आये हो। इससे नगर में ऐसी आज्ञा फिराइ कि कोई भी उदायन साधु को रहने के लिये स्थान देवे नहीं, यदि देंगे तो उसके जान मालका नुकसान होगा। राजा के डर से उदायन मुनि को किसी ने ठहरने दिया नहीं, मात्र एक कुंभार ने निडर बनकर अपनी झोंपड़ी रहने दी। यह सुन राजा चुप हो गये, परन्तु राज्य वैद्यों को बुलाकर औषध में विष डालकर उदायन मुनि को वह औषध दिया। औषधि लेते ही अत्यंत उज्ज्वल वेदना हुई, परंतु समभाव से सहन करते क्षपक श्रेणी पर चढ़कर अंतकृत केवली हो मुक्ति में गये। उनकी प्रभावती रानी देवी हुई थी उसने यह हाल जानकर कुपित बनकर धूल की वृष्टि से बीतभय पाटण का नाश कर दिया।

तहेव कासिराया वि, सेओ-सच्चपर क्कमो।
कामभोगे परिच्चज्ज, पहणे कम्ममहावणं॥४९॥

वैसे ही काशी देष का अति प्रशंसनीय सातवाँ नंदन नाम का बलदेव राजा ने भी राज्य व काम भोगों का त्यागकर संयम अंगीकार कर कर्म रूप महावन का नाश किया॥४९॥

तहेव विजओ राया, अणट्टाकित्ति पव्वए।
रज्जं तु गुणसमिद्धं, पयहित्तु महायसो॥५०॥

वैसे ही महायशस्वी व विमल कीर्तिवाला विजय का नाम का दूसरा बलदेव राजा ने न्याय करने के गुण से अधिक शब्दादिक गुण से मनोहर ऐसा राज्य का त्याग कर संयम अंगीकार किया॥५०॥

तहेवुग्गं तवं किच्चा, अव्वक्खित्तेण चेयसा।
महब्बलो रायरिसी, आदाय सिरसा सिरं॥५१॥

वैसे ही उग्र तपश्चर्या करने वाला महाबल राजर्षि ने अव्यग्र चित्त से महा परिश्रम से केवल ज्ञान रूप लक्ष्मी प्राप्त की॥५१॥

कहं धीरो अहेऊहिं, उम्मत्तो व महिं चरे?।
एए विसेसमादाय, सूरा दढपरक्कमा॥५२॥

जब पूर्वोक्त पुरुष इस तरह संयम अंगीकार कर मोक्ष में गये तब धीर पुरुष मिथ्यात्वियों के कुहेतु से उन्मत्त बनकर किसलिये विचरे अर्थात् उन्मत्त बनकर नहीं विचरे, और इसी कारण से पूर्वोक्त भरतादिक ने ज्ञान सहित शुद्ध किया अंगीकार कर जैन मार्ग स्वीकार किया॥५२॥

अच्चंतनियाणखमा, एसा मे भासिया वई।
अतरिंसु तरंतेगे, तरिस्संति अणागया॥५३॥

समकितादिक कारण से कर्म रूप मैल नष्ट करने वाली जिनागम रूप वाणी मैंने कही, इसका अवलम्बन कर अतीत काल में अनंत जीव मुक्ति में गये, वर्तमान में मुक्ति में जाते हैं और अनागत में मुक्ति में जावेंगे॥५३॥

कहं धीरे अहेऊहिं, अद्दाय परियावसे?।
सव्वसंगविणिम्मुक्को सिद्धे भवइ नीरए॥५४॥ त्ति बेमि॥
॥ संजइज्जं अट्ठारसमं अज्झयणं समत्तं॥१८॥

जिससे कुहेतु होता होवे उसमें धैर्यवन्त पुरुष अपने आत्मा को कैसे स्थापन करे? अर्थात् नहीं करे परंतु सब कर्म संग से मुक्त बनकर कर्म रूप रज रहित शाश्वत सिद्ध होवे। ऐसा मैं कहता हूँ यों श्री सुधर्मा स्वामी अपने शिष्य श्री जम्बू स्वामी से कहने लगे कि अहो जम्बू! जैसा मैंने सुना है वैसा ही तुझे कहता हूँ॥५४॥

संयति राजा का अठारहवाँ अध्ययन हुआ।

१९

एगूणवीसइमं मियापुत्तिज्जं अज्झयणं
मृगापुत्रीयनामकमेकोनविंशतितममध्ययनम्

अठारवें अध्ययन में भोग व ऋद्धि का त्याग कहा, ऐसा त्याग संयमी कर सकते हैं और जो संयमी होते हैं वे सावद्य औषधि नहीं करते हैं, यह अधिकार इस उन्नीसवें अध्ययन में कहा है।

सुग्गीवे नयरे रम्मे, काणणुज्जाणसोहिए।
राया बलभद्दि त्ति, मिया तस्सऽग्गमाहिसी॥१॥

बड़े वृक्षों से क्रीड़ा करने योग्य ऐसा उद्यान से सुशोभित व ऋद्धि समृद्धि से रमणीय सुग्रीव नगर में बलभद्र राजा राज्य करता था, उसकी मृगावती नाम की पटरानी थी॥१॥

तेसिं पुत्ते बलसिरी, मियापुत्ते त्ति विस्सुए।
अम्मा-पिऊण दइए, जुवराया दमीसरे॥२॥

उनको बलश्री नाम का पुत्र हुआ कि जो मृगापुत्र से विख्यात हुआ[१], यह माता-पिता को प्रिय, युवराज व यतीश्वर हुआ॥२॥

नंदणे सो उ पासाए, कीलए सह इत्थिहिं।
देवो दोगुंदुगो चेव, निच्चं मुइयमाणसो॥३॥

सदैव प्रमुदित मन वाला वह मृगापुत्र प्रासाद पर दोगुन्दक देवता जैसे अपनी स्त्रियों साथ क्रीड़ा करता हुआ विचर रहा था॥३॥

मणि-रयणकोट्टिमतले, पासायालोयणे ठिओ।
आलोएइ नगरस्स, चउक्क-तिय-चच्चरे॥४॥

मणिरत्न की भूमिवाला प्रासाद के गवाक्ष में बैठकर मृगापुत्र नगर के चौराहे त्रिपथ व बहुपथों का अवलोकन कर रहा था॥४॥

अह तत्थ अइच्छंतं, पासई समण संजयं।
तव-नियम-सजमधरं, सीलड्ढं गुणआगरं॥५॥

उस समय तप नियम व संयम को धारण करने वाले अठारह सहस्त्रसिलांग रूप ऋद्धि वाले व गुण की खाने वाले साधु मुनिराज को मार्ग में जाते हुए देखा॥५॥

---

१. रानी का दिया नाम बल श्री कुमार था और राजा का दिया नाम मृगापुत्र था।

तं पेहई मियापुत्ते, दिट्ठीए अणिमिसाइ उ।
कहिं मन्नेरिसं रूवं, दिट्ठपुव्वं मए पुरा?॥६॥

मृगापुत्र अनिमिष दृष्टि से उस साधु मुनि को देखने लगा और विचारने लगा कि मैंने पहले ऐसा रूप किसी स्थान पर देखा है॥६॥

साहुस्स दरिसणे तस्स, अज्झवसाणम्मि सोहणे।
मोहं गयस्स संतस्स, जाईसरणं समुपपन्नं॥७॥

साधु के दर्शन से उस मृगापुत्र के भावविशुद्ध होने से मोहनीय कर्म का उपशम होने से उसे जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हुआ॥७॥

देवलोग चुओ संतो, माणुसं भवमागओ।
सन्निनाण समुप्पन्ने, जाइं सरइ पुराणयं॥८॥

संज्ञा[1] का भाव बताने वाला ऐसा जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न होने से मृगापुत्र ने देखा कि मैं देवलोक से चलकर यहाँ मनुष्य लोक में आया हूँ॥८॥

जाईसरणे समुप्पन्ने, मियापुत्ते महिड्ढिए।
सरइ पोराणियं जाइं, सामण्णं च पुराकयं॥९॥

जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न होने से महर्द्धिक मृगापुत्र अपनी पहले की जाति व पहले आचरण किया हुआ साधुपना का स्मरण करने लगा॥९॥

विसएहिं अरज्जंतो, रज्जंतो, संजमम्मि य।
अम्मा-पियरमुवागम्म, इमं वयणमव्ववी॥१०॥

फिर विषय भोगों में अनासक्त व चरित्र में आसक्त बना हुआ वह मृगापुत्र माता-पिता के पास आकर इस प्रकार कहने लगा॥१०॥

सुयाणि मे पंच महव्वयाणि, नरएसु दुक्खं च तिरिक्खजोणिसु।
निव्विण्णकामो मि, महण्णवाओ, अणुजाणह पव्वइस्सामो अम्मो!॥११॥

अहो मात पिता! नरक व तिर्यंच में जो दुःख होता है सो तथा साधु के पांच महाव्रत ये पूर्व भव में मैंने सुना है, इससे अब मैं इस संसार समुद्र से निवृत्ति करने का अभिलाषी हुआ हूँ, मातपिता! आप आज्ञा दो कि मैं चरित्र अंगीकार करूँ॥११॥

अम्म! ताय! मए भोगा, भुत्ता विसफलोवमा।
पच्छा कडुयविवागा, अणुबंधदुहावहा॥१२॥

अहो मातपिता! किंपाक फल समान पहले अच्छे स्वाद वाले और पीछे कटुक फल देने वाले और निरंतर दुःख वाले ऐसे काम भोग मैंने भोगवे हैं॥१२॥

---

१. संज्ञी के ९०० भव साथ-साथ किए हों तो जाति स्मरण ज्ञान वाला देख सकते हैं।

इमं सरीरं अणिच्चं, असुइं असुइसंभवं।
असासयावासमिणं, दुक्खकेसाण भायणं॥१३॥

यह शरीर भी अनित्य, अशुचिमय, अशुचि उत्पन्न करने वाला, अशाश्वतवासवाला, दुःख का कारण भूत और क्लेश का भाजन है॥१३॥

असासए सरीरम्मि, रइं नोवलभामहं।
पच्छा पुरा व चइयव्वे, फेणबुब्बुयसन्निभे॥१४॥

ऐसे अशाश्वत शरीर में मुझे आनन्द नहीं मिलता है। ऐसा फेन के बुलबुले के समान नाशवंत शरीर को पहले पीछे जब कभी त्यागना ही है॥१४॥

माणुसत्ते असारम्मि, वाही-रोगाण आलए।
जरा-मरणघत्थम्मि, खणं पि न रमामहं॥१५॥

व्याधि रोगों का घर समान व जरा मरण से ग्रस्त हुआ इस असार मनुष्यत्व में क्षणमात्र भी आनन्द नहीं प्राप्त कर सकता हूँ॥१५॥

जम्मं दुक्खं जरा दुक्खं, रोगा य मरणाणि य।
अहो! दुक्खो हु संसारो, जत्थ कीसंति जंतुणो॥१६॥

जिस संसार में जन्म दुःख, जरा का दुःख, रोग का दुःख, मरण का दुःख है, अहो यह संसार सचमुच दुःखमय है, और इससे भी प्राणी पीड़ित होते हैं॥१६॥

खेत्तं वत्थुं हिरण्णं च, पुत्त-दारं च बंधवा।
चइत्ताणं इमं देहं, गंतव्वमवसस्स मे॥१७॥

क्षेत्र, गृह, सुवर्ण, पुत्र, दारा, बांधव, और इस शरीर को छोड़कर अवश्य परलोक में जाने को है॥१७॥

जहा किंपागफलाणं, परिणामो न सुंदरो।
एवं भुत्ताण भोगाणं, परिणामो न सुंदरो॥१८।

जैसे किंपाक फल दीखने में सुन्दर व खाने में मीठा है परंतु इसका परिणाम प्राण हरण करने वाला है वैसे ही काम भोग देखने में सुन्दर, भोगने में मधुर परंतु आने वाले काल में महादुःख के दाता होते हैं॥१८॥

अद्धाणं जो महंतं तु, अपाहेज्जो पवज्जई।
गच्छंतो से दुही होइ, छुहा-तण्हाए पीडिओ॥१९॥
एवं धम्मं अकाऊणं, जो गच्छइ परं भव।
गच्छंतो सो दुही होइ, वाहि-रोगहि पीलिए॥२०॥

जिस प्रकार कोई लम्बे सफर पर जाने वाला पुरुष पाथेय के बिना महा अटवी में जाता है, उसमें क्षुधा तृषा से पीड़ित होता है, दुःखी होता है वैसे ही धर्म किये बिना जो जीव परभव में जाता है वह वहाँ व्याधि रोग से पीड़ित होता है, दुःखी होता है॥१९-२०॥

अद्धाणं जो महंतं, तु सपाहेज्जो पवज्जई।
गच्छंतो से दुही होइ, छुहा-तण्हाविवज्जिए॥२१॥
एवं धम्मं पिकाऊणं, जो गच्छइ परं भवं।
गच्छते सो सुही होइ, अप्पकम्मे अवेयणे॥२२॥

जैसे कोई पुरुष अपना भाता सहित महा अटवी के पथ पर जाता है और क्षुधा तृषा की बाधा से रहित होता है सुखी होता है वैसे ही जीव धर्म करके परभव में जाता है और वहाँ अल्प कर्म व अल्प वेदना वाला होने से सुखी होता है॥२१-२२॥

जहा गेहे पलित्तम्मि, तस्स गेहस्स जो पहू।
सारभंडाणि नीणेइ असारं अवइज्झइ॥२३॥
एवं लोए पलित्तम्मि, जराए मरणेण य।
अप्पाणं तारयिस्सामि, तुब्भेहिं अणुमन्निओ॥२४॥

जैसे किसी का घर जलता होवे तो घर का स्वामी अच्छी सार वस्तु बचाने का उपाय करता है और अस्सार वस्तु का त्याग करता है, वैसे ही यह लोक जरा व मरण से जल रहा है इससे आपकी आज्ञा लेकर मैं अपनी आत्मा को तारूंगा॥२३-२४॥

तं बिंतऽम्मा-पियरो सामन्नं पुत्त! दुच्चरं।
गुणाण तु सहस्साइं, धारेयव्वाई भिक्खुणा॥२५॥

अब माता-पिता पुत्र को कहने लगे हे पुत्र! साधु धर्म पालना अयन्त कठिन है। साधुओं को क्षमादि सहस्त्रों गुण धारण करने चाहिये॥२५॥

समया सव्वभूएसु, सत्तु-मित्तेसु वाजगे।
पाणाइवायविरई, जावज्जीवाए दुक्करं॥२६॥

और शत्रु मित्र रूप सब भूतों में समता भाव धारण करना और जावजीव पर्यंत प्राणातिपात से विरति भाव धारण करना चाहिये। अहो पुत्र! यह दुष्कर है॥२६॥

निच्चकालऽप्पमत्तेणं, मुसावायविवज्जणं।
भासियव्वं हियं सच्चं, निच्चाउत्तेण दुक्करं॥२७॥

सदैव अप्रमादी बनकर मृषावाद का त्याग करना और सत्य वचन कहना तथा उपयोग के साथ बोलना अति दुष्कर है॥२७॥

दंतसोहणमाइस्स, अदत्तस्स विवज्जणं।
अणवज्जेसणिज्जस्स, गिण्हणा अवि दुक्करं॥२८॥

दंत शोधन के लिये सली मात्र बिना दिये ग्रहण नहीं करना और शरीर के निर्वाह के लिये आहार आदि भी बयालीस दोष रहित एषणा गवेषणा कर ग्रहण करना भी अति दुष्कर है॥२८॥

विरई अवंभचेरस्स, कामभोगरसन्नुणा।
उग्गं महाव्वयं बंभं, धारेयव्वं सुदुक्करं॥२९॥

कामभोग के रस को जानने वाले को अब्रह्मचर्य से विरति और ब्रह्मचर्य रूप घोर उग्र महाव्रत धारण करना अति दुष्कर है॥२९॥

धण-धन्न-पेसवग्गेसु, परिग्गहविवज्जणं।
सव्वारभपरिच्चागो, निम्ममत्तं सुदुक्करं॥३०॥

धन, धान्य व दास में निर्ममत्व धारण करना, सब आरंभ का त्याग करना और परिग्रह रहित रहना महादुष्कर है॥३०॥

चउव्विहे वि आहारे, राईभोयणवज्जणा।
सन्निहीसंचओ चेव, वज्जेयव्वो सुदुक्करं॥३१॥

रात्रि में अशनादि चारों आहार का त्याग करना, और किसी प्रकार संचय नहीं रखना यह दुष्कर है॥३१॥

छुआ तण्हा य सीउण्हं, दंस-मसगवेयणा।
अक्कोसा दुक्खसिज्जा य, तणफासा जल्लमेव य॥३२॥
तालणा तज्जणा चेव, वह-बंधपरीसहा।
दुक्खं भिक्खायरिया, जायणा य अलाभया॥३३॥

क्षुधा परीषह, तृषा परीषह, शीत परीषह, ऊष्ण परीषह दंश मशक परीषह आक्रोश वचन, दुःखकारी उपाश्रय, तृण स्पर्श, व मैल का परीषह। चपेटादिक ताडन अंगुली से तर्जना, चाबुक वगैरह से मारना । याचना करके भिक्षा करना और याचना करते हुए भी इच्छित वस्तु की प्राप्ति होवे नहीं सो अलाभ परीषह इत्यादि परीषह साधु को सहन करना अति दुष्कर है॥३२-३३॥

कावोया जा इमा वित्ती, केसलोओ य दारुणो।
दुक्खं बंभव्वयं घोरं, धारेउं ममहप्पणो॥३४॥

जिस प्रकार कपोत-जीवों को छोड़कर अनाज के दाने को चुगते हैं, वैसी ही वृत्ति साधु की है अर्थात् साधु भी सदोष आहार का त्याग कर निर्दोष आहार ग्रहण कर विचरे। केश लोच करना, भी बड़ा दारुण है, व घोर ब्रह्मचर्य व्रत अंगीकार करना दुःखदायी है॥३४॥

सुहोइओ तुमं पुत्ता! सुकुमालो य सुमज्जिओ।
न हु सी पभू तुमं पुत्ता! सामण्णमणुपालिया॥३५॥

अहो पुत्र! तुम सुकुमाल, समझने वाले व सुखशीलि हो इससे साधुपना पालने में तुम समर्थ नहीं हो सकते हो॥३५॥

जावज्जीवमविस्सामो, गुणाणं तु महब्भरो।
गरुओ लोहभारु वव जो पुत्ता! होइ दुव्वहो॥३६॥

अहो पुत्र! साधु के चरण करणादि गुण का भार लोह के भार समान विश्राम रहित जावज्जीव पर्यंत वहन करना अति दुष्कर है॥३६॥

आगासे गंगसीउ व्व, पडिसोउ व्व दुत्तरो।
बाहाहिं सागरो चेव, तरियव्वो गुणोदही॥३७॥

जैसे ऊँचे चुल्ल हिमवंत पर्वत पर से गिरता हुआ गंगा के प्रवाह के सामने जाना दुष्कर है वैसे ही यौवनावस्था में इन्द्रियों के प्रतिकूल प्रवृत्ति करना अति दुष्कर है और जिस प्रकार दोनों भुजा के बल से दो लाख योज़न के लवण समुद्र को तैरना कठिन है वैसे ही साधु के गुण रूप समुद्र को पार करना कठिन है॥३७॥

बालुयाकवले चेव, निरस्साए उ संजमे।
असिधारागमणं चेव, दुक्करं चरिउं तवो॥३८॥

जैसे रेती का कवल नीरस खाना कठिन है वैसे ही विषय सुख रहित संयम का पालना कठिन है। जिस प्रकार खड्ग की धारा पर चलना दुष्कर है वैसे ही बारह प्रकार का तप का आचरन करना दुष्कर है॥३८॥

अहीवेगंतदिट्ठीए, चरित्ते पुत्त! दुच्चरे।
जवा लोहमया चेव, चावेयव्वा सुदुक्करं॥३९॥

अहो पुत्र! जैसे सर्प एक दृष्टि से चलता है वैसे ही साधु को ईर्या समिति से चलना दुष्कर है और जैसे मोम के दांत से लोहमय चने खाना दुष्कर है, वैसे ही संयम का आचरण करना दुष्कर है॥३९॥

जहा अग्गिसिहा दित्ता, पाउं होइ सुदुक्करं।
तहा दुक्करं करेउं जे, तारुण्णे समणत्तणं॥४०॥

जैसे अत्यंत जाज्वल्यमान अग्नि शिखा पीना दुष्कर है। वैसे ही तरुण अवस्था में साधुपना पालना दुष्कर है॥४०॥

जहा दुक्खं भरेउं जे, होइ वायस्स कोत्थलो।
तहा दुक्खं करेउं जे, कीवेणं समणत्तणं॥४१॥

जैसे वायु से शन का थैला भरना दुष्कर है वैसे ही कायरों का साधुपना पालना दुष्कर हैं॥४१॥

जहा तुलाए तोलेउं दुक्करो मंदरो गिरी।
तहा निहुयं नीसंकं, दुक्करं समणत्तणं॥४२॥

जैसे तराजु से मेरु पर्वत तोलना दुष्कर है वैसे ही शंका रहित साधुपना पालना कठिन है॥४२॥

जहा भुयाहिं तरिउं, दुक्करं रयणायारो।
तहा अणुवसंतेणं, दुत्तइअहजित५ञ्चरो दमसागरो॥४३॥

जैसे रत्नाकर (स्वयंभूरमण) समुद्र को भुजा से पार करना दुष्कर है वैसे ही जिस को कषायों का उपशम नहीं है उसको क्षमा रूप सागर को पार करना दुष्कर है॥४३॥

भुंज माणस्सए भोए, पंचलक्खणए तुमं।
भुत्तभोगी तओ जाया! पच्छा धम्मं चरिस्ससि॥४४॥

अहो पुत्र! उक्त उपमाओं से साधुपने को पालना अति दुष्कर है, इसलिये वर्तमान में प्राप्त

हुए शब्द, रूप, रस, गंध व स्पर्श ये मनुष्य के पांच प्रकार के कामभोग भोगवो। फिर भुक्त भोगी होकर पीछे तुम धर्माचरण करना।।४४।।

सो बिंतऽम्मा-पियरो, एवमेयं जहाफुडं।
इहलोए निप्पिवासस्स, नत्थि किंचि वि दुक्करं।।४५।।

अब मृगापुत्र माता-पिता को कहने लगा कि आपने जो कुछ कहा यह सत्य है परंतु इस लोक के निस्पृही जन को कुछ भी दुष्कर नहीं है।।४५।।

सारीर-माणसा चेव, वेयणाउ अणंतसो।
मए सोढाओ भीमाओ, असइं दुक्खभयाणि य।।४६।।

मैंने अनेक बार शारीरिक व मानसिक दुःख भय उत्पन्न करने वाली ऐसी भयंकर वेदना सहन की है।।४६।।

जरा-मरणकंतारे, चउरंते भयागरे।
मए सोढाणि भीमाइं जम्माइं मरणाणि य।।४७।।

चतुर्गति रूप संसार अटवी में जरा मृत्यु रूप महा भयंकर दुःखों से जन्म-मरण कर असाता वेदनी अनंत बार सहन किया है।।४७।।

जहा इहं अगणी उण्हो, एत्तोऽणेतगुणां तहिं।
नरएसु वेयणा उण्हा, अस्साया वेइया मए।।४८।।

यहाँ जो अग्नि है उससे अनंत गुनी ऊष्ण अग्नि नरक में है और उसकी असाता रूप वेदना मैंने अनुभव किया हैं।।४८।।

जहा इहं इमं सीयं, एत्तोऽणंतगुणं तहिं।
नरएसु वेयणा सीया, असाया वेइया मए।।४९।।

यहाँ पर जो हिमालयादि में शीत है इससे अनंत गुणा शीत वेदना नरक में है। इसको भी मैंने भोगी है।।४९।।

कंदंतो कंदुकुंभीसु, उड्ढपाओ अहोसिरो।
हुयासणे जलंतम्मि, पक्कपुव्वो अणंतसो।।५०।।

प्रज्वलित भट्टी पर लोह की कढ़ाई आदि में कंदुकुम्भी भाजन तपाकर उस पर मेरे पांव ऊँचे व मस्तक नीचे रखकर मुझे अनंतवार पकाया गया है।।५०।।

महादवग्गिएंकासे, मरुम्मि वइरबालुए।
कलंबवालुयाए उ, दड्ढपुव्वो अणंतसो।।५१।।

मरुस्थल जैसी रेती तथा कर्दव नामक नदी की रेती जैसे रेती को महा दहाग्नि जैसी बनाकर उस में मुझे अनंत बार जलाया और तपाया गया है।।५१।।

रसंतो कंदुकुंभीसु, उड्ढं बद्धो अबंधवो।
करवत्त-करकयाइहिं, छिन्नपुव्वो अणंतसो॥५२॥

बांधव रहित मुझे कुंभी में आक्रंद करता हुआ उठाकर ऊँची वृक्ष का शाखा से बांधा और वहाँ छोटे व बड़े करपत्र से मेरे शरीर का छेदन किया॥५२॥

अइतिक्खकंटकाइण्णे, तुंगे सिंबलिपायवे।
खेवियं पासबद्धेणं, कड्ढीकड्ढाहिं दुक्करं॥५३॥

अति तीक्ष्ण कांटे से व्याप्त सिंवली वृक्ष को ऊँचे बंधन से मुझे बांधकर झोके (झूले) दिये। इससे असहनीय वेदना भोगनी पड़ी॥५३॥

महाजंतेसु उच्छू वा, आरसंतो सुभेरवं।
पीलिओ मि सकम्मेहिं, पावकम्मो अणंतसो॥५४॥

मेरे अशुभ कर्मोदय से रौद भयानक शब्द आक्रन्दन करते हुए मुझे महायंत्र में इक्षु की तरह अनंत बार पीला॥५४॥

कूवंतो कोलसुणएहिं, सामेहिं सबलेहि य।
पाडिओ फलिओ छिन्नो, विस्फुरंतो अणेगसो॥५५॥

शबल जाति के परमाधर्मी ने श्वान व सूअर का रूप बना कर कोकाट शब्द करते हुए मुझे जमीन पर डालकर तड़फते हुए मेरा पंजादि से छेदन किया, और दांतों से भेदन किया॥५५॥

असीहिं अयसिवण्णेहिं, भल्लीहिं पट्टिसेहि य।
छिन्नो भिन्नो विभिण्णे य, उववण्णो पावकम्मुणा॥५६।

पाप कर्म के उदय से मैं नरक में उत्पन्न हुआ तब अलसी के पुष्प के वर्ण समान खडग तथा भाले से छोटे-छोटे मेरे टुकड़े किये॥५६॥

अवसो लोहरहे जुत्तो, जलंते समिलाजुए।
चोइओ तुत्तजुत्तेहिं, रोज्झो वा जह पाडिओ॥५७॥

जाज्वल्यमान अग्नि समान वर्ण वाले भूसरा तथा समेला सहित लोह रथ में मुझे परवश पड़े को जोता, फिर तप्त जोत से बांध कर रोझ पशु को जैसे मार मारे वैसे ही लकड़ियों के प्रहार से मर्म स्थान में मुझे मारा॥५७॥

हुआसणे जलंतम्मि, चिआसु महिसो विव।
दड्ढो पक्को अ अवसो पावकम्मेहिं पाविओ॥५८॥

मेरे उपार्जन किये हुए पाप कर्म से परवश पड़े हुए मुझे जाज्वल्यमान अग्नि में चिता में भैंसे की तरह अथवा बैंगन की तरह पकाया गया॥५८॥

बला संडासतुंडेहिं, लोहतुंडेहिं पक्खिहिं।
विलुत्तो विलवंतो हं, ढंक-गिद्धेहिं णंतसो॥५९॥

ढंक कंक आदि मांसाहारी पक्षियों के तीक्ष्ण पंजे वाले रूप बनाकर परमाधर्मियों ने संडासी व चीमटे जैसे चोंच वाले पक्षियों ने अनन्त बार मुझे नोंच-नोंच कर मारा॥५९॥

तण्हाकिलंतो धावंतो, पत्तो वेयरणिं नइं।
जलं पहिं ति चिंतंतो, खुरधाराहिं विवाइओ॥६०॥

तृषा से पीड़ित बना हुआ वैतरनी नदी में जाकर पानी पीऊंगा इस विचार से वहाँ गया परंतु उस्तरे जैसी धारवाला, तीक्ष्ण पानी वेग के गिरकर अत्यन्त पीड़ित हुआ॥६०॥

उण्हाभितत्तो संपत्तो, असिपत्तं महावणं।
असिपत्तेहिं पडंतेहिं, छिन्नपुव्वो अणेगसो॥६१॥

गर्मी के ताप में आकुल व्याकुल होकर शीतलता के लिये आसि पत्र वन में गया, वृक्षों के पत्र खडग की धार समान मेरे शरीर पर पड़ने से अनंत बार मेरे शरीर का छेदन हुआ॥६१॥

मुग्गरेहिं मुसुंडीहिं, सूलेहिं मुसलेहि य।
गयासं भग्गत्तेहिं, पत्तं दुक्खं अणंतसो॥६२॥

मुझे अनाथ जानकर यम देवताओं ने मुद्गल व मुसंडी से मेरे शरीर के कई बार भाग किये॥६२॥

खुरेहिं तिक्खधरेहिं, छुरियाहिं कप्पणीहि य।
कप्पिओ फालिओ छिन्नो, उक्कित्तो अ अणेगसो॥६३॥

मेरे शरीर का चर्म वृक्ष की छाल जैसी छुरी की तीक्ष्ण धार से अनंत बार निकाला और वस्त्र की तरह केंची से अनंत बार काटा॥६३॥

पासेहिं कूडजालेहिं, मिओ वा अवसो अहं।
वाहिओ वद्धरुद्धो, अ बहू चेव विवाइओ॥६४॥

जैसे मृग को पाश में बांधते हैं वैसे ही परवश हुआ मुझे अनंत बार नाग पाश से बंधन से बांधा, और श्वासोच्छवास का रूंधन कर जीवन से रहित किया॥६४॥

गलेहिं मगर-जालेहिं, मच्छो वा अवसो अहं।
उल्लिओ फालिओ गहिओ, मारिओ य अणंतसो॥६५॥

मुझे परवशपना से अनेक बार जैसे मच्छ को जाल में पकड़कर भाले से मारते हैं वैसे ही पकड़कर मारा॥६५॥

वीदंसएहिं जालेहिं, लेप्पाहिं सउणो विव।
गहिओ लग्गो य बद्धो य, मारिओ य अणंतसो॥६६॥

जाल रूप पिंजरे में पक्षी की तरह बंध करके सींचने के रूप से मेरे शरीर को चूंट खाया और अनन्त बार मारा॥६६॥

कुहाड-फरसुमाईहिं, वड्ढईहिं दुमो विव।
कुट्टिओ फालिओ छिन्नो, तच्छिओ य अणंतसो॥६७॥

जिस प्रकार सुतार काष्ट का छेदन कूटन करता है वैसे ही यम देवों ने मुझे कुल्हाड़े से काटा, परशु से छेदा, गाड़ी की पुटी की तरह कूटा, यों अनंत बार दुःख दिया॥६७॥

चवेड-मुट्ठिमाईहिं, कुमारेहिं अयं पिव।
ताडिओ कट्टिओ भिन्नो, चुण्णिओ य अणंतसो॥६८॥

जिस प्रकार लौहार लोहे को कूटता है वैसे ही यम देवता ने मुझे चांटों से, मुष्टि से, लात प्रहार से कूट कर सूक्ष्म-सूक्ष्म टुकड़े-टुकड़े कर डाले॥६८॥

तत्ताई तंब-लोहाइं तउयाइं सीसगाणि य।
पाइओ कलकलंताइं, आरसंतो सुभेरवं॥६९॥

भयानक शब्द करके तप्त कर उबलता हुआ ताम्र, कथीर, लोहा, सीसा इत्यादि वस्तु धातु के रस का प्राशन कराया॥६९॥

तुहं पाइओ मंसाइं, खंडाइं सोल्लगाणि य।
खविओमि समंसाइं अग्गिवण्णाइं णेगसो॥७०॥

हे दुष्ट! तुझे मांस बहुत प्रिय था, तू मांस के सूले कर तल भुंज कर खाता था, इस प्रकार वे परमाधर्मी बोलते हुए मेरे शरीर का मांस तोड़-तोड़ कर बारीक-बारीक टुकड़े कर अग्नि में बनाकर अनन्त बार मुझे खिलाया॥७०॥

तुहं पिया सुरा सीहू, मेरओ य महूणि य।
पज्जिओ मि जलंतीओ, वसाओ रुहिराणि य॥७१॥

हे मद्यपान करने वाले! तुझे गुड़ का, महुए, प्रमुख का बना मदिरा बहुत प्रिय था, यों गत जन्म का स्मरण कर मेरे ही शरीर का रुधिर चर्बी निकालकर अग्नि में उबाल कर मुझे पिलाया॥७१॥

निच्चं भीएण तत्थेणं, दुहिएणं वहिएण य।
परमा दुहसंबद्धा, वेयणा वेदित्ता मए॥७२॥

नरक में सदैव भय भ्रांत उद्वेग युक्त व दुःख से कम्पायमान शरीर वाला मैंने अत्यंत दुःखप्रद वेदना भुक्ति है॥७२॥

तिव्वचंडपगाढाओ, घोराओ अइदुस्सहा।
महाभयाओ भीमाओ, नरएसु दुहवेयणा॥७३॥

नरक संबंधी अति तीव्र वेदना उत्कृष्ट तेत्तीस सागरोपम पर्यंत महा भयंकर वेदना कम्पायमान शरीर सहित मैंने भुक्ति है॥७३॥

जारिसा माणुसे लोए, ताया! दीसंति वेयणा।
इत्तो अणंतगुणि, या नरएसुं दुक्खवेयणा॥७४॥

इस मुनष्य लोक की असाता वेदना से अनंत गुनी अधिक नरक की असाता वेदना है॥७४॥

सव्वभवेसु अस्साया, वेयणा वेइया मए।
निमिसंतरमित्तं पि, जे साया नत्थि वेयणा॥७५॥

निमेषोन्मेष मात्र भी (आंख के टमकार इतना भी) जहाँ सुख नहीं है वैसी असाता वेदना सब भव में मैंने भुक्ति है॥७५॥

तं बिन्तऽम्मा-पियरो, छंदेणं पुत्त! पव्वया।
नवरं पुण सामण्णे, दुक्खं निप्पडिकम्मया॥७६॥

तब मृगापुत्र से मातपिता कहने लगे कि हे पुत्र! जो तूने कहा वह सब सत्य है, परन्तु साधुपने में जब कभी वेदना होती है और साधु को सावद्य औषध लेना नहीं कल्पता है, तब तू क्या करेगा?॥७६॥

सो बिंतऽम्मा-पियरो, एवमेयं जहाफुडं।
पडिकम्मं को कुणई, अरण्णे मिय-पक्खिणं?॥७७॥

तब मृगापुत्र बोला–अहो मात-पिता! आपने कहा सो ठीक है, परन्तु जब वनवासी पशु पक्षी बीमार होते हैं तब उनकी औषधि कौन करता है?॥७७॥

एगब्भूओ अरण्णे वा, जहा उ चरई मिगो।
एवं धम्मं चरिस्सामि, संजमेण तवेण य॥७८॥

जैसे जंगल में अकेला मृग फिरता उस प्रकार मैं भी संयमी व तपस्वी बन एकाकी धर्म का आचरण करूंगा॥७८॥

जया मिगस्स आयंको, महारण्णम्मि जायई।
अच्छंतं रुक्खमूलम्मि, को णं ताहे तिगिंछई?॥७९॥
को वा से ओसहं देइ? को वा से पुच्छई सुहं?।
को से भत्तं च पाणं वा, आहरित्तु पणामई?॥८०॥
जया य से सुही होई, तया गच्छइ गोयरं।
भत्त-पाणस्स अट्ठाए, वल्लराणि सराणि य॥८१॥
खाइत्ता पाणियं पाउं, वल्लरेहिं सरेहि य।
मिगचारियं चरित्ताणं, गच्छई मिगचारियं॥८२॥
एवं समुट्ठिओ भिक्खू, एवमेव अणेगए।
मिगचारियं चरित्ताणं, उड्ढं पक्कमई दिसं॥८३॥

जैसे महा अरण्य में मृग को कोई रोग होता है तब वह वृक्ष के मूल में जाकर बैठता है वहाँ उसकी कौन चिकित्सा करता है? उसको कौन औषधि देता है, उसको कौन 'सुखी हो' ऐसा पूछता है, और उसे कौन भोजन पानी ला देता है? जब वह मृग सुख समाधिवाला होता है तब

भोजन पानी के लिये वन में व सरोवर में फिरता है, वहाँ वह मृग तृण आदि खाकर व पानी पीकर फिर अपने स्थान जाता है, इस प्रकार संयम में रत साधु का विविध प्रकार का रोग होवे तो मृग समान वृत्तिवाला बने, समभाव से रोग परीषह सहे जब आरोग्य हो तब गौचरी में विचरे ऐसे जो साधु होते हैं वे उच्च देवलोक की गति अथवा मुक्ति में जाते हैं॥७९-८३॥

जहा मिए एग अणेगचारी, अणेगवासे घुवगोअरे य।
एवं मुणी गोयरियं पविट्ठे, नो हीलए नो वि य खिंसएज्जा॥८४॥

जैसे अकेला मृग नवीन-नवीन स्थानों में रहे परंतु एक स्थान पर सदैव रहकर अपना निर्वाह नहीं करता है, वैसे ही साधु मृगचर्या जैसे अप्रति बन्ध विचरता हुआ तथा गौचरी के लिये निकला हुआ अपने तथा पर की निंदा हीलना करे नहीं॥८४॥

मिगचारियं चरिस्सामि, एवं पुत्ता! जहासुहं।
अम्मा-पिऊहिंऽणुन्नाओ, जहाइ उवहिं तओ॥८५॥

"मैं मृग समान विचरूंगा" ऐसा मृग पुत्र के कहने पर मात-पिता कहने लगे कि-"हे पुत्र! तुम को जैसे सुख होवे वैसे करो", इस तरह मात-पिता की आज्ञा लेकर मृगापुत्र ने सब उपाधि का त्याग किया॥८५॥

मिचारियं चरिस्सामि, सव्वदुक्खविमोक्खणिं।
तुब्भेहिं अंबऽणुन्नाओ, गच्छ पुत्त! जहासुहं॥८६॥

अहो मात-पिता! आपकी आज्ञा होवे तो, सब दुःख से मुक्त करने वाली वैसी मृग चर्या मैं अंगीकार करूंगा ऐसा मृगापुत्र के कहने पर मात-पिता ने कहा-"जैसा तुम को सुख होवे वैसा करो"॥८६॥

एवं सो अम्मा-पियरं, अणुमाणित्ताण बहुविहं।
ममत्तं छिंदई ताहे, महानागो व्व कंचुयं॥८७॥

इस तरह मृगापुत्र ने मात-पिता को अनेक तरह से समझाया और संसार के अनेकविध ममत्व को इस प्रकार छोड़ दिया जैसे सर्प अपनी केंचुली का त्याग करता है, वैसे ही मृगापुत्र ने ममत्व का त्याग किया॥८७॥

इड्ढिं वित्त च मित्ते य, पुत्त-दारं च नायओ।
रेणुअ व पडे लग्गं, निद्धुणित्ताण निग्गओ॥८८॥

जैसे वस्तु पर पड़ी हुई रजको झटक कर दूरकर देता है। वैसे ही सुवर्णादिक ऋद्धि, पिता, पुत्र, स्त्री जाति आदि संबंधि का त्यागकर मृगापुत्र निकला॥८८॥

पंचमहाव्वयजुत्तो, पंचसमिओ तिगुत्तिगुत्तो य।
सब्भिंतरबाहिरए तवोकम्मम्मि उज्जुओ॥८९॥

वह मृगापुत्र मुनि पांच महाव्रत सहित, पांच समिति युक्त तीन गुप्तियों से गुप्त और बारह प्रकार के तप में उद्यम-वंत बना॥८९॥

निम्ममो निरहंकारो, नीसंगो चत्तगारवो।
समो य सव्वभूएसु, तसेसु थावरेसु अ॥९०॥

ममता अहंकार व सकल संग रहित बना तीन गर्व का त्याग किया और त्रस व स्थावर आदि सर्व भूतों में सम परिणाम वाला हुआ॥९०॥

लाभालाभे सुहे दुक्खे, जीविए मरणे तहा।
समो निंदा-पसंसासु, तहा माणावमाणओ॥९१॥

लाभ, अलाभ, सुख, दुःख, जीवितव्य, मरण, निंदा, प्रंशसा व मान अपमान में सब समपरिणाम वाला हुआ॥९१॥

गारवेसु कसाएसु, दंड-सल्ल-भएसु अ।
नियत्तो हास-सोगाओ, अनियाणो अबंधणो॥९२॥

तीन गर्व, चार कषाय, तीन दंड, तीन शल्य, सात भय व हास्य, शोक से निवर्ता और बंध तथा निदान रहित बना॥९२॥

अणस्सिओ इहं लोए परलोए अनिस्सिओ।
वासी-चंदणकप्पो य, असणे अणसणे तहा॥९३॥

इस लोक में यश इत्यादि परलोक में देवलोक की ऋद्धि इत्यादिक की इच्छा रहित करनी करें, कोई वंदनादि से पूजे अथवा कोई वसेले से छेदे उन पर तथा मान अपमान में समभाव रखने लगे॥९३॥

अप्पसत्थेहिं दारेहिं, सव्वओ पिहियासवो।
अज्झप्पझाणजोगेहिं, पसत्थदम-सासणो॥९४॥

मृगापुत्र मुनि जिन शासन में हिंसादिक सर्व अप्रशस्त द्वारों से सर्वथा प्रकार निवृत्त और शुद्ध अंतःकरण से धर्मध्यानादि योगों के व्यापार से प्रशस्त उपशम भाव धारण किया॥९४॥

एवं नाणेण चरणेण, दंसणेण तवेण य।
भावणाहिं य सुद्धाहिं, सम्मं भावेत्तु अप्पयं॥९५॥

इस प्रकार मृगापुत्र ने ज्ञान, दर्शन, चरित्र, तप तथा पांच महाव्रत की पच्चीस भावना को सम्यक् प्रकार से आत्मा में निवास दिया॥९५॥

बहुयाणि उ वासाणि, सामण्णमणुपालिया।
मासिएणं उ भत्तेण, सिद्धिं पत्तो अणुत्तरं॥९६॥

मृगापुत्र मुनि अतिरंजित करके और बहुत वर्ष चरित्र का पालन कर अंत में एक महीने का भक्त प्रत्याख्यान कर सर्वोत्तम मोक्ष को प्राप्त हुए॥९६॥

एवं करेंति संबुद्धा, पंडिया पवियक्खणा।
विणियट्टंति भोगेसु, मियापुत्ते जहा मिसी॥९७॥

जिस प्रकार मृगापुत्र भोग से निवृत्ते वैसे ही अन्य कोई भोग से निवृतेगा वह मृगापुत्र जैसे सुखी होगा॥९७॥

महापभावस्स महाजसस्स, मियाए पुत्तस्स निसम्म भासियं।
तवप्पहाणं चरियं च उत्तमं, गइप्पहाणं च तिलोगविस्सुयं॥९८॥

महा प्रभावक व महा यशस्वी मृगपुत्र का तपप्रधान, चरित्र प्रधान और गति प्रधान को श्रवण करके जो उत्तम साधु होवे वह बारह प्रकार का उत्तम तप का आचरण करके तीन लोक में प्रसिद्ध होवे ऐसी उत्तम मोक्ष गति को प्राप्त करें॥९८॥

वियाणिया दुक्खविवड्ढणं धणं, ममत्तबंधं च महाभयावहं।
सुहावहं धम्मधुरं अणुत्तरं, धारेह निव्वाणगुणावहं महं॥९९॥ त्ति बेमि॥
॥ मियापुत्तिज्जं एगूण बीसइमं अज्झयणं॥१९॥

दुःख की वृद्धि करने वाला, ममत्व का बंधन करने वाला, अच्छी वृत्ति में विघ्न करने वाला, व चोर आदि भय का कारण धन है, ऐसा जानकर उसको छोड़कर सुख प्राप्त रूप महासत्वंत को बैठने योग्य धर्म रूप रथ में आरूढ़ हो कर ज्ञानादि प्राप्ति का महा लाभ होवे ऐसा उत्तम मोक्षादि धारण करना॥९९॥

ऐसा मैं कहता हूँ यों श्री सुधर्मा स्वामी अपने शिष्य श्री जम्बूस्वामी से कहने लगे कि जैसा मैंने सुना है वैसा ही हे जम्बू! मैंने तुम्हे सुनाया है।

मृगापुत्र का उन्नीसवाँ अध्ययन संपूर्ण हुआ।

२०

बीसइमं महानियंठिज्जं अज्झयणं
महानिर्ग्रन्थीय नामकं विंशतितममध्ययनम्

उन्नीसवें अध्ययन में सावद्य औपधि का त्याग किया तो निर्वद्य औपध करने वाले, का बीसवाँ अध्ययन कहते हैं।

सिद्धाणं नमो किच्चा, संजयाणं च भावओ।
अत्थधम्मगइं तच्चं, अणुसट्ठिं सुणेह मे॥१॥

हे शिष्य! सिद्ध भगवंत दो प्रकार के हैं–भाषक सिद्ध सो अरिहंत और अभाषक सिद्ध भगवंत। संयति तीन प्रकार के–आचार्य उपाध्याय और साधु इन पांचों पदों को भाव से नमस्कार करके आत्महितार्थी जीव की अर्थ सिद्धी रूप धर्म में गति किस प्रकार करना उसका यथातथ्य स्वरूप सो दत्तचित्त कर अनुक्रम से सुनो॥१॥

पभूयरणो राया, सेणिओ मगहाहिवो।
विहारजत्तं निज्जाओ, मंडिकुच्छिंसि चेइए॥२॥

मगध देश का अधिपति प्रभूत (बहुत) रत्नों का धारक श्रेणिक महाराजा अन्यदा अश्व क्रीड़ा करने राजगृही नगरी से निकल कर मण्डिक कुक्षि नामक बगीचे में गया॥२॥

नाणादुम-लयाइन्नं, नाणापक्खिनिसेवियं।
नाणाकुसुमसंछन्नं, उज्जाणं नंदणोवमं॥३॥

वह मण्डिक कुक्षि बगीचा आमादि अनेक प्रकार के वृक्षों, द्राक्षादि अनेक प्रकार की लताओं से मंडित था, तथा अनेक प्रकार के पुष्पों से वृक्षों, क्यारिओं से अच्छादित था और हंसादि अनेक प्रकार के पक्षीयों से सेवित था, इत्यादि गुणों से वह बगीचा नंदन वन समान सुशोभित हो रहा था॥३॥

तत्थ सो पासई साहुं, संजयं सुसमाहियं।
निसन्नं रुक्खमूलम्मि, सुकुमालं सुहोइयं॥४॥

उस बगीचे में एक वृक्ष के नीचे बैठे हुये आत्मवश से इन्द्रियों पर विजय करने वाले समाधि चित्तवंत ऐसे एक साधु को देखा॥४॥

तस्स रूवं तु पासित्ता, राइनो तम्मि संजए।
अच्चंतपरमो आसी, अउलो रूवविम्हओ॥५॥

वह राजा उन साधु के अत्यन्त आश्चर्य कारक अनुपम रूप को देखकर उत्कृष्ट विस्मय को प्राप्त हुआ॥५॥

अहो! वण्णो अहो! रूवं, अहो! अज्जस्स सोमया।
अहो! खंती अहो! अहोमुत्ती! भोगे असंगया॥६॥

अहो इस आश्चर्य कारक इन साधु के शरीर का वर्ण, इन्द्रियों का रूप (आकार), मन की आर्यता सरलता, मुद्राकि सौम्यता, क्षमा निर्लोभता और इस तारूण्यता में भोगी की असंगतीपना यह इन का बड़ा ही आश्चर्य कारक रूप है॥६॥

तस्स पाए उ वंदित्ता, काऊण य पयाहिणं।
नाइदूरमणासन्ने, पंजली पडिपुच्छई॥७॥

यों आश्चर्य चकित बना दोनों हाथ जोड़ मस्तक पर आवर्तन कर उनके पदारविन्द को वंदन कर नजदीक में सन्मुख हाथ जोड़ कर बैठा हुआ इस प्रकार प्रश्न पूछने लगा॥७॥

तरुणो सि अज्जो! पव्वइओ, भोगकालम्मि संजया!।
उवट्ठिओ सि सामण्णे, एयमट्ठं सुणेमु ता॥८॥

अहो आर्य संयति! इस भोगोपभोग भोगने की तारूण्य अवस्था में चरित्र में सावधान उद्यमी किस कारण से हुये, अर्थ कथन मैं सुनना चाहता हूं?॥८॥

अणाहो मि महारायं! नाहो मज्झ न विज्जई।
अणुकंपगं सुहिं वा वि, कंची नाभिसुमेमऽहं॥९॥

तब साधु बोले हे महाराजा! मेरे को योग्य क्षेम कुशलता रूप, मुझ पर अनुकम्पा करने वाले इच्छित सुख को अपनाने वाला किंचितमात्र भी कोई नाथ नहीं होने से मैं अनाथ हूँ इसलिये दीक्षा धारण की है॥९॥

तओ सो पहसिओ राया, सेणिओ मगहाहिवो।
एवं ते इड्ढिमंतस्स, कहं नाहो न विज्जई॥१०॥

उक्त मुनि के वचन सुन श्रेणिक राजा हंसने लगा, और विचार करने लगा कि इस प्रकार उत्तम लक्षण व्यंजन रूप सम्पदा के धारक का किस प्रकार नाथ नहीं होगा!॥१०॥

होमि नाहो भयंताणं, भोगे भुंजाहि संजया!।
मित्त-नाईपरिवुडो माणुस्सं खु सुदुल्लह॥११॥

अहो भय से रक्षा करने वाले साधु जी! मैं तुम्हारा नाथ होता हूं क्योंकि इस मनुष्य जन्म की प्राप्त होना बार-२ बहुत मुश्किल है इसलिये मित्र जनों आदि के साथ परिवृत्त होकर मनुष्य सम्बन्धी प्रधान भोग को भोगवे॥११॥

अप्पणा वि अणाहो सि, सेणिया! मगहाहिवा!।
अप्पणा अणहो संतो, कहं नाहो भवस्सिसि?॥१२॥

इसपर साधु जी बोले हे मगधाधिपति? तुम स्वयं ही अनाथ हो, तुम अपनी आत्मा के ही नाथ नहीं हो तो दूसरे का नाथ किस प्रकार होगा?॥१२॥

एवं वुत्तो नरिंदो सो, सुसंभंतो संविम्हिओ।
वयणं अस्सुयपुव्वं, साहुणा विम्हयन्निओ॥१३॥

प्रथम कदापि सुनने में नहीं आया ऐसा मुनि का उक्त वचन श्रेणिक राजा श्रवण करके उदास बना, (साधुजी ने मुझे पहचाना नहीं यों साधु की समझें नहीं विस्मित सुखदोश्चर्य धारण करता यों बालो॥१३॥

अस्सा हत्थी मणुस्सा मे, पुरं अंतेउरं च मे।
भुंजामि माणुसे भोए, आणा इस्सरियं च मे॥१४॥
एरिसे संपयग्गम्मि, सव्वकामसमप्पिए।
कहं अणाहो भवई, मा हु भंते! मुसं वए॥१५॥

तेंतीस हज़ार हाथी, तेंतीस हज़ार घोड़े, तेंतीस हज़ार रथ, तेंतीस हजार करोड़ पदाति, एक करोड़ इकत्तर लाख ग्राम अन्तपुर रानी इत्यादि सब मेरी आज्ञा को स्वीकार करते हैं और मैं सबकी ऐश्वर्यता धारण करता हुआ मनुष्य सम्बन्धी प्रधान भोग भोगता हूँ इस प्रकार की सम्पदा के धारक, सब कामों को सम्पूर्ण करने वाला किस प्रकार अनाथ होता है? अहो भगवन! उक्त वचन बोलकर आप असत्य बोलें!॥१४-१५॥

न तुमं जाणे अणहस्स, अत्थं पोत्थं व पत्थिवा!।
जहा अणाहो भवई, सणाहो वा नराहिव!॥१६॥

तब साधु बोले हे पृथ्वीपति! तू अनाथपने के अर्थ उत्पत्ति का अर्थ से अन्जान है तुझे मालूम नहीं कि अनाथ किस प्रकार होता है और सनाथ किस प्रकार होता है॥१६॥

सुणेह मे महाराय! अव्वक्खित्तेण चेयसा।
जहा अणाहो भवई, जहा मे यं पवत्तियं॥१७॥

इसलिये हे महाराजा! जिस प्रकार मैं अनाथ हुआ तथा जगत् में जिस प्रकार अनाथ सनाथ होते हैं वह में तुम्हें कहता हूं सो तुम दत्तचित्त से श्रवण करो॥१७॥

कोसम्बी नाम नयरी, पुराणपुरभेयणी।
तत्थ आसी पिया मज्झं, पभूयधणसंचओ॥१८॥

बहुत पुरानी अर्थ भेद की उत्पादक कोसंबी नाम की नगरी में प्रभूत धन संचय (बहुत द्रव्य धारक) नाम वाले मेरे पिता रहते थे॥१८॥

पढमे वए महाराय? अउला मे अच्छिवेयणा।
अहोत्था विचउलो दाहो, सव्वगत्तेसु पत्थिवा!॥१९॥

हे पृथ्वीपति महाराजा! मेरी प्रथम (तारूण्य) अवस्था में सहन न हो ऐसी अतुल्य आँख की वेदना उत्पन्न हुई जिससे सर्व शरीर में दाहज्वर व्याप्त हुआ॥१९॥

सत्थं जहा परमतिक्खं, सरीरवियरंतरे।
पविसिज्ज अरी कुद्धो, एवं मे अच्छिवेयणा॥२०॥

यथा दृष्टान्त जैसे कोई वैरी कोपित होकर अति तीक्ष्ण शस्त्र धारण कर के अन्तर कर्ण आँख नासिकादि का भेदन करे, तब जिस प्रकार की वेदना होवे वैसी वेदना मुझे हुई॥२०॥

तियं मे अंतरिच्छं च, उत्तमंगं च पीडई।
इंदासणिसमा घोरा, वेयणा परमदारूणा॥२१॥

तथा जिस प्रकार इन्द्र किसी देव पर कुपित होता है वज्र प्रहार करने से वह देव छः महीने पर्यन्त प्रज्वलित वेदना भोगता है, इस प्रकार मेरे कमर के मध्य में तथा मस्तक में दाहज्वर की महा वेदना हुई! उसे सहन करना मेरे लिए बहुत ही कठिन हो गया॥२१॥

उवट्ठिया मे आयरिया, विज्जा-मंतचिगिच्छगा।
अबीया सत्थकुसला, मंत-मूलविसारया॥२२॥

(तब ढिंढोरा पीटने से) बहुत से वैद्य शास्त्र के निपुण, मंत्र जड़ी बूटी के जानकार, विद्याकर प्रवीण औषधोपचार में कुशल ऐसे वैद्य मेरे लिये आये॥२२॥

ते मे चिगिच्छं कुब्वंति, चाउप्पायं जहाहियं।
न य दुक्खा विमोयंति, एसा मज्झ अणाहया॥२३॥

उन वैद्यों ने १ औषधकर, २ उपचारकर, ३ पथ्यकर और ४ प्रयत्नकर इन चारों प्रकार कर जिस प्रकार की चिकित्सा में से मेरा हित हो उस प्रकार भी करते हुए मुझे उस दुःख से मुक्त नहीं कर सके यही मेरा अनाथपना है॥२३॥

पिया मे सव्वसारं पि, देज्जाहि मम कारणा।
न य दुक्खा विमोयंति, एसा मज्झ अणाहया॥२४॥

मेरे पिता मेरे आराम के लिये घर का सारभूत द्रव्य वैद्यादि को दिया तो भी मुझे दुःख से मुक्त कर सके नहीं, यही मेरा अनाथपना है॥२४॥

माया वि मे महाराय! पुत्तभोगदुहऽट्टिया।
न य दुक्खा विमोयंति, एसा मज्झ अणाहया॥२५॥

हे महाराज! मेरी माता भी पुत्र के दुःख से अति दुःखी आर्तवती थी परन्तु वह भी मुझे दुःख से मुक्त कर सकी नहीं, यह मेरा अनाथपना है॥२५॥

भायरो मे महाराय! सगा जेट्ठ-कणिट्ठगा।
न य दुक्खा विमोयंति, एसा मज्झ अणाहया॥२६॥

हे महाराज! मेरे छोटे बड़े भाई भी थे, वे भी मुझे दुःख से मुक्त कर सके नहीं यह मेरा अनाथपना है॥२६॥

भइणीओ मे महाराय! सगा जेट्ठ-कणिट्ठगा।
न य दुक्खा विमोयंति, एसा मज्झ अणाहया॥२७॥

हे महाराज! मेरी छोटी बड़ी बहिनें भी थीं वे भी मुझे दुःख से मुक्त नहीं कर सकीं यह मेरा अनाथपना है॥२७॥

भारिया मे महाराय! अणुरत्ता अणुव्वया।
अंसुपुण्णेहिं नयणेहिं, उरं मे परिसिंचई॥२८॥

हे महाराजा! रूपवती मेरे पर अत्यन्त राग वाली स्त्रियों के सदा चरणों कर अलंकृत पतिव्रता मेरी स्त्री भी थी, वह मेरे दुःख से दुःखित बनी हुई अश्रु से पूर्ण भरी आँखों से मेरे हृदय को सींचती रही थी॥२८॥

अन्नं पाणं च ण्हाणं च, गंध-मल्लविलेवणं।
मए णायमणायं वा, सा बाला नोवभुंजई॥२९॥

उस स्त्री ने जाने तथा अजाने में मेरे लिए अशन पानी का त्याग किया, स्नान करना, सुंगधी द्रव्य का सेवन, माला पहनना, कुम्मादि का विलेपन, तिलकादि करना, इत्यादि श्रृंगार छोड़ दिया था, अर्थात् भोगवती नहीं थी॥२९॥

खणं पि मे महाराय! पासाओ वि न फिट्ठई।
न य दुक्खा विमोएइ, एसा मज्झ अणाहया॥३०॥

हे महाराजा! वह स्त्री क्षण मात्र भी मेरे पास से उठ कर दूर नहीं गई, तो भी वह मुझे दुःख से मुक्त कर सकी नहीं, यह मेरा अनाथपना है॥३०॥

तओ हं एवमाहंसु, दुक्खमाहु पुणो पुणो।
वेयणा अणुभविउं जे, संसारम्मि अणंतए॥३१॥

तब मैं सब स्वजनों के आश्रय रहित बना हुआ अकेला ही उस दुस्सह महावेदना का बारम्बार अनुभव करता हुआ भोगता॥३१॥

सयं च जइ मुच्चिज्जा, वेयणा विउला इओ।
खंतो दंतो निरारंभो, पव्वए अणगारियं॥३२॥

तब मुझे विचार हुआ कि जो इस दाहज्वर की महावेदना से एक समय मुक्त हो जाऊँ, छूट जाऊँ तो क्षमावंत इन्द्रियों का दमन करने वाले, निरारंभी साधूपना अंगीकार करूं॥३२॥

एवं च चिंतइत्ताणं, पासुत्तो मि नराहिवा!।
परियत्तंत्तीए राईए, वेयणा मे खयं गया॥३३॥

हे नरधिप! इस प्रकार विचार कर मैंने शयन किया जिस समय रात्रि का अतिक्रम हुआ तब मुझे मालूम हुआ कि मेरी वेदना का क्षय हो गया॥३३॥

तओ कल्ले पभायम्मि, आपुच्छित्ताण बंधवे।
खंतो दंतो निरारंभो, पव्वइओ अणगारियं॥३४॥

तब फिर प्रातःकाल में सूर्योदय होते ही मैंने बांधवादि को पूछकर क्षमावंत इन्द्रियों का दमन करने वाला आरंभ त्यागी साधु धर्म अंगीकार किया॥३४॥

तो ह नाहो जाओ, अप्पणो य परस्स य।
सव्वेसिं चेव भूयाणं, तसाण थावराण य॥३५॥

तब फिर दीक्षा लेकर मैंने अपनी आत्मा का तथा अन्य का आत्मा, स्थावर सब प्राणियों का नाथ हुआ॥३५॥

अप्पा नई वेयरणी, अप्पा में कूडसामली।
अप्पा कामदुहा धेणू, अप्पा में नंदणं वणं॥३६॥

दुष्कृत्य करने से अपनी आत्मा ही नरक की वेतरनी नदी है तथा शामली वृक्ष के समान दुःख देने वाली होती है और सुकृत्य करने से अपनी आत्मा कामधेनु का दूध पिलाने वाली तथा नंदन वन के सुख बताने वाली होती है॥३६॥

अप्पा कत्ता विकत्ता य, दुहाण य सुहाण य।
अप्पा मित्तममित्तं च, दुप्पट्ठियसुपट्ठिओ॥३७॥

इसलिये अपनी आत्मा ही कर्म का करता और दुःख सुख का भोक्ता शत्रु तथा मित्र भी अपनी आत्मा ही है अन्य कोई नहीं है॥३७॥

इमा हु अन्ना वि अणाहया निवा! तामेगचित्तो निहुओ सुणेहि मे।
नियंठधम्मं लभियाण वी जहा, सीयंति एगे बहुकायरा नरा॥३८॥

हे राजा! (यह मेरा अनाथपना कहाँ) अब इसके सिवाय अन्य भी जो अनाथता है उसे भी दत्तचित्त हो श्रवण कर, कितने कायर जन निर्ग्रन्थ धर्म साधुपने को अंगीकार कर उसका निर्वाह न होने से शिथिल बनकर जिस प्रकार राजा रणांगन में पराजित होने पर पश्चात्ताप करता है वैसे वह भी पश्चात्ताप करते हैं॥३८॥

जो पव्वइत्ताण महव्वयाइं, सम्मं नो फासयई पमाया।
अनिग्गहप्पा व रसेसु गिद्धे, न मूलओ छिंदइ बंधणं से॥३९॥

जो कोई अहिंसावादि पांच महाव्रत को अंगीकार करके रसना के लोलुपि बने इन्द्रियों का

निग्रह नहीं करते उन महाव्रतों का सम्यक् प्रकार से पालन नहीं करते हुये आत्मा को वश में नहीं करते हैं वे राग द्वेष रूपी वृक्ष को मूल में से छेदन नहीं कर सकते हैं॥३९॥

आउत्तया जस्स य अत्थिकावि, इरियाए भासाए तहेसणाए।
आयाण-निक्खेव दुगुंछणाए, न वीरजायं अणुजाइ मग्गं॥४०॥

ईर्या समिति जर्मीन देखकर चलना, भाषा समिति विचार कर बोलना, एषणासमिति निर्दोष आहार आदि ग्रहण करना, आदान निक्षेपना समिति भंडोपकरण यत्ना से ग्रहण कर यत्ना से स्थापन करना, और परिठावणिया समिति उच्चारादि यत्ना से परिठावना, इन पांचों समिति रूप मुक्ति मार्ग का जिस प्रकार वीर पुरुषों ने समाचरण किया उस प्रकार उसके किंचितमात्र भी पालन नहीं होवे॥४०॥

चिरं पि से मुण्डरुई भवित्ता, अथिरव्वए तव-नियमेहिं भट्ठे।
चिरं पि अप्पाण किलेसइत्ता, न पारए होइ हु संपराए॥४१॥

जो पांचों महाव्रत द्वारश प्रकार का तप अभिग्रह आदि धर्म करनी में अस्थिर परिणाम ही भृष्ट बने हैं वे बहुत काल पर्यंत लोचादिकर तथा शीत तापादि कष्ट सहन करके अपनी आत्मा को क्लेशित दुःखी बनाकर भी इस संसार समुद्र से पार नहीं होते॥४१॥

पुल्लेव मुट्ठी जह से असारे, अयंतिए कूडकहावणे वा।
राढामणी वेरुलियप्पगासे, अमहग्घए होइ हु जाण एसु॥४२॥

जिस प्रकार पोली (खाली) मुट्ठी असार होती है, जिस प्रकार खोटा पैसा अस्सार होता है, और जिस प्रकार कांच का टुकड़ा राधामणि के समान प्रकाश करता हुआ भी जानकार पुरुष (जौहरी) के आगे मूल्य प्राप्त नहीं कर सकता है, वैसे ही अन्तःकरण में कपट रखकर करणी करने वाले को असार जानना॥४२॥

कुसीललिंगं इह धारइत्ता, इसिज्झयं जीविय बूहइत्ता।
असंजए संजय लप्पमाणे, विणिग्घायमागच्छइ से चिरं पि॥४३॥

इस मनुष्य लोक में जो कोई साधु के गुण बिना रजोहरण मुख वस्त्रिकादि साधु का लिंग वेष धारण करके अपनी अजीविका पेट पूर्ति करते हैं। असंयति (असाधु) हो कर साधु नाम धराते हैं वे द्रव्यलिंगी बहुत काल पर्यन्त संसार में दुःख पावेंगे॥४३॥

विसं तु पीयं जह कालकूडं, हणाइ सत्थं जह कुग्गिहीयं।
ऐसोवि धम्मो विसओववन्नो, हणाइ वेयाल इवाविवन्नो॥४४॥

जिस प्रकार तालपुट का स्पर्श होते ही मृत्यु प्राप्त हों ऐसा) विष खाने से प्राण का नाश होता है, तथा जिस प्रकार अविधी (उलटा) शस्त्र हाथ में धारण करने से और जिस प्रकार विधि बिना वैतालिक मंत्र का जाप करने से मृत्यु आती है, वैसे ही हिंसा मय धर्म को आराधने वाला बारम्बार मृत्यु पाता है॥४४॥

जे लक्खणं सुविणं पउंजमाणे, निमित्तं-कोऊहल-संपगाढे।
कुहेडविज्जासवदारजीवी, न गच्छई सरणं तम्मि काले॥४५॥

जो साधु चक्रादि लक्षण (सामुदिक शास्त्र, स्वप्न निमित्त, विद्या मंत्र, तंत्र, यंत्रादि), विद्या आश्चर्य करने वाले कौतुक इन्द्रजाल विद्या, यह सब जीवों को अहित के कारण होते है, मरणान्त में दुर्गति से बचाने में समर्थ नहीं होते हैं॥४५॥

तमं तमेणेव उ से असीले, सया दुही विप्परियासुवेई।
संधावई नरग-तिरिक्खजोणिं, मोणं विराहेत्तु असाहुरूवे॥४६॥

अति अज्ञानता के वश में जो साधु के वेष युक्त क्रिया रहित द्रव्य यति परलोक में सुख की आशा से कुछ कष्ट सहे तो भी वह चारित्र का विराधक असाधु निरन्तर नरक तिर्यंच योनि में परिभ्रमण करेगा॥४६॥

उद्देसियं कीयगडं नियागं, न मुच्चई किंचि अणेसणिज्जं।
अग्गी विवा सव्वभक्खी भवित्ता, इओ चुए गच्छइ कट्टु पावं॥४७॥

जिस प्रकार अग्नि सर्व भक्षी होती है, वैसे ही वह साधु भी उद्देशिक साधु के लिये बनाया, कृतकर मोल लाया, नित्यपिंड इत्यादि दोष युक्त अनेषनकि आहार आदि किंचितमात्र भी छोड़े नहीं, ऐसा साधु यहाँ पाप कर्म की उपार्जना कर दुर्गति में जाता है॥४७॥

न तं अरी कंठछित्ता करेइ, जं से करे अप्पणिया दुरप्पा।
से णाहिई तु पत्ते, पच्छाणुतावेण दयाविहूणो॥४८॥

प्राण का नाश करने वाले वैरी जितना अपराध नहीं करता है उतना अपराध दुरात्मा दुष्टाचारी करता है, वह गुणविना वेषधारी दयाधर्म रहित मृत्यु के समय पर पश्यताप करेगा॥४८॥

निरट्ठिया नग्गरूई उ तस्स, जे उत्तमट्ठे विवियासमेइ।
इमे वि से नत्थि परे वि लोए, दुहओ वि से झिज्जइ तत्थ लोए॥४९॥

जो संयम में रुचि रहित बनकर आत्मा कल्याण साधक जो संयम का उत्तमार्थ है उसका नाश करता है, उसके इस लोक का भी नाश होता है, और परलोक का भी नाश होता है। भ्रष्ट दोनों का पश्चात्ताप करता है॥४९॥

एमेवऽहाछंद-कुसीलरूवे, मग्गं विरोहेत्तु जिणुत्तमाणं।
कुररी विवा भोगरसाणुगिद्धा, निरट्ठसोया परितावमेइ॥५०॥

कुशील स्वछन्दाचारी जिनेन्द्र भगवान का उत्तमोत्तम मार्ग की विराधना कर जिस प्रकार मांस खंड ग्रहण की हुई पक्षिणी दुःखनी होती है उस ही प्रकार वह भोग रसादि में गृद्ध बना हुआ पश्चात्ताप करेगा॥५०॥

सुच्चाण मेहावि! सुभासियं इमं, अणुसासणं नाणगुणोववेयं।
मग्गं कुसीलाण जहाय सव्वं, महानियंठाण वए पहेणं॥५१॥

हे मेधावी बुद्धिवंत श्रेणिक! मैंने जो उक्त ज्ञानादि गुणकर युक्त हित शिक्षाएँ कहीं उसे

श्रवण कर जो जो कुशील अनाचारी के मार्ग हैं उसका सर्वथा त्याग कर कुशीलो की संगत को छोड़कर महानिर्ग्रन्थ के मार्ग में प्रवर्ते सो ही सुखी होगा॥५१॥

चरित्तमायारगुणन्निए तओ, अणुत्तरं संजम पायियाणं।
निरासवे संखवियाण कम्मं, उवेइ ठाणं विउलुत्तमं धुवं॥५२॥

जो ज्ञानादि सुनकर सम्पन्न उत्तमोत्तम यथाख्यात चारित्र का पालन कर आश्रव रहित होता है वो कर्म रूपी रज का क्षय करके शाश्वत नित्य सदैव स्थिर अत्युत्तम सिद्धस्थानक को प्राप्त होता है॥५२॥

एवुग्गदंते वि महातवोधणे, महामुणी महापइण्णे महायसे।
महानियंठिज्जमिणं महासुयं से, काहए महया वित्थरेणं॥५३॥

श्री सुधर्मा स्वामी कहते हैं कि हे जम्बू! महानिर्ग्रन्थ का पंथ दर्शाने वाला यह अध्ययन को कर्म शत्रु को जीतने में, रौद्र इन्द्रियों के जय करने वाले तपोधनी दृढ़व्रती महाप्रज्ञी महायशवंत अनाथी नामक निर्ग्रन्थ ने यह महाश्रुत नामक अध्ययन बहुत विस्तार पूर्वक श्रेणिक राजा को सुनाया॥५३॥

तुट्ठो य सेणिओराया इणमुदाहु कयंजली।
अणाहयं जहाभूयं, सुट्ठु मे उवदंसियं॥५४॥

उक्त कथन श्रवण कर श्रेणिक राजा संतुष्ट हुआ, दोनों हाथ जोड़कर कहने लगा कि अहो महामुने! आपने मुझे अनाथता का स्वरूप सम्यक् प्रकार जैसा था वैसा यथातथ्य अच्छा कहा॥५४॥

तुज्झं सुलद्धं खु मणुस्सजम्मं, लाभा सुलद्धा य तुमे महेसी!।
तुब्भे सणाहा य सबंधवा य, जं भे ठिया मग्गे जिणुत्तमाणं॥५५॥

अहो महाऋषि आप को मनुष्य जन्म की प्राप्ति और मनुष्य जन्म का लाभ द्रव्य रूप सम्पदा तथा भाव से ज्ञानादि गुण की बहुत अच्छी प्राप्त हुई है। श्री जिनेश्वर भगवंत प्रणीत अत्युत्तम मार्ग को अंगीकार कर उसमें स्थिर हो आप ही सनाथ और सम्यक्त्वी बने हो!॥५५॥

तं सि नाहो अणाहाणं, सब्वभूयाण संजया!।
खामेमि ते महाभाग! इच्छामि अणुसासिउं॥५६॥

अहो सर्व जीवों के रक्षपाल संयति! तुम ही सर्व भूत अनाथ प्राणीयों के नाथ हो, अहो महामाहत्मन्! मैं आपको प्रणाम करता हूँ। मेरा अपराध माफ करना और मैं आपकी दी हुई हित शिक्षा को इच्छता हूँ!॥५६॥

पुच्छिऊण मए तुब्भं, झाणविग्घो य जो कओ।
निमंतिया य भोगेहिं, तं सव्वं मरिसेहि मे॥५७॥

अहो संयति! आप ध्यान में निमग्न बने थे मैंने उसमें विग्रह किया, आप यौवनावस्था में

साधु क्यों हुये, आदि प्रश्न पूछे, राज्यादि भोग का आमंत्रण किया इत्यादि जो-जो मैंने आपके अपराध किये हैं उन सब को आप माफ करो, मैं क्षमा मांगता हूँ!॥५७॥

एवं थुणित्ताण स रायसीहो, अणगारसीहं परमाए भत्तिए।
सओरोहो सपरिजणो सबन्धवो, धम्माणुरत्तो विमलेण चेयसा॥५८॥
ऊससियरोकूवो, काऊण य पयाहिणं।
अभिवांदिऊण सिरसा, अइयाओ नराहिवो॥५९॥

सब राजाओं में सिंह समान श्रेणिक राजा अपने अन्तःपुर में भाई बन्धुओं कुटम्ब परिवार से मिला हुआ। हुआ साधुओं में सिंह समान अनाथी नामक निर्ग्रन्थ की स्तुति गुणग्राम करके (बोध मत रूप मिथ्यात्व मेल त्यागकर) जिन प्रणीत धर्म में प्रेमानुराग में रक्तबना, सम्यक्त्व प्राप्त की फिर हर्षोत्साह कर रोम-रोम पुलकित हुए दोनों हाथ जोड़ प्रदक्षिणावर्त फिरा कर मस्तक झुकाकर अनाथी निर्ग्रन्थ को वंदना नमस्कार करके अपने स्थान गये॥५८-५९॥

इयरो वि गुणसमिद्धो, तिगुत्तिगुत्तो तिदंडविरओ य।
विहग इव विप्पमुक्को, विहरइ वसुहं विगयमोहो॥६०॥ त्ति बेमि॥ ॥
महानियंठिज्जं बीसाइमं अज्झयणं समत्तं॥

ऊपर कहे इत्यादि गुणों सहित तीन गुप्ति गुप्त। तीन दंड से रहित दोनों प्रकार के संयोग रहित सर्व प्रकार से मोह रहित होकर पक्षी की तरह जिनपद देश में विहार करने लगे॥६०॥

ऐसा सुधर्मास्वामी ने जंबूस्वामी से कहा॥

महा निर्ग्रन्थ नामका बीसवां अध्ययन संपूर्ण हुआ।

२१

इगवीसइमं समुद्दपालिज्जं अज्झयणं
समुद्रपालीक नामकं एकविंशतितममध्ययनम्

बीसवें अध्ययन में महानिर्ग्रन्थपना का कथन कहा। जो महानिर्ग्रन्थ होते हैं वे स्त्री आदि रहित स्थान का सेवन करते हैं सो इस इक्कीसवें अध्ययन में कहते हैं।

चंपाए पालिए नाम, सावए आसि वाणिए।
महावीरस्स भगवओ, सीसे सो उ महप्पणो॥१॥

चंपा नगरी में वणिक जाति का पालित नाम का सार्थवाह महात्मा श्री महावीर भगवान का शिष्य निवास करता था॥१॥

निग्गंथे पावयणे, सावए से विकोविए।
पोएण ववहरंते, पिहुंड नगरमागए॥२॥

वह निर्ग्रन्थ के प्रवचन (शास्त्र) में प्रवीण था वह एकदा जहाज से व्यापार के लिये पिहुंड नगर को गया॥२॥

पिहुंडे ववहरंतस्स, वाणिओ देइ धूयरं।
तं ससंत्तं पइगिज्झ, सदेसमह पत्थिओ॥३॥

यहाँ पिहुंड नगर में व्यापार करते उस पालित को किसी वणिक ने अपना कन्या दी। वह गर्भवती हुई तब उसे अपने साथ लेकर अपने नगर को आने लगा॥३॥

अह पालियस्स घरणी सुमुद्दम्मि पसवई।
अह दारए तहिं जाए, समुद्दपाले त्ति नामए॥४॥

उस पालित की स्त्री को समुद्र में पुत्र प्रसव हुआ। जिस पर से उस पुत्र का नाम समुद्रपाल रखा॥४॥

खेमेण आगए चंपं, सावए वाणिए घरं।
संवड्ढई घरे तस्स, दारए से सुहोइए॥५॥

वह श्रावक पालित नाम का वणिक कुशल क्षेम चंपा नगरी में आया और वहाँ वह समुद्रपाल बालक सुख से वृद्धि पाने लगा॥५॥

बावत्तरी कलाओ य, सिक्खिए नीइकोविए।
जोव्वणेण य अप्फुणे, सुरूवे पियदंसणे॥६॥

वह सुरूप व प्रियदर्शननीय बालक यौवनावस्था को प्राप्त हुआ तब बहतर कला का अभ्यास कर नीति शास्त्र वगैरह में पंडित बना॥६॥

तस्स रूववइं भज्जं, पिया आणेइ रुविणीं।
पासाए कीलए रम्मे, देवो दोगुंदुगो जहा॥७॥

उसको यौवनावस्था प्राप्त हुई जानकर सुरूपवती रूपिणी नाम की कन्या से उसका पाणिग्रहण कराया। एकदा वह अपनी स्त्री साथ प्रसाद पर दोगुंदक, देवता जैसे क्रीडा कर रहा था॥७॥

अह अन्नया कयाई पासायालोयणे ठिओ।
वज्झमंडणसोभागं, वज्झं पासइ वज्झगं॥८॥

एकदा प्रसाद के गवाक्ष में बैठा हुआ वध के करने चिन्ह वाला किसी वध्य पुरुष को ले जाते हुए देखा॥८॥

तं पासिऊण संविग्गो समुद्दपालो इणमब्बवी।
अहो असुहाण कम्माणं, निज्जाणं पावगं इमं॥९॥

उस चोर को देखकर समुद्रपाल को वैराग्य प्राप्त हुआ और कहने लगा कि–अरे अपने अशुभ पाप कर्म के कडुवे फल भोग रहा है। इस तरह भाव कर वैराग्य को प्राप्त हुआ॥९॥

संबुद्धो सो तहिं भगवं, परं संवेगमागओ।
आपुच्छऽम्मा-पियरो, पव्वए अणगारिय॥१०॥

वे समुद्रपाल भगवन्त! संबुद्ध बनकर परमसंवेग–वैराग्य को प्राप्त हुआ और माता-पिता की आज्ञा लेकर अनगार हुआ॥१०॥

जहित्तु संगं च महाकिलेसं, महंतमोहं कसिणं भयाणगं।
परियायधम्मं चऽभिरोयएज्जा, वयाणि सीलाणि परीसहे य॥११॥

महाक्लेश महामोह व महाभय का कारण लक्ष्मी को और स्वजनादिक को जानकर जिसका त्याग कर पांच महाव्रत शीलव्रत व परीषह सहन करने रूप प्रवर्ज्या धर्म का सेवन किया॥११॥

अहिंस सच्चं च अतेणगं च, तत्तो य बंभं अपरिग्गहं च।
पडिवज्जिसया पंच महव्वयाणि, चरिज्ज धम्मं जिणदेसियं विऊ॥१२॥

जीवों की दया पालना, सत्य बोलना, बिना दिया नहीं लेना ब्रह्मचर्य पालना और परिग्रह रहित रहना। यह पांच महाव्रत रूप सर्वज्ञ तीर्थंकर प्रणीत श्रुत धर्म व चारित्र धर्म है उसका आचरण किया॥१२॥

सव्वेहिं भूएहिं दयाणुकंपी, खंतिक्खमे संजयबंभयारी।
सावज्जजोगं परिवज्जयंतो, चरिज्ज, भिक्खू सुसमाहिइंदिए॥१३॥

सब भूतों में दया व अनुकम्पा रखने वाला, क्षमा करने वाला, संयति, ब्रह्मचारी व इन्द्रियों की समाधि वाला साधु सावद्य योगों का त्याग कर विचरने लगा॥१३॥

कालेण कालं विहरज्ज रट्ठे, बलाबलं जाणिय अप्पणो य।
सीहो व सद्देण न संतसेज्जा, वयजोग सुच्चा न असब्भमाहु॥१४॥

संयमियों की जो क्रिया जिस काल में करने की होवे उसे उस काल में करता हुआ देश परदेश में विचरे और अपने शरीर की शक्ति अशक्ति का विचार कर तप का आचरण करे। सिंह समान शूरवीर बनकर भयंकर शब्द सुनकर कष्ट पावे नहीं वैसे ही अभिमान करे नहीं॥१४॥

उवेहमाणो उ परिव्वएज्जा, पियमप्पियं सव्व तितिक्खएज्जा।
न सव्व सव्वत्थऽभिरोयएज्जा, न यावि पूयं गरहं च संजए॥१५॥

शुभ कर्मों का विपाक अपने कर्म का फल है ऐसा जानकर उसकी अपेक्षा करता हुआ विचरे और प्रिय व अप्रिय जो होवे उसे सहन करे मनोज्ञ अमनोज्ञ जो वस्तु मिले उसकी अभिलाषा करे नहीं, वैसे ही अपनी प्रशंसा तथा निंदा की वांच्छा करे नही॥१५॥

अणेगछंदा मिह माणवेहिं, जे भावओ संपगरेइ भिक्खू।
भयभेरवा तत्थ उइन्ति भीमा, दिव्वा मणुस्सा अदुवा तिरिच्छा॥१६॥

इस संसार में जीवों के अनेक प्रकार के अभिप्राय है उसका समभाव से ग्रहण कर देवता मनुष्य और तिर्यंच संबंधी महा भयंकर जो परीषह उपसर्ग होवे उसे समुद्रपाल समभाव से सहन करते थे॥१६॥

परीसहा दुव्विसहा अणेगे, सीयंति जत्था बहुकायरा नरा।
से तत्थ पत्ते न वहिज्ज पंडिए, संगामसीसे इव नागराया॥१७॥

जो बाइस परीषह कहे वे दुःसह और कायर पुरुष इससे दुःखी होते हैं, परंतु जैसे संग्राम में शूरवीर हाथी किसी से भयभीत होवे नहीं, वैसे ही समुद्रपाल मुनि परीषह से पराजित नहीं हुए॥१७॥

सीओसिणा दंसमसा य फासा, आयंका विविहा फुसंति देहं।
अकुक्कुओ तत्थऽहियासएज्जा, रयाइं खेवेज्ज पुरेकडाइं॥१८॥

शीत, ऊष्ण, दंश, मशक व अनेक प्रकार के रोग शरीर को दुखित करे परंतु अक्रंद नहीं करता हुआ वह सब सहन करे और अपने पूर्व कृत कर्म का क्षय करे॥१८॥

पहाय रागं च तहेव दोसं, मोहं च भिक्खू सययं वियक्खणे।
मेरूव्व वाएण अकंपमाणो, परीसहे आयगुत्ते सहिज्जा॥१९॥

विचक्षण मुनि राग द्वेष व मोह का त्याग कर जैसे वायु से मेरूपर्वत चलित होवे नहीं वैसे आत्मा को गोप कर समभावी बनकर अपने कृत कर्म जानकर परीषह सहन करे॥१९॥

अणुन्नए नावणए महेसी, न यावि पूयं गरहं च संजए।
से उज्जुभावं पडिवज्जं संजए, निव्वाणमग्गं विरए उवेइ॥२०॥

साधु द्रव्य से ऋद्धि वाला व भाव से अभिमानादिक से ऊँचा न होवे। वैसे ही द्रव्य से

दुष्कृत्य कर व भाव से कायरता से नीचा भी होवे नहीं और भी साधु पूजा व निंदा की वांच्छा करे नहीं। वैसे ही समुद्रपाल मुनि ने सरल भाव अंगीकार किया व ज्ञान दर्शनादिक विरति मार्ग प्राप्त किया॥२०॥

अरइ-रइसहे पहीणसंथवे, विरए आयहिए पहाणवं।
परमट्ठपएहिं चिट्ठई, छिन्नसोए अममे अकिंचणे॥२१॥

असंयम में रति व संयम में अरति का नाशकर ग्रहस्थ का परिचय नहीं करते हुए अपने आत्मा के हितेच्छु बन आश्रव का निरुंधन कर शोक ममत्व परिग्रह की तृष्णा छेदन कर उत्तम संयम ज्ञानादि में आत्मा को रमाते रहने लगे॥२१॥

विवित्तलयणाइं भइज्ज ताई, निरोवलेवाइं असंथडाइं।
इसीहिं चिण्णाइं महायसेहिं, कायेण फासिज्ज परीसहाइं॥२२॥

आत्मा तथा वह काया का रक्षक मुनि राग प्रमुख रहित निरूपसेय व स्त्रियादि रहित उपाश्रय का सेवन करे और परीषह सहन करे ऐसा सेवन महातपस्वी ऋषियों ने किया है॥२२॥

स णाणनाणोवगए महेसी, अणुत्तरं चरिउ धम्मसंचयं।
अणुत्तरे नाणधरे जसंसी, ओभासई सूरिएवंतलिक्खे॥२३॥

महायशस्वी समुद्रपाल ऋषि ज्ञान युक्त दस प्रकार का यति धर्म का सम्यक् प्रकार से आचरण कर जिस प्रकार आकाश में सूर्य प्रकाशता है वैसे ही उत्तम केवल ज्ञान केवल दर्शन के धारक बने॥२३॥

दुविहं खवेऊण य पुण्ण-पावं, निरंजणे सव्वओ विप्पमुक्के।
तरित्ता समुद्दं व महाभवोहं, समुद्दपाले अपुणागमं गए॥२४॥ त्ति बेमि॥
॥समुद्दपालितिज्जयं समत्तं॥२१॥

ज्ञानावरणीय आदि चार घनघातिक व वेदनीयादि चार अघातिक अथवा सुख पुण्य व दुःख–पाप इन आठ ही प्रकार के कर्मों का क्षयकर शैलेशी अवस्था को प्राप्त हो काया की चपलता रहित अयोगी बन महाप्रवाह रूप संसार समुद्र से तीरकर पुनरागमन होवे नहीं ऐसी सिद्ध गति को प्राप्त हुए॥२४॥

ऐसा मैं कहता हूँ। यों श्री सुधर्मा स्वामी अपने शिष्य श्री जंबूस्वामी से कहने लगे कि जैसा मैंने सुना है वैसा ही तुझे कहता हूँ।

इक्कीसवां समुद्रपाल का अध्ययन सम्पूर्ण हुआ।

२२

बावीसइमं रहनेमिज्जं अज्झयणं
रथनेमि नामकं द्वाविंशतितममध्ययनम्

इक्कीसवें अध्ययन में स्त्रियादि रहित स्थानक का सेवन करने का कहा स्त्रियादि सहित स्थानक सेवन करने के दोष इस बाइसवें अध्ययन में कहते हैं।

सोरियपुरम्मि नयरे, आसि राया महिड्ढिए।
वसुदेव त्ति नामेणं, रायलक्खणसंजुए॥१॥

सोरीपुर नगर में राजा के उत्तम लक्षण के धारक महर्द्धिक वासुदेव राजा था॥१॥

तस्स भज्जा दुवे आसी, रोहिणी देवई तहा।
तासिं दोण्हंपि दो पुत्ता, इट्ठा राम-केसवा॥२॥

उसकी रोहिणी व देवकी ऐसी दो स्त्रियाँ थी इन दोनों में रोहिणी से बलभद्र और देवकी से कृष्ण वासुदेव इष्टकारी दो पुत्र का जन्म हुआ॥२॥

सोरियपुरम्मि नयरे, आसि राया महिड्ढिए।
समुद्दविजये नामं रायलक्खणसंजुए॥३॥

उस ही सोरीपुर नगर में राजा के उत्तम लक्षण युक्त व महर्द्धिक समुद्र विजय नाम का राजा रहता था॥३॥

तस्स भज्जा सिवा नाम, तीसे पुत्ते महायसो।
भगवं अरिट्ठनेमि त्ति, लोगनाहे दमीसरे॥४॥

उसकी शिवा नामक स्त्री से महा यशस्वी भगवान अरिष्टनेमि का जन्म हुआ। वे लोक के नाथ व जिनेश्वर हुए॥४॥

सोऽरिट्ठनेमिनामो अ, लक्खणस्सरसंजुओ।
अट्ठसहस्सलक्खणधरो, गोयमो कालगच्छवी॥५॥

वे अरिष्टनेमि गांभीर्यादि गुण युक्त, एक हजार आठ उत्तम लक्षण धारण करने वाले, गौतम गोत्रीय व कृष्ण वर्ण के शरीर वाले थे॥५॥

वज्जरिसहसंघयणो, समचउरंसो झसोदरो।
तस्स राईमई कन्नं, भज्जं जायइ केसवो॥६॥

वज्र ऋषभ नाराच संघयन सम चतुस्त्र संस्थान व मच्छी जैसा सुंदर उदर वाले नेमिनाथ के लिये श्री कृष्ण वासुदेव ने उग्रसेन राजा के पास से राजमती कन्या की याचना की॥६॥

अह सा रायवरकन्ना, सुसीला चारुपेहिणी।
सव्वलक्खणसंपन्ना, विज्जुसोयामणिप्पभा॥७॥

वह राजीमती कन्या भी सुशीला मनोहर रूप वाली स्त्री के सब उत्तम लक्षण युक्त विद्युत, सौदामिनी व मणि समान कीर्ति वाली थी॥७॥

अहाह जणओ तीसे, वासुदेवं महिड्ढियं।
इहाऽऽगच्छउ कुमारो, जा से कन्नं ददामि हं॥८॥

उस राजमती कन्या के पिता उग्रसेन राजा ने महर्द्धिक कृष्ण वासुदेव को कहा कि यदि अरिष्टनेमि कुमार लग्नार्थ यहाँ पर आवे तो मैं मेरी कन्या देऊँ॥८॥

सव्वोसहीहिं ण्हविओ, कयकोउय-मंगलो।
दिव्वजुयलपरिहिओ, आभरणेहिं विभूसिओ॥९॥

नेमिनाथ कुमार को सब औषधि से स्नान कराया, कपाल प्रमुख स्थान पर तीलमसादिक किये, दीव्य वस्त्र पहनाये और आभूषण से अलंकृत किया॥९॥

मत्तं च गंधहत्थिं च, वासुदेवस्स जिट्ठयं।
आरूढो सोहई अहियं, सिरे चूडामणी जहा॥१०॥

वासुदेव के ज्येष्ट मदोन्मत्त गंध हस्ती पर आरूढ़ होने से जैसे मस्तक पर चूड़ामणि सुशोभित दिखता है वैसे ही वे दिखने लगे॥१०॥

अह ऊसिएण छत्तेणं, चामराहिं य सोहिओ।
दसारचक्केण तओ, सव्वओ परिवारिओ॥११॥
चउरंगिणीए सेणाए, रइयाए जहक्कमं।
तुडियाणं सन्निनाएणं, दिव्वेणं गयणंफुसे॥१२॥
एयारिसीइ इड्ढीए, जुइए उत्तमाइ य।
नियगाओ भवणाओ निज्जाओ वण्हिपुंगवो॥१३॥

अब ऊँचे छत्र व चामर से सुशोभित यादव के समूह के साथ यथानुक्रम से चतुरंगिनी सेना सहित गगन को गर्जित करे वैसे वादिंत्र के दीव्य शब्द सहित ऐसी गति व उत्तम कांतिवाले यादव कुल में उत्तम ऐसे श्री अरिष्टनेमिनाथ अपने भवन से निकले॥११-१३॥

अह सो तत्थ निज्जंतो, दिस्स पाणे भयद्दुए।
वाडेहिं पंजरेहिं च, सन्निरूद्धे सुदुक्खिए॥१४॥

अब नेमिनाथ उग्रसेन राजा के वहाँ गये तब उन्होंने बाड़े में पशुओं को व पिंजरे में पक्षियों को अति पीड़ित, दुःखी व मरन भय से घबराये हुए देखा॥१४॥

जीवियंतं तु संपत्ते, मंसट्ठा भक्खियव्वए।
पासित्ता से महापण्णे सारहिं इणमब्बवी॥१५॥

मांस खाने के लिये इन प्राणियों का जीवितव्य नाश होने का अवसर पास आया है ऐसा जानकर नेमिनाथ भगवान अपने सारथी से इस प्रकार बोलने लगे॥१५॥

कस्स अट्ठा इमे पाणा, एए सव्वे सुहेसिणो।
वाडेहिं पंजरेहिं च, सन्निरूद्धा य अच्छहिं?॥१६॥

ये सब सुख की इच्छा करने वाले प्राणियों की बाड़े में व पिंजरे में किसलिये रोक कर रखे हैं॥१६॥

अह सारही तओ भणइ, एए भद्दा उ पाणिणो।
तुज्झं विवाहकज्जम्मि, भोयावेउं बहुं जणं॥१७॥

तब सारथी कहने लगा कि ये दीन प्राणी आपके विवाह कार्य में बहुत लोगों को भोजन के लिये रोक रखे हैं॥१७॥

सोऊण तस्स वयणं, बहूपाणविणासणं।
चिंतेइ से महापन्ने, साणुक्कोसे जिएहि उअ॥१८॥

बहुत प्राणियों का विनाश होगा ऐसा उस सारथी का वचन सुनकर जीवों की महा करुणा वाले व महा प्रज्ञावान नेमिनाथ राजकुमार इस प्रकार चिन्तवने लगे॥१८॥

जइ मज्झ कारणा एए, हम्मंति सुबहू जिया।
न मे एयं तु निस्सेसं, परलोगे भविस्सई॥१९॥

यदि मेरे लिये ये सब प्राणी मारे जायेंगे तो परलोक में मेरा कल्याण नहीं होगा॥१९॥

सो कुंडलाण जुयलं, सुत्तगं च महायसो।
आभरणाणि य सव्वाणि, सारहिस्स पणामई॥२०॥

उन महा यशस्वी नेमिनाथ ने कुंडल का युगल, कटि मेखला व सब आभरण उस सारथी को दे दिये॥२०॥

मणपरिणामो य कओ, देवा य जहोइयं समोइण्णा।
सव्विड्ढीए सपरिसा, निक्खमणं तस्स काउं जे॥२१॥

और दीक्षा ग्रहण करने के परिणाम से पीछे स्वयं अपने घर आये (वार्षिक दान[१] दिया) नव लोकांतिक देव बन की आने की विधि अनुसार मनुष्य लोक में आकर भगवान से बोले अहो जगत् के नाथ तीर्थ प्रवर्तावो फिर नेमिनाथ का दीक्षा उत्सव सब ऋद्धि व सब परिवार से किया॥२१॥

देव-मणुस्सपरिवुडो, सिबियारयणं तओ समारूढो।
निक्खमिय बारगाओ, रेवययम्मि ठिओ भयवं॥२२॥

तब देव मनुष्य के परिवार से घिरे हुए रत्न की शीविका पर आरूढ़ होकर द्वारिका नगरी से निकल कर रैवतक पर्वत पर जा पहुँचे॥२२॥

---

१. सदैव १००८ सुवर्ण मोहर रुपा दान देते हैं, तो १२ महीने में, ३८८८०००००० इतना दान देकर फिर तीर्थंकर दीक्षा लेते हैं।

उज्जाणं संपत्तो, ओइण्णो उत्तमाउ, सीयाओ।
साहस्सीए परिवुडो, अह निक्खमई उ चित्ताहिं॥२३॥

वहाँ उद्यान में जाकर शीविका से नीचे उतरे और चित्रा नक्षत्र के योग में एक हजार[१] राजकुमार सहित दीक्षा अंगीकार की॥२३॥

अह से सुगधगंधिए, तुरियं मउयकुंचिए।
सयमेव लुंचई केसे, पंचट्ठाहिं समाहिओ॥२४॥

फिर समाधिवंत बनकर सुगंधित कोमल तथा कुटिल बालों का अपने हाथ से पंच मुट्ठी लोच किया॥२४॥

वासुदेवो य णं भणई, लुत्तकेसं जिइंदियं।
इच्छियमणोरहं तुरियं, पावसू तंदमीसरा॥२५॥

केश लोच करने वाले व जितेन्द्रिय नेमिनाथ जी के कृष्ण वासुदेव बोलने लगे कि अहो दमीश्वर! मोक्ष पहुँचने रूप इच्छित मनोरथ शीघ्रमेव प्राप्त करना॥२५॥

नाणेणं दंसणेण च, चरितेणं तवेण य!
खंतीए मुत्तीए वड्ढमाणो भवाहि य॥२६॥

भगवन! आप ज्ञान, दर्शन, चारित्र, क्षमा व निर्लोभता से बुद्धि पाने वाले होना॥२६॥

एवं ते राम-केसवा, दसारा य बहू जणा।
अरिट्ठनेमिं वंदित्ता, अइगया बारगापुरिं॥२७॥

इस प्रकार कृष्ण व बलदेव, दश दशार प्रमुख यादव और अन्य बहुत मनुष्य अरिष्ट नेमिनाथ को वंदना नमस्कार कर द्वारिकापुरी में गये॥२७॥

सोऊण रायकन्ना, पव्वज्जं सा जिणस्स उ।
णीहासा य निराणंदा, सोगेण उ समुच्छया॥२८॥

नेमिनाथ जी ने दीक्षा अंगीकार की हैं ऐसा सुनकर वह राजमती कन्या हास्य व आनन्द रहित बनी हुई शोक से मूर्च्छित हुई॥२८॥

राईमई विचिंतेइ, धिरत्थु मम जीवियं।
जा हं तेणं परिचत्ता, सेयं पव्वइउं मम॥२९॥

राजमती ने विचार किया कि मैं जीवितव्य को धिक् होवो क्योंकि नेमिनाथ भगवान ने मेरा त्याग किया, अब मुझे प्रवर्ज्या अंगकार करना श्रेय है॥२९॥

अह सा भमरसन्निभे, कुच्च-फणगपसाहिए।
सयमेव लुंचई केसे, धिइमंती ववस्सिया॥३०॥

इससे उस धृतिमत व धर्म में सावधान बनी हुई राजमती ने भ्रम समान काले और कंगों से ओले बालों व अपने हाथ से लोच किया॥३०॥

---

१. कृष्ण जी के ८ पुत्र, बलदेवजी के ७२ पुत्र, कृष्णजी के ५६३ भाई, उग्रसेन राजा के ८ पुत्र, नमीनाथजी के २८ भाईयों, देवसेन प्रमुख १००, २१० यादव पुत्रों, आठ महाराजा, श्रेआभ, उन का पुत्र और भरदत्त इस तरह मिलकर १००० पुरुष हुए।

वासुदेवो य णं भणई, लुत्तकेसं जिइंदियं।
संसारसागरं घोरं, तर कन्ने! लहुं लहुं॥३१॥

अपने हाथ से केश का लोच करने वाली व जितेन्द्रिया को वासुदेव कहने लगे कि अहो कन्ये! संसार सागर को शीघ्रमेव तीर जाना॥३१॥

सा पव्वइया संती, पव्वावेसी तहिं बहुं।
सयणं परियणं चेव, सीलवंता बहुस्सुआ॥३२॥

राजमती ने दीक्षा ली उस समय उसके साथ उसके स्वजनों को, सेवक की और उसके परिवार की बहुत (७००) स्त्रियों ने दीक्षा ली राजमती शुद्ध शीलाचार की और बहुश्रुता बनी॥३२॥

गिरिं रेवतयं जंती, वासेणोल्ला उ अंतरा।
वासंते अंधकारम्मि, अंतो लयणस्स सा ठिया॥३३॥

दीक्षा धारण कर नेमिनाथ जी के दर्शन को जाते मार्ग में वर्षा होने से राजीमती के वस्त्र भीग गये, इससे गुफा में अंधकार होने से वहाँ गई॥३३॥

चीवराणि विसारंती, जहाजाय त्ति पासिया।
रहनेमी भग्गचित्तो, पच्छा दिट्ठो अ तीइ वि॥३४॥

अंधकार में प्रथम कोई भी दृष्टिगत नहीं होने से अपने शरीर के सब वस्त्र उतार कर सुकाने लगी और जन्म समय जैसा रूप था वैसा रूप देखकर रथनेमि भग्नचित्त वाला हुआ कि जिसको राजमती ने पीछे से देखा॥३४॥

भीया य सा तहिं दट्ठुं, एगंते संजयं तयं।
बाहाहिं काउं, संगुप्फं, वेवमाणी निसीयई॥३५॥

उस रहनेमि संयति को एकांत में देखकर वह राजमती साध्वी, भयभीत बनी और भुजाओं से अंग को गोपकर काँपती हुई वहाँ नीचे बैठ गई॥३५॥

अह सोह वि राहपुत्तो, समुद्दविजयंगओ।
भीयं पवेविरं दट्ठुं, इमं वक्कमुदाहरे॥३६॥

समुद्रविजय का अंगजात वह राजपुत्र राजमती को काँपती हुई व भयभीत देखकर इस प्रकार बोलने लगा॥३६॥

रहनेमी अहं भद्दे! सुरूवे! चारूभासिणी!।
ममं भयाहिं सुअणू! न ते पीला भविस्सई॥३७॥

हे भद्रे, हे सुरूपे, हे मनोहर बोलने वाली! हे मनोहर शरीर वाली! मैं रहनेमि हूँ, तू मेरा सेवन कर तुझे किसी तरह पीड़ा नहीं होगी॥३७॥

एहि ता भुंजिमो भोए, माणुस्सं खु सुदुल्लहं।
भुत्तभोगा तओ पच्छा, जिणमग्गं चरिस्सिमो॥३८॥

तू यहाँ आवे, अपने भोग भोगवे, क्यों कि मनुष्य जन्म दुर्लभ है। अपने भुक्त भोगी बनकर जिन मार्ग अंगीकार करेंगे॥३८॥

दट्ठूण रहनेमिं तं भग्गुज्जोयपराजियं।
राईमई असंभंत्ता, अप्पाणं संवरे तहिं॥३९॥

स्त्री परीषह से पराजित बना हुआ व संयम व्यापार से भग्नचित्त वाला ऐसा रथनेमि को देखकर राजमती ने असंभ्रांतपना से अपना शरीर वस्त्र से ढका॥३९॥

अह सा रायवरकन्ना, सुट्ठिया नियमव्वए।
जाई कुलं च सीलं च, रक्खमाणो तयं वए॥४०॥

तत्पश्चात् वह राजवर कन्या अपने नियम व व्रत में निश्चल बनी हुई जाति, कुल व शील की रक्षा करती हुई इस प्रकार बोलने लगी॥४०॥

जइ सि रूवेण वेसमणो, ललिएण नलकुबरो।
तहा वि ते न इच्छामि, जइ सि सक्खं पुरंदरो॥४१॥

यदि तू रूप से वैश्रमण हो अथवा लालित्य से नलकुबेर हो अथवा साक्षात् शकेन्द्र हो तो भी तेरी वांच्छा मैं कदापि करूं नहीं॥४१॥

पक्खंदे जलियं जोइं, धूमकेउ दरासयं।
नेच्छन्ति वंतयं भोतुं, कुले जाया अगंधणे॥४२॥

अगंधन कुल में उत्पन्न हुआ सर्प धूम्र सहित दुःसह अग्नि में प्रवेश करना वांच्छे परंतु वमन किया हुआ आहार की इच्छा करें नहीं॥४२॥

धिरत्थु तेऽजसो कामी! जो तं जीवियकारणा।
वंतं इच्छसि आवेउं, सेयं ते मरणं भवे॥४३॥

अहो अपयश के कामिन! तुझे धिक्कार हो क्योंकि मात्र जीवित के लिये वमन की इच्छा करता है, इससे तो मरण श्रेय है॥४३॥

अहं च भोगरायस्स, तं च सि अंधगवण्हिणो।
मा कुले गंधणा होमो संजमं निहुओ चर॥४४॥

मैं उग्रसेन की पुत्री हूँ, और तू अंधकविष्णु समुद्रविजय राजा का पुत्र है। ऐसे उत्तम कुल के होकर गंधन कुल के सर्प अपने मत होवे, इसलिये निश्चल संयम का आचरण करें॥४४॥

जइ तं काहिसि भावं, जा जा दच्छसि नारिओ।
वायाविद्धोव्व हडो, अट्ठिप्पा भविस्ससि॥४५॥

जिनको तू देखेगा उनमें काम भोग की अभिलाषा रूप भाव तू करेगा तो वायु से इधर उधर भटकने वाले मूल बिना के हर जाति के वृक्ष जैसे तू अस्थिर आत्मा वाला होगा॥४५॥

गोवालो भंडवालो वा, जहा तद्दव्वऽणीस्सरो।
एवं अणिस्सरो तंपि, सामण्णस्स भविस्ससि॥४६॥

जैसे गोपाल लकड़ी का स्वामी है परंतु गायों का स्वामी नहीं है, जैसे भंडारी कुंजियों का

स्वामी है परंतु द्रव्य का नहीं है। वैसे ही तू विषय अभिलाषी बना हुआ चरित्र का स्वामी नहीं हो सकेगा।।४६।।

तीसे सो वयणं सोच्चा, संजईए सुभासियं।
अंकुसेण जहा नागो, धम्मे संपडिवाइओ।।४७।।

रथनेमि ने संयमशीलता राजीमती के पूर्वोक्ति सुभाषित वचनों को सुनकर अंकुश द्वारा मदोन्मत हस्ती की तरह अपनी आत्मा को वश में करके फिर से धर्म में स्थित कर लिया।।४७।।

कोहं माणं निगिण्हिरता, माया लोभं च सव्वसो।
इंदियाइं वसे काउं, अप्पाणं उपसंहरे।।४८।।

क्रोध मान माया व लोभ का सर्वथा प्रकार से निग्रह करके व इन्द्रियों को संवर कर आत्मा को काम भोग से पीछा खींचा।।४८।।

मणगुत्तो वयगुत्तो, कायगुत्तो जिइंदिओ।
सामण्णं निच्चलं फासे, जावज्जीवं दढव्वओ।।४९।।

मन गुप्ति वाले, वचन गुप्ति वाले, काय गुप्ति वाले, जितेन्द्रिय व दृढ़ व्रत वाले रथनेमि ने निश्चलपना से यावज्जीव चरित्र पाला।।४९।।

उग्गं तवं चरित्ताणं जाया दोन्नि वि केवली।
सव्वं कम्मं खेवत्ताणं सिद्धिं पत्ता अणुत्तरं।।५०।।

फिर उग्र तप का आचरण कर रथनेमि व राजमती दोनों केवली हुए और सब कर्मों का क्षय कर प्रधान मोक्ष गति को प्राप्त हुए।।५०।।

एवं करेंति सबुद्धा पंडिया पवियक्खणा।
विणियट्टंति भोगेसु जहा से पुरिसोत्तमे।।५१।। त्ति बेमि।।
।। रहनेमिज्जं समत्तं।।२२।।

जैसे पुरुषोत्तम रथनेमि कामभागों से निवर्त कर मोक्ष को प्राप्त हुए वैसे ही प्रविचक्षण पंडित व ज्ञानी काम भोगों से निर्वत कर मोक्ष प्राप्त करें।।५१।।

ऐसा मैं कहता हूँ यों श्री सुधर्मा स्वामी अपने शिष्य श्री जम्बू स्वामी से कहने लगे कि जैसा मैंने सुना है वैसा ही तुझे कहता हूँ।

बाईसवां रथनेमि नामक अध्ययन संपूर्ण हुआ।

२३

तेवीसइमं केसि-गोयमिज्जं अज्झयणं
केशिगौतमिकं त्रयोविंशत्तितममध्ययनम्

बाइसवें अध्ययन में धैर्य धारण करने को कहा, संशय से निवृत्ति वाले धैर्य धारण कर सकते हैं इसलिये इस तेइसवें अध्ययन में संशय निर्वति का कथन कहते हैं।

जिणे पासित्ति नामेणं, अरहा लोगपूइओ।
संबुद्धप्पा य सव्वन्नू, धम्मतित्थपरे जिणे॥१॥

जिसकी आत्मा सब पदार्थ व तत्त्व का ज्ञाता है वैसे कर्मों रूप वैरी जितने वाले सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, धर्मतीर्थ करने वाले, सब लोक के पूज्यनीय ऐसे पार्श्वनाथ नाम के अरिहंत हुए॥१॥

तस्स लोगापदीवस्स, आसी सीसे महायसे।
केसी कुमारसमणे, विज्जा-चरणपारगे॥२॥

लोक में प्रदीप समान ऐसे श्री पार्श्व नाथ स्वामी के महायशस्वी, ज्ञान व चरित्र के पारगामी केशीकुमार नामक श्रमण थे॥२॥

ओहिनाण-सुए बुद्धे, सीस-संघसमाउले।
गामाणुगामं रीयंते, सावत्थिं नगरिमागए॥३॥

वह केशीकुमार श्रमण मतिज्ञान, श्रुतज्ञान व अवधिज्ञान सहित अपने बहुत शिष्य वृन्द से ग्रामानुग्राम विचरण करते हुये श्रावस्ती नगरी में आये॥३॥

तिन्दुयं नाम उज्जाणं, तम्मी नगरमंडले।
फासुए सेज्जसंथारे, तत्थ वासमुवागए॥४॥

उस श्रावस्ती नगरी में तिंदूक नाम का उद्यान था। इसमें प्रासुक शैय्या संथारा आज्ञा पूर्वक लेके उसही तिंदुक उद्यान में रहे॥४॥

अह तेणेव कालेणं, धम्मतित्थयरे जिणे।
भगवं वद्धमाणित्ति, सव्वलोगम्मि विस्सुए॥५॥

उस ही समय में सब लोक मे प्रसिद्ध धर्म तीर्थंकर भगवान श्री वर्धमान स्वामी विचर रहे थे॥५॥

तस्स लोगप्पदीवस्स, आसि सीसे महायसे।
भगवं गोयमे नामं, विज्जा-चरणपारगे॥६॥

उन लोक प्रदीप को महा यशस्वी ज्ञान व चरित्र के पारगामी भगवान गौतम नाम के शिष्य थे॥६॥

बारसंगविऊ बुद्धे, सीस-संघसमाउले।
गामाणुगामं रीयंते, सेवि सावत्थिमागए॥७॥

बारह अंग के ज्ञाता, भगवान गौतम स्वामी अपने शिष्य समुदाय सहित ग्रामनुग्राम विचरण करते हुए श्रावस्ती नगरी में आये॥७॥

कोट्ठगं नाम उज्जाणं, तम्मी नगरमंडले।
फासुए सिज्जसंथारे, तत्थ वासमुवागए॥८॥

उस नगरी मंडल में कोष्टक नाम का उद्यान था। वहाँ प्रासुक शैय्या संथारा देखकर निवास किया॥८॥

केसी कुमारसमणे, गोयमे य महायसे।
उभओवि तत्थ विहरिंसु, अल्लीणा सुसमाहिया॥९॥

सुसमाधिवंत मन वचन काया की गुप्ति से गुप्त और महा यशस्वी केशीकुमार श्रमण व गौतम ये दोनों वहाँ विचरने लगे॥९॥

उभओ सीससंघाणं, संजयाणं तवस्सिणं।
तत्थ चिंता समुप्पन्ना गुणवंताण ताइणं॥१०॥

षट् काया के रक्षपाल, संयत तपस्वी व अनेक गुणवंत ऐसे दोनों के शिष्य समुदाय में चिंता उत्पन्न हुई॥१०॥

केरिसो वा इमो धम्मो, इमो धम्मो व केरिसो।
अयारधम्मप्पणिही, इमा वा सा व केरिसी॥११॥

चार महाव्रतादि रूप हमारा धर्म कैसा, और यह पांच महा व्रतादि रूप उनका धर्म कैसा? इनकी और हमारी आचार धर्म की क्रिया कैसी है?॥११॥

चाउज्जामो य जो धम्मो, जो इमो पंचसिक्खिओ।
देसिओ वद्धमाणेण, पासेण य महामुणी॥१२॥

चार महाव्रत रूप धर्म श्री पार्श्वनाथ स्वामी ने कहा है और पांच महाव्रत रूप धर्म श्री वर्धमान स्वामी ने कहा है॥१२॥

अचेलगो य जो धम्मो, जो इमो संतरुत्तरो।
एगकज्जपवन्नाणं, विसेसे किं नु कारणं?॥१३॥

श्री पार्श्वनाथ भगवान का सचेलक (प्रमाण रहित वस्त्र धारण करने का) और महावीर स्वामी

का अचेलक (प्रमाण सहित वस्त्र धारण करने का) धर्म है। दोनों का मुक्ति साधन रूप एक कार्य होने पर इतनी विशेषता होने का क्या कारण है?॥१३॥

अह ते तत्थ सीसाणं, विन्नाय पवितक्कियं।
समागमे कयमई उभओ केसि-गोयमा॥१४॥

केशी और गौतम दोनों ने अपने-अपने शिष्य का संशय युक्त अभिप्राय जानकर मिलने का विचार किया॥१४॥

गोयमे पडिरूवन्नू, सीससंघसमाउले।
जेट्ठं कुलमवेक्खंतो, तिन्दुयं वणमागओ॥१५॥

विनय मार्ग व अवसर के ज्ञाता गौतम स्वामी अपने से ज्येष्ठ कुल[1] वाले केशी स्वामी को जानकर अपने शिष्य के परिवार से तिंदुक उद्यान में आये॥१५॥

केसीकुमार समणे, गोयमं दिस्स मागयं।
पडिरूवं पडिवतिं, सम्मं संपडिवज्जई॥१६॥

गौतम स्वामी को आते हुए देखकर केशी स्वामी ने अपने सब परिवार से शुद्ध मन से गौतम स्वामी का भक्ति-बहुमान-पुरस्सर स्वागत किया॥१६॥

पलालं फासुयं तत्थ, पंचमं कुस-तणाणि य।
गोयमस्स निसिज्जाए, खिप्पं संपणामए॥१७॥

प्रासुक शाली, ब्रीही, कोदव व राल यों चार जात का पराल और पांचवा दर्भ प्रमुख घास आदि शीघ्रमेव गौतम स्वामी के बैठने के लिये (बिछा) दिया॥१७॥

केसीकुमारसमणे, गोयमे य महायसे।
उभओ निसण्णा सोहंति, चंद-सूरसमप्पभा॥१८॥

महा यशस्वी केशीकुमार श्रमण व गौतम स्वामी दोनों वहाँ बैठे तब वे चंद व सूर्य समान दीखने लगे॥१८॥

समागया बहू तत्थ, पासंडा कोउगासिया।
गिहत्थाणं अणेगाओ साहस्सीओ समागया॥१९॥

वहाँ अनेक पाखण्डी कुतूहल देखने एकत्रित हुए वैसे ही हजारों गृहस्थ भी वहाँ आये॥१९॥

देव-दाणव-गंधव्वा, जक्ख-रक्खस-किन्नरा।
अदिस्साणं य भूयाणं, आसी तत्थ समागमो॥२०॥

देव, दानव, गंधर्व, यक्ष, राक्षस, किन्नर और भूत वगैरह अदृश्य रूप से वहाँ कौतुक देखने आये॥२०॥

---

१. महावीर स्वामी से पार्श्वनाथ स्वामी पहले हुए और केशी स्वामी उनके संत थे इस से केशी स्वामी का ज्येष्ठ कुल लिया।

'पुच्छामि ते महाभाग!' केसी गोयमब्बवी।
तओ केसिं बुवंतं तु, गोयमो स इणमब्बवी॥२१॥
'पुच्छ भंते! जहिच्छं ते', केसिं गोयममब्बवी।
तओ केसी अणुन्नाए, गोयमं इणमब्बवी॥२२॥

केशी स्वामी गौतम स्वामी से कहने लगे कि अहो महानुभाव! मैं आप से कोई प्रश्न पूछना चाहता हूँ। इस तरह बोलते हुए केशी स्वामी को गौतम स्वामी इस प्रकार कहने लगे, अहो भगवन! जैसी आप की इच्छा होवे वैसा पूछो, इस तरह आज्ञा लेकर केशी स्वामी गौतम स्वामी से प्रश्न पूछने लगे॥२१-२२॥

चाउज्जामो य जो धम्मो, जो इमो पंचसिक्खिओ।
देसिओ वद्धमाणेण, पासेण य महामुणी॥२३॥
एककज्जपवन्नाणं, विसेसे किं नु कारणं?।
धम्मे दुविहे मेहावी! कहं विप्पच्चओ न ते?॥२४॥

चार महाव्रत रूप धर्म श्री पार्श्वनाथ भगवान ने कहा और पांच महाव्रत रूप धर्म श्री वर्धमान स्वामी ने कहा, ये दोनों मोक्ष पहूंचने का एक ही कार्य अंगीकार कर प्रवर्तते हैं तो इनमें ऐसी विशेषता होने का क्या कारण है? अहो मेधाविन्! इस तरह दो प्रकार के धर्म में आप को क्या विभ्रम नहीं होता है॥२३-२४॥

तओ केसिं बुवंतं तु, गोयमो इणमब्बवी।
'पन्ना समिक्खए धम्मं, तत्तं तत्तविणिच्छियं॥२५॥

इस प्रकार कहते हुये केशी स्वामी को गौतम स्वामी ने कहा कि जीवादि तत्वों का विनिश्चय जिस में किया जाता है ऐसे धर्म तत्व को प्रज्ञा ही सम्यक् देख सकती है॥२५॥

पुरिमा उज्जुजड्डा उ, वंकजडा य पच्छिमा।
मज्झिमा उज्जुपन्ना उ, तेण धम्मे दुहा कए॥२६॥

प्रथम तीर्थंकर के समय में साधु सरल और जड़ होते हैं चरम तीर्थंकर के समय में साधु और वक्र जड़ होते हैं, बीच के बाइस तीर्थंकर के समय में साधु सरल और प्रज्ञावान होते हैं। इसलिये धर्म के दो भेद किये हैं॥२६॥

सरल एवं जड़ प्रकृति पर यह कथा दृष्टव्य है–प्रथम तीर्थंकर के समय एक साधु बाहर जाकर देर से आने से गुरु ने पूछा इतनी देर क्यों लगी? तब वे बोले नट का नृत्य देखने खड़े रहे थे। गुरु बोले कि साधु को नट का नाटक नहीं देखना चाहिए। अन्यदा किसी दिन लेट आया तो गुरु ने पूछा कि आज लेट कैसे हो गया? तब शिष्य बोला आज नटनी का नाटक देखने खड़े रहे थे। गुरु बोले उस दिन मना किया था। तो साधु बोले आपने नट का नाटक देखना नहीं परंतु नटनी का तो नहीं कहा था। गुरु बोले साधु को नाटक नहीं देखना। उन्होंने वचन प्रमान किया था फिर किसी भी प्रकार का नाटक नहीं देखा। ऋजुप्राज्ञ पर कथा उल्लिखित है– मध्य के तीर्थंकर के साधु बाहर जा देर

से आने से गुरु ने पूछा तब बोले नट का नाटक देख रहा था। गुरु ने कहा–नाटक नहीं देखना। किसी दिन नटनी का नाटक होता देख शिष्य ने विचार किया नटनी का तमाशा देखना तो कुदरती मना हो गया। क्योंकि यह तो स्त्री है। ऐसा विचार कर नीची दृष्टी से स्वस्थान आ गये। वक्र जड़ पर दृष्टान्त-अन्तिम तीर्थंकर के साधु देर से आने से गुरु ने पूछा तब बोले नटनी का नाटक देखने खड़े थे गुरु बोले नटनी का नाटक नहीं देखना साधु बोले ठीक है अन्यदा देर से आने से गुरु ने पूछा तब बात को छिपाते हुए बोले नट का नाटक देखते खड़े रहे गुरु बोले उस दिन मना किया था ना? साधु बोले नटनी के नाटक की मना की थी नट का नाटक देखने में क्या पाप है? क्यों पुरुषों को भी नहीं देखना? आँख बंद रखना? आदि बकवास करने लगे इति। अन्यान्य उदाहरण भी विषय वस्तु के स्पष्टीकरण हेतु प्रेक्षणीय है–प्रथम तीर्थंकर के साधु ईर्यावही कायोत्सर्ग बहुत देर तक करने से गुरु ने पूछा आज कायोत्सर्ग में इतनी देर क्यों लगी? साधु बोले–दया धर्म चिन्तवता था–कि आषाढ़ का महिना आया है पानी की वृष्टि भी हुई है, मेरे बच्चे जो अब खेती में धान्य बोवेंगे। सुखी होवेंगे ऐसा विचार किया। गुरु जी बोले–साधु को सारंभी विचार नहीं करना। उन्होंने आज्ञा प्रमान की।। मध्यम तीर्थंकर के साधु तो ऐसा विचार करे नहीं।। अब अन्तिम तीर्थंकर के साधुओं के स्वभाव का दृष्टान्त–कोई श्रीमन्त श्रेष्ठी किसी समय किसी ग्रामीण गरीब वणिक की कन्या से पाणिग्रहण कर लिया। वह घर का ठाठ देख पति से कहने लगी आप के यहाँ हजारों रुपये के पगार वाले मुनीम पुरुष हैं तो मेरे भाई को भी रख लेना? सेठ बोले वे नौकरी योग्य नहीं हैं इतने पर तूं चाहती हो तो घर का काम कराने तेरे पास रखना हो तो रख ले। दो-चार रुपये महिना दे दिया करेंगे। सेठानी ने उदास हो उसे घर में रखा। सेठानी ने उसको दुकान पर रखने के लिए बहुत आग्रह करने लगी तब सेठ जी ने उसकी बुद्धि की परीक्षा सेठानी को बताने के लिए। उस स्त्री के भाई को बहुत बोलने का स्वभाव होने से सेठ जी बोले कि किसी के सामने नहीं बोलना। उसने आज्ञा प्रमाण की अन्यदा वह किसी कमरे में द्वार बंध कर सोया। कार्य होने से सेठानी ने उसे पुकारा तो कुछ उत्तर नहीं दिया। बहुत ही पुकारने से उत्तर नहीं दिया। तब सेठानी ने घबरा कर सेठ को बुलाया। सेठ जी ने भी बहुत पुकारा परन्तु उत्तर नहीं दिया। तब कवाड़ों को उखाड़ कर अन्दर देखा तो चुप बैठा है। पूछा की इतना पुकारा तो भी क्यों नही बोला? उसने कहा आपने कहा था कि सामने नहीं बोलना। इसलिये मैं नहीं बोला। सेठ बोले। अरे! काम हो तो जरूर बोलना। उसने आज्ञा प्रमाण की। अन्यदा सेठ के मन में मक्की की राबड़ी खाने की आई। तब सेठानी ने राबड़ी बना अपने भाई से कहा सेठजी को बुला ला। सेठ बहुत लोगों के मध्य में बैठे थे तो वहाँ जाकर पुकारा। चलो सेठ जी रबड़ी तैयार हो गई है। सेठ जी लज्जित हो घर आये और उसे उपालंभ दिया। तब वह बोला कि आपने ही कहा था कि काम हो तो जरूर बोलना। सेठ जी मुस्करा कर बोले–अरे! काम हो तो धीरे से कान में आकर कहना परन्तु पुकारना नहीं। उसने आज्ञा प्रमाण की। अन्यदा सेठ जी के घर में आग लगी तब सेठानी बोली–अरे जा सेठ जी को बुला ला। वह गया धीरे-धीरे सेठ जी के पास जाकर बैठा। जब सेठ काम से निवर्ते तब कान में बोला–चलो! घर में आग लगी है। सेठ जी बोले–अरे इतनी देर क्यों नहीं पुकारा अब तो घर जलकर भस्म हो गया होगा। वह बोला आपकी आज्ञा अनुसार चलता हूँ तो भी आप हर समय मुझे डांट देते हो। तब सेठ जी सेठानी से बोले इसे यहाँ से घर भेज दे । सेठानी बोली यह तो मूर्ख है परन्तु हर समय आपके साथ रखोगे तो होशियार हो जाएगा। सेठ दूसरे गांव जाते समय उसे साथ ले लिया और उसका चोरी का स्वभाव होने से बोले देख किसी की कोई वस्तु पड़ी हो तो उसे हाथ नहीं लगाना। उसने आज्ञा प्रमाण की। आगे जाते सेठ जी का दूशाला पड़ गया। उसने उठाया नहीं। तब सेठ जी बोले–अरे मूर्ख! दूशाला पड़ गया उसे उठाकर क्यों नहीं लाया? वह बोला–आपने मना किया है कि किसी

की कोई वस्तु पड़ी हो तो उठाना नहीं इसलिये मैंने नहीं उठाया। सेठ जी खेदित हो बोले। अरे! दूसरे का माल नहीं उठाना परन्तु घर का माल तो जरुर उठा लेना। वह आज्ञा स्वीकार कर घोड़े के पीछे-पीछे आता था। घोड़े ने लीद की। तत्काल उसने उसे उसी दूशाले में बान्ध ली। आगे सेठ जी ने दूशाला मांगा तब सेठ के हाथ में दिया। सेठ ने पूछा इस में क्या बन्धा है। वह बोला कि अपने घोड़े की लीद। सेठ बोले अरे मूर्ख! दूशाला का खराब कर डाला। वह बोला आपने ही कहा था कि अपने घर की वस्तु तो जरूर उठा लेना। सेठ बोले ठीक! तेरे साथ मैं भी मूर्ख बना। रात को सोते समय सेठ बोले गांव है होशियार रहना ख्याल रखना। उसने आज्ञा प्रमाण की सारी रात सौया नहीं। रात को चोर आ कर घोड़ा ले गये परन्तु कुछ बोला नहीं। सुबह में सेठ जी ने पूछा घोड़ा कहाँ है। वह बोला—चोर ले गये। सेठ—अरे तो तूने कैसे ले जाने दिया। वह बोला—मुझे तो केवल ध्यान रखने की ही आपने आज्ञा दी थी। छुड़ाने का कब कहा था। सेठ जी पैदल अपने घर गये। स्त्री से सब बात कही। उसे निकाल दिया। ऐसे ही अन्तिम तीर्थंकर के साधु वक्र और जड़ होते हैं।

पुरिमाणं दुव्विसोज्झो उ, चरिमाणं दुरणुपालओ।
कप्पो मज्झिमगाणं तु, सुविसोज्झो सुपालओ॥२७॥

प्रथम तीर्थंकर के साधु को निरतिचारपना से धर्म जानना दुष्कर, चरम तीर्थंकर के समय के साधु को निरतिचारपने धर्म का आचरण करना दुष्कर परन्तु बीच के बाईस तीर्थंकर के साधु को धर्म समझना भी सुलभ और उसका आचरण भी सुलभ होता है॥२७॥

'साहु गोयम! पन्ना ते, छिन्नो मे संसओ इमे।
अन्नो वि संसओ मज्झं, तं मे कहसु गोयम!॥२८॥

तब केशी स्वामी कहने लगे अहो गौतम! आपकी प्रज्ञा श्रेष्ठ है। इससे मेरा संशय मिट गया। अब दूसरा संशय मुझे रहा है सो अहो गौतम! उसे आप कहो॥२८॥

अचेलगो य जो धम्मो, जो इमो संतरूत्तरो।
देसिओ वद्धमाणेण, पासेण य महाजसा!॥२९॥

दूसरा प्रश्न केशी स्वामी गौतम स्वामी से पूछने लगे। अहो गौतम! मानोपेत श्वेत वस्त्र रूप अचेल धर्म श्री वर्धमान स्वामी ने कहा और मानोपेत रहित अर्थात् वस्त्र की लम्बाई चौड़ाई व मूल्य के प्रमाण रहित धर्म श्री पार्श्वनाथ महा मुनि ने कहा, तो इसमें ऐसी भिन्नता क्यों कही?॥२९॥

एगकज्जपवन्नाणं विसेसे किं नु कारणं?।
लिंगे दुविहे मेहावी! कहं विप्पच्चओ न ते?॥३०॥

दोनों का मोक्ष जाने का एक ही उद्देश्य है तो इतनी विशेषता होने का क्या कारण है? अहो मेधाविन्! इस द्विविध धर्म में आप को क्या संशय नहीं होता है॥३०॥

केसिं एवं बुवाणं तु, गोयमो इणमब्बवी।
'विन्नाणेणं समागम्म, धम्मसाहणमिच्छियं॥३१॥

इस प्रकार बोलते हुए केशीस्वामी को गौतमस्वामी विज्ञान से सम्यक् प्रकार जानकर इस प्रकार बोलने लगे कि—धर्म साधन करने की इच्छा के लिये वस्त्र की आज्ञा भगवान ने दी है॥३१॥

पच्चयत्थं च लोगस्स, नाणाविह विगप्पणं।
जत्तत्थं गहणत्थं च, लोए लिंगप्पओयणं॥३२॥

साधु का वेष लोक में प्रतीत करने वाला है। वैसे ही साधु के वेष में कदाचित मन संयम से विपरीत प्रवर्ते तो ऐसा विचार भी आ जावे कि मैं साधु हूँ मुझे अनाचार का सेवन करना अनुचित है। इससे संयम का निर्वाह के लिये भी साधु का वेष पहनने का प्रयोजन है॥३२॥

अह भवे पइन्ना उ, मोक्खसब्भूयसाहणा।
नाणं च दंसणं चेव, चरित्तं चेव निच्छए॥३३॥

मोक्ष का साधन भूत साधु का वेष व्यवहार नय से है परन्तु निश्चय नय से तो ज्ञान, दर्शन, व चारित्र ही मोक्ष का साधन है॥३३॥

'साहु गोयम! पन्ना ते, छिन्नो मे संसओ इमो।
अन्नोवि संसओ मज्झं, तं मे कहसु गोयमा!॥३४॥

तब केशी स्वामी गौतम स्वामी की प्रशंसा करने लगे कि–अहो गौतम! आपकी प्रज्ञा बहुत अच्छी है। इससे मेरे संशय का छेदन हुआ है, अब मुझे और भी संशय है कि जिसका आप कथन करो॥३४॥

अणेगाणं सहस्साणं, मज्झे चिट्ठसि गोयमा!।
ते य ते अभिगच्छंति, कहं ते निज्जिया तुमे॥३५॥

तीसरा प्रश्न–केशी स्वामी कहने लगे अहो गौतम! हजारों शत्रु के बीच में तुम रहे हो। वे ही तुम को जीतने के लिये आते हैं तो आपने उन शत्रुओं को कैसे जीता है?॥३५॥

एगे जिए जिया पंच, पंच जिए जिया दस।
दसहा उ जिणित्ता णं सव्वसत्तू जिणामहं॥३६॥

तब गौतम स्वामी बोलने लगे कि एक को जीतने से पांच जीतते हैं पांच को जीतने से दस जीतते हैं और दस को जीतने से सब शत्रुओं को मैंने जीते हैं॥३६॥

'सत्तू य इइ के वुत्ते?-', केसी गोयमब्बवी।
तओ केसिं बुवंतं तु, गोयमो इणमब्बवी॥३७॥

तब केशी स्वामी कहने लगे कि वे शत्रु कौन-से हैं? इस प्रकार बोलते हुए केशी स्वामी को गौतम स्वामी इस प्रकार कहने लगे॥३७॥

'एगप्पा अजिए सत्तू, कसाया इंदियाणि य।
ते जिणित्तु जहानायं, विहरामि अहं मुणी!॥३८॥

मन की दुष्ट प्रवृत्ति रूप एक आत्मा अजेय शत्रु है इसलिये जिन्होंने मन को जीता है उन्होंने १ मन व ४ कषायों पांच को जीते हैं। जिन्होंने मन व कषाय यों पांच को जीते हैं। उन्होंने पांच इन्द्रियों सहित दस को जीते हैं। इन दस को जीतने से सब शत्रुओं का जय होता है। इसलिये

अहो मुने! सब शत्रुओं को जीत कर जिस प्रकार जिन शासन का न्याय है इस प्रकार मैं विचर रहा हूँ॥३८॥

'साहु गोयम! पन्ना ते, छिन्नो मे संसओ इमो।
अन्नो वि संसओ मज्झं, तं मे कहसु गोयमा!॥३९॥

तब केशी स्वामी कहने लगे कि आप की प्रज्ञा बहुत अच्छी है जिससे मेरे संशय का छेदन हुआ है। अहो गौतम! मुझे और भी संशय हुआ है जिस को आपको कहता हूँ॥३९॥

दीसंति बहवे लोए, पासबद्धा सरीरिणो।
मुक्कपासो लहुब्भूओ, कहं तं विहरसी मुणी!॥४०॥

चौथा प्रश्न–अहो मुने! इस लोक में बहुत से जीव बंधन से बंधे हुए दृष्टिगत होते हैं परन्तु तुम उन बंधनों को तोड़कर लघुभूत बनकर किस प्रकार विचरते हो?॥४०॥

'ते पासे सव्वसो छित्ता, निहंतूण उवायओ।
मुक्कापासो लहुब्भूओ, विहरामि अहं मुणी!॥४१॥

तब गौतम स्वामी बोले अहो मुने! उन पाशों का सर्वथा प्रकार से छेदन कर मुक्त पाश होकर लघुभूत अप्रतिबंध बनकर मैं विचरता हूँ॥४१॥

'पासा य इइ के वुत्ता?' केसी गोयममब्बवी।
केसिमेवं बुवंतं तु, गोयमो इणमब्बवी॥४२॥

तब केशी स्वामी गौतम को कहने लगे कि वे पाश कौन-कौन-से हैं? तब गौतम स्वामी केशी स्वामी को इस प्रकार उत्तर देने लगे॥४२॥

'राग-दोसादओ तिव्वा, नेहपासा भयंकरा।
ते छिंदित्ता जहानायं, विहरामि जहक्कमं॥४३॥

रागद्वेष से उत्पन्न हुआ तीव्र भयंकर स्नेह पाश है, उसका छेदन कर जैसे जैन शासन का न्याय है वैसे यथानुक्रम से मैं विचरता हूँ॥४३॥

'साहु गोयम! पन्ना ते, छिन्नो मे संसओ इमो।
अन्नोवि संसओ मज्झं, तं मे कहसु गोयमा॥४४॥

अहो गौतम! आप की प्रज्ञा श्रेष्ठ है। इससे मेरा संशय का छेदन हुआ है। अब अन्य भी मेरा संशय है जिसे आप कहें॥४४॥

अंतोहिअयसंभूया, लया चिट्ठइ गोयम!।
फलेइ विसभक्खीणि स उ उद्धारिया कहं?॥४५॥

प्रश्न पांचवां-हृदय में एक लता उत्पन्न होती है, जिसको विष समान फल लगते हैं। अहो गौतम! आपने उसको कैसे निकाल डाली?॥४५॥

'तं लयं सव्वसो छित्ता, उद्धरित्ता समूलियं।
विहरामि जहानायं, मुक्कोमि विसभक्खणं॥४६॥

गौतम स्वामी कहने लगे कि उस लता को मूल में ही सर्वथा प्रकार से उखाड़कर मैंने फेंक

दिया है और विषमय फल के भक्षण से रहित बना हुआ जैसे जैन शासन का न्याय है उस अनुसार मैं विचरता हूँ।४६॥

'लया य इइ का वुत्ता?' केसी गोयममब्बवी।
केसिं मेवं बुवंतं तु, गोयमो इणमब्बवी॥४७॥

केशी स्वामी कहने लगे कि वह लता कौन-सी है? तब गौतम स्वामी इस प्रकार उत्तर देते हैं।४७॥

'भवतण्हा लया वुत्ता, भीमा भीमफलोदया।
तमुच्छित्तु जहानायं विहरामि महामुणी!॥४८॥

इस संसार में तृष्णा रूप भयंकर व भीम फल देने वाली लता है उसको निकाल कर जैसे जैन शासन का न्याय है वैसे सुखपूर्वक मैं विचरता हूँ।४८॥

'साहु गोयम! पन्ना ते, छिन्नो मे संसओ इमो।
अन्नो वि संसओ मज्झं, तं मे कहसु गोयम!॥४९॥

पुनः केशी स्वामी कहने लगे कि आपकी प्रज्ञा अच्छी है क्योंकि आपने मेरे संशय का छेदन किया। अब मुझे और भी संशय है कि जो आप कहेंगे।४९॥

संपज्जलिया घोरा, अग्गी चिट्ठइ गोयमा!।
जे डहंति सरीरत्था, कहं विज्झाविया तुमे?॥५०॥

प्रश्न छठा–केशी स्वामी कहने लगे अहो गौतम! हृदय में जाज्वल्यमान घोर अग्नि रहती है वह शरीर में रही हुई शरीर को जला रही है तो आपने उसे कैसे बुझाई?॥५०॥

'महामेहप्पसूयाओ, गिज्झ वारि जलुत्तमं।
सिंचामि सययं ते उ, सित्ता नो डहंति मे॥५१॥'

तब गौतम स्वामी कहने लगे कि मैं महामेघ में से प्रसूत पानी में से श्रेष्ठ पानी लेकर निरंतर अग्नि पर सिंचन करता हूँ इस तरह सिंचन करने से वह अग्नि मुझे नहीं जलाती है॥५१॥

'अग्गी य इइ के वुत्ते?, केसी गोयममब्बवी।
तओ केसिं बुवंतं तु, गोयमो इणमब्बवी॥५२॥

तब केशी स्वामी बोले कि वह अग्नि कौन-सी है? तब गौतम स्वामी इस प्रकार उत्तर देने लगे॥५२॥

'कसाया अग्गिणो वुत्ता, सुय-सील-तवो जलं।
सुयधाराभिहया संता, भिन्ना हु न डहंति मे॥५३॥

अहो केशी मुने! कषाय रूप अग्नि कही है और श्रुत, शील व तप रूप जल कहा है। श्रुत रूप पानी की धारा से सिंचन कराई हुई कषाय रूप अग्नि मुझे नहीं जलाती है॥५३॥

'साहु गोयम! पन्ना ते, छिन्नो मे संसओ इमो।
अन्नो वि संसओ मज्झं, तं मे कहसु गोयमा!॥५४॥

अहो गौतम! आप की प्रज्ञा अच्छी है इससे मेरे संशय का छेदन हुआ है। अब और भी मेरा संशय है जिसका आप निवारण करो॥५४॥

अयं साहसिओ भीमो, दुट्ठस्सो परिधावई।
जंसि गोयम! आरूढो कहं तेण न हीरसि?॥५५॥

प्रश्न सातवां-केशी स्वामी बोले कि-अहो मुने! यह साहसिक भयंकर दुष्ट अश्व चारों दिशा में दौड़ रहा है। अहो गौतम! उस पर आरूढ़ होने से क्या तुम को वह उन्मार्ग में नहीं ले जाता है?॥५५॥

'पहावंतं निगिण्हामि, सुयरस्सीसमाहियं।
न मे गच्छइ उम्मग्गं, मग्गं च पडिवज्जई॥५६॥'

तब गौतम स्वामी कहने लगे कि जब वह घोड़ा चारों दिशा में दौड़ता फिरता है तब श्रुतरूप लगाम से मैं उसका निग्रह करता हूँ इससे वह मुझे उन्मार्ग में नहीं ले जाता है परन्तु सन्मार्ग ही अंगीकार कराता है॥५६॥

'आसे य इइ के वुत्ते?' केसी गोयममब्बवी।
तओ केसिं बुवंतं तु, गोयमो इणमब्बवी॥५७॥

केशी स्वामी कहने लगे कि वह अश्व कौन-सा है? तब गौतम स्वामी उसका उत्तर देते हैं॥५७॥

'मणो साहसिओ भीमो, दुट्ठस्सो परिधावई।
तं सम्मं निगिण्हामि, धम्मसिक्खाए कंथगं॥५८॥'

मन रूपी साहसिक भयंकर दुष्ट अश्व दौड़ रहा है उसका धर्म की शिक्षा से जातिवंत अश्व की तरह सम्यक् प्रकार मैं निग्रह करता हूँ॥५८॥

'साहु गोयम! पन्ना ते, छिन्नो मे संसओ इमो।
अन्नो वि संसओ मज्झं, तं मे कहसु गोयमा!॥५९॥

अहो गौतम! आपकी प्रज्ञा अच्छी है इससे मेरे संशय का छेदन हुआ। अब और भी अन्य संशय मुझे रहा है कि जिसका आप निर्णय करे॥६१॥

कुप्पहा बहवे लोए, जेसिं नासंति जंतवो।
अद्धाणे कह वट्टंतो, तं न नाससि गोयमा!॥६०॥

प्रश्न आठवां-अहो मुने! इस लोक में बहुत कुपथ हैं, जिन पर चलने से जीव सन्मार्ग से भ्रष्ट होकर नष्ट हो जाते हैं। अहो गौतम! आप मार्ग में चलते हुए कभी भ्रष्ट क्यों नहीं हो पाते?॥६०॥

'जे य मग्गेण गच्छंति, जे य उम्मग्गपट्ठिया।
ते सव्वे वेइया मज्झं, तो न नस्सामहं मुणी!॥६१॥

तब गौतम स्वामी कहने लगे जो कोई सुमार्ग में जाता है और जो कोई कुमार्ग में जाता है वे सब मैंने जाने हैं। इसलिये अहो मुने! मैं सन्मार्ग से भ्रष्ट नहीं होता हूँ॥६१॥

'मग्गे य इइ के वुत्ते?' केसी गोयममब्बवी।
तओ केसिं बुवंतं तु, गोयमो इणमब्बवी॥६२॥

तब केशी स्वामी गौतम स्वामी को कहने लगे कि वे मार्ग कौन से हैं? इस तरह प्रश्न करने वाले केशी स्वामी को गौतम स्वामी इस प्रकार कहने लगे॥६२॥

'कुप्पवयणपासंडी, सव्वे उम्मग्गपट्ठिया।
सम्मग्गं तु जिणक्खायं, एस मग्गे हि उत्तमे॥६३॥

कुप्रवचन रूप ३६३ कपिलादि पाखंडी ये सब उन्मार्ग में प्रवृत्ति करने वाले हैं और सन्मार्ग में प्रवृत्ति करने वाला एक वीतराग प्रणीत मार्ग श्रेष्ठ है॥६३॥

'साहु गोयम! पन्ना ते, छिन्नो में संसओ इमो।
अन्नो वि संसओ मज्झं, तं मे कहसु गोयमा!॥६४॥

अहो गौतम! आपकी प्रज्ञा अच्छी है, इससे मेरे संशय का छेदन हुआ अब और भी संशय है कि जिसका आप निर्णय करें॥६४॥

महाउदगवेगेणं, वुज्झमाणाण पाणिणं।
सरणं गइं पइट्ठं य, दीवं कं मन्नसी मुणी!॥६५॥

प्रश्न नवां–महा पानी के वेग में डूबते हुए प्राणियों को जहाज के प्रतिष्ठान जैसे आधारभूत द्वीप किसको मानते हो?॥६५॥

'अत्थि एगो महादीवो, वारिमज्झे महालओ।
महाउदगवेगस्स, गई तत्थ न विज्जई॥६६॥'

गौतम स्वामी उत्तर देने लगे कि पानी के बीच में महा आलयवाला एक बड़ा द्वीप है। वहाँ पर पानी के वेग की गति भी नहीं होती है॥६६॥

'दीवे य इइ के वुत्ते?' केसी गोयममब्बवी।
तओ केसिं बुवंतं तु गोयमो इणमब्बवी॥६७॥

तब केशी स्वामी कहने लगे कि वह द्वीप कौन-सा है? इस तरह प्रश्न करने वाले केशी स्वामी को गौतम स्वामी बोलने लगे॥६७॥

'जरा-मरणवेगेणं, वुज्झमाणाण पाणिणं।
धम्मो दीवो पइट्ठा य, गई सरणमुत्तमं॥६८॥

जरामरण पानी के वेग में डूब रहे प्राणियों के लिए इस धर्म रूप द्वीप का ठहरने के लिये उत्तम शरण है॥६८॥

'साहु गोयम! पन्ना ते, छिन्नो में संसओ इमो।
अन्नो वि संसओ मज्झं, तं मे कहसु गोयमा!॥६९॥

केशी स्वामी कहने लगे कि अहो गौतम! आपकी प्रज्ञा अच्छी है इससे मेरे संशय का छेदन हुआ। अब अन्य भी संशय मुझे है तो आप इसका स्पष्टीकरण करो॥६९॥

अण्णवंसि महोहंसि, नावा विपरिधावई।
जंसि गोयम मारूढो, कहं पारं गमिस्ससि?॥७०॥'

प्रश्न दशवां–पानी के महा प्रवाह रूप समुद्र में नाव विपरीत परिभ्रमण कर ही है। अहो गौतम! उसमें बैठकर आप कैसे पार जा सकोगे॥७०॥

'जा उ आसाविणी नावा, न सा पारस्स गामिणी।
जा निरस्साविणी नावा, सा उ पारस्स गामिणी॥७१॥'

तब गौतम स्वामी कहने लगे कि नाव दो प्रकार की है। जिस नाव में छिद्र से पानी आता है वह नाव समुद्र को पार नहीं जा सकती है अर्थात् बीच में डूबती है और जो नाव छिद्र रहित है वह नाव समुद्र को पार पहुँच सकती है॥७१॥

'नावा य इइ का वुत्ता?' केसी गोयममब्बवी।
तओ केसिं बुवंतं तु, गोयमो इणमब्बवी॥७२॥

तब केशी स्वामी पूछने लगे कि वह नाव कौन-सी है? तब गौतम स्वामी इस प्रकार उत्तर देने लगे॥७२॥

'सरीरमाहु नावत्ति, जीवो वुच्चइ नाविओ।
संसारो अण्णवो वुत्तो, जं तरंति महेसिणो॥७३॥'

संसार रूप समुद्र में शरीर रूप नाव है और जीव उसका नाविक कहा है। जो आश्रव रूप छिद्र का निरुंधन करते हैं वे साधु संसार समुद्र को तीर कर पार होते हैं॥७३॥

'साहु गोयम! पन्ना ते, छिन्नो में संसओ इमो।
अन्नोऽवि संसओ मज्झं, तं मे कहसु गोयमा!॥७४॥

अब केशी स्वामी कहने लगे कि आप की बुद्धि अच्छी है। आपने मेरा संदेह दूर कर दिया है। अब और भी मेरा संदेह है कि जो आप दूर करें॥७४॥

अंधयारे तमे घोरे, चिट्ठंति पाणिणो बहू।
को करिस्सइ उज्जोयं सव्वलोगम्मि पाणिणं?॥७५॥'

प्रश्न ग्यारहवां–जहाँ दृष्टि का विषय नहीं होवे वैसे महा घोर अंधकार में बहुत प्राणी रहे हैं। तो संपूर्ण लोक में रहे हुए प्राणियों को कौन प्रकाश करेगा?॥७५॥

'उग्गओ विमलो भाणू, सव्वलोयपभंकरो।
सो करिस्सइ उज्जोयं, सव्वलोगम्मि पाणिणं॥७६॥'

तब गौतम स्वामी कहने लगे कि सब लोक में प्रकाश करने वाला निर्मल सूर्य उदित हुआ है। वही सब लोक में प्राणियों को उद्योत करेगा॥७६॥

'भाणू अ इइ के वुत्ते?' केसी गोयममब्बवी।
तओ केसिं बुंवंतं तु गोयमो इणमब्बवी॥७७॥'

तब केशी स्वामी पूछने लगे कि वह सूर्य कौन-सा है? तब गौतम स्वामी इस प्रकार उत्तर देने लगे॥७७॥

उग्गओ खीणसंसारो, सव्वण्णू जिणभक्खरो।
सो करिस्सइ उज्जोयं, सव्वलोगम्मि पाणिणं॥७८॥

जिसका संसार क्षय हुआ है और जो सर्वज्ञ है वह जिनेश्वर रूप भास्कर उदित हुआ है और वही सब लोक में प्राणियों को प्रकाशित करेंगे॥७८॥

'साहु गोयम! पन्ना ते, छिन्नो मे संसओ इमो।
अन्नोऽवि संसओ मज्झं, तं मे कहसु गोयमा!॥७९॥

तब केशी स्वामी गौतम स्वामी की प्रशंसा करने लगे कि अहो गौतम! आप की प्रज्ञा अच्छी है। इससे मेरा संशय दूर हो गया है। अब और भी मुझे संशय है कि उसे आप दूर करें॥७९॥

सारीर-माणसे दुक्खे, बज्झमाणाण पाणिणं।
खेमं सिवमणाबाहं, ठाणं किं मन्नसी मुणी!॥८०॥

प्रश्न बारहवां–शारीरिक व मानसिक दुःख से पीड़ित बने हुए प्राणियों का अव्याबाध कल्याणकारी स्थान तुम कौन-सा मानते हो?॥८०॥

'अत्थि एगं धुवं ठाणं, लोगग्गम्मि दुरारुहं।
जत्थ नत्थि जरामच्चू वाहिणो वेयणा तहा॥८१॥

गौतम स्वामी उत्तर देने लगे कि लोक के अग्र भाग में एक निश्चल स्थान रहा है कि जहाँ जाना महा दुष्कर है। उस स्थान में जरा, मृत्यु, वेदना व व्याधि नहीं है॥८१॥

'ठाणे य इइ के वुत्ते?' केसी गोयममब्बवी।
तओ केसिं बुवंतं तु, गोयमो इणमब्बवी॥८२॥

तब केशी स्वामी कहने लगे कि वह स्थान कौन-सा है? तो गौतम स्वामी इस प्रकार उत्तर देने लगे॥८२॥

'निव्वाणंति अबाहंति, सिद्धी लोगग्गमेव य।
खेमं सिवं अणाबाहं, जं चरंति महेसिणो॥८३॥

अहो केशी! उस स्थान का नाम निर्वाण है, कर्म रूपी दावानल को बुझाकर शीतलीभूत बने हुए जीव वह स्थान प्राप्त कर सकते हैं। उनके जन्म जरा-मरण के स्वाभाविक दुःख दूर हो जाते हैं। वैसा स्थान महर्षि लोग ही प्राप्त कर सकते हैं॥८३॥

तं ठाणं सासयंवासं, लोगग्गंम्मि दुरारुहं'।
जं संपत्ता न सोयंति, भवोहंतकरा मुणी॥८४॥'

वह स्थान सदैव शाश्वत वास वाला व लोकाग्र में रहा हुआ है। उस पर चढ़ना अति दुष्कर है। भव रूपी ओघ के अंत करने वाले मुनि ऐसे स्थान को प्राप्त कर सोच (चिंता) नहीं करते॥८४॥

'साहु गोयम! पन्ना ते, छिन्नो मे संसओ इमो।
नमो ते संसयातीत! सव्वसुत्तमहोयही!॥८५॥

अहो गौतम! आपकी प्रज्ञा बहुत अच्छी है। आपने मेरे सब संशय का छेदन किया है अहो महासमुद्र समान सब शास्त्र के पारगामी व सब संशय रहित ऐसे आपको नमस्कार होवे॥८५॥

एवं तु संसए छिन्ने, केसी घोरपरक्कमे।
अभिवंदित्ता सिरसा गोयमं तु महायसं॥८६॥
पंचमहव्वयधम्मं, पडिवज्जइ भावओ।
पुरिमस्स पच्छिमम्मि मग्गे तत्थ सुहावहे॥८७॥

अब श्री सुधर्मा स्वामी कहते हैं कि इस प्रकार सब संशय का छेदन होने से वह घोर पराक्रम वाले केशी स्वामी महा यशस्वी गौतम स्वामी को मस्तक से नमस्कार करके चरम तीर्थंकर का सुख देने वाला मार्ग मैंने गौतमस्वामी के पास से पांच महाव्रत रूप धर्म भाव से अंगीकार किया॥८६-८७॥

केसी-गोयमओ निच्चं, तम्मि आसि समागमे।
सुय-सीलसमुक्करिसो, महत्थत्थविणिच्छओ॥८८॥

केशी स्वामी व गौतम स्वामी का वहाँ तिंदुक उद्यान में समागम हुआ। उन्होंने महासिद्धांत संबंधी चरित्राचार की वृद्धि के लिये तथा अपने शिष्यों के समाधान के लिये निर्णय किया॥८८॥

तोसिया परिसा सव्वा, सम्मग्गं समुवट्ठिया।
संथुया ते पसीयन्तु, भयवं केसि-गोयमं॥८९॥ त्ति बेमि॥
॥ केसि-गोयमिज्जं अज्झयणं समत्तं॥२३॥

उक्त केशी स्वामी व गौतम स्वामी का संवाद सुनकर दोनों का (१००० साधुओं को) एकत्रित हुए देखकर सब परिषदा संतुष्ट हुई। मोक्ष मार्ग के साधन के लिये उद्यमवंत बनी। सम्यक् प्रकार सत्य मन से मोक्ष मार्ग के दर्शक केशी स्वामी व गौतम स्वामी की स्तुति कर विसर्जन हुई। वैसे ही केशी स्वामी व गौतम स्वामी दोनों प्रसन्न हुए॥८९॥

यों श्री सुधर्मा स्वामी अपने शिष्य श्री जम्बू स्वामी को कहने लगे कि जैसा मैंने भगवान महावीर स्वामी से सुना है वैसा ही तुझे कहता हूँ।

केशी गौतम स्वामी का तेईसवां अध्ययन संपूर्ण हुआ।

२४

चउवीसइमं पवयणमायं अज्झयणं
अष्ट प्रवचन माता नामकं चतुर्विंशतितममध्ययनम्

तेईसवें अध्ययन में संशय की निवृत्ति कही। नि:संशयी जिन प्रवचन का आराधन कर सकते हैं। इसलिये इस चौबीसवें अध्ययन में आठ प्रवचन माताओं के स्वरूप का दिग्दर्शन कराते हैं।

अट्ठ पवयणमायाओ, समिई गुत्ती तहेव य।
पंचेव य समिईओ, तओ गुत्तीउ आहिया॥१॥

श्री तीर्थंकर भगवान ने पांच समिति व तीन गुप्तियां आठ प्रवचन माता[1] के कहे हैं॥१॥

इरिया-भासेसणादाणे, उच्चारे समिई इय।
मणगुत्ती वइगुत्तो, कायगुत्ती य अट्ठमा॥२॥

इन आठ प्रवचन के नाम कहते हैं–१. ईर्या समिति देखकर तथा प्रमार्जकर चलने का, २. भाषा समिति निर्वद्य वचन बोलने का, ३. एषणा समिति-निर्दोष आहार स्थानक वस्त्र पात्र ग्रहण करने का, ४. आदान समिति भंडोपकरण यत्ना से रखने का, और ५. परिस्थापनीय समिति उच्चार प्रसवणादि यत्नापूर्वक परठाने का। तीन गुप्ति १. मनुगुप्ति दुष्ट विचार से मन को रोकना, २. वचन गुप्ति दुष्ट वचन से वचन को रोकना और ३. काया गुप्ति दुष्ट आचार से काया को रोकना। ये आठ प्रवचन माता के जानना॥२॥

एयाओ अट्ठ समिइओ, समासेण वियाहिया।
दुबालसंगं जिणऽक्खायं, माय जत्थ उ पवयणं॥३॥

ये आठ प्रवचन माता के भेद संक्षेप से कहे परंतु इन आठों प्रवचन में जिनभाषित ही द्वादशांगी ज्ञान का समावेश होता है अर्थात् आठ प्रवचन चारित्राचार में है। यह ज्ञान व दर्शन बिना नहीं होता है इसलिये मोक्ष पथ का दर्शक ज्ञानादि तीनों रत्न तथा द्वादशांग का समावेश इसमें हो जाता है॥३॥

---

१. माता शब्द का अर्थ पुष्टि होता है अर्थात् संयम की पुष्टि करने वाले अथवा जिस प्रकार माता पुत्र का कल्याण करती है वैसे ही प्रवचन संयम के क्षेम के करने वाले हैं।

आलंबणेण[१] कालेणं[२], मग्गेण[३] जयणाय[४] य।
चउकारणपरिसुद्धं, संजए इरियं रिए॥४॥

अब इन आठ प्रवचन में से प्रथम ईर्या समिति का कथन कहते हैं–१. आलंबन, २. काल, ३. मार्ग, ४. यतना। इन चार कारणों से संयति साधु ईर्या समिति शुद्ध पालन करे॥४॥

तत्थ आलंबणं नाणं, दंसणं चरणं तथा।
काले य दिवसे वुत्ते, मग्गे उप्पहवज्जिए॥५॥

इन चार कारणों में प्रथम आलंबन के तीन भेद किये हैं–ज्ञान, दर्शन व चारित्र अर्थात् इन तीन का आलंबन, २. ईर्या समिति का काल दिन हैं, अर्थात् ईर्या समिति का आचार करने वाले दिन में ही आहार-विहार करते हैं, परन्तु रात्रि में नहीं करते हैं। कारणवशात् रात्रि में हलन-चलन करे तो रजोहरण से पूंजकर करते हैं। ३. ईर्या समिति का मार्ग कुपथ का त्याग करने का है। क्योंकि कुपथ में विचरने से दीमक वगैरह के नागरे में से संयम की विराधना होवे और कटक होने से आत्मा की विराधना होवे॥५॥

दव्वओ खेत्तओ चेव, कालओ भावओ तहा।
जयणा चउव्विहा वुत्ता, तं में कित्तयओ सुण॥६॥

ईर्या समिति का चौथा कारण जो यतना है, उसका द्रव्य से क्षेत्र से, काल से, व भाव से इन चारों से विस्तारपूर्वक कथन आगे कहता हूँ सो सुनो॥६॥

दव्वओ चक्खुसा पेहे,[१] जुगमित्तं च खेत्तओ[२]।
कालओ जाव रीएज्जा,[३] उवउत्ते य भावओ[४]॥७॥

द्रव्य से चलते समय प्रकाशित स्थान में दृष्टि से देखकर चले ओर अंधकार स्थान में रजोहरण से पूंज कर चले।); २. क्षेत्र से दूसरा प्रमाण पृथ्वी देखकर चले, ३. काल से जहाँ तक दिन होवे वहां तक गमनागमन करे, और ४. भावे से शुद्ध उपयोग रखकर चले॥७॥

इंदियत्थे विवज्जिता, सज्झायं चेव पंचहा।
तम्मुत्ती तप्पुक्कारे, उवउत्ते रियं रिए१ ॥८॥

उपयोग सहित चलता हुआ दस बोल वर्जे। जिनके नाम–१. शब्द, २. रूप, ३. गंध, ४. रस और ५. स्पर्श। ये पांच इन्द्रियों के विषय और ६. बांधना, ७. पूछना ८. पर्यटणा, ९. अनुपेहा और १३ धर्मकथा ये पांचों स्वाध्याय। इन दस को वर्ज कर ईर्या समिति के लिये मूर्तिक जो शरीर है है उससे उपयोग रखकर ईर्या समिति का पालन करे॥८॥

इस पर यह कथा ज्ञातव्य है–एकदा इन्द्रसभा में इन्द्र ने प्रशंसा की कि जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में वरदत्त साधु बड़े दयावान हैं। किसी देवता ने परीक्षा निमित्त मार्ग में सूक्ष्म मेंढक का वैक्रिय किया। उनको बचाकर साधु चलने लगे इतने में पीछे से मदोन्मत्त हाथी का रूप बनाकर देवता उस साधु को मारने आया तो भी साधु यतना से चलने लगे। हाथी ने साधु को सूंड में पकड़ कर नीचे गिरा दिया। तो भी पीछे पड़ते रजोहरण से भूमिका की प्रतिलेखना

की। इस प्रकार दया पात्र साधु को देखकर देवता अपना रूप प्रकट कर साधु को नमस्कार कर चला गया। इस प्रकार ईर्या समिति सब साधु को पालना चाहिये।

कोहे माणे य मायाए, लोभे य उवउत्तया।
हासे भए मोहरिए, विगहासु तहेव य॥९॥
एयाइं अट्ठ ठाणाइं, परिवज्जित्तु संजए।
असावज्जं मियं काले, भासं भासेज्ज पन्नवं॥१०॥

दूसरे भाषा समिति–जो ज्ञानवान साधु हैं वे भाषा बोलते समय १. क्रोधकारी, २. मानकारी, ३. मायाकारी, ४. लोभकारी, ५. हास्यकारी, ६. भयकारी, ७. अन्य का अपवाद अथवा अपमान वाली और ८. विकथा–निरर्थक बात इन आठ प्रकार के वचन को वर्जकर पाप रहित मर्यादा युक्त निर्दोष भाषा बोले॥९-१०॥

इस पर कथा दृष्टव्य है–किसी नगर को परचक्री राजा ने घेर रखा था। उस समय अंदर से साधु निकले। उनको परचक्री के सुभटों ने पूछा कि अंदर कितनी सेना है! साधु विचार कर इस प्रकार बोलने लगे कि भाइयों देखे सो बोले नहीं और बोले सो देखे नहीं यों सुन साधु को बावले जानकर छोड़ दिये। इस प्रकार अन्य साधु भी वचन विचारकर बोले।

गवेसणाए गहणे य, परिभोगेसणा य जा।
आहारोवहि-सेज्जाए, एए तिन्नि विसोहए॥११॥

तीसरी एषणा समिति–एषणा तीन प्रकार की है। निर्दोष वस्तु की गवेषणा करने में एषणा करना, २. निर्दोष वस्तु ग्रहण करने में एषणा करता और ३. निर्दोष वस्तु भोगवने में एषणा करना। उक्त तीन प्रकार की एषणा आहार, वस्त्र प्रमुख उपधि और स्थानक पाट पाटला में करना। यों ९ प्रकार की एषणा समिति हुई। अर्थात्–१. आहार की गवेषणा में एषणा, २. ग्रहण करने में एषणा, और ३. परिभोग में एषणा, उपधि आश्री ४. गवेषणा एषणा, ५. ग्रहण करने में एषणा और ६. भोगवने में एषणा। शैय्या की ७. गवेषणा में एषणा, ग्रहण करने में एषणा, और ९. भोगने में एषणा, यों नव विधि विशुद्ध पाले॥११॥

उग्गमुप्पायणं पढमे, बीए सोहेज्ज एसणं।
परिभोगम्मि चउक्कं, विसोहेज्ज जयं जई॥१२॥

ऊपर जो गवेषणा ग्रहणा व भोगना में एषणा कही उसमें प्रथम गवेषणा में उद्गमन के १६ दोष गृहस्थ से लगे, उत्पात के १६ दोष साधु से लगे यों मूल व उत्तर ३२ दोषों का त्याग करें। २. ग्रहण में एषणा के १० दोष गृहस्थ व साधु दोनों मिलाकर लगावे उनको वर्जे। अनगार परिभोगेषणा में संजोयनादि चार दोष वर्जे। यो ४६ दोष वर्ज कर प्रज्ञानांवत साधु विशुद्धिपूर्वक आहार आदि ग्रहण करें॥१२॥

इन ४६ दोषों के नाम–गाथा **आहाकम्मं उद्देसियं, पूईकम्मं भिस्सजाय॥ ठवणा पहुड आए। पाऊर कीय पामाच्च॥१॥ परियट्टे अभिनोमालाहेड अच्छीज्जे॥ अणिसिट्ठ अज्जायेरे सोलस उपगमन दोसा॥२॥** अर्थ–१.

साधु अर्थ निपजावे वह आधा कर्मी, २. यह साधु को देऊँगा। देवूंगा यों उद्देशकर निपजावे वह उद्देशिक, ३. साधु के लिये और अपने लिये अलग निपजाया, साधु के लिये निपजाया उसकी सीत (दानादि) अपने लिये निपजाया उसमें पड़ गई वह पूति कर्म है अपने लिये और साधु के लिये सामिल निपजाया वह मिश्र। यूं साधु को ही देवूंगा यों स्थापन कर रखे वह स्थापन, ६. इस साधु के भिक्षा के दिन साधू को अच्छा आहार देने अतिथि को भोजन करावे वह पाहुरम, ७. अन्धारे स्थान में उजाला कर दे वह पाऊर, ८. देवे मोल लाकर वह कृतगड, ९. उधार ले दे वह पामिच, १०. अदला बदला कर दे वह परियट, ११. सन्मुख लादे वह अभिहड, १२. मुद्रा (छादा) उखाड़ कर दे वह भिन्न, १३. ऊपर से नीचे लादे यह मालोहड। १४. निर्बल के हाथ में से छीन कर दे वह अछीज्ज, १५. मालिक की आज्ञा बिना दे वह अणिसिट्ठ और १६. साधु आये जान ज्यादा निपजाकर दे वह अजोयर, यों सोलह उद्गमन दोष गृहस्थ लगाते हैं।।१।। गाथा–**धाइ दूइ निमत्त, अजीव वणिमग्ग तिमिच्छ कोहमाण माया लोह, हवंति दसदोसाय॥ १. पुब्म पुच्छाय संथवं, विज्जयंत चुन्न जोगं मूल कम्म उप्पायणा, दोसा हरति खेलसा॥२॥** अर्थ–१. दातार के बच्चों को खिला-रमा कर ले सो धाई, २. दूत की तरह समाचार कह कर ले सो दूत दोष, ३. ज्योंतिष-निमित प्रकाश कर ले वह निमित्त दोष, ४. जाति बना-सम्बन्ध मिला ले वह साजीविक दोष, ५. भिखारी की तरह कंगलाइ-लाचारी करके वह वणिमग दोष, ६. औषधोपचार करके ले वह तिगिच्छ दोष, ७. धारणा देआ दी क्रोधकर ले वह क्रोध दोषों, ८. अभिमान कर ले वह मान दोष, ९. दगलबाजी कर ले वह माया दोष, १०. लालच कर ले वह लोभ दोष, ११. दान दिये पहले या पीछे दातार के गुणानुवाद कर ले वह संस्तव दोष, १२ वशीकरणादि विद्या फोड़ ले वह विद्या दोष १३. व्यंतरादिक मंत्र कर ले वह मंत्र दोष, १४. याचनादि चूर्ण कर ले वह चूर्ण दोष, १५. गर्भ पातन स्थम्भन कर ले वह मूल कर्म दोष, और १६ सौभाग्य तथा पुत्रादि अर्थ स्नानादि करा कर ले वह योग दोष यह १६ उत्पात दोष साधु लगावें।।२।। **संकिए मक्खिए, निक्खत्ते पेहीए सारए वायगो मिस्सए॥ अपरणि लिच छुड्डूए, हवंति दस दोसाए॥१॥** अर्थ–१. यह सूझता है या असूझता है ऐसा साधु को तथा दातार को शंका हो वह शंकित दोष, २. सचित्त वस्तु पानी आदि से हाथ भाजनादि मक्खी की पांख जितना भरा हो उससे आहार आदि ग्रहण करे वह दोष, ३. सचित वस्तु पर अचित रक्खी हो उसे ले वह निक्खित दोष ४. अचित वस्तु पर सचित वस्तु रखी वह अचित्त वस्तु ले वह पहित दोष, ५. सचित वस्तु के बीच में अचित वस्तु रखी हो जेसे महु के ढग में गुड़ उसे निकालदे वह साहुरित दोष, ६. अंध, पंगु बहुत वृद्ध, छोटा बच्चा इत्यादि के हाथ से ले वह दायक दोष, ७. पूरा अचित न हुआ हो ऐसा तत्काल का धोवन चटनी वगैरा ले वह मिश्र दोष, ८. शस्त्र पूर्ण परिणमा न हो जैसे थोड़े काल का अथाना होला ऊँच वगैरा ले वह अप्रणित दोष, ९. लीपन सूका न हो ऊपर जाकर ले तथा दान देकर फिर हाथ भाजनादि सचित पानी से धोवे वह लिप्त दोष, और १०. न्हाखता २. (ढोलता छाड़ता) देवे वह छंडित दोष। यह दस दोष साधु और गृहस्थ दोनों शामिल हो लगावे।।३।। अब तीसरी परिभोगेषणा के चार दोष कहते हैं–मनोज्ञ वस्तु का संयोग मिलावे जैसे दूध आगवातो सक्कर लेने जावे वह संभोग दोष। २. अतिमात्र-अप्रमाण-क्षुधा[1] उपरांत आहार करे वह अप्रमाण दोष, ३. मनोज्ञ आहार प्राप्त कर आहार की तथा दातार की प्रशंसा करे वह इंगाल दोष, और ४. मनोज्ञ तथा कम आहार प्राप्त कर आहार की तथा दातार की निन्दा करे वह धूम्र दोष। यों १६ उद्गमन १६ उत्पातन १० एषणा और ४ परिभोगेषणा के सब ४६ दोष टालकर आहार करें। इस पर कथा प्रेक्षणीय हैं–नंदसेन

---

१. ४७वां दोष=क्षुधादि कारण उत्पन्न हुए विना आहार करे वह कारण दोष भी बहुत से स्थान बताया है।

के माता-पिता बचपन में मरने से मामा के वहाँ बड़ा हुआ। वह कुरूप होने से उसके साथ कोई भी लग्न करे नहीं। इससे पर्वत से गिरकर मरने का उसने निश्चय किया। वहाँ किसी साधु का उपदेश होने से उसने साधुपना अंगीकार किया। वैसे-वैसे की तपश्चर्या सहित सब शरीर को साधु की वैय्यावृत्य में अर्पण कर विचरने लगा। एकदा सभा में इन्द्र ने नंदीषेण मुनि की प्रशंसा की। इस से एक देवता उनकी परीक्षा करने के लिये वृद्ध साधु का रूप बनाकर दस्तों की बिमारी से पीड़ित बना हुआ गांव के बाहर पड़ा। नंदीषेण जी ऐसा समाचार सुनकर तत्काल उनके पास आये और चलने की शक्ति नहीं होने से अपने स्कंध पर उठाकर ले चले। मार्ग में उस साधु रूप देवता ने नंदीषेण का सब शरीर विष्टामूत्र से भर दिया और अपशब्द, चहेप व लतादि प्रहार भी करने लगा। परंतु नंदीषेण कुपित नहीं हुआ उस साधु रूप देवता को उपाश्रय में रखकर शरीर की शुद्धि करने के लिये पानी की याचना करने गया जहाँ जावे वहाँ देवता के निमित्त से असूझता हो जावे। बहुत जरूर होने पर असूझता पानी ग्रहण करे नहीं। यों फिरते-फिरते अपनी लब्धि से देवता को चुकाकर शुद्ध निर्दोष पानी ग्रहण कर लाया तब देवता अपना रूप प्रगट कर नंदीषेण की वंदना नमस्कार कर स्व स्थान गया नंदीषेण का जीव वहाँ से आयुष्य पूर्ण होने पर चलकर कृष्ण जी के पिता वासुदेव हुए।।

ओहोवहोवग्गहियं, भंडगं दुविहं मुणी।
गिण्हंतो निक्खिवंतो वा, पउंजेज्ज इमं विहि॥१३॥
चक्खुसा पडिलेहित्ता, पमज्जेज्ज जयं जई।
आइए निक्खिवेज्जा वा, दुहओ वि समिए सया॥१४॥

चौथी आदान निक्षेपना समिति-भंडोपकरण दो प्रकार के कहे हैं-औधिक व उपग्रहिक इस में जो औधिक है सो पढ़ीआरी वस्तु अर्थात् काम कर के गृहस्थ की वस्तु गृहस्थ को दे सके। ऐसे पाट पाटले अथवा जिन उपकरणों के नाम शास्त्र में कहा होवे वैसे, जैसे वस्त्र रजोहरणादि वगैरह और उपग्रहिक जो बाद में देने में आवे नहीं सो तथा जिनका नाम शास्त्र में नहीं और जो वर्जनीय भी न होवे जैसे पाटी पूठा वगैरह। इनको प्रयोजन होने पर उठाते दृष्टि से देखे अथवा रजोहरणादि से पूरे और पीछा रखते भी दृष्टि से देखे और रजोहरणादि से पूंजे। परन्तु पटका झटका करे नहीं। यह चौथी आदान निक्षेपना समिति हुई॥१३-१४॥

इस पर कथा ज्ञातव्य है-किसी आचार्य ने शिष्य को अकाल में प्रतिलेखना किया जान पुनः प्रतिलेखना करने की आज्ञा दी। तब शिष्य बोले क्या सांप, बिच्छू उत्पन्न हो गये कि अभी कि अभी प्रतिलेखना कराते हो? तब गुरु मौन रहे। अब इधर शिष्य भंडोपकरण संभालता था, इतने में ही एक सांप ने पूत्कार किया। शिष्य देखकर विस्मित हुआ और गुरु जी के वचन पर श्रद्धा रखकर कालोकाल शुद्ध उपयोग से प्रतिलेखना करने लगा।

उच्चारं पासवणं, खेलं सिंघाण जल्लियं।
आहारं उवहिं देहं, अन्नं वा वि तहाविहं॥१५॥

पाँचवीं परिस्थापनीय समिति-१. उच्चार वडीनीत, २. प्रस्त्रवण-लघुनीत, ३. श्लेष्म खेंकार, ४. सिंधान-नाक का मेल, ५. जल-पसीना, ६. दोषित अथवा अधिक आहार, ७. वैसे ही निरुपयोगी

वस्त्र पात्रादि उपधि और ८. मृत साधु का शरीर इत्यादि और नखकेश वगैरह और भी परिठाने योग्य वस्तु होवे उनको यतनापूर्वक परिठावे॥१५॥

अणावायमसंलोए, अणावाए चेव होइ संलोए।
आवायमसंलोए, आवाए चेव संलोए॥१६॥
अणावायमसंलोए, परस्सऽणुवधाइए।
समे अझुसिरे यावि, अचिरकालकयम्मि य॥१७॥
विच्छिण्णे दूरमोगाढे, नासन्ने विलवज्जिए।
तसपाण-बीयरहिए ऊच्चाराईणि वोसिरे॥१८॥

परिठाने के दश बोल–प्रथम बोल में चौभंगी–१. कोई मनुष्य आता भी नहीं है और देखता भी नहीं है, २. कोई मनुष्य आता नहीं है और देखता है, ३. कोई आता है और देखता नहीं है और ४. कोई मनुष्य आता भी है और देखता भी है इन चार में से प्रथम भांगा शुद्ध है अर्थात् जिस स्थान कोई मनुष्य आता भी न होवे और देखता भी न होवे वहाँ उच्चार प्रश्रवणादि परिठाना और शेष तीन भांगे अशुद्ध है, २. जिस स्थान परिठाने से अपना आत्मा की तथा दूसरे के आत्मा की घात न हावे, ३. ऊँची-नीची भूमि न होवे परंतु समभूमि होवे, ४. तृण घास कचरा वगैरह होवे नहीं और जीव वगैरह दृष्टिगत होते होवे। ५. अग्नि वगैरह प्रमुख से अचित्त हुए थोड़ा काल हुआ हो, ६. विस्तीर्ण लम्बी चौड़ी जमीन हो, ७. भूमि के अंदर का भाग बहुत दूर तक अचित हुआ हो। ८. अपने उपाश्रय से परिठाने का स्थान दूर हो, ९. मूषक वगैरह के बिल न होवे, और १०. उदइ चींटी आदि के नागरे बीज हरी जीवादि वहाँ न होवे। उस प्रकार के दस स्थान में स्थंडिल बोसीरा देवे॥१६-१८॥

यहाँ कथा प्रेक्षणीय हैं–सूव्रताचार्य ने एकदा शिष्य से कहा कि स्थंडिलादि परिठाने की भूमि सदैव अवश्य देखनी चाहिये। तब एक अविनीत शिष्य बोला कि क्या वहाँ ऊँट बैठा है जो कि सदैव दोनों समय प्रतिलेखना किया करे? गुरु मौन रहे। शासन देव ने गुरु की आज्ञा मनवाने के लिये ऊँट का रूप वैक्रिय किया। रात्रि को शिष्य परिठाने गया तब ऊँट को देख आश्चर्य चकित हुआ। गुरु से अपराध खमाया और पीछे से उच्चारादि भूमिका की प्रतिलेखना करने लगा।

एयाओ पंच समिईओ, समासेण वियाहिया।
एत्तो य तओ गुत्तीओ, वोच्छामि अणुपुव्वसो॥१९॥

उक्त पांचों समिति का कथन संक्षेप से कहा है। इसका विस्तारपूर्वक कथन आचारांग सूत्र के दूसरे श्रुतस्कंध से जानना। अब आगे तीनों गुप्त का कथन अनुक्रम से कहता हूँ॥१९॥

---

१. किसी को मारने का विचार करे सो सारंभ, किसी को मारने की सामग्री मिलाने का विचार करे सो समारंभ, और मंत्रादि प्रयोग से मारे सो आरंभ।

सच्चा तहेव मोसा य, सच्चामोसा तहेव य।
चउत्थी असच्चमोसा य, मणगुत्तीओ चउव्विहा॥२०॥
संरंभ-समारंभे, आरंभे य तहेव य।
मणं पवत्तमाणं तु, नियत्तेज्ज जयं जई॥२१॥

प्रथम मन गुप्ति कहते हैं–मनगुप्ति के चार भेद कहे हैं–१. सत्य मन गुप्ति सो जीवादिक पदार्थ का यथार्थ जिनाज्ञानुसार चिंतवन करे। २. असत्यमनगुप्ति–जिनाज्ञा से विपरीत चिंतवन करे, ३. मिश्रमनगुप्ति सो कुच्छ सत्य कुछ असत्य यों मिश्र चिंतवन करे, और ४. व्यवहार मन गुप्ति–सो ग्राम आया, पर्वत जले, वगैरह सच्चा भी नहीं और झूठा भी नहीं ऐसा विचार करे। इन चारों में से असत्य मन गुप्ति व मिश्र मन गुप्ति करे और मन को सारंभ, समारंभ व आरंभ से निवारे[१], यह मनगुप्ति का कथन हुआ॥२०-२१॥

इस पर कथा ज्ञातव्य है–कुग्रन नामक साधु को ध्यान बहुत समय लगा तब गुरु जी ने पूछा कि इतनी देर क्यों हुई। शिष्य ने उत्तर दिया कि मैं इस विचार में था कि वर्षा ऋतु आई है, अब मेरे पुत्र जो खेत में अनाज डाल देंगे तो उसकी अच्छी फसल होने से वे सुखी होंगे। इस विचार से देर लग गई। गुरु ने कहा कि साधु को ऐसा सारंभी विचार नहीं करना चाहिये। तब शिष्य ने मिथ्या दुष्कृत्य दिया।

सच्चा तहेव मोसा य, सच्चामोसा तहेव य।
चउत्थी असच्चमोसा य, वइगुत्ती चउव्विहा॥२२॥

दूसरी वचन गुप्ति–१. सत्य वचन गुप्ति, २. असत्य वचन गुप्ति, ३. मिश्र वचन गगुप्ति और ४. व्यवहार वचन गुप्ति, यावत् असत्य यचन व मीठा वचन गुप्ति अंगीकार करे॥२२॥

सरंभ-ससारंभे, आरंभे य तहेव य।
वयं पवत्तमाणं तु नियत्तेज्ज जयं जई॥२३॥

और सारंभ समारंभ व आरंभ से वचन को निवारे[१]–यह दूसरी वचन गुप्ति हुई॥२३॥

इस पर कथा पठनीय है -गुणदत्त साधुजी विहार करके जा रहे थे मार्ग में चोर मिले और बोले कि आपके दर्शन के लिये श्रावक साथ आते हैं उनको हमारे समाचार मत कहना। साधु कुछ भी बोले बिना आगे गये। आगे साधु के कटुम्बिय थे। वे साधु के दर्शन कर प्रसन्न हुए। साधुने धर्मोपदेश दिया और वे पीछे गये। रास्ते में चोरों ने उनको लूटा और कहने लगे कि साधु ने हमारे समाचार नहीं दिये तो हमको अच्छा हुआ। यह बात साधु की माँ ने सुनी और भोलेपन से बोली कि मेरी कूख से ऐसा उत्पन्न हुआ कि मुझे ही लुटा दिया। चोर ने सोचा कि यह तो साधु की माता है धन्य है साधु को कि इसने यह बात कही नहीं! यों विचार कर उन सबका लूटा हुआ धन वापस दे दिया। ऐसी वचन गुप्ति सब साधु को रखना चाहिये।

ठाणे निसीयणे चेव, तहेव य तुयट्टणे।
उल्लंघण पल्लंघणे, इंदियाण य जुंजणे॥२४॥

अब तीसरी कयागुप्ति कहते हैं–साधु खड़ा रहते, बैठते, शयन करते। उल्लंघन करते, प्रल्लधन करते इन्द्रियों के विषय कर यतना से प्रवर्ते॥२४॥

---

१. यह मरे तो अच्छा यह मारंभ, अन्य को मारने के लिए विष शस्त्रादि की सामग्री मिलाने का वचन कहे सो समारंभ और किसी को श्राप देवे अथवा कटोर वचन बोले, सो आरंभ।

संरंभ-समारंभे, आरम्भम्मि तहेव य।
कायं पवत्तमाणं तु, नियत्तेज्ज जयं जई॥२५॥

ओर सारंभ, समारंभ व आरंभ से काया को निवृत्त करे[1]॥२५॥

इस पर कथा चिंतनीय है—द्वारिका नगरी के वसुदेव राजा व रानी देवकी को गजसुकुमाल पुत्र हुवा। उनका पाणि ग्रहण कराने के लिये श्री कृष्ण वासुदेव ने सोमिल ब्राह्मण की लड़की को शादी से पहले ही अपने राज महल में रखी थी। गजसुकुमाल जी नेमिनाथ भगवान का उपदेश सुन दक्षित बने और श्मशान में कायोत्सर्ग कर खड़े रह गये। सोमील ब्राह्मण शादी की सामग्री लाने बाहर गया था। उसने वापस आते समय गज सुकुमाल मुनि को देखा और क्रोधातुर होकर गजसुकुमाल मुनि के मस्तक पर भीगी मिट्टी की पाल बांध कर जाज्वल्यमान अग्नि के खीरे उसमें भर दिये। मुनि की खोपड़ी खीचड़ी की तरह खदबद गई आंखें छिटक कर बाहर आ गई। अति उज्जवल वेदना समभाव से सहन की परन्तु किंचिन्मात्र भी काया को हिलाया नहीं, कर्म क्षय कर मोक्ष पधारे। ऐसे ही अन्य साधु को भी कायागुप्ति करना।

एयाओ पंच समिईओ, चरणस्स य पवत्तणे।
गुत्ती नियत्तणे वुत्ता, असुभत्थेसु सव्वसो॥२६॥

समुच्चय—उक्त पांच समिति तो चारित्राराधन के कार्य साधन के लिये कही और तीनों गुप्ति सर्वथा प्रकार से निवर्तने रूप कही (पांच समिति अपवाद मार्ग है और तीन गुप्ति उत्सर्ग मार्ग है)॥२६॥

एयाओ पवयणमाया, जे सम्मं आयरे मुणी।
से खिप्पं सव्वसंसारा विप्पमुच्चइ पंडिए॥२७॥ त्ति बेमि॥
॥पवयणमायं समत्तं॥२४॥

जो पंडित साधु होवे वे उक्त आठों प्रवचन माता के कहे अनुसार सम्यक् प्रकार आचरण करके शीघ्रता से संसार से छूटकर मोक्ष पावेंगे॥२७॥

ऐसा मैं कहता हूँ। यो श्री सुधर्मा स्वामी अपने शिष्य श्री जम्बु स्वामी से कहने लगे कि जैसा मैंने सुना है वैसा ही कहा है।

अष्ट प्रवचन माता का चौबीसवां अध्ययन सम्पूर्ण।

---

१. दूसरे को मारने को शस्त्रादि उठाना सो आरंभ, दूसरे को मारने की सामग्री लाकर देना सो समारंभ और मार डालना सो आरंभ।



पंचवीसइमं जन्नइज्जं अज्झयणं
यज्ञकीय नामकं पंचविंशतितममध्ययनम्

चौबीसवें अध्ययन में आठ प्रवचन माता के कहे वे तो भाव ब्राह्मण के होवें इसलिये पच्चीसवें अध्ययन में भाव ब्राह्मण का कथन कहते हैं।।

माहणकुलसंभूओ, आसि विप्पो महायसो।
जायाई जमजन्नम्मि, जयघोसि त्ति नामओ॥१॥
इंदियग्गामनिग्गाही, मग्गगामी महामुणी।
गामाणुगामं रीयंते, पत्तो वाणारसिं पुरिं॥२॥

(बनारसी नगरी के निवासी ब्राह्मण जात्योत्पन्न जय घोष और विजय घोष नामक दो भ्राताओं में से जयघोष को साधु की संगति होने से द्रव्य यज्ञ का त्याग कर साधू बन भाव यज्ञ करने प्रवृत्त हुए) वे ब्राह्मण कुलोत्पन्न महायशवंत जयघोष नामक महामुनि इन्द्रियों के समूह रूप पशुओं के पंच महाव्रत रूप यज्ञ कुंड में निग्रह कर (होम कर) भाव से मोक्ष मार्ग में प्रवर्तते हुए, द्रव्य से (अपने भाई का उद्धार करने) ग्रामानुग्राम विचरते (निवास करते) हुए वाणारसी नगरी पधारे॥१-२॥

वाणारसीय बहिया, उज्जाणम्मि मणोरमे।
फासुए सेज्जसंथारे, तत्थ वासमुवागए॥३॥

वाणारसी नगरी के बाहर मनोरम नामक उद्यान में प्रासुक निदोष स्थानक पाट संथारक आदि की याचना कर तप संयम से आत्मा भावते विचरने लगे॥३॥

अह तेणेव कालेणं, पुरीए तत्थ माहणे।
विजयघोसे त्ति नामेणं, जन्नं जयइ वेयवी॥४॥

उस समय उस वाणारसी नगरी में वेदों का पाठी विजयघोष नामक ब्राह्मण ने वेदाज्ञानुसार यज्ञ प्रारंभ किया था॥४॥

अह से तत्थ अणगारे, मासक्खमणपारणे।
विजयघोसस्स जन्नम्मि, भिक्खमट्ठा उवट्ठिए॥५॥

उस समय वे विजय घोष नामक अनगार–साधुजी मासक्षमनोपवास के पारने के लिये भिक्षार्थ सावधान हुए तहाँ विजयघोष ब्राह्मण के यज्ञ मंडप में उपस्थित हुए॥५॥

'समुवट्ठियं तहिं संतं, जायगो पडिसेहए।
न हु वाहामि ते भिक्खं, भिक्खू! जायाहि अन्नओ॥६॥
जे य वेयविऊ विप्पा, जन्नट्ठा य जे दिया।
जोइसंगविऊ जे य, जे य धम्माण पारगा॥७॥
जे समत्था समुद्धत्तुं, परं मप्पाणमेव य।
तेसिं अन्नमिणं देयं, भो भिक्खू! सव्वकामियं॥८॥

उस यज्ञ मंडप में साधु को समुपस्थित (आये) हुए देखकर विजयघोष विप्र उन मुनि का तिरस्कार करता हुआ बोला कि–भो भिक्षक! मैं तुझे निश्चय से भिक्षा नहीं दूंगा। इसलिये तुम यह घर छोड़कर अन्य घर याचना कर क्योंकि–यहाँ यज्ञ मंडप में निष्पन्न हुआ आहार तो जो विप्र वेद के जानकार हैं, यज्ञार्थि हैं ज्योतिष शास्त्र में प्रवीण हैं, और जो यज्ञ के पारगामी हैं वे अपनी आत्मा को और अन्य के आत्मा को संसार समुद्र से उद्धार करने समर्थ होते हैं; ऐसे विप्रों के लिये ही यह षड्रस संयुक्त इच्छा तृप्ति का करने वाला आहार आदि है (परन्तु अन्य के लिये नहीं है)॥६-८॥

सो तत्थ एव पडिसिद्धो, जायगेण महामुणी।
नवि रुट्ठो नवि तुट्ठो, उत्तिमट्ठगवेसओ॥९॥

उक्त प्रकार से जयघोष मुनि का विजयघोष विप्र ने तिरस्कार किया तो भी वे मोक्षार्थ के गवेषी मुनि न तो रुष्ट (क्रोधी) हुए और न तुष्ट हुए; परन्तु समभाव से रहे और आहार पानी वस्त्रादि के लाभ के लिए नहीं परन्तु विजय घोष का उद्धार करने के लिये॥९॥

नऽन्नट्ठं पाणहेउं वा, न वि निव्वाहणाय वा।
तेसिं विमोक्खणट्ठाए इमं वयणमब्बवी॥१०॥

जयघोष मुनि ने न तो अन्न के लिए और न पानी के लिए तथा न किसी प्रकार के वस्त्रादि निर्वाह के लिए, किन्तु उन याजकों को कर्म बन्धन से मुक्त कराने के लिए उनके प्रति ये वचन कहे॥१०॥

'न वि जाणसि वेयमुहं, न वि जन्नाणजं मुह।
नक्खत्ताण मुहं जं च, जं च धम्माण वा मुहं॥११॥
जे समत्था समुद्धत्तुं, परं अप्पाणमेव य।
न ते तुमं वियाणासि, अह जाणासि तो भण॥१२॥

हे विप्र! वेद में मुख्य कौन है। यज्ञ में मुख्य कौन है, नक्षत्र में मुख्य कौन है और धर्म में मुख्य कौन है उसे तुम जानता नहीं हो, वैसे ही अपनी आत्मा का तथा पर आत्मा का संसार समुद्र से उद्धार करने समर्थ कौन है उसे भी तुम जानते नहीं हो जो तुम जानते हो तो कहो?॥११-१२॥

तस्सऽक्खेवपमोक्खं च, अचयंतो तहिं दिओ।
सपरिसो पंजली होउ पुच्छई तं महामुणिं॥१३॥

उक्त प्रकार मुनि के वचन सुनकर विजय घोष ब्राह्मण उन मुनि को प्रश्नोत्तर देने में असमर्थ होकर उस यज्ञ मण्डप में आए हुए सब ब्राह्मणों के साथ दोनों हाथ जोड़कर उन मुनि को इस प्रकार पूछने लगा॥१३॥

'वेयाणं च मुहं बूहि, बूहि जन्नाण जं मुहं।
नक्खत्ताण मुहं बूहि, बूहि धम्माण वा मुहं॥१४॥
जे समत्था समुद्धत्तुं, परं अप्पाणमेव य।
एयं मे संसयं सव्वं, साहू! कहसु पुच्छिओ॥१५॥'

अहो साधु जी! वेदों का मुख्य, यज्ञ का मुख्य नक्षत्र का मुख्य, धर्म का मुख्य कौन है? और संसार समुद्र से उद्धार करने समर्थ कौन हैं, यह हमारे मन में संदेह है सो इस का स्पष्टीकरण आप कृपा करके कहो॥१४-१५॥

'अग्गिहोत्तमुहा वेया, जन्नट्ठी वेयसां मुहं।
नक्खत्ताण मुहं चंदो, धम्माणं कासवो मुहं॥१६॥
जहा चंदं गहाईया, चिट्ठंती पंजलीउडा।
वंदमाणा नमंसंता, उत्तमं मणहारिणो॥१७॥

तब जयघोष मुनि बोले कि हे विप्रो! १ जीव रूपकुंड, २ तपरूपी वेदी का, ३ कर्मरूप ईधन, ४ ध्यान रूपी अग्नि, ५ शरीर रूपगोर, ६ शुभयोग रूप चारूं, ७ शुद्ध भाव तथा जीवदया रूप आहुति इस प्रकार का जो अग्निहोत्र है वहीं वेद का मुख्य है औद ऐसा यज्ञ ही वेद में मुख्य हैं, वही प्रमाण भूत हैं इस प्रकार यज्ञ के अर्थी साधु वही यज्ञ के प्रवर्तक हैं। नक्षत्रों में मुख्य चन्द्रमा है। और धर्म में मुख्य धर्म के प्रवर्तक श्री ऋषभ देवजी तथा श्री महावीर स्वामी जी हैं। जिस प्रकार चन्द्रमा के आगे ग्रह नक्षत्र ताराओं दोनों हाथ जोड़कर खड़े रहते हैं गुणस्तवन करते हैं नम्ररूप हो सेवा करते हैं। इस प्रकार सविनय से मानते हुये रहते हैं, वैसे ही आदिनाथ जी के तथा महावीर स्वामी जी के आगे चौंसठ ही इन्द्र सेवा करते हैं[1]॥१७॥

---

१. ज्योंतिषि लोग सब ग्रहों में चन्द्रमा को प्रधान मानते हैं इसीलिए चन्द्रमा के दृष्टान्त से तीर्थंकरों का गौरव दर्शाकर उनका महत्त्व उनके मन में बिठाता है।

श्लोक–यूपं छित्वा पशुन् हत्वा, कृत्वा रुधिर कर्दमम्॥ यद्येवं गम्यते स्वर्ग, नरके केन गम्यते॥१॥ **अर्थ**–यज्ञस्थुंभिका, छेदन कर पशुओं की घातकर रक्त का कर्दम मचा यदि स्वर्ग में जाते हों तो फिर नरक में कौन जाएगा?॥१॥ **श्लोक**–देवो पहाहव्याजेन, यज्ञव्याजेन योऽथवा। घ्नांति जन्तूनगतघृणा, घोरां ते यांति दुर्गातम॥२॥ **अर्थ**–तत्वज्ञ पुरुषों का फरमान है कि जो पुरुष घृणा रहित देवता के भेंट करते रूप छल से या यज्ञ के निमित्त से जीवों को मारते हैं वे घोर दुर्गति में जाते हैं॥२॥ वेदान्ति भी कहते हैं। **श्लोक**–अन्धे तमसि मज्जाम, पशुभि ये यजामहे। हिंसा नाम भवेद्धर्मां न भूतो न भविष्यति॥३॥ **अर्थ**–जो पशुओं का वधकर देवतादि की पूजा करें तो घोर नरक में जायें, क्योंकि हिंसा में धर्म न कभी हुआ और न कभी

अजाणगाा जन्नवाई, विज्जामाहणसंपया।
मूढा सज्झाय-तवसा, भासच्छन्ना इवग्गिणो॥१८॥

जो ब्राह्मण उक्त प्रकार के वेद के तत्त्व के अजान हो कर यज्ञ करते हैं, अग्नि विद्यारूप ब्राह्मण की सम्पदा है। उसको भी नहीं जानते हैं। स्त्री धनादि के मोह में मुग्ध बनकर स्वाध्याय तपादि नहीं करते हैं। ऐसे मूढ़ विप्र ढकी हुई अग्नि के समान होते हैं अर्थात् जिस प्रकार ढकी हुई अग्नि बाहर से शीतल देखाती है परंतु अन्दर से जाज्वल्यमान होती है। वैसे ही वे ब्राह्मणों का वेष धारण कर ऊपर से निष्कामी शीतली भूत होते हैं। परंतु अन्दर से कामाग्नि क्रोधग्नि से प्रदीप्त हैं॥१८॥

जो लोए बंभणो वुत्तो, अग्गी व महिओ जहा।
सया कुसलसंदिट्ठं, तं वयं बूम माहणं॥१९॥

हे विप्र! केवलज्ञानीयों ने घृत से सींचन की हुई अग्नि समान जो ब्राह्मण जगत् में सदैव पूज्यनीय कह हैं उनों को मैं भी ब्राह्मण कहता हूँ॥१९॥

जो न सज्जइ आगंतुं, पव्वयंतो न सोयइ।
रमइ अज्जवयणम्मि, तं वयं बूम माहणं॥२०॥

जो आगामी काल में किसी वस्तु की प्राप्ति के लिये लालसा नहीं रखते हैं, तथा स्वजनादि के स्थानक में आकर आसक्त नहीं होते हैं। और जो बीती हुई बात का शोक-पश्चात्ताप नहीं करते हैं। तथा अन्य स्थान में दीक्षा ग्रहण करने में खेदित नहीं होते हैं और तीर्थंकरों के वचन में तथा मार्ग में रमण करते हैं सदैव प्रसन्न रहते हैं उन ही को मैं ब्राह्मण कहता हूँ॥२०॥

जायरूवं जहामट्ठं, निद्धंतमलपावगं।
राग-दोस-भयाईयं, तं वयं बूम माहणं॥२१॥

जिस प्रकार सुवर्ण को अग्नि में तपाकर क्षारादि से धोकर उसका मैल दूरकर गेरू आदि औप चड़ाने से शोभता है। वैसे ही जो आत्मा रूप सुवर्ण को तप रूप अग्नि में तपकर चरित्र रूप क्षार से धोकर रागद्वेष तथा सातों भय रहित हुये हैं वे मोक्ष रूप सुवर्ण समान महा अर्थ वाले हैं उनको मैं ब्राह्मण कहता हूँ॥२१॥

होगा॥३॥ इसलिए व्यासजी के कहे अनुसार करना श्लोक–ज्ञान पालि परिक्षिप्त, ब्रह्मचर्न्द्रियान्मसि। स्नात्वारित विमल तीर्थे, पापपका पहारिणि॥४॥ ध्यानाग्नौ जीव कुंडस्थ, दममारुत दीपिते असत कर्मसमित क्षेपेग्निहोत्र कुरुतमम्॥५॥ कषाय पशुभिदुष्टै, धर्मकामर्थ नाशकै शम मात्र हुतैर्यज्ञ, विधेहि विहितं बुधै॥६॥ अर्थ–ज्ञान रूपी तलाव में दया और ब्रह्मचर्य रूपी पानी है ऐसे तीर्थ में स्नान कर कर्म मल से शुद्ध बन, फिर जीव रूपी कुंड में दमरूप पवन से दीपित जो ध्यान रूपी अग्नि है उस में अष्टकर्म रूपी काष्ट को डाल कर उत्तम अग्निहोत्र करो, धर्म, काम और अर्थ को नष्ट करने वाले शम रूप मंत्र की आहुती को प्राप्त हुवे ऐसे दुष्ट कषाय रूपी पशुओं से ज्ञानवतो द्वारा किया हुआ यज्ञ करो, अश्वमेधसो-मनरूपी घोड़े का, गौमेध सो असत्य वचन का, अजामिघ सो इन्द्रियों का और नरमेध सो कामदेव का वरोक्त कुंड की अग्नि में यज्ञ करने से स्वर्ग की प्राप्ति होती है॥४-६॥

तवस्सियं किसं दन्तं, अवचियमंससोणियं।
सुव्वयं पत्तनिव्वाणं, तं वयं बूम माहणं॥२२॥

जिन्होंने ने इन्द्रियों का दमन करके, द्वादश प्रकार का तप कर अपने शरीर का रक्त मांस सुखा कर शरीर को शुक्ल बना दिया है सुवृति निर्वाण प्राप्त करने योग्य बने हैं उनको मैं ब्राह्मण कहता हूँ॥२२॥

तसपाणे वियाणेत्ता, संगहेण य थावरे।
जो न हिंसइ तिविहेणं, तं वयं बूम माहणं॥२३॥

जो बेन्द्रिय आदि त्रस प्राणी को और पृथव्यादि स्थावर प्राणी को संक्षेप से तथा विस्तार से जानकर मन वचन काया के योग कर घात करें नहीं, करावे नहीं और करते को अच्छा जाने नहीं उनको मैं ब्राह्मण कहता हूँ॥२३॥

कोहा वा जइ वा हासा, लोहा वा जइ वा भया।
मुसं न वयई जो उ, तं वयं बूम माहणं॥२४॥

जो क्रोध (द्वेष) के वश हो, लोभ (राग) के वश हो, हंसी के वश हो तथा भय के वश हो मृषा (झूठ) बोले नहीं, बोलावे नहीं बोलते को अच्छा जाने नहीं मन से वचन से काया से उनको मैं ब्राह्मण कहता हूँ॥२४॥

चित्तमंतमचित्तं वा, अप्पं वा जइ वा बहुं।
न गिंहई अदत्तं जे, तं वयं बूम माहणं॥२५॥

जो सचित्त मनुष्य पशु आदि, अचित्त वस्त्र पात्रादि, तथा सुवर्णादि अल्प थोड़ा तथा बहुत[1] इनकी चोरी तीन करने तीन योग से नहीं करे उनको मैं ब्राह्मण कहता हूँ॥२५॥

दिव्व-माणुस्स-तेरिच्छं, जो न सेवइ मेहुणं।
मणसा काय-वक्केणं, तं वयं बूम माहणं॥२६॥

देवता सम्बन्धी मनुष्य सम्बन्धी और तिर्यच सम्बन्धी मैथुन तीन करने तीन योग से सेवन नहीं करे उनको मैं ब्राह्मण कहता हूँ॥२६॥

जहा पोमं जले जायं, नोवलिप्पइ वारिणा।
एवं अलित्तं कामेहिं, तं वयं बूम माहणं॥२७॥

जिस प्रकार पद्म कमल कीचड़ में उत्पन्न हो पानी में वृद्धि पाकर पुनः कीचड़ पानी से लिप्त नहीं होता है ऐसे ही जो कामरूपी कर्दम से उत्पन्न हो भोग रूप पानी से वृद्धि प्राप्त कर पुनःकामभोग से लिप्त नहीं होते हैं उनको मैं ब्राह्मण कहता हूँ॥२७॥

---

१. १ द्रव्य से थोड़ा भाव से बहुत रत्नादि, २ द्रव्य से बहुत भाव से थोड़ा प्रस्तरादि २ द्रव्य से भी बहुत भाव से भी बहुत रत्न कम्बलादि और ४ द्रव्य से ही थोड़ा तथा भाव से ही थोड़ा राख आदि।

अलोलुयं मुहाजीवि, अणगारं अकिंचणं।
असंसत्तं गिहत्थेसु, तं वयं बूम माहणं॥२८॥

जो अचित्त निर्दोष अन्य के लिये बनाया आहार को प्राप्त कर उस में लोलुप्तता रहित भोगनेवाले सुवर्णादि द्रव्य के त्यागी कुटुम्बियों का तथा गृहस्थों के सम्बन्ध रहित होवे उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ॥२८॥

(जहित्ता पुव्वसंजोगं, नाइसंगे य बंधवे।
जो न सज्जइ भोगेसु, तं वयं बूम माहणं॥२९॥)

जो पूर्वात्-संसार सम्बन्धी संयोग माता-पिता स्त्री पुत्र भाईयों ज्ञातीजनों को छोड़कर निकले, पुनः उनके भोग (राग) में आसक्त (लुब्ध) न होवे उनको मैं ब्राह्मण कहता हूँ॥२९॥

पसुबंधा सव्ववेया, जट्ठं च पावकम्मुणा।
न तं तायंति दुस्सीलं, कम्माणि बलवंतिहि॥३०॥

हे विजयघोष! तुम्हारी मान्यता से जो वेद हैं वे सब पशुओं के वध (घात) के हेतुभूत हैं, वैसे ही यज्ञ का करना भी पाप कर्म के हेतु भूत हैं, इसलिये यह दुष्टाचार है सो आत्मा को त्राण शरण कदापि नहीं होता है, परन्तु धर्मार्थ किया पाप वज्र कर्म का बन्धकर दुर्गति दाता होता है॥३०॥

न वि मुंडिएण समणो, न ओंकारेण बंभणो।
न मुणी रण्णवासेणं, कुसचीरेण न तावसो॥३१॥

हे विजय घोष! मस्तक मुण्डित करने से साधु नहीं होते हैं, ॐकार के उच्चार से ब्राह्मण नहीं होते हैं, वनवास करने से मुनि नहीं होते हैं और कुशा के वस्त्र पहनने से तापस नहीं होते हैं॥३१॥

समयाए समणो होइ, बंभचेरेण बंभणो।
नाणेण य मुणी होइ, तवेणं होइ तावसो॥३२॥

परन्तु शत्रु मित्र पर समभाव रखने से साधु होते हैं, ब्रह्मचर्य पालने से ब्राह्मण होते हैं। ज्ञानाभ्यास से मुनि होते हैं, और तपश्चर्या करने से तपस्वी होते हैं॥३२॥

कम्मुणा बंभणो होइ, कम्मुणा होइ खत्तिओ।
बुद्धे बइसो कम्मुणा होइ, सुद्दो हवई कम्मुणा॥३३॥

ब्राह्मणों की ब्रह्मचर्यादि क्रिया करने से ब्राह्मण होते हैं, दुःखी जीवों का रक्षण करने से क्षत्रिय होते हैं नीति प्रमाणे व्यापार करने से वैश्य होते हैं और कृषि कर्म तथा सेवा चाकरी करने से शूद्र होते हैं॥३३॥

एए पाउकरे बुद्धे, जेहिं होइ सिणायओ।
सव्वकम्मविणिम्मुक्कं, तं वयं बूम माहणं॥३४॥

यह जो मैंने उक्त अहिंसादि कथन किया वह सर्वज्ञ तीर्थंकरों का प्रतिपादन किया हुआ है।

उक्त धर्माराधन कर के ही तीर्थंकर तथा केवलज्ञानी होते हैं और सर्व कर्मांश का क्षयकर मोक्ष प्राप्त करते हैं। उन्हीं को मैं ब्राह्मण कहता हूँ॥३४॥

एवं गुणसमाउत्ता, जे भवंति दिउत्तमा।
ते समत्था समुद्धत्तुं, परं प्पाणमेव य॥३५॥

हे विजयघोष! यह पूर्वोक्त प्रकार अहिंसादि गुणकर सहित जो उत्तम ब्राह्मण होते हैं वे ही ब्राह्मण अपनी तथा अन्य की आत्मा का संसार समुद्र से उद्धार करने समर्थ होते हैं॥३५॥

एवं तु संसए छिन्ने, विजयघोसे य बम्भणे।
समुदाय तयओ तं तु, जयघोसं महामुणिं॥३६॥
तुट्ठे य विजयघोसे, इणभुदाहु कयंजली।
'माहणत्तं जहाभूयं, सुट्ठु मे उवदंसियं॥३७॥

इस प्रकार धर्मोपदेश करके जयघोष नामक महाऋषि ने विजय घोष ब्राह्मण के संशय का छेदन किया। संशय का निवारण होने से विजयघोष ब्राह्मण ने जयघोष मुनि के वचन सत्यमान कर हृदय में श्रद्धान किया-धारण किये। इन जयघोष महामुनि के वचनों से विजयघोष ब्राह्मण संतुष्ट हुआ और दोनों हाथ जोड़कर यों बोला-अहो मुनि! जिस प्रकार ब्राह्मण के लक्षण होते हैं उस ही प्रकार आपने मुझे सत्य कहे-बहुत ही अच्छे कहे॥३६-३७॥

तुब्भे जइया जन्नाणं, तुब्भे वेयविऊ विऊ।
जोइसंगविऊ तुब्भे, तुब्भे धम्माण पारगा॥३८॥

अहो मुनि! आप ही सच्चे यज्ञ के करने वाले हो, आप ही सच्चे वेद के जानने वाले हो, आप ही ज्योतिष शास्त्र में प्रवीण हो और आप ही सत्य धर्म के पारगामी हो॥३८॥

तुब्भे समत्था उद्धत्तुं, परं प्पाणमेव य।
तमणुग्गहं करेहऽम्हं, भिक्खेणं भिक्खुउत्तमा!॥३९॥

आप ही अपनी आत्मा को तथा अन्य के आत्मा का उद्धार करने समर्थ हो इसलिये अहो सर्व भिक्षुओं में उत्तम भिक्षु! आप हमारे यहाँ से भिक्षा ग्रहण कर हमारे पर उपकार करो॥३९॥

'न कज्जं मज्झ भिक्खेण, खिप्पं निक्खमसू दिया!।
मा भमिहिसि भयावट्टे, घोरे ससारसागरे॥४०॥

तब जयघोष मुनि बोले कि-हे विजयघोष! मुझे भिक्षा से कुछ प्रयोजन नहीं है परन्तु तुम शीघ्रता से गृह कदाग्रह का त्याग कर दीक्षा धारण करो कि जिससे तुम अनंत अव्रत (परिभ्रम) वाले संसार समुद्र में परिभ्रमण करने से छूट जाओगे॥४०॥

उवलेवो होइ भोगेसु, अभोगी नोवलिप्पई।
भोगी भमइ संसारे, अभोगी विप्पमुच्चई॥४१॥

हे विप्र! कामभोग के सेवन से आत्मा कर्मों से लिप्त होता है। वह संसार में परिभ्रमण करता है, और भोग रहित आत्मा कर्मों से निर्लेप होता है वह संसार से मुक्त होता है॥४१॥

उल्लो सुक्को य दो छूढा, गोलया मट्टियामया।
दो वि आवडिया कुड्डे, जो उल्लो सोऽत्थ लग्गई॥४२॥
एवं लग्गंति दुम्मेहा, जे नरा कामलालसा।
विरत्ता उ न लग्गंति, जहा से सुक्कगोलए॥४३॥

जिस प्रकार गीला और शुष्क दोनों मिट्टी के गोले को दीवार पर फेंके जाएं तो जो गीला गोला होता है वह दीवार पर चिपक जाता है इस प्रकार जो दुष्ट बुद्धि कामभोग के लम्पटी जीव होते हैं वे पाप कर्मोपार्जन कर संसार रूपी भीत को चिपके रहते हैं और जो शुष्क गोला होता है वह तत्काल छिटक पड़ता है। ऐसे जो कामभोग से विरक्त होते हैं वे संसार रूपी दीवार को चिपकते नहीं हैं परन्तु मोक्ष चले जाते हैं॥४२-४३॥

एवं से विजयघोसे, जयघोसस्स अंतिए।
अणगारस्स निक्खंतो, धम्मं सोच्चा अणुत्तरं॥४४॥

इस प्रकार श्रवण कर विजयघोष ब्राह्मण ने जयघोष नामक महा ऋषि के पास अहिंसादि उत्तम धर्म (दीक्षा) अंगीकार किया॥४४॥

खवित्ता पुव्वकम्माइं, संजमेण तवेण य।
जयघोस-विजयघोसा, सिद्धिं पत्ता अणुत्तरं॥४५॥ त्ति बेमि॥
॥जन्नइज्जं समत्तं॥२५॥

फिर दोनों भाई सम्यक् प्रकार तप संयम का पालन कर कर्मों का क्षय कर, जयघोष विजयघोष दोनों ही मोक्ष पधारे; अनंत अनुत्तर सुख को प्राप्त किया। यों सुधर्मा स्वामी ने जम्बू स्वामी से कहा॥४५॥

जयघोष विजयघोष का पच्चीसवां अध्ययन समाप्त हुआ।

२६

छव्वीसइमं सामायारिज्जं अज्झयणं
समाचारी नामकं षड्विंशतितममध्ययनम्

पच्चीसवें अध्ययन में भाव ब्राह्मण के गुण का वर्णन किया, भाव ब्राह्मण साधु समाचारी वाले होते हैं, इसलिये छब्बीसवें अध्ययन में दस समाचारी कहते हैं। श्री सुधर्मा स्वामी कहते हैं कि–

सामायारिं पवक्खामि, सव्वदुक्खविमोक्खणिं।
जं चरित्ताण निग्गंथा, तिण्णा संसार सागरं॥१॥

हे जम्बू! जिन समाचारी का समाचरण कर साधु संसार समुद्र से तीरे हैं वे सब दुःख से मुक्त करने वाली दसविधि समाचारी मैं तुम से कहता हूँ॥१॥

पढमा आवस्सिया नाम, बिइया य निसीहिया।
आपुच्छणा य तइया, चउत्थी पडिपुच्छणा॥२॥
पंचमी छंदणा नाम, इच्छाकारो ये छट्ठओ।
सत्तमो मिच्छकारो उ, तहक्कारो उ अट्ठमो॥३॥
अब्भुट्ठाणं च नवमं, दसमी उवसंपदा।
एसा दसंगा साहूणं, सामायारी पवेइया॥४॥

दस समाचारी के नाम–१. आवश्यकी, २. निषेधिकी, ३. आप्रच्छना, ४. प्रतिपूछना, ५. छंदना, ६. इच्छाकार, ७. मिथ्याकार, ८. तथाकार, ९. अभ्युत्थान और १०. उपसम्पदा। यह दस प्रकार की साधु की समाचारी जानना॥२-४॥

गमणे आवस्सिय कुज्जा, ठाणे कुज्जा निसीहिय।
आपुच्छणं सयकरणे, परकरणे पडिपुच्छणं४॥५॥
छंदणा दव्वजाएणं, इच्छाकारो य सारणे।
मिच्छाकारो यनिंदाए, तहक्कारो पडिस्सुए८॥६॥
अब्भुट्ठाणं गुरुपूया, अच्छणे उवसपदा।
एवं दुपंचसंजुत्ता, सामायारी पवेइया॥७॥

इन दसों का अर्थ कहते हैं–१. उपाश्रय आदि स्थान में रहे हुए साधु को बाहर जाते अवश्य

ही शब्दोचार करना अर्थात् मैं आवश्यक कार्य है उसके लिये जाता हूँ। २. उपाश्रय में पुनः प्रवेश करते समय निस्सीही शब्दोच्चार करना अर्थात् जिस कार्य के लिये गया था उससे निवर्त हूँ। ३. स्वयं को जो कोई कार्य करना हो वह गुरु आदि को पूछकर करना, ४. दूसरे साधु का काम करना हो तो भी गुरु आदि ज्येष्ठ को पूछ कर करना, ५. आहार प्रमुख जो कोई वस्तु लाया हो उससे गुरु आदि की आमंत्रण करना, ६. अपनी इच्छा जिस कार्य करने की हो वह गुरुआदि को दर्शानी गुरुआदि की सलाह लेनी तथा अन्य के पास किसी भी प्रकार का कार्य करना हो तो कहे कि आप की इच्छा हो तो यह कार्य करना, ७. किसी प्रकार का अयोग्य कार्य अपने से बना हो तो उसका पश्चात्तापपूर्वक मिथ्या कार्य का दुष्कृत्य देना अर्थात् यह कार्य मैंने खराब किया, ८. गुरुआदि ज्येष्ठ जो वचन कहे–आज्ञा दे उसे तहति-प्रमाण तथास्तु करना, ९. गुरुआदि जेष्ठ आवे जावे तब खड़ा होना उनकी सेवा भक्ति में तत्पर रहना और १०. सूत्रार्थादि गुण की प्राप्ति के लिये गुरु के पास सदैव रहना तथा अन्य गच्छ के आचार्यादि के पास भी सविनय ज्ञानादि गुण ग्रहण करना। यह पांच अर्थात् दस समाचारी तीर्थंकर कही है॥५-७॥

पुव्विल्लम्मि चउब्भाए, आइच्चम्मि समुट्ठिए।
भंडयं पडिलेहित्ता, वंदित्ता य तओ गुरुं॥८॥
पुच्छिज्ज पंजलिउडो किं कायव्वं मए इह।
इच्छ निओइउं भंते! वेयावच्चे व सज्झाए॥९॥

अब दसवीं जो उपसम्पदा नामक समाचारी है। उसका विशेष स्वरूप दर्शाते हुए साधु का दिन का आचार रात्रि का आचार का सब कर्तव्य का संक्षेप में वर्णन करते हैं–दिन का चार भाग करना उसे चार प्रहर कहते हैं। उसमें प्रथम प्रहर है उसके भी चार भाग करना। (सकल दिन ३२ घड़ी का होता है उसका चौथा भाग आठ घड़ी का एक प्रहर गिना जाता है और उसका चौथा भाग दो घड़ी का मुहूर्त गिना जाता है। अढ़ाई (२॥) घड़ी का घंटा होता है) इसलिये सूर्योदय से एक मुहूर्त दिन आवे उतने में वस्त्रोपकरण की प्रतिलेखना करना, फिर गुरु आदि को वंदना नमस्कार कर दोनों हाथ जोड़ पूछे कि–अहो भगवन्! मैंने प्रतिलेखना तो की है अब मैं वैयावच्च और स्वाध्याय इन दोनों कार्य में से कौन-सा कार्य करूँ?॥८-९॥

वेयावच्चे निउत्तेणं, कायव्वं अगिलायओ।
सज्झाए वा निउत्तेण, सव्वदुक्खविमोक्खणे॥१०॥

तब गुरु कहे कि–हे वत्स! तुम वैयावच्च करो तो वह गुरु आज्ञा प्रमाण पर किंचित ही खेदित नहीं होता हुआ उत्साहपूर्वक वैयावच्च करे, और जो गुरु स्वाध्याय करने की आज्ञा देवे तो सर्व दुःख से मुक्त करने वाली स्वाध्याय-सज्झाय करे॥१०॥

दिवसस्स चउरो भागे, भिक्खू कुज्जा वियक्खणो।
तओ उत्तरगुणे कुज्जा, दिणभागेसु चउसु वि॥११॥
पढमं पोरिसि सज्झायं, बीयं झाणं झियायई।
तइयाए भिक्खायरिय पुणो चउत्थीइं सज्झायं॥१२॥

अब दिन के चारों भाग का संक्षेप में कर्त्तव्य कहते हैं–दिन के प्रथम प्रहर में शास्त्र की

स्वाध्याय करे, दूसरे प्रहर में अर्थ चिन्तवन रूप ध्यान करे, तीसरे प्रहर में गौचरी (आहार आदि की याचना) करे, और चौथे प्रहर में फिर स्वाध्याय करे॥११-१२॥[1]

आसाढे मासे दुपया, पोसे मासे चउप्पया।
चित्तासोएसु मासेसु, तिप्पयां हवइ पोरिसी॥१३॥

प्रथम के दो प्रहर दिन आवे वहाँ तक उत्तर तरफ मुख रखकर और पीछे के दो प्रहर में दक्षिण दिशा तरफ मुख रखकर सूर्य के ताप (धूप) में खड़ा रहकर फिर दाहिने (जीमने) पांव का जरा आगे बढ़ाकर घुटने पर तर्जनी अंगुली लगावे उसकी छाया जमीन पर जिस स्थान पड़े वहाँ से पांव की छाया को माप आषाढ़ महीने में दो पाँव प्रथम की और पीछे की छाया हो तब प्रहर दिन आया अथवा रहा जानना। पोष महीने में चार पांव छाया आवे तथा रहे तब प्रहर दिन आया अथवा रहा जानना और चैत तथा आश्विन महीने में तीन पांव छाया हो तब प्रहर दिन आया तथा रहा जानना॥१३॥

अंगुलं सत्तरत्तेणं, पक्खेणं तु दुरगुलं।
वड्ढए हायए वावि, मासेणं चउरंगुलं॥१४॥

अब शेष के बीच के आठ महीने में पोरषी का प्रमाण कहते हैं। पोष शुक्ल पूर्णिमा से प्रत्येक महीने में कृष्ण प्रतिपदा (एकम) से सात दिन में एक अंगुल घटता है। पन्द्रह दिन में दो अंगुल छाया घटती है और महीने में चार अंगुल छाया घटती है। यों घटाते-घटाते चेत शुदी पूर्णिमा को तीन पांव छाया की पोरषी होती है और आषाढ़ महीने में दो पांव छाया की पोरषी होती है। फिर सूर्य का पलटा होता है इसलिये आषाढ़ सुदी पूर्णिमा से सात दिन में एक अंगुल छाया बढ़ाना। पन्द्रह दिन में दो अंगुल छाया बढ़ाना और महीने में चार अंगुल छाया बढाना। पन्द्रह दिन में दो अंगुल छाया बढ़ाना और महीने में चार अंगुल छाया बढ़ाना। यों आश्विन शुदी पूर्णिमा को तीन पांव छाया हो जाती है और पोष शुदी पूर्णिमा को चार पांव छाया हो जाती है। इस प्रकार पांव से पोरषी का माप जानना और जो हाथ के वेंत से मापना हो तो दो बेंत का पांव होने से आधा पांव का बेंत होता है। इसलिये सब हिसाब आधा गिनना। अर्थात् आषाढ़ महीने में बेंत की एक बेंत पूरी छाया होवे जब पोरषी दिन आता है, फिर सात दिन में आधा अंगुल, पन्द्रह दिन में पूरा अंगुल और महीने में दो-दो अंगुल छाया की वृद्धि करते-करते पोष महीने तक दो बेंत छाया की पोरषी होती है फिर पक्ष में एक अंगुल और महीने में दो अंगुल घटते-घटते आषाढ़ महीने तक एक बेंत छाया की पोरषी होती है। घड़ियों की गिनती इस प्रकार होती है—सूर्य की तरफ पृष्ठ कर खड़े रहें। जहाँ तक अपने शरीर की छाया वहां तक के पांव के माप में

---

१. इन चारों प्रहर के मध्य में वैयावच्च करने का काम होवे तो सब काम छोड़ प्रथम उसे करे, यह कथन नवमी गाथा के अनुसार कहा है।

सात की वृद्धि कर एक सौ बीस का भाग देने से जितने रहे उतनी घड़ी दिन दो प्रहर तक आया और दो प्रहर बाद रहा जानना॥१४॥

आसाढ बहुलपक्खे, भद्दवए कत्तिए य पोसे य।
फग्गुण-वइसाहेसु य, नायव्वा ओमरत्ता उ॥१५॥

अब दिन की तथा रात्रि की घड़ी के प्रमाण का यंत्र देते हैं–अब कौन-से महीने में तिथि घटती तथा वृद्धिपाती है सो कहते हैं–१. आषाढ़, २. भादपद, ३. कार्तिक, ४. पौष, ५. फाल्गुन, और ६. वैशाख। इन छः महीने के कृष्ण पक्ष में तिथि घटती है, अर्थात् यह ६ महीने २९ दिन के होते हैं। इस के सिवाय–१. श्रावण, २. आश्विन, ३. मृगशिर, ४. माघ, ५. चेत, और ६. जेष्ठ, यह ६ महीने पूर्ण ३० दिन के होते हैं अर्थात् एक महीना उन्नतीस और एक महीना तीस का होता है॥१५॥

दिनमान यंत्र	आषाढ़	श्रावण	भाद्रव	अश्विन	कार्तिक	मृगश्र	पौष	महा	फाल्गुन	चेत	बैशाख	ज्येष्ठ
कृष्ण सप्तमी	३४॥	३५॥	३३॥	३१॥	२९॥	२७॥	२५॥	२४॥	२६॥	२८॥	३०॥	३२॥
अमावस्या	३५	३५	३३	३१	२९	२७	२५	२५	२७	२९	३१	३३
शुक्ल सप्तमी	३५॥	३४॥	३२॥	३०॥	२८॥	२६॥	२४॥	२५॥	२७॥	२९॥	३१॥	३॥
पूर्णिमा	३६	३४	३२	३०	२८	२६	२४	२६	२८	३०	३२	३४

रात्रिमान यंत्र	आषाढ़	श्रावण	भाद्रव	अश्विन	कार्तिक	मृगश्र	पौष	महा	फाल्गुन	चेत	बैशाख	ज्येष्ठ
कृष्ण सप्तमी	२५॥	२४॥	२६॥	२८॥	३०॥	३२॥	३४॥	३५॥	३३॥	३१॥	२९॥	२७॥
अमावस्या	२५	२५	२७	२९	३१	३३	३५	३५	३३	३१	२९	२७
शुक्ल सप्तमी	२४॥	२५॥	२७॥	२९॥	३१॥	३३॥	३५॥	३४॥	३२॥	३०॥	२८॥	२६॥
पूर्णिमा	२४	२६	२८	३०	३२	३४	३६	३४	३२	३०	२८	२६

दिन के प्रहरसी	आषाढ़	श्रावण	भाद्रव	अश्विन	कार्तिक	मृगश्र	पौष	महा	फाल्गुन	चेत	बैशाख	ज्येष्ठ
पांव प्रमाण	पां. अं.	पां. अं.	पां. अं.	पां. अं.	पां. अं.	पां. अं.	पां. अं.	पां. अं.	पां. अं.	पां. अं.	पां. अं.	पां. अं.
कृष्ण सप्तमी	२-३	२-१	२-५	२-९	३-१	३-५	३-९	३-११	३-७	३-३	२-११	२-७
अमावस्या	२-२	२-२	२-६	२-१०	३-२	३-६	३-१०	३-१०	३-६	३-२	२-१०	२-६
शुक्ल सप्तमी	२-१	२-३	२-७	२-११	३-३	३-७	३-११	३-९	३-५	३-१	२-९	२-५
पूर्णिमा	२	२-४	२-८	३	३-४	३-८	४	३-८	३-४	३	२-८	२-४

रात्रि की प्रहरसी	आषाढ़	श्रावण	भाद्रव	अश्विन	कार्तिक	मृगश्र	पौष	महा	फाल्गुन	चेत	बैशाख	ज्येष्ठ
पांव प्रमाण	पां. अं.	पां. अं.	पां. अं.	पां. अं.	पां. अं.	पां. अं.	पां. अं.	पां. अं.	पां. अं.	पां. अं.	पां. अं.	पां. अं.
कृष्ण सप्तमी	२-९	२-७	३-१	३-५	३-९	४-३	४-७	४-९	४-३	३-११	३-७	३-१
अमावस्या	२-८	२-८	३-९	३-६	३-१०	४-४	४-८	४-८	४-२	३-१०	३-६	३
शुक्ल सप्तमी	२-७	२-९	३-३	३-७	३-११	४-५	४-९	४-७	४-१	३-९	३-५	३-११
पूर्णिमा	२-६	२-१०	३-४	३-८	४	४-६	४-१०	४-६	४	३-८	३-४	२-१०

जेट्ठामूले आसाढ-सावणे छहिं अंगुलेहिं पडिलेहा।
अट्ठहिं बीयतयम्मी, तइए दस, अट्ठहिं चउत्थे॥१६॥

अब पौन पोरषी का प्रमाण बताते हैं–१. ज्येष्ठ, २. आषाढ़ और ३. श्रावण, इन तीन महीने का जो पौरुषी का प्रमाण ऊपर कहा है। उन पाँव पर छः अंगुल अधिक करने से पौन पौरुषी का प्रमाण होता है। वैसे ही–१. भादव, २. आश्विन और कार्तिक इन तीन महीने में उक्त जो पोरषी का प्रमाण कहा है उस पर आठ अंगुल अधिक बढ़ाने से पोन पोरषी का प्रमाण होता है, वैसे ही–१. मृगशिर, २. पोष, और ३. माघ इन तीन महीने का पोरषी का जो ऊपर प्रमाण कहा है उस पर दस अंगुल की वृद्धि करने से पौन पोरषी का प्रमाण होता है वैसे ही–१. फाल्गुन, २. चेत और ३. वैशाख। इन तीन महीने में जो पोरषी की छाया का प्रमाण कहा है उस पर आठ अंगुल वृद्धि करने से पौन पोरषी का प्रमाण होता है, इस प्रकार प्रत्येक महीने में प्रथम पांवों का जो प्रमाण कहा है उस पर उक्त प्रमाणे अंगुल की वृद्धि करने से पौन पोरसी का प्रमाण होता है॥ पोरसी दिन आवे तब पात्र की प्रतिलेखना करना॥ यह दिन का कर्तव्य संक्षेप में कहा॥१६॥

रत्तिं पि चउरो भागे, कुज्जा भिक्खू वियक्खणो।
तओ उत्तरगुणे कुज्जा, राईभाएसु चउसु वि॥१७॥

अब रात्रि का कर्तव्य कहते हैं। विचक्षण साधु रात्रि के भी चार भाग कर फिर उन चारों भागों में पृथकर उत्तर-गुण का कर्तव्य करे॥१७॥

पढमं पोरिसि सज्झायं, बितियं झाणं झियायई।
तइयाए निद्दमोक्खं तु, चउत्थी भुज्जो वि सज्झायं॥१८॥

रात्रि के प्रथम प्रहर में स्वाध्याय करे, दूसरे प्रहर में ध्यान धरे। तीसरे प्रहर में निदा मुक्त होवे, और चौथे के प्रथम प्रहर में स्वाध्याय करे, दूसरे प्रहर में ध्यान धरे। तीसरे प्रहर में निदा मुक्त होवे, और चौथे प्रहर में पुनःस्वाध्याय करे॥१८॥

जं नेइ जया रत्तिं, नक्खत्तं तम्मि नहचउब्भाए।
संपत्ते विरमेज्जा, सज्झाय पओसकालम्मि॥१९॥

अब रात्रि का पोरषी का मान किस प्रकार जानना, वह कहते है–जिस काल में जो नक्षत्र रात्रि को पूर्ण करते हों उनका आकाश में चार भाग करना वह नक्षत्र आकाश में चौथे भाग में आवे तब प्रहर रात्रि आई जानना। आकाश के मध्ये में आवे तब आधी रात्रि आइ जानना, तीसरे भाग में जावे तब प्रहर रात्रि रहि जानना और उस नक्षत्र के अस्त होने से रात्रि पूर्ण होती है अब जो नक्षत्र जिस-जिस महीने की रात्रि को पूर्ण करते हैं उनके नाम चंद प्रज्ञप्ति सूत्रानुसार कहते हैं–१. श्रावण महीने को प्रतिपदा से चौदह दिन तक उत्तराषाढ़ा नक्षत्र, फिर सात दिन अभीच नक्षत्र, फिर आठ दिन धनिष्ठा नक्षत्र और श्रवण शुक्ल पूर्णिमा को घनिष्ठा नक्षत्र रात्रि

पूर्ण करता है। २. भादव प्रतिपदा से १४ दिन धनिष्ठा, सात दिन शतभिषा, आठ दिन पूर्व भादपद और पूर्णिमा के दिन उत्तरा भादपद नक्षत्र रात्रि पूर्ण करता है। ३. अश्विन महीने की प्रतिपदा से चौदह दिन तक उत्तराभादपद, पन्द्रह दिन रेवती, और पूर्णिमा के दिन अश्विनी नक्षत्र रात्रि पूर्ण करता है। ४. कार्तिक महीने की प्रतिपदा से १४ दिन अश्विनी, १५ दिन भरनी, और पूर्णिमा के दिन कृत्तिका नक्षत्र रात्रि पूर्ण करता है। ५. मृगशिर महीने की प्रतिपदा से १४ दिन कृतिका, १५ दिन रोहिणी और पूर्णिमा के दिन मृगाशिर नक्षत्र रात्रि पूर्ण करता है। ६. पौष महीने की प्रतिपदा के १४ दिन मृगशिर, आठ दिन आर्द्रा, सात दिन पुनर्वसु और पूर्णिमा को पुष्य नक्षत्र रात्रि पूर्ण करता है। ७. माघ महीने की प्रतिपदा से १४ दिन तक पुष्य नक्षत्र, १५ दिन अश्लेषा नक्षत्र और पूर्णिमा के दिन मघा नक्षत्र रात्रि पूर्ण करता है। ८. फाल्गुन महीने की प्रतिपदा से १४ दिन मघा, १५ दिन पूर्वाफाल्गुनी, और पूर्णिमा को उत्तराफाल्गुनी, १५ दिन हस्त और पूर्णिमा के दिन चित्रा नक्षत्र रात्रि पूर्ण करता है। १० वैशाख महीने की प्रतिपदा से १४ दिन चित्रा, १५ दिन स्वाति और पूर्णिमा को विशाखा नक्षत्र रात्रि पूर्ण करता है। ११ ज्येष्ठ महीने की प्रतिपदा से १४ दिन विशाखा, १५ दिन अनुराधा और पूर्णिमा को ज्येष्ठा नक्षत्र रात्रि पूर्ण करता है। और १२ महीने की प्रतिपदा से १४ दिन ज्येष्ठा नक्षत्र, ७ दिन मूल नक्षत्र, ८ दिन पूर्वाषाढ़ा और पूर्णिमा को उत्तराषाढ़ा नक्षत्र रात्रि पूर्ण करता है। यों बारह महीने में रात्रि का प्रमाण जानना॥१९॥

तम्मेव य नक्खत्ते, गयण चउब्भागसावसेसम्मि।
वेरत्तियं पि कालं पडिलेहित्ता मुणी कुज्जा॥२०॥

और उक्त नक्षत्र आकाश के तीन भाग पूर्ण कर चौथा भाग में आवे तब प्रहर रात्रि रहे, और उसके भी चौथे भाग में जावे तब दो घड़ी रात्रि रही जानना उस काल की प्रतिलेखना कर साधु प्रतिक्रमणादि क्रिया करे॥२०॥

पुव्विल्लम्मि चउब्भाए, पडिलेहित्ताण भंडयं।
गुरुं वंदित्तु सज्झायं, कुज्जा दुक्खविमोक्खणं॥२१॥

अब दिन का कर्तव्य विस्तार से कहते हैं–दिन के प्रथम प्रहर के चौथे भाग में (सूर्योदय से दो घड़ी तक) वस्त्रादि उपकरणों की प्रतिलेखना करके फिर दुःखों से मुक्त कराने वाले स्वाध्याय को करे॥२१॥

पोरिसीए चउब्भाए, वंदित्ताण तओ गुरुं।
अपडिक्कमित्तु कालस्स, भायणं पडिलेहए॥२२॥

पोष पोरसी हुआ के बाद स्वाध्याय के काल से निवृत्ति पा कर पौरषी के चौथे भाग में गुरु को वंदना करके भाजनों की प्रतिलेखना करे॥२२॥

मुहपत्तिं पडिलेहित्ता, पडिलेहिज्ज गोच्छगं।
गोच्छगलइयंगुलिओ, वत्थाइं पडिलेहए॥२३॥

मुखवस्त्रिका की प्रतिलेखना करके फिर गोच्छक की प्रतिलेखना करे, फिर अंगुलियों से गोच्छग को ग्रहण करके वस्त्रों की प्रतिलेखना करे॥२३॥

उड्ढं थिरं अतुरियं, पुव्वं ता वत्थमेव पडिलेहे।
तो बिइयं पप्फोडे, तइयं च पुणो पमज्जेज्ज॥२४॥

अब वस्त्र की पडिलेहना करने की विधि कहते हैं सब पडिलेहना के पच्चीस प्रकार कहे हैं। उसमें १२ तो प्रशस्त (अच्छा) हैं। और तेरह अप्रशस्त (खराब) हैं जिस में से प्रथम बार प्रशस्त पडिलेहना कहते हैं–१ जमीन से वस्त्र ऊंचा रखे, २ मजबूत पकड़े, ३ शीघ्रता नहीं करे, ४ आदि से अन्त तक वस्त्रादि का सर्व विभाग सूक्ष्म दृष्टि से देखे यह प्रथम चार पडिलेहना दृष्टि से देखने की कहीं जो दृष्टि देखते जीव की शंका पड़े तो ५ वस्त्र को थोड़ा सा खंखेरे (झटके) यह दूसरी खंखेरे की पडिलेहना जो खंखेरते भी जीव दूर न होवे तो ६ गुच्छकादि से वस्त्रादि का प्रमार्जे यह तीसरी यह पडिलेहना प्रशस्त जानना॥२४॥

अणच्चावियं अवलियं, अणाणुबंधिं अमोसलिं चेव।
छप्पुरिमा नव खोडा, पाणीपाणिविसोहणं॥२५॥

और भी छः प्रशस्त पडिलेहना कहते हैं–१ वस्त्र को तथा शरीर को नचावे नहीं, ८ वस्त्र को मरोड़े नहीं, ९ वस्त्रादि कुछ भी बिना पडिलेहना नहीं रखे, १० वस्त्रादि को ऊपर छप्परादि से नीचे जमीन से और तिरछा भीतादि से लगावे नहीं, ११ वस्त्र को झटकावे नहीं, और १२ वस्त्रादि में जो जीव दृष्टि आवे तो उसके हथेली ऊपर ग्रहण कर प्राणी की विशुद्धी एकांत में परिठावे, यों १२ प्रशस्त पडिलेहन जानना॥२५॥[1]

आरभडा सम्मद्दा, वज्जेयव्वा य मोसली तइया।
पप्फोडणा चउत्थी, विक्खित्ता वेइया छट्ठी॥२६॥

अब ६ पडिलेहना अप्रशस्त कहते हैं। १ आयाणभण्ड सो विपरीत तथा शीघ्रता से पडिलेहना करे, २ समादा सो वस्त्र को मरोड़े मशले, ६ मोसली सो वस्त्र को ऊंचा नीचा तिरछा लगावे ४ पफोड; वस्त्र के झटके, ५ बिखिता सो वस्त्र को विखेर कर रखे तथा पडिलेहना पडिलेहना मेल रखे, ६ पांच वेदी का (१) ऊंची वेदी का एक घुटने पर दोनों हाथ रखकर पडिलेहना करें २ नीची वेदी का दोनों हाथ घुटने के नीचे रखकर पडिलेहना करे, (३) तिरछी वेदी का एक घुटने के दोनों पास हाथ रखकर पडिलेहना करे, (४) दो पास वेदी का घुटने के बीच में दोनों हाथ रखकर पडिलेहना करे, (५) एक वेदी का दोनों घुटने दोनों हाथ के मध्य रख पडिलेहना करें, यह छः ही प्रकार की पडिलेहना अप्रशस्त (खराब) कहा है॥२६॥

पसिढिल पलंब-लोला, एगामोसा अणेगरूवधुणा।
कुणइ पमाणि पमायं, संकिय गणणोवगं कुज्जा॥२७॥

और भी सात प्रकार की अप्रशस्त पडिलेहना कहते हैं–७ वस्त्र मजबूत नहीं पकड़े, ८ वस्त्र

---

१. कई स्थान पर नव पखोडा का अर्थ ऐसा भी है कि–किसी भी वस्त्र के तीन विभाग कर उसमें का एक-एक विभाग ऊपर, मध्य और नीचे ऐसे तीनों स्थान में देखना, तीन त्री नव पखोडे होते हैं और कई प्रांतों में नव खोडा पाठ है उस का अर्थ झटके नहीं ऐसा है।

लम्बा रखकर पडिलेहना करे, ९ वस्त्र को धरती के साथ रगड़े, १० एक ही समय में सब वस्त्र दृष्टि से देखे, ११ पडिलेहना करते वस्त्र को तथा शरीर को हलावे, १२ पांच प्रकार के प्रमाद सहित पडिलेहना करें, और १३ बारह प्रकार की जो प्रशस्त प्रतिलेहना कही है उसकी गिनती करते हुये भूले, यह तेरे प्रकार की अप्रशस्त प्रतिलेखना जानना, यों पूर्वोक्त १२ अप्रशस्त और १३ अप्रशस्त दोनों मिलकर २५ प्रकार की पडिलेहना जानना॥२७॥

अणूणाइरित्तपडिलेहा अविवच्चासा तहेव य।
पढमं पयं पसत्थं, सेसाइं उ अप्पसत्थाइं॥२८॥

अपडिलेहना के आठ भांगे कहते हैं–पडिलेहना की विधि–१ कमी नहीं करे, ज्यादा नहीं करे, विपरीत नहीं करें, २, कमी नहीं करे ज्यादा नहीं करे परंतु विपरीत करे, ३ कमी करे ज्यादा करे परंतु विपरीत नहीं करे, ४ कमी नहीं करे ज्यादा करे और विपरीत करे, ५ कमी करे ज्यादा नहीं करे, विपरीत नहीं करे, ६ कमी करे ज्यादा नहीं करे विपरीत करे, ७ कमी करे, ज्यादा करे, विपरीत नहीं करे और ८ कमी करे, ज्यादा करे, इन आठ भागों में प्रथम भाग प्रशस्त (अच्छा) अन्य सात भाग अप्रशस्त जानना॥२८॥

पडिलेहणं कुणंतो, मिहो कहं कुणइ जणवयकहं वा।
देइ व पच्चक्खाणं, वाएइ सयं पडिच्छइ वा॥२९॥

अब पडिलेहना करते पांच काम करना नहीं–१ परस्पर वार्तालाप करे नहीं, २ चारों विकथा करे नहीं, ३ प्रत्याख्यान करावे नहीं, ४ वाचना पृच्छना परियटना अनुपेक्ष धर्म कथा पांचों प्रकार की स्वाध्याय करे नहीं और ५ पांचों स्वाध्याय अन्य के पास करावे नहीं॥२९॥

पुढवी-आउक्काए, तेऊ-वाऊ-वणस्सइ-तसाणं।
पडिलेहणापमत्तो, छण्ह पि विराहओ होइ॥३०॥

उक्त पांच पकार से प्रमाद करता हुआ जो पडिलेहना करेगा वह पृथ्वी, २ पानी, ३ अग्नि, ४ वायु, ५ वनस्पति और ६ त्रस इन छः ही का ही जीवों की विराधना करने वाला होगा॥३०॥

पुढ़वी आउक्काए, तेऊ वाऊ वणस्सइ तसाणं।
पडिलेहणा आउत्तो, छण्हं संरक्खओ होइ॥३१॥

और जो उपयोग सहित पडिलेहना करेगा तो–१ पृथ्वी, २ पानी, ३ अग्नि, ४ वायु, ५ वनस्पति और ६ त्रस इन छः ही का ही जीवों की यत्ना करने वाला होवे, वह पडिलेहना का अराधक कहा॥३१॥

तइयाए पोरिसीए, भत्तं पाणं गवेसए।
छण्हं अन्नयराए, कारणम्मि समुट्ठिए॥३२॥

अब गौचरी का अधिकार कहते हैं–आगे कहेंगे वे छः कारण में से कोई भी कारण प्राप्त

हुए साधु दिन के तीसरे प्रहर में अर्थात् दो प्रहर दिन आये बाद[१] गौचरी करने के लिये सावधान होवे॥३२॥

वेयण वेयावच्चे, इरियट्ठाए य संजमट्ठाए।
तह पाणवतियाए, छट्ठं पुण धम्मचिंताए॥३३॥

अब छः कारण आहार करने के कहते हैं– १ क्षुधा वेदना की शान्ति के लिये, २ गुरु आदि की वैयावच्च करने के लिये, ३ ईर्ष्या पंथ शोधन करने अर्थात् आहार बिना आँख में अंधार आती हो तो ४ संयम का विशेष पालन करने, ५ अपने प्राण की तथा छः का ही प्राणियों की रक्षा करने के लिये और ६ धर्म ध्यान का चिन्तवन करने अर्थात् आहार बिना चित्त व्याकुल हो धर्म ध्यान में विघ्न पड़ता हो तो आहार करे, इन छः कारण में का कोई भी कारण हुए आहार करें॥३३॥

निग्गंथो धिइमंतो, निग्गंथी वि न करेज्ज छहिं चेव।
ठाणेहिं तु इमेहिं, अणइक्कमणाइ से होइ॥३४॥

उक्त छः कारण में का ही कोई भी कारण उत्पन्न हुये जो साधु साध्वी आहार करते हैं वे तीर्थंकर की आज्ञा के उल्लघंन करने वाले नहीं होते हैं अर्थात् जिनाज्ञा के आराधक होते हैं॥३४॥

आयंके[१] उवसग्गे[२], तितिक्खया बंभचेरगुत्तीसु[३]।
पाणिदया[४]-तवहेउं[५], सरीरवोच्छेयणट्ठाए[६]॥३५॥

अब छः कारण से आहार का त्याग कर वह कहते हैं–१ रोग प्राप्त होवे तो तपश्चर्या महौषधी है, २ सर्पादि पशु तथा देवादि का उपसर्ग उत्पन्न होवे तब आहार छोड़े, तप से विघ्न दूर होवे, ३ तीव्र ब्रह्मचर्य व्रत पालन करने इन्द्रिय जय करने का महान उपाय तपश्चर्या ही है, ४ प्राणियों की रक्षार्थ आहार निहारादि अर्थ गमनागमन करने की हिंसा छोड़ना ५ तपश्चर्या करने के लिये और ६ शरीर का परित्याग (संथारा) करने, इन छः कारण सेआहार का त्याग करता हुआ साधु जिनाज्ञा का उल्लघंन नहीं करता है॥३५॥

अवसेसं भंडगं गिज्झ, चक्खुसा पडिलेहए।
परमद्धजोयणाओ, विहारं विहरए मुणी॥३६॥

जो कभी साधु को आहार पानी साथ लेकर विहार करना हो तो सर्व भंडोपकरन की

---

१. यहाँ तीसरे प्रहर में गोचरी का कहा सो चौथे काल आश्रिय जानना, क्योंकि पहले आरे में तीन दिन के बाद: दूसरे आरे में दो दिन बाद, तीसरे आरे में एक दिन बाद, चौथे आरे में दिन में एक वक्त, पांचवें आरे में दो वक्त, छठे आरे में व मात्रा आहार की इच्छा होती है, इस अपेक्षा से चौथे आरे में दो प्रहर दिन के बाद ही गृहस्थ के घरों में आहार निष्पन्न होने का संभव है, सदैव के लिये तो संपत्त भिक्खकालेमी तथा कालंकाल समायरे अर्थात् जिस ग्रामादि में जब भिक्षा का काल हो तब भिक्षा ग्रहण करने जावे।

पडिलेहणा कर उन सबको अपने साथ में ले उत्कृष्ट आधा योजन (दो कोस) पर्यन्त जा सकता है॥३६॥

चउत्थीए पोरिसीए, निक्खिवित्ताण भायणं।
सज्झायं तओ कुज्जा, सव्वभावविभावणं॥३७॥

आहार किये बाद चौथी प्रहरसी में भंडोपकरण पात्रादि को अच्छी तर बान्धकर अलग रखे और फिर सर्व चराचर भाव को प्रकाशने वाली स्वाध्याय करे॥३७॥

पोरिसीए चउब्भाए, वंदिताण तओ गुरुं।
पडिक्कमित्ता कालस्स, सेज्जं तु पडिलेहए॥३८॥

चौथी प्रहरसी के चौथे भाग में (दो घड़ी दिन रहे तब) स्वाध्याय निर्वत कर अपने गुरु आदि को वंदना नमस्कार करके शयन करने का मकान शैय्या पाटादि बिछाने के वस्त्रादि की पडिलेहणा करे॥३८॥

पासवणुच्चारभूमिं च, पडिलेहिज्ज जयं जई।
काउस्सग्गं तओ कुज्जा सव्वदुक्खविमोक्खणं॥३९॥

फिर उच्चार बड़ी नीत परिठाने की प्रस्त्रवण लघुनीत परिठाने की भूमि की यत्ना से पहले प्रतिलेखना करे, फिर कार्यात्सर्ग करे अर्थात् प्रथम नमस्कार मंत्र कह तिक्खुत्ता से वंदना कर इर्यावही तस्स उत्तरी का पाठ कह कार्यात्सर्ग करे, कायुत्सर्ग में इर्यावही की चिन्तवना करे, कायुत्सर्ग पार लोगस कहे, फिर प्रति लेखना में जो दोष लगा हो उसका मिथ्या दृष्कृत्यदे। फिर एक सिद्ध भगवंत को, दूसरा अरिहंत को, नमोत्थुणं देवे, तीसरा मम धम्म गुरु धम्मायरि को करना इस प्रकार प्रथम क्षेत्र वत्थु करके फिर गुरु आदि के पास प्रथम आवश्यक की आज्ञा ग्रहण कर, इच्छामिणं भंते, नवकार, करेमी भंते, इच्छामी ठामी; तस्स उत्तरी पाठ कहकर सर्व दुःख का क्षय करने वाला कायोत्सर्ग करे॥३९॥

देवसियं च अईयारं, चिंतिज्जा अणुपुव्वसो।
नाणम्मि दंसणे चेव, चरित्तम्मि तहेव य॥४०॥

कायोत्सर्ग में दिन सम्बन्धी ज्ञान में दर्शन में चरित्र में जो कोई अतिचार लगा हो उसकी चिंतवना अनुक्रम से करें, अर्थात्–१४ ज्ञान के, ५ सम्यक्त्व के, २५ भावना पांच महाव्रत की, २ रात्रि भोजन के, ४ इर्या समिति के, २ भाषा समिति के, ४७ एषणा समिति के, २ आदान निक्षेपना समितिके, १० परिठावणिया समिति के, ३ मनगुप्ति के, ३ वचन गुप्ति के, ३ काया गुप्ति के और पांच संलेहना के, यों सब मिलाकर १२४ की कायोत्सर्ग में चिंवतना करे॥४०॥

पारियकाउस्सग्गो, वंदित्ताण तओ गुरुं।
देवसियं तु अईयारं, आलोएज्ज जहक्कमं॥४१॥

कायोत्सर्ग पारकर दूसरे आवश्यक की आज्ञा ले लोगस्स कहे। फिर तीसरे आवश्यक की

आज्ञा ले, गुरु आदि को इच्छामी खमासमना की पाट से बारह आवृत रूप वंदना करे। फिर चौथे आवश्यक की आज्ञा ग्रहण करें, दिन में लगे हुये उक्त अतिचारों की अनुक्रम से आलोचना करे।।४१।।

पडिक्कमित्तु निस्सल्लो, वंदित्ताण तओ गुरुं।
काउस्सग्गं तओ कुज्जा, सव्वदुक्खविमोक्खणं।।४२।।

सब अतिचारों का प्रतिक्रमण कर मिथ्या दुष्कृत्य देकर निःशल्य होवे श्रमणसूत्र नमो चउबीसा, इच्छामी खमासमणो, पांचों पद को वंदना आदि करे, फिर गुरु आदि को वंदना कर पांचों आवश्यक की आज्ञा ले नवकार, करेमी भते, इच्छामीठामी, तसउत्तरी, कहके सर्व दुःख मुक्त कर्ता चार लोगस्स का कायोत्सर्ग करे, यह पांचवा आवश्यक हुआ।।४२।।

पारियकाउस्सग्गो, वंदित्ताण तओ गुरुं।
थुइमंगलं च काऊणं, कालं संपडिलेहए।।४३।।

फिर कायत्सर्ग पारकर लोगस्स कहकर गुरु वंदना करे अर्थात् इच्छामी खमासमणो से ६ ष्टादशवृत वंदना करे, फिर प्रत्याख्यान करे, यह छः ही आवश्यक पूर्ण हुये, इस प्रकार छः ही आवश्यक पूर्ण करने के बाद स्तुति मंगल करे अर्थात् सिद्ध को और अरिहंत को और धर्माचार्य को नमोत्थुणं देवे, फिर स्वाध्याय करने के लिये काल की पडिलेहना करे, दिशा को देखे की रक्त वर्ण की तो नहीं, तारादि तो टूटते नहीं हैं आदि।।४३।।

पढमं पोरिसि सज्झायं, बिइयं झाणं झियायई।
तइयाए निद्दमोक्खं तु, सज्झायं तु चउत्थिए।।४४।।

फिर रात्रि के प्रथम प्रहर में स्वाध्याय करे, दूसरे प्रहर में ध्यान करे, तीसरे प्रहर में निदा से मुक्त होवें, और चौथे प्रहर में स्वाध्याय करे।।४४।।

पोरिसीए चउत्थीए, कालं तु पडिलेहिया।
सज्झायं तु तओ कुज्जा, अबोहंतो असंजए।।४५।।

चौथी पौरुषी के काल का प्रतिलेखना करके अर्थात् चौथी पौरुषी प्राप्त हुई जानकर ३२ असज्झाय टालकर असंयति जाग्रत न होवे इस प्रकार स्वाध्याय करे।।४५।।

पोरिसीए चउब्भाए, वंदिऊण तओ गुरुं।
पडिक्कमित्तु कालस्स, कालं तु पडिलेहए।।४६।।

फिर रात्रि के चौथी पोरसी के चौथे भाग में बाद की दो घड़ी रात्रि रहे तब स्वाध्याय के काल से निवृत्ति पाकर आवश्यक (प्रतिक्रमण) के काल की प्रतिलेखना करे, फिर प्रतिक्रमण की आज्ञा ग्रहण करने गुरु आदि को वंदना करे।।४६।।

आग, कायवोसग्गे, सव्वदुक्खविमोक्खणे।
काउस्सग्गं तओ कुज्जा, सव्वदुक्खविमोक्खणं।।४७।।

जब प्रतिक्रमण करने का समय हो गया हो तब जिस प्रकार देवसी (दिन सम्बन्धी) प्रतिक्रमण

की विधि कही है। उसकी प्रमाणे क्षेत्र विशुद्धि कर पहले आवश्यक की आज्ञा ले पूर्वोक्त विधि प्रमाण सर्व दुःख से मुक्त करने वाला कायोत्सर्ग करे।।४७।।

राइयं च अईयारं, चिंतिज्ज अणुपुव्वसो।
नाणम्मि दंसणम्मिय चरित्तम्मि तवम्मि य।।४८।।

कायोत्सर्ग में रात्रि सम्बन्धी १४ ज्ञान का, ५ सम्यक्त्व के, १२५ चरित्र के और १२ तप के यों १५६ अतिचार का अनुक्रम से चिन्तवन करे, यह प्रथमावश्यक।।४८।।

पारियकाउस्सग्गो वंदित्ताण तओ गुरुं।
राइयं तु अईयारं, आलोएज्ज जहक्कमं।।४९।।

कायोत्सर्ग पारकर दूसरे आवश्यक की आज्ञा लेकर लोगस्स कहे, फिर तीसरे आवश्यक की आज्ञा ले दो खमासमनो से गुरु वंदना करे, यह तीसरा आवश्यक हुआ फिर चौथे आवश्यक की आज्ञा ग्रहण कर रात्रि सम्बन्धी ज्ञानादि के अतिचार की आलोचना करे।।४९।।

पडिक्कमित्तु निस्सल्लो, वंदित्ताण तओ गुरुं।
काउस्सग्गं तओ कुज्जा, सव्वदुक्खविमोक्खणं।।५०।।

आलोचना कर उस पाप से निवृत्त हुआ मिथ्या दुष्कृत्य दे शुद्ध होवे, मायादि तीनों शल्य रहित निःशल्य होवे, श्रमण सूत्र नमोचौवीसाय खमासमणो, पांचों पद की वंदना करें, यह चौथा आवश्यक पूरा हुआ, फिर गुरु आदि का वंदना करके पांचवा आवश्यक की आज्ञा ले नवकार, करेमी भंते, इच्छामी ठामी, तसउत्तरी का पाठ कहकर सब दुःख से मुक्त करने वाला कायोत्सर्ग करे।।५०।।

'किं तवं पडिवज्जामि?' एवं तत्थ विचिंतए।
काउस्सग्गं तु पारित्ता, वंदिऊण तओ गुरु।।५१।।

इस पांचवे आवश्यक के कायोत्सर्ग मे चिन्तवन करे, कि आज मैं किस प्रकार का तप अंगीकार करूँ? फिर नवकारसी आदि जो तप उस दिन ग्रहण करना हो उसका निश्चय कर कायोत्सर्ग को पारे, लोगस्स कहे फिर दो समय खमासणो दे, यह गुरु वंदना हुये बाद पांचवा आवश्यक पूरा हुआ।।५१।।

पारियकाउस्सग्गो, वंदित्ताण तओ गुरुं।
तवं संपडिवज्जिता, करेज्ज सिद्धाण संथवं।।५२।।

फिर पांचवा कायोत्सर्ग आवश्यक पुरा हुये बाद गुरु आदि को वंदना करके नवकारसी आदि जो तप अंगीकार करने का हो वह अंगीकार करे, फिर सिद्धस्वतन अर्थात् अरिहंत को सिद्ध का और धर्माचार्य को नमोत्थुणं देवे यह छठा आवश्यक पुरा हुआ, यह राईसी प्रतिक्रमण की विधी हुई। यहाँ तो यह संक्षेप में छः ही आवश्यक की विधि कही हैं। इसकी विशेष विधि आवश्यक सूत्र से जानना।।५२।।

एसा सामायारी, समासेण वियाहिया।
जं चरित्ता बहू जीवा, तिण्णा संसारसागरं॥५३॥ त्ति बेमि॥
॥सामायारिज्जं समत्तं॥२६॥

इस प्रकार दस प्रकार की समाचारी तीर्थंकर भगवान ने कही है। इन समाचरी का आचरण कर गत काल में अनंत जीवों ने संसार समुद्र से तीर कर मुक्ति पद प्राप्त किया सिद्ध युक्त हो सर्व दुःख का अन्त किया है॥५३॥

यों सुधर्मा स्वामी जी ने जम्बू स्वामी जी से कहा कि मैंने जिस प्रकार तीर्थंकर भगवान से सुना वैसा ही कहा है।

समाचारी नामक छब्बीसवां अध्ययन समाप्तम्।

२७

सत्तावीसइमं खलुंकियं अज्झयणं
खलुङ्कीय नामकं सप्तविंशतितममध्ययनम्

छब्बीसवें अध्ययन में समाचारी कहीं, वह तो धूर्तता त्यागने से ही पालन कर सकता है। इसलिये सत्तावीसवें अध्ययन में धूर्तता त्यागने को कहते हैं।

थेरे गणहरे गग्गे, मुणी आसि विसारए।
आइण्णे गणिभावम्मि, समाहिं पडिसंधए॥१॥

जीवों को धर्म में स्थिर करने से स्थविरपद को प्राप्त हुये, साधुओं का गण समुदाय को धारण करने गणधर आचार्य पद को प्राप्त हुये, सर्व शास्त्रों में विलक्षण आचार्य के गुण युक्त अपनी आत्मा को समाधि में जोड़ने वाले ऐसे गर्गा नाम के आचार्य थे॥१॥

वहणे वहमाणस्स, कंतार अहवत्तई।
जोए वहमाणस्स, संसारो अइवत्तई॥२॥

जिस प्रकार विनयवंत बैल गाड़ी में जोते हुए भार का वाहन करते खेंचते हुए गाड़ीवान और बैल सुख से अटवी का उल्लघंन करते हैं। वैसे संयम के योग व्यापार में प्रवर्तते विनीत शिष्य के सम्बन्ध से गुरु और शिष्य सुख से संसार अटवी को पार होते हैं॥२॥

खलुंके जो उ जोएइ, विहम्माणो किलिस्सई।
असमाहिं च वेएई, तोत्तओ से य भज्जई॥३॥

और जिस प्रकार गलियार बैल को गाड़ी आदि में जोतने से उन बैल को चलाने के लिये गाड़ीवान उन बैलों को प्राणा (लोहे की आरवाली लकड़ी) से फेरता हुआ असमाधि चित्त के उद्वेगपने को प्राप्त होवे दुःखी वने, अतिश्रम पावे, किंबहु उस बैल को मारते-२ वह प्राणा भी टूट जावे!॥३॥

एगं डसइ पुच्छम्मि, एगं विंधइऽभिक्खणं।
एगो भंजइ समिलं, एगो उप्पह-पट्ठिओ॥४॥

गाड़ीवान गलियार बैल में से किसी बैल के पूँछ को मरोड़े किसी को प्राणा की आर बारम्बार चूभावे, कोई गलियार बैल धूंसरे को तोड़े, कोई गलियार बैल उन्मार्ग में प्रवेश करे॥४॥

एगो पडइ पासेणं, निवेसई निवज्जई।
उक्कुदई उप्फिडई सढे बालगवी वए॥५॥

कोई गलियार बैल एक तरफ पड़ जावे, कोई गलियारा बैल बैठ जावे, कोई गलियार बैल

सो जावे, कोई गलियार बैल मेंढक की तरह उछले, और कोई गलियार बैल धूर्तता कर गाय देख उसके पीछे भाग जावे॥५॥

माई मुद्धेण पडई, कुद्धे गच्छइ पडिप्पहं।
मयलक्खेण चिट्ठई, वेगेण य पहावई॥६॥

कोई गलियार बैल चमक्कर मुख को जमीन पर पछाड़कर जावे, कोई गलियार बैल कोपित हो पीछा भाग जावे कोई गलियार बैल मृत्युक की तरह धूर्तता से मूर्च्छा खाकर जावे, और गलियार बैल धूर्तता से गाड़ीवान को घबराता जावे स्थान उल्लघंन कर शीघ्रता से भाग जावे॥६॥

छिन्नाले छिंदई सेल्लिं, दुद्दंतो भंजए जुगं।
सेवि य सुस्सुयाइत्ता, उज्जहित्ता पलायए॥७॥
खलुंका जारिसा जोज्जा, दुस्सीसा वि हु तारिसा।
जोइया धम्मजाणम्मि भज्जंती धिइदुब्बला॥८॥

कोई गलियार बैल अपनी दृष्टता कर रस्सी को तोड़ डाले, कोई गलियार बैल दुर्दंति होकर धूंसरे को तोड़े, कोई गलियार बैल गाडे को जोतने से गाड़े को ही तोड़ डाले, इन गलियार बैल से जैसे ही अनेक कुशिष्य भी होते हैं। उनको धर्म रूपी गाड़े जोतते हुए क्रियानुष्ठान में दुर्बल बुद्धि वाले हुए अधैर्यता धारण कर सच्चे मन से नहीं प्रवर्तते हुए धर्म का नाश करते हैं॥७-८॥

इड्ढीगारविए एगे, एगेऽत्थ रसगारवे।
सायागारविए एगे, एगे सुचिरकोहणे॥९॥

किस प्रकार धर्म का नाश करते हैं वह कहते हैं–कोई कुशिष्य ज्ञानऋद्धि का अहंकारी होता है, कोई कुशिष्य इच्छित आहार की प्राप्ति होने से अहंकारी होता है, कोई कुशिष्य बहुत काल तक कोपवंत रहता है॥९॥

भिक्खालसिए एगे, एगे ओमाणभीरुए।
थद्धे एगे णुसासम्मी, हेऊहिं कारणेहि य॥१०॥

कोई कुशिष्य भिक्षा लाने में आलसी होता है। कोई कुशिष्य भिक्षा में याचनादि अपमान से डरता है। कोई कुशिष्य हितशिक्षा देते हुए कारण से प्रेरित हो गुरु आदि के सन्मुख बोलता है॥१०॥

सो वि अंतरभासिल्लो, दोसमेव पकुव्वई।
आयरियाणं तु वयणं, पडिकूलेइऽभिक्खणं॥११॥

कोई शिष्य गुरु बोलते हो उसके बीच-२ में बोलते हैं। कोई कुशिष्य गुरु के वचनों में दोष निकालते हैं। कोई कुशिष्य आचार्य के हितशिक्षा रूप वचन के बारम्बार विपरीत करता है॥११॥

'न सा ममं वियाणाइ, न वि सा मज्झ दाहिई।
निग्गया होहिइ मन्ने, साहू अन्नोऽत्थ वच्चउ॥१२॥

अब कुशिष्य किस प्रकार गुरु के वचन को विपरीत करते हैं वह कहते हैं–गुरु कहे कि आहार आदि वस्तु चाहिये हैं सो ले आओ। तब शिष्य कहे मुझे कोई श्रावक श्राविकादि पहचानते नहीं हैं।

वे मुझे आहार आदि देगे या नहीं देंगे। तथा वे घर में होंगे या नहीं होंगे। तथा मेरे सिवाय अन्य साधु को भेजकर भी यह काम करा सकते हो। मेरे सिवाय अन्य कोई साधु नहीं है क्या?॥१२॥

पेसिया पलिउंचति, ते परियंति समंतओ।
रायवेट्ठिं च मन्नंता, करेंति भिउडिं मुहे॥१३॥

किसी कार्य करने के लिये गुरु शिष्य को भेजे और वह काम नहीं करे। गुरु पूछे तब कहे कि कब तुमने मुझे काम दिया था। काम नहीं करने के लिये गुरु से दूर बैठे या इधर उधर फिरता फिरे। जो गुरु आज्ञा करे तो राजा के नौकर की तरह माने, काम सुनकर भृकुटी चढ़ाते हैं, मुख मुद्रा उदास करता है॥१३॥

वाइया संगहिया चेव, भत्तपाणेण पोसिया।
जायपक्खा जहा हंसा, पक्कमंति दिसोदिसिं॥१४॥

जिस प्रकार हंस के पँख आने से वह दशोदिशा में उड़ जाता है। उसी प्रकार गुरु जी को छोड़कर कुशिष्य स्वेच्छाचारी बनता है॥१४॥

अह सारही विचिंतेइ खलुंकेहिं समागओ।
कि मज्झ दुट्ठसीसेहिं? अप्पा मे अवसीयई॥१५॥

जिस प्रकार गलियार बैल को चलाने से गाड़ीवान खेदित होता है। उसी प्रकार गर्गाचार्य शिष्यों के सम्बन्ध में श्रम को प्राप्त हुये शिष्य के बारे में विचार करने लगे कि यह दुष्ट शिष्य मेरे किस काम के? इनसे मेरा क्या काम होगा। कुशिष्यों से मेरा क्या प्रयोजन? इनकी संगत से मुझे अनेक तनाव उत्पन्न होता है इसलिये इनको छोड़कर विचरना ही मुझे श्रेयस्कर है॥१५॥

जारिसा मम सीसा उ, तारिसा गलिगद्दहा।
गलिगद्दहे जहित्ताणं, दढं पगिण्हई तवं ॥१६॥

गलियार बैल के जैसे उन शिष्यों को जानकर उनके संग का परित्याग कर गर्गाचार्य बारह प्रकार के तप से अपनी आत्मा को भावित करते हुये विचरने लगे॥१६॥

मिउ मद्दवसंपन्नो गंभीरो सुसमाहिओ।
विहरइ महिं महप्पा सीलभूएण अप्पणा॥१७॥ त्ति बेमि॥
॥खलुंकियं समत्तं॥१७॥

सुकोमल स्वभावी, विनीत वृत्ति, अहंकार रहित सौम्य मुद्रावाले चरित्र में मार्दव संपन्न, आठ मद रहित, क्रोध रहित, शीतली भूत, गंभीर और उत्तम समाधिवंत महात्मा श्री गर्गाचार्यजी सुख से पृथ्वी पर विहार करने लगे॥१७॥

इस प्रकार सुधर्मा स्वामी ने श्री जम्बू स्वामी से कहा॥

गर्गाचार्य का सत्ताइसवां अध्ययन संपूर्ण।

२८

अट्ठावीसइमं मोक्खमग्गगतीनामं अज्झयणं
मोक्षमार्ग गति नामकं अष्टाविंशतितममध्ययनम्

सत्ताइसवें अध्ययन में धूर्तता छोड़ने को कहा, धूर्तता छोड़कर जो सरल बनता है उसे मोक्ष प्राप्त होता है। इसलिये मोक्ष मार्ग नामक अट्ठाइसवां अध्ययन कहते हैं।

मोक्खमग्गगइं तच्चं, सुणेह जिणभासियं।
चउकारणसंजुत्तं, नाण-दंसणलक्खणं॥१॥

हे शिष्य! सर्व कर्म से मुक्त होना, उसका नाम मोक्ष है। उसी मोक्ष को गमन करने रूप जो गति (गमन-मोक्ष मार्ग) श्री तीर्थंकर भगवान ने चार प्रकार से कहा है (वह आगे कहेंगे) और मोक्ष में जो जीव हैं उनके ज्ञान और दर्शन यह दो लक्षण कहे हैं उनका यथातथ्य स्वरूप तुम मुझसे दत्त चित्त पूर्वक श्रवण करो॥१॥

नाणं च दंसणं चेव, चरित्तं च तवो तहा।
एस मग्गु त्ति पन्नत्तो, जिणेहिं वरदसिहिं॥२॥

मोक्ष मार्ग प्राप्ति के चार कारण कहते हैं–१. ज्ञान-पदार्थों के स्वरूप को सम्यक् प्रकार यथातथ्य जानना, २. दर्शन (सम्यक्त्व) पदार्थों के स्वरूप में सम्यक् प्रकार यथातथ्य श्रद्धा करना, ३. चारित्र-नए आते हुए कर्माश्रव का निरुंधन करके व्रताचरण करना और ४. तप-पूर्वोपार्जित कर्म का क्षय करके द्वादश प्रकार तप जानना। इन चार कारणों को करके प्रधान मोक्ष गति के मार्ग में गमन होता है, ऐसे प्रधान मोक्ष पंथ के प्रेक्षक ने कहा है॥२॥

नाणं च दंसणं चेव, चरित्तं च तवो तहा।
एयं स मग्गमणुप्पत्ता, जीवा गच्छंति सोग्गइ॥३॥

उक्त १. ज्ञान, २. दर्शन, ३. चारित्र और ४. तप इन चारों को सम्यक् प्रकार आचरण करने से जीव सुगति-मोक्ष गति को प्राप्त हो जाते हैं॥३॥

तत्थ पंचविहं नाणं, सुयं आभिणिबोहियं।
ओहीनाणं तु तइयं, मणनाणं च केवलं॥४॥

उन में ज्ञान पांच प्रकार का है–यथा–मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्याय ज्ञान और केवल ज्ञान॥४॥

उक्त चार कारणों में प्रथम कारण जो ज्ञान कहा है उसके ५ प्रकार कहे हैं। यथा (१) प्रथम मति ज्ञान जिसके २८ भेद–१. श्रोत्रेन्द्रिय का अवग्रह शब्द ग्रहण करे, २. श्रोत्रेन्द्रिय का इहा-ग्रहण किये शब्द का विचार करे, ३. श्रोत्रेन्द्रिय का अवाय-विचार कर निश्चय करे और ४. श्रोत्रेन्द्रिय की धारणा सो उस शब्द को संख्यात असंख्यात काल तक भूले नहीं। यह श्रोत्रेन्द्रिय के चार बोल कहे। ऐसे ही ४. चक्षु इन्द्रिय के, ४. रसेन्द्रिय के, ४. स्पर्शेन्द्रिय के, और ४. मन के, यों २४ भेद और १. उत्पत्तिया, २. विनीया, ३. कमीया, तथा ४. परिणामीया, यह ४ बुद्धि मिलकर मति ज्ञान के २८ भेद हुए। श्रुतिज्ञान के १४ भेद–१ अकारादि अक्षर से जाने वह अक्षर श्रुत, २ अक्षरोच्चार बिना खासी आदि से जाने वह अनक्षर श्रुत, ३ भाव भेद समझ सूत्र पढ़े वह संज्ञीश्रुत। ४ भाव भेद बिना समझे पढ़े वह असंज्ञीश्रुत, ५. सम्यकज्ञान के सूत्र हों वह सम्यक्, श्रुत, ६ मिथ्यात्वी के शास्त्र हैं वे मिथ्याश्रुत, ७ भरतादि क्षेत्र का आदि सहित ज्ञान सो सादि श्रुत, ८ महाविदेहादि क्षेत्र का आदि रहित ज्ञान सो अनादि श्रुत, ९ भरतादि क्षेत्र का अन्त सहित ज्ञान सेा सपज्जव श्रुत, १० महाविदेह क्षेत्र का अन्तरहित ज्ञान सो अपज्जव श्रुत, ११ आचारंगादि का ज्ञान सो गमीश्रुत, १२ पूर्वादि का ज्ञान अगमीश्रुत, १३ ग्यारह अंग का ज्ञान सो अंगप्रविष्ट और १४ उपांगादि का ज्ञान सो अंग बारह अवधिज्ञान के ८ भेद–१ जन्म से होवे सो भव पृथक-पृथक करना से होवे सो क्षमोपशम पृथक। ३ मर्यादा सहित क्षेत्र में देखे सो देश से, ४ सम्पूर्ण लोक देखे सो सर्व से, ५. अनुक्रम से देखे तथा साथ में रहे सो अनुगामी ६ आगे पीछे देखे जहाँ उत्पन्न हो वहाँ ही देखे अन्य स्थान जाकर नहीं देखे सो अननुगामी, ७. उत्पन्न हो चला जावे सो पडवाई और ८. बाद में जाए नहीं सो अपडवाई।। मनःपर्यव ज्ञान के दो भेद १ संक्षेप से देखे सो ऋजुमति और २ विस्तार से देखे सो विपुल मति।। केवल ज्ञान का एक ही भेद। यह पांचों ज्ञान के ५३ भेद हुए।

एयं पंचविहं नाणं, दव्वाण य गुणाण य।
पज्जवाण च सव्वेसिं नाणं नाणीहिं दसियं॥५॥

यह पांच प्रकार का ज्ञान धर्मास्तिआदि छही द्रव्य में छही द्रव्य के चलनादि गुण में और छही द्रव्य की पर्याय में जानकारी करना। यह ज्ञानार्थ केवल ज्ञानी ने कहा है॥५॥

गुणाणमासओ दव्वं, एगदव्वस्सिया गुणा।
लक्खणं पज्जवाणं, तु उभओ अस्सिया भवे॥६॥

गुणों के आश्रय को द्रव्य कहते हैं तथा द्रव्य के आश्रित जो वर्ण रस-गन्धादि तथा ज्ञानादि धर्म हों वे गुण हैं और द्रव्य तथा गुण इन दोनों के आश्रिय होकर जा रहे, उसे पर्याय कहते हैं॥६॥

अब द्रव्य गुण पर्याय का स्वरूप कहते हैं–गुण और पर्याय का भाजन वह द्रव्य, २. द्रव्य की पहचान कराने वाला गुण, और ३. द्रव्य में गुणादि का पलटा हो यह पर्याय। इसमें १ द्रव्य सो जीव द्रव्य और अजीव द्रव्य गुण सो जीव का गुण ज्ञानादि और अजीव का गुण वर्णादि, पर्याय के दो भेद-१ आत्मभावी और २ कर्मभावी। आत्मभावी सो ज्ञान दर्शन चारित्र और कर्म भावी नरकादि गति, तथा चलनादि गुण के आश्रय धमास्ति प्रमुख छः ही द्रव्य जानना। और प्रत्येक (अलग-अलग) द्रव्य के आश्रय हैं वे गमनादि गुण कहना और पर्याय सो नये के पुराने होवे। पुराने का क्षय होवे। पर्याय है सो द्रव्य के और गुण के दोनों के आश्रय से रहते हैं। जैसे धर्मास्ति अधर्मास्ति और आकाशास्ति इन तीनों का एकत्र मिलना, एक ही प्रदेशों में रहना, यह अनादि पर्यवसीत जानना और एक-एक के स्कन्ध देश प्रदेश

यों एक-एक के तीन-तीन बोलियों तीनों के ९ बोल और दसवां काल, यह दसों अरूपी के पर्याय जानना। वैसे ही जीवास्ति काय में केवल ज्ञान केवल दर्शन के पर्यावसित न कदापि मिले वे सादी पर्यावसित, और चार ज्ञान तीन अज्ञान, तीन दर्शन पर्याय कम होवे ज्यादा होवे, वैसे ही पुद्गलास्ति के पर्याय मिलते हैं अलग होते हैं संस्थान संयोग विभागादि सब पर्याय का परमार्थ जानना।

धम्मो अहम्मो आगासं, कालो पुग्गल-जंतवो।
एस लोगो त्ति पन्नत्तो, जिणेहिं वरदंसिहिं॥७॥

१. धर्मास्ति, २. अधर्मास्ति, ३. आकास्ति, ४. काल, ५. पुद्गलास्ति, और ६. जीवास्ति[1] इन छः ही द्रव्य रूप लोक[2] है। ऐसा प्रधान ज्ञान के धारक तीर्थंकर ने प्रतिपादित किया है॥७॥

धम्मो अधम्मो आगासं, दव्वं इक्किक्कमाहिय।
अणंताणि य दव्वाणि, कालो पुग्गल-जंतवो॥८॥

द्रव्य से धर्मास्ति काय अधर्मास्तिकाय और आकास्ति काय का एक ही द्रव्य है अर्थात् यह तीनों अखण्ड हैं और काल के, पद्गल के और जीव के अनंत द्रव्य हैं। अर्थात् काल भी अनंत समय रूप है पुद्गल भी अनंत प्रमाणू व स्कंध रूप है और जीव द्रव्य भी अनंत है॥८॥

गइलक्खणो उ धम्मो, अहम्मो ठाणलक्खणो।
भायणं सव्वदव्वणं, नहं ओगाहलक्खणं॥९॥
वत्तणालक्खणो कालो, जीवो उवओगलक्खणो।
नाणेणं दंसणेणं च, सुहेण य दुहेण य॥१०॥

अब छः द्रव्य के लक्षण कहते हैं-१. धर्मास्ति काय का गति (चलन) लक्षण, २. अधर्मास्तिकाय का स्थिति (स्थिर) लक्षण, ३. सर्व द्रव्य के भाजन रूप आकशास्तिकाय का विकास लक्षण, ४. समय आवलिकादि की वर्तना रूप काल का वर्तना लक्षण, ५. जीव का ज्ञान दर्शन या सुख दुःख के वेदन रूप उपयोग लक्षण॥९-१०॥

नाणं च दसणं चेव, चरित्तं च तवो तहा।
वीरियं उवओगो य, एयं जीवस्स लक्खणं॥११॥

और भी जीव के लक्षण कहते हैं-५ ज्ञान, ३ अज्ञान, ४ दर्शन, ४ चारित्र, चारिताचरित, अचारित्र, ९ चारित्र, ९ अचारित्र, ९ चरिताचरित, ४ बाल तप, पंडित तप, बाल पंडित तप, नो बाल नो पंडित नो बाल पंडित तप, ४ बाल वीर्य, पंडित वीर्य, बाल पंडित वीर्य, नो बाल नो पंडित वीर्य, २ साकार और अनाकार। यह उपयोग यों छः बोल अन्तर्गत २६ प्रकार के जीव के लक्षण जानना॥११॥

---

१. इन द्रव्यों में काल को छोड़कर पांच अस्तिकाय कहीये अर्थात् अस्ति=प्रदेश काया=असंख्यात प्रदेश समूह रूप जानना और काल अस्ति काया नहीं कही, क्योंकि क्षण २ में बदल होता है।

२. आकाशास्ति काय का लोक में देश और प्रदेश है, स्कन्ध तो लोक अलोक दोनों मिलकर होता है।

सद्दंधयार उज्जोओ, पभा छायाऽऽतवो इ वा।
वण्ण-रस-गंध-फासा, पुग्गलाणं तु लक्खणं॥१२॥

अब पुद्गल के लक्षण कहते हैं–१. शुभाशुभ शब्द, २. अन्धकार, ३. रत्नादि का उद्योत, ४. चन्द्रादि की प्रभा, कांति ५. आभ्रादि की छाया, ६. सूर्यादि का ताप, ७-११ पांच वर्ण, १२-१६ पांच रस, १७-१८ दोगंध, १९-२९ आठ स्पर्श। यह २६ लक्षण पुद्गलों के जानना। यह छः ही द्रव्य के लक्षण कहे॥१२॥

एगत्तं च पुहत्तं च, संखा संठाणमेवय य।
संजोगा य विभागा य, पज्जवाणं तु लक्खणं॥१३॥

अब पर्याय का लक्षण कहते हैं–१. परमाणु आदि पद्गलों मिलकर स्कन्ध होना, २. स्कन्ध बिखर कर प्रथक् २. परमाणु आदि होना, ३. एक दो आदि संख्याते व अनंते, इत्यादि संख्या, ४. वर्तुल त्रस, चतुरंस, मंडल, लम्बा यह संस्थान, ५. वर्णादि का संयोग मिलना तथा ६ वर्णादि का विभाग-वियोग होना। यह रूपी अरूपी पर्याय के लक्षण जानना। इस प्रकार द्रव्य गुण पर्याय का जानना हों उसे ज्ञान कहना[1]॥१३॥

जीवाऽजीवा य बंधो य, पुण्ण-पावाऽऽसवो तहा।
संवरो निज्जरा मोक्खो, संतेए तहिया नव॥१४॥
तहियाणं तु भावाणं, सब्भावे उवएसणं।
भावेणं सद्दहंतस्स, सम्मत्तं तं वियाहियं॥१५॥

अब मुक्ति का दूसरा कारण दर्शन का वर्णन करते हैं–१. जीव, २. अजीव, ३. बंध, ४. पुण्य, ५. पाप, ६. आश्रव, ७. संवर, ८. निर्जरा और ९ मोक्ष, इन नव तत्त्व में से १ असंख्यात प्रदेशी सदासउपयोगी, चेतना लक्षण युक्त, सुख-दुःख का ज्ञान। कर्ता व भोक्ता होवे उसे जीव कहना, २. जड़ लक्षण चैतन्यता रहित को अजीव कहना, ३. जीवाजीव का (जीव पुद्गल-कर्म) के सम्बन्ध मिल बन्ध होवे वह बन्ध ४. जीव के प्रदेश में शुभ पुद्गलों का बन्ध हो आगे को सुखरूप उदय में आवे वह पुण्य, ५. जीव के प्रदेश में अशुभ पुद्गलों का बन्ध हो आगे को दुःख रूप उदय आवे वह पाप। ६. शुभाशुभ कर्म पद्गलों के आने का रास्ता वह आश्रव। ७. शुभाशुभ कर्म आने के रास्ते को रोके वह संवर, ८. देश से कर्मों की निर्जरा करे वह निर्जरा

---

१. ६ द्रव्य में निश्चय तथा व्यवहार की स्थापना करते हैं–१ धर्मास्तिकाय असंख्यात प्रदेशात्मक अचैतय यह निश्चय और गति लक्षण यह व्यवहार, २ अधर्मास्तिकाय असंख्यात प्रदेशात्मक अचैत्तन्य यह निश्चय और स्थिरगुण रूप व्यवहार, ३ आकशास्तिकाय-लोकाकाश असंख्यात प्रदेशात्मक अलोकाकाश अनंत प्रदेशात्मक अचैतन्यता यह निश्चय, विकाशगुण यह व्यवहार, ४ काल-एक पर्याय अरूपी अचैत्यन्य यह निश्चय पना, ऋतु अयन संवत्सरादि व्यवहार ५ जीव असंख्यात प्रदशात्म अरूपी शुद्धाशुद्ध उपयोग चैतन्यता यह निश्चय, एकेन्द्रिय आदि जाति सो व्यवहार जीवास्तिकाय और ६ पुद्गलास्तिकाय में एकादी अनंत प्रदेशात्मक अचैतन्यता यह निश्चय, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, संस्थान, यह व्यवहार, इस प्रकार षड्द्रव्य का निश्चय तथा व्यवहार पना शास्त्र नय प्रमाणं जानना।

और ९. सर्वांश कर्मों का क्षय करे वह मोक्ष। इन नव ही पदार्थों की अस्ति है, इन नव ही तत्त्वों को गुरु के उपदेश कर तथा स्वयं जाति स्मरणादि ज्ञान कर शुद्ध अन्तःकरण के भाव कर उक्त नव ही पदार्थों का श्रद्धान करे उसे श्री तीर्थंकर भगवान ने सम्यक्त्व कहा है॥१४-१५॥

इन नव ही पदार्थों का–१. सात नय, २. चार निक्षेप, ३. चार प्रमाण, ४. द्रव्य क्षेत्र काल भाव, ५. निश्चय व्यवहार, ६. द्रव्य और भाव, ७. सामान्य और विशेष इन २१ प्रकार का जाने॥१॥ सातनय कहते हैं। १. नैगमनय बाला–जो अनेकगम अनेकरीती, अनेक प्रमाण कर एक वस्तु को माने सामान्य माने अर्थात् किसी वस्तु में उसके नाम का अंशमात्र भी गुण हो तो उसे पूर्ण माने। विशेष माने अर्थात् उसके नाम प्रमाने पूर्ण गुण उसमें मिलते होवे तो भी उसे पूर्ण माने। तीनों काल की बात और निक्षेप चार ही माने, २. संग्रहनय वाला–वस्तु की सत्ता को ग्रहण करे, एक नाम लेने से सर्वगुण पर्याय परिवार सहित ग्रहण करे। जैसे एक बाग का नाम लेने से अनेक पदार्थों की समझ हो जावे यह सामान्य माने परन्तु विशेष नहीं माने। क्योंकि थोड़े में समझे तो विशेष की क्या आवश्यकता तीनों काल की बात और निक्षेप चार ही माने। ३. व्यवहार नयवाला वस्तु का बाह्य स्वरूप देखें उसी गुणमय उस वस्तु को माने। उसे अन्तर के गुणों की दरकार नहीं परन्तु आचार क्रिया की आवश्यकता है, जैसे तोता हरा, कोयल कालि व्यवहार में एक ही रंग वाली माने। निश्चय में रंग पांच ही पावे। इस नयवाला सामान्य नहीं माने विशेष माने तीनों काल की बात और निक्षेप चार ही माने। ४. ऋजुसूत्र नयवाला का सदैव सरल विचार रहता है, यह सामान्य नहीं माने विशेष माने। एक वर्तमान काल की बात माने। गत अनागत की बात को असार जाने। जैसे किसी ने कहा सो वर्ष पहले सोने की वृष्टि हुई थी या होगी उसे यह निसार जाने; क्यों कि अपने क्या काम आई? और निक्षेप एक भाव माने ५ शब्दनय वाला जैसा जिस वस्तु का नाम हो वैसा ही उस का अर्थ ग्रहण करे। उस वस्तु के नाम प्रमाने उसमें गुण हो या मत हो। जैसे–शक्रेन्द्र, पुरेन्द्र, शचिपति, देवेन्द्र। इन शब्दों का एक ही इन्द्र अर्थ ग्रहण करे। परन्तु लिंग शब्द में भेद नहीं माने, एक वर्तमान काल की बात और निक्षेप एक भाव ही माने। ६ समभिरूढ नयवाला–शब्द पर आरूढ हो उसका अर्थ ग्रहण करे। वस्तु का अंश मात्र गुण कम होवे तो भी उसे पूर्ण वस्तु माने, जेसे अरिहंत को सिद्धमाने और यह शब्द का अर्थ स्थिर करे, जैसे–शक्र सिंहासन पर बैठकर न्यायकरे तब शक्रेन्द्र कहे। हाथ में वज्र ले देवता के पूर का विदारे तब पुरेन्द्र कहे। इन्दाणियों की सभा में बैठे तब शचिपति कहे, देवता की सभा में बैठे तब देवेन्द्र कहे। यह सामान्य नहीं माने। विशेष माने। एक वर्तमान काल की बात और निक्षेप एक भाव माने। ७. एवंभूत नयवाला–जैसा जिसका नाम वैसा ही उसका काम और प्रमाण यह तीनों पूर्ण होवे। वस्तु अपने गुण में पूर्ण होवे, उस गुण अनुरूप ही क्रिया करती हो, उस वस्तु के द्रव्य गुण पर्याय व वस्तु धर्म प्रत्यक्ष में देखता हो उसे ही यह वस्तु कहेगा। अंश मात्र गुण कम हो तो वस्तु नहीं कहे। यह सामान्य नहीं माने विशेष माने। एक वर्तमान काल की बात और निक्षेप एक भाव माने। जैसे शक्रेन्द्र शक्र सिंहासन पर बैठ न्याय करते हैं परन्तु उनका मन जो देवांगना की तरफ होगा तो उसे शचिपति कहेगा परन्तु शक्रेन्द्र नहीं कहेगा। इन सातों नय पर समुच्चय दृष्टान्त–किसी ने नैगम नयवाले से पूछा–तुम कहाँ रहते हो? उसने उत्तर दिया मैं लोक में रहता हूँ–अशुद्ध नैगम नयवाला बोला–लोक तो तीन हैं तुम किस लोक में रहते हो? उत्तर में तिरछे लोक में रहता हूँ। प्रश्न–तब शुद्ध नैगम नयवाला बोला–तिरछे लोक में असंख्यात द्वीप समुद्र है तुम कहां रहते हो? उत्तर–मैं जम्बूद्वीप में रहता हूँ। प्रश्न–जम्बूद्वीप में नव क्षेत्र हैं तुम कहाँ रहते हो? उत्तर तब विशुद्ध नैगम नयवाला बोला–मैं भरत क्षेत्र में रहता हूँ। प्रश्न–भरत क्षेत्र में छः खण्ड हैं तुम कहाँ रहते हो? उत्तर–मैं मध्य खण्ड में रहता हूँ। प्रश्न–मध्य खण्ड में तो देश बहुत हैं तुम कहाँ रहते हो?

उत्तर–मैं मगध देश में रहता हूँ। प्रश्न–मगध देश में एक क्रोड बावीस लाख ग्राम हैं तुम कहाँ रहते हो? उत्तर–मैं राजगृही में रहता हूँ। प्रश्न–राजगृही में तेरह मोहल्ले हैं तुम कहाँ रहते हो? उत्तर–मैं नालंदा पाडे में रहता हूँ। प्रश्न–नालंदा पाडे में साडी तीन क्रोड घर हैं, तुम कहाँ रहते हो? मैं बीच के घर में रहता हूँ इतना सुन नैगम नयवाला चुप रहा। तब संग्रह नयवाला बोला–बीच के घर में कमरे बहुत हैं इसलिये ऐसा कहो कि–मैं मेरे बीछाने जितनी जगह में रहता हूँ। तब व्यवहार नयवाला बोला–क्या सब बिछोने में रहते हो इसलिये ऐसा कहो कि मैं मेरे शरीर ने जितना क्षेत्र अवगाह किया है उसमें रहता हूँ। तब ऋजुसूत्र नयवाला बोला कि शरीर में तो हाड मांस चमड़ा केश तथा कृमि पांच सूक्ष्म स्थावर बादर वायुकायादि बहुत हैं इसलिये ऐसा कहो कि–मेरी आत्मा ने जितने आकाश प्रदेश अवगाहे है उसमें रहता हूँ। तब शब्द नयवाला बोला–आत्म प्रदेश में तो धर्मास्ति आदि पंचास्ति के असंख्यात प्रदेश हैं, इसलिये ऐसा कहो–मैं मेरे स्वभाव में रहता हूँ। तब समभिरूढनयवाला बोला कि–स्वभाव का तो क्षण-क्षण में परिवर्त्तन होता है इसलिये ऐसा कहो कि–मैं मेरे निजात्म गुण में रहता हूँ। तब एवंभूत नय वाला बोला निजात्म गुण तो दो हैं–ज्ञान और दर्शन और भगवन् ने कहा है कि–एक समय में दो स्थान नहीं रहे इसलिये ऐसा कहो कि–मैं मेरे निजात्म गुण का जिस वक्त जो उपयोग प्रवर्तता है उसमें ही रहता हूँ। अब यह सातों नय ज्ञानादि चारों मुक्ति के कारण पर प्रयुक्त हैं–१. नैगम नय से ज्ञान मुक्ति का कारण हैं। ज्ञान के दो भेद–१. प्रत्यक्ष और २. परोक्ष। इसमें प्रत्यक्ष ज्ञान के दो भेद–१. इन्द्रिय प्रत्यक्ष और २. नो इन्द्रिय प्रत्यक्ष। इन्द्रिय प्रत्यक्ष के ५ भेद–श्रोत्रेन्द्रयादि पांचों इन्द्रिय जानना और नो इन्द्रिय प्रत्यक्ष के दो भेद–१ देश से और २ सर्व से देश के चार भेद–१ मति ज्ञान, २. श्रुति ज्ञान, ३. अवधि ज्ञान और ४. मनःपर्यव ज्ञान। सर्व का एक ही भेद केवल ज्ञान। २ संग्रह नय से–"एगेनाणे" जिससे वस्तु को जाने सो ज्ञान। इसमें सब ज्ञान का समावेश हो गया ३ व्यवहार नय से–भगवती सूत्र में कहा है "जीव नाणी किं अन्नाणी" इत्यादि २२ द्वार और २२५ बोल। यों जो जीव जिस २ ज्ञान अज्ञान में प्रवर्ते यह व्यवहार नय जानना। ४. ऋजुसूत्र नय से–जिस-जिस ज्ञान में जिस-जिस वक्त उपमेय प्रवर्तता हो उसे उस ज्ञानमय कहे। मति ज्ञान में उपयोग वर्ततेमति ज्ञानी कहेगा। यद्यपि मति ज्ञान के स्थान श्रुति ज्ञानकी नियमा है तथापि यह वर्तमान काल को ही मानने वाला है। ५ शब्द, ६ समभिरूढ और ७ एवं भूत, इन तीन नयवाला सम्यक्त्वी को ही ज्ञानी कहेगा। इस प्रकार ज्ञान पर सातों नय जानना। जिस प्रकार ज्ञान पर सात नय है उसी प्रकार दर्शन पर चारित्र पर और तप पर भी सातों नय प्रयुक्त करना। इति मुक्ति के चारों कारण पर सात नय।।१।। दूसरे बोले निक्षेप चार–१ नाम निक्षेप–इसके ३ भेद–(१) जैसा जिसका नाम हो वैसा ही उसमें गुण पावे वह यथार्थ नाम, जैसे जीव का नाम हंस चैतन्य प्राणि (२) नाम प्रामाणे गुण नहीं हो सो अयमार्थ नाम–जैसे जीव का नाम धूला कचरा। (३) जिस का कुछ अर्थ नहीं हो वह अर्थ शून्य नाम जैसे हंसी खांसी छींकादि। २ स्थापना निक्षेपना–इसके ४० भेद–(१) काष्ट की, (२) चित्र की, (३) पोत, (चीड) की (४) लेप की। (५) गांठों की (६) भरत (कसीदे की) (७) छेद (दोरनी) की। (८) वस्तु स्यात् कोई वस्तु पड़ने से मंड जावे सो। और (१०) वस्त्र की का एक रूप बनावे तथा अनेक रूप बनावे यों २०, यह २० सद्भाव स्थापना अर्थात् जो वस्तु तथा मनुष्यादि प्राणी होवे उसका तादृश्य हूबहू ऊँचाई-चौड़ाई लक्षण व्यंजन युक्त रूप बनावे, उसको देख सारे वस्तु का यथातथ्य भान हो जावे जैसे फोटोग्राफ, और यही २० असद्भाव स्थापना अर्थात् सद्भाव से विपरीत असद्भाव स्थापना। ऊपर कही वस्तु का मनःकल्पित रूप बनाये जैसे गोल पत्थर पर तैल सिन्दूर लगा कर भेरु जी की स्थापना करे। यह ४० भेद हुए। ३. द्रव्य निक्षेप–इसके दो भेद(१) शास्त्रादि पढ़े परन्तु अर्थ समझे नहीं शून्यचित बिना परिणाम से पढे वह आगम से द्रव्यनिक्षेप और (२) नो आगम के तीन भेद–(१) जैसे

कोई आवश्यक का ज्ञान आयुष्य पूर्ण कर गया। उसका शरीर पड़ा है उसे देख कर यह आवश्यक का जानना था। सो जानग शरीर (२) किसी श्रावक के घर पुत्र हुआ देख कहे यह आवश्यक का जान होगा सो भविय शरीर और (३) जावग भविय वितीरिक्त शरीर के तीन भेद–(अ) राजा सेठ सेनापति आदि नित्य सभा में जाकर करने योग्य कार्य करे वह लोकीक द्रव्यावश्यक, (इ) बल्कल वस्त्रधारी, मृग चर्मधारी, भगवे वस्त्रधारी फक्त नाम तापसादि नित्य नियम प्रमाने ऊँकारादि का ध्यान करे क्रिया करे सो कुप्रावचन द्रव्यावश्यक (३) साधु के गुण रहित छः काय की दया रहित। जन्मत निरंकुश, मठावलम्बी भगवान की आज्ञा के बाहर जो साधु है वे दोनों वक्त आवश्यक करे वह लोकोत्तर द्रव्यावश्यक–४ भाव निक्षेप-वस्तु का निज गुन उसमें होवे अर्थात् जीव के ज्ञानादी निजगुण और अजीव का वर्णादि निजगुण वस्तु में न होवे तो भाव निक्षेप शून्य गिना जाता है। भाव निक्षेपे के दो भेद–१. शुद्ध उपयोग सहित भावार्थ पर उपयोग लगाकर शास्त्रादि पढे सो आगम से भाव निक्षेप और २ नो आगम से के तीन भेद–(१) राजा सेठ प्रमुख सदैव शुद्ध उपयोग सहित फजर को भारत, श्याम को रामायण आदि श्रवण करे सो लौकिक भावावश्यक (२) बल्कल वस्त्रधारी मृग चर्मधारी भगवा वस्त्रधारी शुद्ध उपयोग सहित ॐकारादि मंत्र जापकरे वह कुप्रावचनी भावाश्यक और (३) साधु साध्वी श्रावक-श्राविका भगवंत की आज्ञा प्रमाने प्रवर्तने वाले दोनों वक्त प्रतिक्रमण को वह लोकोत्तर भावावश्यक। यह चारों निक्षेप ज्ञानादि चारों कारन पर कहते हैं। १. किसी जीव पदार्थ का ज्ञान ऐसे नाम दिया वह नाम निक्षेप, २ ऐसे ही किसी वस्तु की या पुस्तकादि की स्थापना करे वह स्थापना निक्षेप, ३. उपयोग शून्य ज्ञान पढ़े पढ़ावे वह द्रव्य निक्षेप अथवा ज्ञानी जीव आयुष्य पूर्ण कर गया उसे ज्ञान द्रव्य नक्षेप कहना और उपयोग सहित ज्ञान का पठन मनन करें उसे भाव ज्ञान कहना, जैसे ज्ञान पर चार निक्षेप प्रयुक्त किए वैसे ही दर्शन, चारित और तप पर भी प्रयुक्त करें।।२।। तीसरे बोले चार प्रमाण कहते हैं। १ प्रत्यक्ष प्रमाण इसके २ भेद पांचों इन्द्रियों को जाने वह इन्द्रिय प्रत्यक्ष। नो इन्द्रिय के प्रत्यक्ष के नौ भेद मति आदि ४ ज्ञान से जाने वह देश से और २ केवल ज्ञान से जाने। वह सर्व से नो इन्द्रिय पहचानने के दो भेद, अनुमान प्रमाण के ३ भेद, पूर्व जैसे माता का पुत्र बाल्यावस्था में प्रदेश में गया, तब युवा होकर पुनः वापस आया। तब माता उसे पूर्व के वर्ण तिलमसादि कर पहचानने से पूर्व, १ सेसवं के ५ भेद (१) कज्जेणं सो कार्य करने से, पहचानने से जैसे हाथी का गुलगुलाट शब्द, घोड़े की हनहनाट से, रथ को झणझणट से, मूर्गे कि ककाट ये इत्यादि पहचानने से (२) कारणेणं कारण से कार्य को पहचानने, जैसे सूत्र का ताना देख कर पट का ज्ञान करें। मट्टी का पिंड देखकर घट का ज्ञान करें। ज्ञानादि देखकर मोक्ष का ज्ञान करें (३) गुणेणं पुष्प में सुगंध का गुण, दुध में पुष्टता का गुण इत्यादि (४) आसरेणं–धूम के आश्रय अग्नि कहें। बदल को देख मेघ कहे, बगुले को देख सरोवर कहें। इत्यादि वस्तु को आसरे से कहे (५) अवयवणं–अवयव से पौछाने जैसे कलंगी को मुर्गे को हस्ती को दांतों से, द्वी पद से मनुष्य को, चतुष्पद से पशु को, केशर से केशरी सिंह को, चूड़ी से स्त्री को, चमर से चमरी गाय को, एक खुरसे गदे को घोड़े से, दो फटे खुर को गवादि से, बहुत पावों से गजई को, पंखों से पक्षी को, काव्यलंकार से पंडित को और शीत कर सीझे धान्य को इत्यादि अन्वयकर जाने। दीट्ठीसामन्नं देखकर जाने उसके दो भेद–१ एक रुपये से बहुत रुपये को और बहुत रुपये से एक रुपये को जाने। इत्यादि सामान्य और २ विशेष के तीन भेद–१. कोई विचक्षण मुनि विहार करते रास्ते में बहुत घास देखा सरोवर भरे देखे, बाग हरे देखे, इत्यादि अनुमान से जाना यहाँ गतकाल में वृष्टी बहुत हुई है। (२) आगे ग्राम में गये तो ग्राम छोटा श्रावक के घर थोड़े, सम्पदा भी थोड़े, परन्तु श्रावक बड़े भक्तिवंत उदार प्रणाम से दान देते देखे समझे कि यहाँ वर्तमान काल में कुछ अच्छा होता देखाता है (३) आगे चल देखे तो पहाड़पर्वत मनोहर लगे। तारा टूटे नहीं, अगड

बगड हवा चले नहीं। ग्राम के बाहर भीतर अच्छा लगे तब समझे आते काल में यहाँ अच्छा होता दिखाता है। ऐसे ही कोई मुनिराज विहार करते रास्ते में घास रहित भूमि देखी। बगीचे सूके देखे। तब समझ गये काल में यहाँ वृष्टि थोड़ी हुई है, आगे बड़ा ग्राम वहाँ श्रावक के घर भी बहुत, सभी श्रीमान परन्तु दान देने के भाव कमी। तब जाना की वर्तमान में यहाँ कुछ अशुभ होता दिखता है। आगे चले ग्राम बाहर खराब लगे। अगड-बगड हवा चले, तारे बहुत टूट इत्यादि चिन्ह से जाने आगमिक काल में यहाँ कुछ खराब होता दिखता है। यह सब अनुमान प्रमान जानना। ३. आगम प्रमाण के तीन भेद–१. सुत्तागम सो द्वादशांगी जिनेश्वर की वाणी। २. अत्थागमे-सूत्रानुसार बनाया अर्थ। ३. तदुभयागम सूत्र अर्थ दोनो और ४ उपमा प्रमाण की चौभंगी (१) होती वस्तु को होती उपमा जैसे अनागत में प्रथम पद्मनाभ तीर्थंकर कैसे होंगे? तो कि वर्तमान काल के चौबीसवें तीर्थंकर महावीर स्वामी जैसे (२) होती को अनहोती उपमा जैसे नरक को देवता का आयु पल्योपम सागरोपम का कहा वह सच्चा है परन्तु चार कोस के कूएं की उपमादी वह अनहोती। क्योंकि कूआं किसी ने भरा नहीं। (३) अनहोते को होती उपमा। द्वारका कैसी? तो कि देवलोक जैसी, आगीया सूर्य जैसा, जवार मोती जैसे वगैरा (४) अनहोती को अनहोती उपमा–जैसे गद्धे के शृंग कैसे? तो कि घोड़े। बंध्या के पुत्र कैसा आकाश कुसुम जैसा।। यह चारों प्रमान ज्ञानादि पर उतारते हैं–१. सूर्य का बिम्ब देखकर सूर्य का उदय जाना यह प्रत्यक्ष प्रमाण, २. बद्दल में ढके सूर्य को अनुमान से जाना तथा धूप देखकर सूर्योदय जाना यह अनुमान प्रमाण। ३. सूर्य की ऋद्धि विमानादि का वर्णन जाने वह आगम प्रमाण। सूर्य लाल हिंगूली जैसा वगैरे उपमा दे सो उपमा प्रमाण। इस सूर्य के उदय के चार प्रमान कहे इस प्रकार सब वस्तु पे ज्ञान आश्रय चार प्रमाण जानना और २ ज्ञान के जैसे ही चार प्रमाण दर्शन पद कहना। ३. अब चारित्र कहते हैं पांचों समिति का पालन करता देख कहे यह चारित्रीय है यह प्रत्यक्ष प्रमान। २ अनुत्तर विमान के देवता उत्पन्न हुए तब अनुमान से जाने यह चारित्र पालकर उत्पन्न हुआ है यह उपमा। ३. सूयगडागांदि सूत्र में साधू के ईर्या समिति आदि गुणों का वर्णन किया वह आगम प्रमान और ४ साधु को सूर्य की चन्द्र की पृथ्वी आदि की उपमादि सो उपमा प्रमान। ४ तप अश्रिय ४ प्रमान-व्रत प्रत्याख्यान तप करता देखे व प्रत्यक्ष प्रमान, २. धन्ना अनगार के जैसा दुर्बल अंग देखकर जाने यह तपस्वी है यह अनुमान प्रमान। ३ निर्जरा के ३५४ भेदादि का कथन शास्त्र में कहा सो आगम प्रमान और ४ जिस प्रकार अग्नि काष्ट को भस्म करे वैसे तप से कर्म भस्म हो सो उपमा प्रमान।।३।। चौथे बोले–द्रव्य क्षेत्र काल और भाव–१ द्रव्य १. धर्मास्ति, २. अधर्मास्ति, ३. आकाशास्ति, ४ काल, ५. जीवास्ति और ६. पुद्गलास्ति। इन छः में जीव पुद्गल परिणामी चार अपरिणामी, जीव तो जीव पांच अजीव, पुद्गलमूर्ती पांच अमूर्ती, पांच सप्रदेशी काल अप्रदेशी। तीन के एक-एक द्रव्य तीन के अनंत २ द्रव्य, आकाश क्षेत्र पांच क्षेत्री, जीव पुद्गल साथ क्रिया करे चार अक्रिय, पांच नित्य काल अनित्य। पुद्गल कारणी पांच अकारणी, जीव कर्ता पांच अकर्ता, चार लोक प्रमाण आकाश लोका लोक प्रमान काल अढ़ाइ द्वीप प्रमान, चार असंख्यात प्रदेशी आकाश और पुद्गल अनंत प्रदेशी और सर्वस्थान आकाश भरा है।।२।। क्षेत्र ३८१२७९७० मन का एक लोह का गोला कोई देवता ऊपर से डाले वह ६ महिने ६ दिन ६ प्रहर ६ घड़ी में जितना क्षेत्र उल्लंघन कर नीचे आवे इतने क्षेत्र को एक रज्जू कहते हैं। ऐसे सात रज्जू प्रमाण नीचा लोक, आठारसो योजन ऊँचाई से तिरछालोक १८०० योजन कम सात रज्जू ऊँचा लोक। यों चौदह रज्जू का ऊँचा और १० रज्जू की पहली नरक। १६ रज्जू दूसरी नरक, २२ रज्जू तीसरी नरक २८ रज्जू चौथी नरक ३४ रज्जू पांचवी नरक, ४० रज्जू छट्ठी नरक, ४६ रज्जू की सातवीं नरक, यों ११६ रज्जू का घनाकार नीचा लोक। दस रज्जू तिरछालोक, पहला दूसरा स्वर्ग १९।। रज्जू तीसरा चौथा १७।। रज्जू पांचवां छठा ३७।। रज्जू सातवां आठवां १४।। रज्जू नवमां दशवां १२।।, ग्यारहवां

बारहवां १०।।, नव ग्रैवेयक अनुत्तर विमान ६।।, सिद्ध क्षेत्र ११। यों सब ३४३ रज्जू घनाकार लोक। सातमी नरक की नीचे ७ रज्जू चौड़ा ऊपर उतरता-उतरता प्रथम नरक के पास एक रज्जू चौड़ा रहा। ऊपर बढ़ता-बढ़ता पांचवां देवलोक पास साढ़ी।।४।। रज्जू चौड़ा कम होता-होता सिद्ध क्षेत्र के पास १ रज्जू चौड़ा लोक रहा है, एक दीवा उलटा उस पर दूसरा सुलटा और उस पर तीसरा उलटा दीवा रखने से जैसा आकार होता है ऐसा लोक का आकार है यह क्षेत्र।।३।। काल आंख के टमकारे में असंख्यात समय असंख्यात समय की एक आवलिका, ३७७३ आँवालिका का एक श्वासोच्छवास, सात श्वासोश्वाश का एक थोव सात थोब का एक लव। सत्तर लब का एक मुहूर्त। तीस मुहूर्त की अहोरात्रि पंद्रह अहोरात्रि का पक्ष, दो पक्ष का महिना। दो महिन की ऋतु, तीस ऋतु की अयन दो अयन का वर्ष, पांच वर्ष का एक युग, चौरासी लक्ष वर्ष का एक पूर्वांग, चौरासी लक्ष को चौरासी लक्ष गुना कर ने से सत्तर लाख छप्पन हजार क्राड वर्ष का एक पूर्व, चार कोश के लम्बे चौड़े (गोल) और ऊँचे कूएं में देवकुरु उत्तरकुरु के मनुष्य के सात दिन के बच्चे के बालाग्र आँख में डालने से खटके नहीं ऐसे बारीक कतरकर ठसोठस भरे। फिर सो सो वर्ष में एकेक रज निकालते वह कूआँ साफ खाली हो जावे उतने वर्ष का एक व्यवहार पल्योपम होता है[1] दश क्रोडा क्रोड व्यवहार पल्योपम का एक सागरोपम चार क्रोडा क्रोड सागरोपम का पहला। आरा, तीन क्रोडा क्रोड सागरोपम का दूसरा आरा, दो क्रोडाक्रोड सागरोपम का तीसरा आरा, बयालीस हजार वर्ष कम एक क्रोडाक्रोड सागरोपम का चौथा आरा, इक्कीस हजार वर्ष का पांचवां आरा। और इक्कीस हजार वर्ष का छठा आरा। यह दस क्रोडाक्रोड सागरोपम का अब असर्पनीकाल, दस क्रोडाक्रोड सागरोपम का उत्सर्पनी काल, बीस क्रोडाक्रोड सागरोपम का काल चक्र। इतिकाल ४ भाव पांच प्रकार के होते हैं—१. उदय, २. उपशम, ३. क्षयोपशम, ४. क्षायिक और ५. परिणामिक। प्रथम के औदयिक भाव आठ कर्म उदय होवे वह उदइक भाव। इसके दो भेदजीवोदय निष्पन्न और अजीवोदया निष्पन्न। जीवोदय के ३३ भेद-४ गति। ६ काया ६ लेश्या, ४ कपाय ३ वेद, (एवं २३) २४ असंज्ञी, २५ अज्ञानी, २६ मिथ्यात्व, २७ अविरत, २८ आहारिक २९ सांसारिक, ३० छद्मस्त ३१ संयोगी, ३२ अकेवली, ३३ असिद्ध। अजीव उदय के ३० भेद—५ वर्ण, २ गंध, ५ रस, ८ स्पर्श ५ शरीर, ५ शरीर के परिणमें पुद्गल २ ओपशमिक भाव-भस्म से ढकी अग्नि के समान कपायाग्नि को ढके। इसके ११ भेद—४ कषाय, ५ रागद्वेप, ६ दर्शन मोह, ७ चारित्र मोह, ८ दर्शन लब्धि, ९ चारित्र लब्धि, १० छद्मस्त और ११ वितरागी, ३ क्षायिक भाव पानी से बुझाई अग्नि के जैसा कपायग्नि बुझावे। इसके ३७ भेद—५ ज्ञानावर्णिय। ९ दर्शनावर्णिय, २ वेदनीय, ८ मोहनीय, ४[2] आयुष्य, २ नाम, २ गोत्र और ५ अन्तराय। इन ३७ प्रकृतिका क्षय करे सो क्षायिक भाव, ४ क्षयोपशमिक भाव पतले वद्दल में ढके सूर्य समान कुछ कर्म आत्मगुण को ढके कुछ खुल्ले रखे इसके ३२ भेद-४ ज्ञान, ४ अज्ञान, ३ दर्शन, ५ इन्द्रिय, ३ द्रष्टि, ५ चारित्र, ५ ज्ञानादि लब्धि, (एवं ३०) और ३१ बलवीर्य तथा ३२ पंडित वीर्य, ५ परिणामि भाव के दो भेद—जो पलटे सो गति आदि सादि परिणामि। और जो न पलटे सो जीव भव्य अभव्य तथा धर्मास्ति आदि अनादि परिणामि ६ सन्नीवाई भाव सो—एक दो तीन चार पांच भावों का मिलाप होवे सो जिसके २६ भंग अनुयोग द्वार से जानना।। अब पांचों भाव ज्ञानादि पर उतारते हैं—पट्द्रव्यादि जो चारों बोल कहे इसका जानपना होवे सो चारों प्रकार

---

१. व्यवहार पल्योपम के वर्षों को असंख्यात कोटी वर्षों के समय से गुनाकार करने से एक उद्धार पल्योपम होता पल्योपम के वर्षों को असंख्यात कोटी वर्षों के समयों से गुनाकार करने से एक अद्धा पल्योपम होता है, इस पल्योपम से कर्मों की स्थिति का प्रमाण किया जाता है।

२ क्रोध, २ मान, ३ माया, ४ लोभ, ५ राग, ६ द्वेष, ७ दर्शनमोह, और ८ चारित्रमोह।

के ज्ञान, चारों का श्रद्धान होवे वह दर्शन, द्रव्य से पुद्गलों ग्रहण क्षेत्र से सर्व लोक सम्बन्धी, काल से जावज्जीव पर्यंत का और भाव से कोंटी करणादि कर आश्रव निवर्त सो चारित्र, द्रव्य क्षेत्र काल की मर्यादा बांधकर एकान्त निर्जरा के अर्थ तप करे सो तप।। पांचवें वाले निश्चय और व्यवहार। जिस पदार्थ का चिन्तवन किया उसके आभ्यन्तर गुण आभ्यन्तर रूप हो उसे निश्चय नय कहना, और अभ्यन्तर गुण बिना जो बाह्य प्रवर्ती वह अशुद्ध व्यवहार। यह निश्चय व्यवहार ज्ञानादि चारों पर उतारते हैं–१. सम्यक्त्व सहित अंतरंग जीव के प्रदेश में यथातथ्य जीवादि पदार्थ का जानपना वह निश्चय ज्ञान और अंतरंगादि शास्त्र का पठन मननादि करना वह व्यवहार ज्ञान। २ अंतरंग में जीवादि पदार्थ श्रद्धान सोनिश्चय सम्यक्त्व। शंकादि दोष रहित सम्यक्त्व पाले वह व्यवहार सम्यक्त्व, ३ सम्यक्त्व युक्त अठारा पाप का अन्तःकरण से त्यागे वह निश्चय चारित्र महाव्रत समिति गुप्ति आदि का पालन करे वह व्यवहार चारित्र। सम्यक्त्व युक्त पर पुद्गलों पर से ममत्व रहित रूप वह निश्चय तप। अनशनादि बारा प्रकार का तप करे वह व्यवहार तप।। छठे बोले–द्रव्य और भाव–जैसे किसी भ्रमर ने लकड़ कोरा उसमें कक्के का आकारा कोरा गया। वह भ्रमर के भाव द्रव्य कक्का और पण्डित ने उसकी पर्याय पहचानी उसे कक्का जान वह पंडित के भाव भावकक्का हुआ। ऐसे ही सम्यक्त्व बिना शुद्ध श्रद्धा बिना मिथ्यात्वी का ज्ञान दर्शन चारित्र तप वह द्रव्य ज्ञान दर्शन चारित्र तप और जिनाज्ञा सहित शुद्ध श्रद्धा युक्त एकान्त निर्जरा के लिये करे वह भाव ज्ञान दर्शन चारित्र और तप।। सातवें बोले सामान्य विशे–समुचय नाम वह सामान्य उसका विस्तार करे वह विशेष–जैसे ज्ञान यह सामान्य मति ज्ञानादि पांचों ज्ञान का विस्तार से वर्णन करे वह विशेष। २ दर्शन सामान्य उपशमादि सम्यक्त्व का कथन करना वह विशेष, ३. चारित्र यह सामान्य सामायिकादि चारित्र का वर्णन करना वह विशेष और ४. तप यह सामान्य अनशनादि तप का वर्णन करना वह विशेष ७ नय ४ निक्षेप, ४ प्रमाधा, ४ द्रव्यादि, २ निश्चय व्यवहार, २ द्रव्य भाव और २ सामान्य विशेष इन पच्चीस बोलकर ज्ञानादि चारों मोक्ष के कारण को तथा जीवादि नव पदार्थों को जाने उसे सम्यक्त्वी कहना।

निसग्गुवदेसरूई, आणारूइ सुत्त-बीयरूइ मेव।
अभिगम-वित्थाररूई, किरिया-संखेव-धम्मरूई॥१६॥

अब सम्यक्त्व प्राप्त करने की दशरुची कहते हैं–१. निसर्गरुची, २. उपदेश रुची, ३. आज्ञा, रुची, ४. सूत्र रुची, ५. बीज रुची, ६. अभिगम रुची, ७. विस्तार रुची, ८. क्रिया रुची, ९. संक्षेप रुची, और १०. धर्म रुची यह दसरुची के नाम जानना॥१६॥

भूयत्थेणाहिगया, जीवाऽजीवा य पुण्ण पावं च।
सहसम्मुइयाऽऽसव-संवरो य, रोएइ उ निसग्गो॥१७॥
जो जिणदिट्ठे भावे, चउव्विहे सद्दहाइ सयमेव।
एमेव नऽन्नहत्ति य, निसग्गरूइ त्ति नायव्वो॥१८॥

अब इनका विस्तार से अर्थ कहते हैं–१. जीव, २. अजीव, ३. पुण्य, ४. पाप, ५. आश्रव, ६. संवर, ७. निर्जरा, ८. बंध और ९. मोक्ष। इन ९ पदार्थ के यथातथ्य होते हुए अर्थ ज्ञान से जानकर १ द्रव्य से २ क्षेत्र से। ३ काल से ओर ४ भाव से जिस प्रकार जिनेश्वर भगवंत ने केवल ज्ञान कर जाने देखे उस ही प्रकार जाति स्मरणादि ज्ञान से स्वतः की गति कर यथातथ्य

जाने। यह नय ही पदार्थ अन्यथा नहीं हैं किन्तु सत्य है ऐसा निसर्ग करे श्रद्धे उसे निसर्ग रूची जानना॥१७-१८॥

एए चेव हु भावे, उवइट्ठे जो परेण सद्दहई।
छउमत्थेण जिणेण व, उवएसरूइ त्ति नायव्वो॥१९॥

और उक्त नव ही पदार्थ के भाव को केवलज्ञानी तथा छद्मस्त गुरुआदि के उपदेश कर यथातथा श्रद्धान कर उसे दूसरी उपदेश रुची जानना॥१९॥

रागो दोसो मोहो, अन्नाणं जस्स अवगयं होइ।
आणाए रोयंतो, सो खलु आणारूई नाम॥२०॥

जिन पुरुषों का राग द्वेष मोह मिथ्यात्वादिक नाश हुआ है। ऐसे वीतराग की आज्ञा से पूवोक्त नव ही पदार्थ का श्रद्धान करे उसे तीसरी आज्ञा रूची कहना॥२०॥

जो सुत्तमहिज्जंतो, सुएण ओगाहाई उ सम्मत्तं।
अंगेण बाहिरेण व, सो सुत्तरूइ त्ति नायव्वो॥२१॥

जो कोई आचारंगादि अंग तथा अंग बाहर उपांग मूलादि सूत्र पढ़ता हुआ सम्यक्त्व की प्राप्ति करे उसे चौथी सूत्र रूची कहना॥२१॥

एगेण अणेगाइं, पयाइं जो परसई उ सम्मत्तं।
उदए व्व तेल्लबिंदू, सो बीयरूइ त्ति नायव्वो॥२२॥

जिस प्रकार एक बीज डालने से अनेक बीजोत्पत्ति होवे तथा जैसे पानी में तैल का बिन्दू प्रसरे वैसे ही जिसको उक्त जीवादि पदार्थ एक दृष्टान्तादि कर बताने से बहुत हेतु बहुत दृष्टान्तादि कर विस्तार से जाने उसे पांचवी बीज रूची जानना॥२२॥

सो होई अभिगमनरूई, सुयनाणं जेण अत्थओ दिट्ठं।
एक्कारस अंगाइं, पइण्णगं दिट्ठिवाओ य॥२३॥

जो जीव श्रुत ज्ञान कर ग्यारह अंग पइना दृष्टीवादसूत्र इत्यादि सूत्र के अर्थ का जानपना होने से सम्यक्त्व की प्राप्ति होवे उसे छठी अभिगम रूची कहना॥२३॥

दव्वाण सव्वभावा, सव्वपमाणेहिं जस्स उवलद्धा।
सव्वहिं नयविहीहिं, य वित्थाररूइ त्ति नायव्वो॥२४॥

धर्मास्तकाया आदि षट् द्रव्य के सब भावों को प्रत्यक्षादि चारों प्रमाण कर। नैगमादि सातों नय कर इत्यादि सिद्धान्त की विधी कर जानकर उससे सम्यक्त्व की प्राप्ति होवे वह सातवीं विस्तार रूची जानना॥२४॥

दंसण-नाण-चरित्ते, तव-विणए सच्चसमिइ-गुत्तीसु।
जो किरियाभावरूई, सो खलु किरियारूई नाम॥२५॥

ज्ञान, दर्शन चारित्र, तप, विनय सत्य प्रतिज्ञा, पांच समिति, तीन गुप्ति। इत्यादि में शुद्ध वृत्ति से क्रिया करते हुए सम्यक्त्व की प्राप्ति हुए उसे क्रियारूची जानना॥२५॥

अणभिग्गहियकुदिट्ठी, संखेवरूइ त्ति होइ नायव्वो।
अविसारओ पवयणे, अणभिग्गहिओ य सेसेसु॥२६॥

अनाभिग्रह मिथ्यात्त्व दृष्टि (भोला जीव) अन्य मति निन्हव और बुद्ध मतादि किसी मत को भी अंगीकार किया नहीं। उन मतों का ज्ञान भी जिसमें नहीं वैसे ही जिन प्रवचन में भी अनिपुण है। अर्थात् जैन मार्ग की श्रद्धा तो है परन्तु जानपना नहीं हो उसे अपनी संक्षेप रूचीवाला कहना॥२६॥

जो अत्थिकायधम्मं, सुयधम्मं खलु चरित्तधम्मं च।
सद्दहइ जिणाभिहियं, सो धम्मरूइ त्ति नायव्वो॥२७॥

छः द्रव्य के चलनादि गुण को। अंगप्रविष्ठ तथा अंग बाहर शास्त्र को, श्रुत धर्म तथा सम्यक्त्व के स्वरूप को जिस प्रकार तीर्थ करने कहा उस प्रकार श्रद्धा न करे उसे धर्म रूची जानना॥२७॥

परमत्थसंथवो वा, सुदिट्ठपरमत्थसेवणा वा वि।
वावन्न-कुदसणवज्जणा, य सम्मत्तसद्दहणा॥२८॥

अब सम्यक्त्व के श्रद्धान कहते हैं–१. जीवादि नवतत्व का परमार्थ का जान होवे। २ जो जीवादि तत्त्व के परमार्थ के जान आचार्यादि होवे उनकी सेवा करे। ३. जिसने सम्यक्त्व ग्रहण कर उसका वमन किया हो उसकी संगति नहीं करे और ४ शक्यादि कुदर्शनी की संगति नहीं करे॥२८॥

नत्थि चरित्तं सम्मत्तविहूणं, दंसणे उ भइयव्वं।
सम्मत्त-चरित्ताइं, जुगवं, पुव्वं व सम्मत्तं॥२९॥

सम्यक्त्व रहित को ज्ञान नहीं होवे, ज्ञान बिना चारित्र के गुण नहीं होवे, चारित्र के गुण बिना कर्म से छूट का नहीं होवे और कर्म से छुटकारा हुआ बिना मोक्ष नहीं होवे॥२९॥

नादंसणिस्स नाणं, नाणेण विणा न हुंति चरणगुणा।
अगुणिस्स नत्थि मोक्खो, नत्थि अमुक्कस्स निव्वाणं॥३०॥
निस्संकिय निक्कंखिय, निव्वितिगिंछा अमूढदिट्ठी य।
उवबूह-थिरीकरणे, वच्छल्ल-पभावणे अट्ठ॥३१॥

सम्यक्त्वी के ८ आचार–१. जिन वचन में शंका रहित होवे, ३ करणी के फल का संशय नहीं करे, ४. मत मतांतरों अलग-अलग प्ररूपना सुनकर मन में उदास नहीं हो, ५. जो जिनाज्ञा के आराधक हों उनके गुणग्राम करे, ६ धर्म से जिन के परिणाम अस्थिर हो उनको स्थिर करे। धर्मात्मा की सहायता करे ७ स्वधर्मीयों की भक्ति करे और ८ जैन मार्ग की प्रभावना (उन्नति) करे। यह दूसरा दर्शन कहा॥३०-३१॥

सामाइयंत्थ पढमं, छेओवट्ठावणं भवे बीयं।
परिहारविसुद्धीयं, सुहुमं तह संपराय च॥३२॥
अकसायमहक्खायं, छउमत्थस्स जिणस्स वा।
एय चयरित्तकरं, चारित्तं होइ आहियं॥३३॥

अब तीसरा चारित्र का कहते हैं, चारित्र पांच प्रकार के कहे हैं–प्रथम सामायिक चारित्र के दो भेद–१. इत्वर थोड़े काल का सो प्रथम अन्तिम तीर्थंकर के बारे में साधु का क्योंकि इनमें छेदोपस्थापनीय चारित्र की स्थापना की जाती है। २. अवकाहिक-जावज्जीवक सो बावीस तीर्थंकरों के तथा महाविदेह क्षेत्र के साधुओं का। दूसरा छेदोपस्थापनीय चारित्र के दो प्रकार–१. निरतिचार सो प्रथम अन्तिम तीर्थंकर के साधुओं को जघन्य सातवें दिन, मध्यम चार महिने में, उत्कृष्ट छः महिने ये पांच महाव्रतारोपण करे। तथा तेईसवें तीर्थंकर के साधु चौबीसवे तीर्थंकर के साधु में मिले तब छेदोपस्थापना करे सो २ सअति-चार-साधु जवर दोष स्थान सेवन करे तब पुनः दीक्षा देवे सो। तीसरा परिहार विशुद्ध चारित्र-नव पुरुष नव वर्ष की वय में दीक्षा ले, नव पूर्व का ज्ञान पढ़े। बीस वर्ष की दीक्षा हुए बाद तीर्थंकर के पास या अन्य परिहारविशुद्धी चारित्री के पास परिहार विशुद्ध चारित्र अंगीकार करे। चार साधु तप करे, चार वैयावच्च करे, एक व्याख्यान वांचे छः महिने बाद वैयावच्ची तप करे तपस्वी वैयावच्च करे। एक व्याख्यान दे। छः महीने बाद व्याख्यानी तप करे आठों उनकी वैयावच्च करे। तप उष्णकाल में जघन्य चौथ भक्त मध्यम छठ भक्त उत्कृष्ट दशम भक्त तप करे। शीत काल में जघन्य छठ भक्त मध्य। अष्टमभक्त उत्कृष्ट दशम भक्त करे। चौमासे में जघन्य अष्टमभक्त मध्यम दशमभक्त, उत्कृष्ट द्वादश भक्त करे। सदैव तीन शुभ लेश्या रखे। चौथा सूक्ष्म सम्पराय चारित्र के दो भेद-समल सो उपशम श्रेणी से चढ़कर ग्यारवें गुणस्थान से प्रतिपाति हो दसवें आवे वह और २ विशुद्ध उपशम श्रेणी तथा क्षपक श्रेणि चड़ते समय पावे। पांचवाँ यथाख्यात चारित्र के दो भेद–१. छद्मस्त सो उपशम कषायी ग्यारवें गुनस्थानवर्ती तथा क्षीण कशाइ बारहवें गुणस्थान वर्ती और २. जिन सो सयोगी तेरवें गुनस्थान वर्ती तथा अयोगी चौदहवें गुणस्थान वर्ती। यह पांचों चारित्र कर्म समूह के क्षय करने वाले तीर्थंकर ने कहे हैं। इति चारित्र का तीसरा भेद॥३२-३३॥

तवो य दुविहो वुत्तो, बाहिरऽब्भंतरो तहा।
बाहिरो छव्विहो वुत्तो, एवमब्भतरो तवो॥३४॥

अब मोक्ष का चौथा कारण तप का स्वरूप कहते हैं तप दो प्रकार का १ बाह्य और १ आभ्यन्तर, इसमें बाह्य रूप छः प्रकार १ अनशन जघन्य नवकारसी से उत्कृष्ट छः महीने तक का तप करे सो इत्वर अनशन, और भक्त प्रत्याख्यान तथा पादोपगमन संथारा करे वह अवकाही अनशन। २. उणोदरी-आहार वस्त्र पात्रादि उपाधि अल्प करे सो द्रव्य उणोदरी और कषाय कमी करे, कम बोले वह भाव उणोदरी। ३. भीक्षाचारी-१ ओदनादि अमुक प्रकार का द्रव्य ग्रहण करूंगा सो द्रव्य भिक्षाचारी, २ पेटी आकार गोमूत्राकार पंतगीयाकार वगैरह भिक्षा ग्रहण करूंगा सो क्षेत्र

भिक्षाकारी। ३ प्रहर मुहूर्तादि अमुक वक्त में भिक्षा ग्रहण करूंगा सो काल भिक्षाचारी और ४ इच्छा प्रमाने अभिग्रह धारे सो भाव भिक्षाचरी। ४ रसपरित्याग दूध दही घृत तेल मिठाई विगय का त्याग करे नीवी आयम्बिलादि तप कर ऋक्ष तुच्छ आहार करे वह रस परित्याग तप। ५ एक स्थान बैठा तथा खड़ा रहे पद्मासनादि अनेक आसन से कायोत्सर्ग करे, ग्रामानुग्राम विहार करे। शीत तापादि कष्ट धर्मार्थसहे वह काया क्लेश तप और ६ इन्द्रियों का, कषायों का, योगों का निग्रह करे। स्त्री पशु पंडग रहित शयना-शयन का सेवन करे, वह प्रतिसंलिनता तप यह ६ बाह्य तप और आभ्यन्तर तप के भी छः प्रकार–१. प्रायश्चित-दोष की विशुद्धी के लिये आलोचन, प्रतिक्रमण, तदुभय, विवक्त विउत्सर्ग तप छेदादि प्रायश्चित ग्रहण करे, वह प्रायश्चित विनय ज्ञानी का, दर्शनी का, चारित्रीय का, तपस्वी का, मन से, वचन से, काया से, लोक व्यवहार ऊँचा प्रकार का रखे बहुमान करे वह विनय तप। ३. वैयावच्च-आचार्य, उपाध्याय, शिष्य, रोगी, तपस्वी, स्थविर, स्वधर्मी, कुल-गुरु भ्रात, गण-सम्प्रदायी साधु संघचार तीर्थ। इनकी भक्ति कर साता उपजावे वह वैयावच्च तप। ४ स्वाध्याय तप वांचन, पृच्छन, परियट्टन, अनुप्रेक्षा, और धर्म कथा करे वह स्वाध्याय तप, ५ ध्यान-आर्त ध्यान रौद्र ध्यान को छोड़कर, आज्ञा विचय। अपाय विचय विपाक विचय। संस्थान विचय रूप धर्म ध्यान तथा एकत्ववितर्क। अन्यत्ववितर्क। सूक्ष्म क्रिया अप्रतिपति, समुच्छित क्रिया अनिवृति ध्याता। रूप शुक्ल ध्यान यह दो प्रकार का ध्यान ध्यावे वह ध्यान तप और ६ वियुत्सर्ग सो शरीर का, सम्प्रदाय का, उपाधीका तथा आहार पानी का त्याग करे वह दव्य वियुत्सर्ग और कषाय का, कर्म का, संसार का त्याग करे वह भाव वियुत्सर्ग। यह ६ प्रकार का अभ्यन्तर तप। यह तप के भेद जानना॥३४॥

नाणेण जाणई भावे, दंसणेण य सद्दहे।
चरित्तेण न गिण्हाइ, तवेण परिसुज्झई॥३५॥

अब मोक्ष के चारों कारणों का संक्षेप में गुण कहते हैं–१ ज्ञान करके जीवादि नव ही पदार्थों के भाव को जाने, ४ दर्शन करके उनका श्रद्धान करें। ३ चारित्र कर–आश्रव (कर्मबन्ध के कारण) का त्याग करे, आश्रव का निरुंधन करे और ४ तप करके पूर्वोपार्जित कर्मों का क्षय करे॥३५॥

खवेत्ता पुव्वकम्माइं, संजमेण तवेण य।
सव्वदुक्खप्पहीणट्ठा, पक्कमंति महेसिणो॥३६॥ त्ति बेमि॥

उपसंहार–महाऋषियों जन्म जरा मृत्यु रूप व शारीरिक मानसिक सर्व प्रकार के दुःखों का क्षय करने के लिये ज्ञान और दर्शन युक्त पांच आश्रव पांच इन्द्रिय, चार कषाय और तीन योग के निग्रह रूप सत्तरह प्रकार के संयम में तथा उक्त बारह प्रकार के तप में पराक्रम करते हैं। वे शीघ्र मोक्ष को प्राप्त करते हैं यों सुधर्मा स्वामी ने जंबु स्वामी से कहा है॥३६॥

मोक्ष मार्ग नामक अट्ठाइसवां अध्ययन् समाप्तम्।



सम्मत्तपरक्कमं एगूणतीयइमं अज्झयणं
सम्यक्त्व पराक्रम नामकं एकोनत्रिंशत्तममध्ययनम्

सुयं मे आउसं तेण भगवया एव मक्खायं, इह खलु सम्मत्त परक्कमे नाम अज्झयणे समणेणं भगवया महावीरेणं कासवेणं पवेइए; जं सम्मं सद्दहित्ता पत्तियाइत्ता रोयइत्ता फासित्ता पालइत्ता तीरित्ता कित्तइत्ता सोहइत्ता आराहित्ता आणाए अणुपालइत्ता बहवे जीवा सिज्झंति बुज्झंति मुच्चंति परिनिव्वायंति सव्व दुक्खाण मंतं करेंति॥ तस्सणं अयमट्ठे एवमाहिज्जइ-तंजहा-संवेगे, निव्वेए, धम्मसद्धा, गुरुसाहम्मिय सुस्सूणया, आलोयणया, निंदणया, गरिहणया, सामाइए, चउव्वीसत्थए, वंदणे, पडिक्कमणे, काउस्सग्गे पच्चक्खाणे, थयथईमंगले, काल पडिले हणया, पायच्छित करणे, खमावयणया, सज्झाए, वायणया, पडिपुच्छणया, परियट्टणया, अणुप्पेहा, धम्मकहा, सुयस्स आराहणया, एगग्गमणसंन्निवेसणया, संजमे, तवे, वोदाणे, सुहसाए, अप्पडिबद्धया, विचित्तसयणासण-सेवणया, विणियट्टणया संभोगपच्चक्खाणे, उवहिपच्चक्खाणे, आहार पच्चक्खाणे, कसाय पच्चक्खाणे, जोगपच्चक्खाणे, सरीरपच्चक्खाणे, सहायपच्चक्खाणे, भतपच्चक्खाणे, सब्भाव पच्चक्खाणे, पडिरूवणया, वेयावच्चे, सव्वगुणसंपुण्णया वीयरागया, खंती मुत्ती, मद्दवे, अज्जवे, भावसच्चे, करणसच्चे, जोगसच्चे, मणगुत्तया; वयगुत्तया, कायगुत्तया, मणसमाधारणया, वयसमाधारणया, कायसमाधारणया, नाण संपन्नया, दंसण संपन्नया, चरित्त संपन्नया, सोइंदिय निग्गहे, चक्खिंदिय निग्गहे, घाणिंदिय निग्गहे, जिब्भिंदिय निग्गहे, फासिंदिय निग्गहे, कोहविजए, माणविजए, मायाविजए, लोहविजए, पेज्जदोसमिच्छादंसण विजए, सेलेसी, अकम्मया॥*॥

सुधर्मा स्वामी कहने लगे कि हे आयुष्मान जम्बू! श्रमण भगवंत श्री महावीर स्वामी जी ने कहा वह मैंने श्रवण किया है कि यों निश्चय में सम्यक्त्व में पराक्रम करने वाला इस अध्ययन का सच्चे मन से श्रद्धान करे प्रतीत लावे हृदय में स्थापित करें। इसमें कही क्रिया का स्वतः की काया कर सेवन करे उन अनुष्ठान का पालन कर पार पहुँचे। उन गुणों का कीर्त्ति कर अतिचार

रहित शुद्ध उनका आराधन कर के गुरु की आज्ञा से पालन करके बहुत से जीव सर्व अर्थ की सिद्धी कर सिद्ध हुए, लोकालोक का स्वरूप जान बुद्ध हुए, कर्म पाश से मुक्त हुए। कषाय दावानल को बुझा कर शान्त शीतल भूत हुए। शारीरिक मानसिक सब दुःख का अंतकिया ऐसे सम्यक्त्व पराक्रम नामक अध्ययन का कथन आगे करता हूँ तथा १ संवेग वैराग्य मोक्ष प्राप्ति की अभिलाषा कर, २. निर्वेग-विषय वांच्छा से निष्टति कर, ३. धर्म करने की श्रद्धा आस्थाकर, ४. गुरु स्वधर्मियों की सेवा भक्ति कर, ५. पाप की आलोचना कर ६. आत्म दोषों की आत्मा साक्षी निन्दाकर, ७. गुरु आदि समीप स्वतः किये पाप की सरहना (कथनी) कर ८ सामायिक सावद्य योग की निवृति कर ९ चौंबीस तीर्थंकर की स्तुति (लोगस्स) कर १० गुरु को द्वादश वृत वंदना कर। ११ पाप की निवृति रूप प्रतिक्रमण कर, १२ कायोत्सर्ग कर १३ नवकारसी आदि के प्रत्याख्यान कर १४ स्तुति थुई मंगल (नमोत्थुणं) कर १५ स्वाध्यायादि साधु के क्रिया कार्य की प्रति लेखना कर। १६ प्रायश्चित ले पाप को विशुद्ध कर, १७ क्षमापना से वैर को उपशम कर, १८ शस्त्रपाठ की स्वाध्याय कर, १९ शास्त्र की वांचना देकर, २०. सूत्रार्थ का निर्णयार्थ प्रश्न पूछने कर, २१ ग्रहण किये ज्ञान की बारम्बार परियटना (करने) कर, २२ सूत्रार्थ का चिन्तवन (ध्यान) कर, २३ धर्म कथा (व्याख्यान) कहने कर, २४ शास्त्रार्थ की आराधना कर। २५ एकाग्र शुद्ध मन की स्थापना कर, २६ सतरा प्रकार संयम का पालन कर, २७ द्वादश प्रकार तप कर, २८ कर्म निकन्द का उपाव कर, २९ सुखसेलियो पने का त्याग कर, ३० अप्रतिबन्ध प्रवृति कर, ३१. स्त्री पशु नपुंसक रहित स्थानक का सेवन कर। ३२ विशेष प्रकार निवृति भाव कर, ३३ अन्य साधुओं के साथ आहार आदि संविभाग ग्रहण करने का त्याग कर, ३४ उपकरण उपाधी के त्याग कर, ३५ आहार का त्याग कर, ३६ कषाय के त्याग कर, ३७ योग प्रवृत्ति के त्याग कर, ३८ शरीर की शुश्रूषा के त्याग कर, ३९ सखाइ (शिष्य–चेले) करने के त्याग कर, ४० आहार मात्र के प्रत्याख्यान (संथारा) कर, ४१ अपने खोटे स्वभाव के त्याग कर, ४२ प्रति रूपता अर्थात् जिस प्रकार साधु के वेष हैं उस ही प्रकार साधु के गुण से युक्त होने से वैयावच्च–भक्ति करने से, ४४ ज्ञानादि सर्व गुण सम्पन्न होने, ४५ राग द्वेष रहित मध्यस्थावर्ती रखने से, ४६ क्षमा करने से, ४७ लोभ रहित रहने से, ४८ अभिमान रहित रहने से, ४९ सरलता-निष्कपटवर्ती रखने से, ५० भावसत्यता-अन्तःकरण की शुद्धवृत्ति रखने से, ५१ करण सत्य। शास्त्रोक्त विधी प्रमाने प्रतिलेखनादि क्रिया करने से, ५२ जोग सत्यता-मन वचन काया के शुद्ध योग प्रवर्तने से, ५३ मन को गुप्त कर रखने से, ५४ वचन को गुप्त कर रखने से, ५५ काया को गुप्त कर रखने से, ५५ मन को शुद्ध विचार में स्थापने से, ५७ वचन को शुद्धोचार में स्थापने से, ५८ काया को शुद्धाचार में स्थापने से, ५९ सूत्रादि ज्ञान युक्त होने से, ६० क्षायिकादि सम्यक्त्व युक्त होने से, ६१ सामायिकादि चारित्र युक्त होने से, ६२ श्रोतेन्द्रिय (कान) का निग्रह करने से, ६३ चक्षु इन्द्रिय (आंख) का निग्रह करने से, ६४ घ्राणेन्द्रिय (नाक) का निग्रह करने से, ६५ रसेन्द्रिय (जिह्वा) का निग्रह करने से, ६६ स्पर्शेन्द्रिय (काया) का निग्रह करने से, ६७ क्रोध का जय करने से, ६८ मान का जय करने से, ६० माया का जय करने से, ७० लोभ का जय करने

से, ७१ रागद्वेष और मिथ्यात्व इन तीनों का जय करने से, ७२ मनसादि वियोग का निरुंधन कर शैलेसी अवस्था को प्राप्त होने से और ७३ सर्वकर्मांश रहित हो मोक्ष प्राप्त करने से। इन ७३ बोल का सम्यक् प्रकार आराधन करने से सम्यकत्व में पुष्टता होती है। यह तो ७३ बोल के नाम मात्र कहे। अब आगे प्रत्येक बोल का अलग-अलग फल कहते हैं।

संवेगेणं भंते! जीवे किं जणयइ? संवेगेणं अणुत्तरं धम्मसद्धं जणयइ, अणुत्तराए धम्मसद्धाए संवेगं हव्वमागच्छइ, अणंताणुबंधी कोहमाणमाया लोभे खवेइ, नवं च कम्मं न बंधइ, तप्पच्चइयं च णं मिच्छत्तविसोहिं काऊण दंसणाराहए भवइ, दंसणविसुद्धाएय णं अत्थेगई तेणेव भवग्गहणेणं सिज्झइ, विसोहीएयणं विसुद्धाए तच्चंपुणो भवग्गहणं नाइक्कमइ॥१॥

अहो भगवान! संवेग वैराग्य भाव रखने से अर्थात् मोक्ष प्राप्ति की इच्छा करने से जीव को कौन-से गुण की प्राप्ति होती है? अहो गौतम! संवेग भाव रखने से उत्तम धर्म करने की श्रद्धा होती है और उत्तम धर्म करने की श्रद्धा कर शीघ्रता से वैराग्य भाव की प्राप्ति होती है, जिससे अनन्तानुबन्धी (जिसका अन्त न हो ऐसा) क्रोध मान माया लोभ इनका क्षयोपशम होता है तथा क्षय होता है, फिर मिथ्यात्व मोहनीयादि कर्मों का बन्ध नहीं होता है। तब फिर मिथ्यात्व की विशुद्धि कर क्षायिकादि सम्यक्त्व का आराधक होवे। फिर विशुद्ध सम्यक्त्व की आराधना कर अनेक तो उस ही भव में मोक्ष प्राप्त करते हैं और कदाचित उस भव में मोक्ष नहीं जावे तो तीसरे भवका तो उल्लंघन नहीं करे अर्थात् क्षायिक सम्यक्त्वी तीसरे भव में जरूर ही मोक्ष प्राप्त करे॥१॥

निव्वेएणं भंते! जीवे किं जणयइ? निव्वेएणं दिव्व माणुस तेरिच्छिएसु कामभोगेसु निव्वेयं हव्वमागच्छइ, सव्व विसएसु विरज्जइ, सव्व विसएसु विरज्जमाणे आरंभ परिच्चायं करेइ, आरंभ परिच्चायं करेमाणे संसारमग्गं वोच्छिंदइ, सिद्धिमग्गं पडिवन्ने य हवई॥२॥

अहो भगवन! निर्वेद भाव-विषयाभिलाषा रहित रहने से जीव को कौन-से गुण की प्राप्ति होवे? अहो गौतम! निर्वेद कर देवता मनुष्य तिर्यच सम्बन्धी कामभोग में निराभिलाषिता को शीघ्रता से प्राप्त होवे, विषय की निरभिलाषा कर शब्दादि पांचों इन्द्रिय के विषय में वैराग्य को प्राप्त होवे। सर्व विषय से वैराग्य भाव को प्राप्त हुआ जीव आरंभ परिग्रह का त्याग करे। आरंभ परिग्रह का त्याग कर संसार परिभ्रमण का रास्ता जो मिथ्यात्वादि है उसका व्यवछेद करे, मोक्षमार्ग को प्रतिपन्न होवे॥२॥

धम्म सद्धाएणं भंते! जीवे किं जणयइ? धम्म सद्धाएणं सायासोक्खेसु रज्जमाणे विरज्जइ, आगार धम्मं च णं चयइ, अणगारिएणं जीवे सारीर माण साणं दुक्खाणं छेयण भेयण संजोगाईणं वोच्छेयं करेइ, अव्वावहं च सुहं निव्वत्तेइ॥३॥

अहो भगवन्! धर्म करने की श्रद्धा करने से जीव को कौन-से गुण की प्राप्ति होवे? अहो

गौतम! धर्म करने की श्रद्धा कर साता वेदनीय कर्मोदय से जो उत्पन्न हुए हैं साता सुख उसमें अनुराग करता था उससे वैराग्य को प्राप्त होवे, उससे वैराग्य को प्राप्त हुआ गृहस्थावास का त्याग कर साधु पना अंगीकार करे। साधु होकर शारीरिक मानसिक दुःख का छेदन भेदन करें, सर्व प्रकार की बाधा पीड़ा रहित हो मोक्ष के निराबाध सुख की प्राप्ति करे॥३॥

गुरु साहम्मिय सूस्सूसणाएणं भंते! जीवे किं जणयइ,? गुरु साहम्मिय सुस्सूसणाएणं विणयपडिवत्तिं जणयइ, विणय पडिवन्ने य णं जीवे अणच्चासाय णसीले नेरइय तिरिक्खजोणिय मणुस्स देव दुग्गईओ निरुब्भइ, वण्णसंजलणभत्ति बहु माणयाए मणुस्स देवसुगईओ निबंधई, सिद्धिं सोग्गइं च विसोहेइ, पसत्थाइ च णं विणयमूलाइ सव्व कज्जाइं साहेइ, अन्ने य बहवे जीवे विणिइत्ता भवइ॥४॥

अहो भगवन्! गुरु और स्वधर्मीयों की सेवा भक्ति करने से जीव को कौन से गुण की प्राप्ति होती है? अहो शिष्य! गुरु स्वधर्मीयों की सेवा भक्ति करने से, विनय गुण की प्राप्ति होती है, विनयवंत होने से जो सम्यक्त्वादि सद्गुणों की नाश करने वाली असातना है उसका त्याग करे, वह नरक तिर्यंच चांडालादि मनुष्य व किल्विषी आदि देवता की जो दुर्गति है उसका निरुधंन करें। गुरु आदि की कीर्ति करके गुण का दीपाने वाला होवे, गुरु आदि का बहुमान करने वाला होवे। उत्तम मनुष्य व उत्तम देवगति का आयुर्बन्धन करने वाला होवे और मोक्षगति का जो ज्ञानादि है उसे शुद्ध करे। मोक्षमार्ग ज्ञानादि शुद्ध करके प्रशस्त (प्रशंसनीय) विनय मूल श्रुतादि ज्ञान व संयमादि कार्य निष्पन्न करे। ऐसे उस विनीत के गुणावलोकन कर बहुत से जीव विनय में अपनी आत्मा को स्थापन करे॥४॥

आलोयणाएणं भंते! जीवे किं जणयइ? आलोयणाएणं माया नियाण मिच्छादंसण सल्लाण मोक्खमग्ग विग्घाणं अणंत संसार बंधणाणं उद्धरणं करेइ, उज्जु भावं च जणयइ, उज्जुभाव पडियन्ने यणं जीवे अमाई इत्थीवेय नपुंसकवेयंच न बंधइ। पुव्वबद्धं च णं निज्जरेइ॥५॥

अहो भगवन्! गुरु आदि के समीप अपने आत्मा के दुर्गुण की आलोचना-प्रकाश करने से जीव को कौन-से गुण की प्राप्ति होवे? अहो गौतम! गुरु आदि समीप स्वात्म के दोष प्रकाश ने से जो मोक्ष मार्ग में विघन के कर्ता और संसार की वृद्धि कर्ता माया शल्य, निदान शल्य, मिथ्या दर्शन शल्य है इन तीनों शल्य का उद्धार करे, तीनों शल्य का उद्धार करने से जीव सरलता (भद्रिक पना) उपार्जन करे, सरलता उपार्जन किया हुआ जीव पूर्वे जो स्त्री वेद के तथा नपुंसक वेद के कर्मोपार्जन किये हो उनके निर्जरा क्षय करे॥५॥

निंदणयाएणं भंते! जीवे किं जणयइ? निंदणयाएणं पच्छाणुतावं जणयइ, पच्छाणुतावेणं विरज्जमाणे करणगुणसेढिं पडिवज्जइ करणगणसेढी पडिवन्नेयणं अणगारे मोहणिज्जं कम्मं उग्घाएइ॥६॥

अहो भगवन्! अपनी आत्मा की साक्षी से अपने दुर्गुनों की निन्दा करने से जीव को कौन-से

गुण की प्राप्ति होती है? अहो गौतम! स्वयं कृत पाप का पश्चात्ताप करने से वैराग्य भाव की प्राप्ति होवे, वैराग्य की प्राप्ति होने से पहले जो कषाय के मन्दता रूप करण की प्राप्ति नहीं हुई थी ऐसे अपूर्व करण (क्षपक श्रेणी) रूप अंगीकार करे। वह साधू दर्शन मोहनीय आदि आठों कर्मों का क्षय करे॥६॥

गरहण याएणं भंते! जीवे किं जणयइ? गरहणयाएणं अपुरक्कारं जणयइ, अपुरकारगएणं जीवे अपसत्थेहिंतो जोगेहिंतो नियत्तेइ, पसत्थेय पडिवज्जइ, पसत्थ जोग पडिवन्नेयणं अणगारे अणंताघाइपज्जवे खवेइ॥७॥

अहो भगवन्! गुरु के समीप स्वात्मा के दुर्गुन की निन्दा करने से आत्मा को कौन-से गुण की प्राप्ति होवे? अहो शिष्य! स्वात्मा के दोषों गुरु आदि के आगे प्रकाशने से अपनी आत्मा की हीलना करने का स्थान उपार्जन करे। जिससे मन वचन काया के दुष्ट योग से निवर्तें और प्रशस्त (अच्छे) मन वचन काया के योगों की प्रवृत्ति करें। वह साधु अनंत केवल ज्ञान केवल दर्शन के व्याघात करने वाले कर्मों का क्षय करे॥७॥

समाइएणं भंते! जीवे किं जणयइ? सामाइएणं सावज्जजोगविरइं जणयइ॥८॥

अहो भगवन! सावद्य योग की निवृत्ति रूप सामायिक करने से जीव को कौन से गुण की प्राप्ति होवे? अहो गौतम! सामायिक करने से सावद्य जोग के निरुंधन रूप वृत्ति का उपार्जन करे॥८॥

चउव्वीसत्थएणं भंते! जीवे कि जणयइ? चउव्वीसत्थएणं दंसणविसोहिं जणयइ॥९॥

अहो भगवन्! चतुर्विंश जिनका स्तवन (लोगस्स के पाठ का पठन) करने से जीव कौन-से गुण की प्राप्ति करे? अहो गौतम्! चौबीस तीर्थंकर के गुण कीर्ति कर सम्यक्त्व को निर्मल करने रूप गुण की प्राप्ति होवे॥९॥

वंदणएणं भंते! जीवे किंजणयइ? वंदणएणं नीयागोयं कम्मं खवेइ उच्चागोयं, कम्मं निबंधइ, सोहग्गं च णं अपाडिहयं आणाफलं निव्वत्तेइ, दाहिणभावं च णं जणंयइ॥१०॥

अहो भगवन्! गुरु आदि ज्येष्ट जनों को वंदना करने से जीव को कौन-से गुण की प्राप्ति होवे? अहो गौतम्! गुरु आदि को वंदना करने से नीच गोत्र में उत्पन्न होने के कर्मों का क्षय करे और ऊँच गोत्र में उत्पन्न होने के कर्मों की उपार्जना करे, सौभाग्य का उपार्जन करें। आदेय कर्म का उपार्जन करे अर्थात् जिस किसी को जो कुछ आज्ञा करें उसका वह उल्लंघन नहीं कर सके। उसका वचन सबको प्रियकर होवे ऐसे कर्मोपार्जन करे॥१०॥

पडिक्कमणेणं भंते! जीवे किं जणयइ? पडिक्कमणेणं वय छिद्दाणि पिहेइ पिहियछिद्दे पुण जीवे, निरुद्धासवे असबल चरित्ते अट्ठसु पवयण मायासु उवउत्ते अपुहत्ते सुप्पणिहिए विहरइ॥११॥

अहो भगवन! प्रतिक्रमण (पाप से निवृत्ति रूप) करने से जीव को कौन-से गुण की प्राप्ति होवे? अहो गौतम! प्रतिक्रमण करने से व्रत के अतिचार रूप छिद्र को ढके। अतिचार

रूप छिद्र के ढकने से जीव हिंसादि आश्रव के द्वारों का निरुंधन करे, आश्रव रहित होवे, दोष रहित निर्मल चारित्र जिसका होवे, आठ प्रवचन माता के हैं उनमें सावधान बने। जिस संयम योग कर जिनकी आत्मा दूर नहीं होवे सम्यक् प्रकार संयम में समाधि सहित विचरे॥११॥

काउसग्गेणं भंते! जीवे किं जणयइ? काउसग्गेणं तीय पडुप्पन्नपायच्छित्तं विसोहेइ, विसुद्ध पायच्छित्ते य जीवे निव्वुय हियए, ओहरियभरोव्व भारवहे पसत्थ ज्झाणोवगए सुहंसुहेणं विहरेइ॥१२॥

अहो भगवन्? कायोत्सर्ग करने से जीव को कौन से गुण की प्राप्ति होवे? अहो गौतम! कायोत्सर्ग करने से अतीत काल का और वर्तमान काल का प्रायश्चित कर पाप की विशुद्धि करे। यों अतिचार रहित निर्मल अन्तःकरणी बनकर वह जिस प्रकार भारवाहक (इमालादि) वजन दूर होने से हलका होता है वैसे ही कर्म के वजन से हलका हो जावे। धर्म ध्यान तथा शुक्लध्यान का ध्याता बनकर सुख प्राप्त करने की परम्परा को अंगीकार कर सुख-२ से विचरे॥१२॥

पच्चक्खाणेणं भंते! जीवे किं जणयइ? पच्चक्खाणेणं आसवदाराइं निरुंभइ, पच्चक्खणेणं इच्छानिरोहं जणयइ, इच्छानिरोहं गए य णं जीवे सव्व दव्वेसु विणाय तण्हे सीयलभूए विहरइ॥१३॥

अहो भगवन! प्रत्याख्यान करने से जीव को कौन से गुण की प्राप्ति होवे? अहो गौतम! प्रत्याख्यान करने से निरन्तर आते हुए आश्रवद्वार निबंधन कर और अनेक प्रकार की उपभोग परिभोग की वस्तु से तृष्णा का निरुंधन करें। जो जीव तृष्णा का निरुंधन करेगा वह सर्व द्रव्य तृष्णा रूप ज्वाला से निवृत्त होकर शीतलभूत बन विचरे॥१३॥

थयथुइमंगलेणं भंते,! जीवे किं जणयइ? थयथुइ मंगलेणं नाण दंसण चरित्त बोहिलाभं जणयइ, नाणदंसण चरित्तबोहिलाभसंपन्नेयणं जीवे अंतकिरियं कप्पविमाणो ववत्तिगं, आराहणं आराहेइ॥१४॥

प्र०-अहो भगवन! स्तुति मंगल (नमोत्थुणं) करने से जीव को कौन से गुण की प्राप्ति होती है? उ०-अहो गौतम! स्तुति मंगल करने से ज्ञान दर्शन चरित्र बोधबीज रूप लाभ की प्राप्ति होवे ज्ञानादि लाभ को प्राप्त हुआ जीव मोक्ष की आराधना करे तथा बारह देवलोक नवंग्रवेयक पांच अनुत्तर विमान में उत्पन्न होने की आराधना को आराधन करे॥१४॥

काल पडिलेहणयाएणं भंते! जीवे किं जणयइ? काल पडिलेहणयाएणं नाणावरणिज्जं कम्मं खवेइ॥१५॥

प्र०-अहो भगवन! स्वाध्याय के काल का प्रतिलेखन करने से जीव को कौन से गुण की प्राप्ति होती है? उ०-अहो गौतम! स्वाध्याय के काल की प्रतिलेखना (देखने) से ज्ञानावरणीय कर्म का क्षय करे॥१५॥

पायच्छित्त करणेणं भंते! जीवे किं जणयइ? पावविसोहिं जणयइ, निरइयारेवावि भवइ, सम्मं च णं पायच्छित्तं पडिवज्जमाणे मग्गं च मग्गफलं च विसोहेइ, आयारफलं च आराहेइ॥१६॥

अहो भगवन! सूत्रोक्त विधी प्रमाणे प्रायश्चित करने से जीव कौन से गुण की प्राप्ति करे? अहो गौतम! प्रायश्चित करने से पाप कर्म के क्षय करने रूप शुद्धता का उपार्जन करे, और अतिचार शुद्ध बना सच्चे मन से प्रायश्चित प्रतिपन्न वा मोक्ष पंथ सम्यक्त्व और इसका मूल उसे निर्मल करें, चारित्र तथा चारित्र के फल की आराधना करे॥१६॥

खामावणयाएणं भंते! जीवे किं जणयइ? खामावणयाएणं पल्हायण भावं जणयइ पल्हायणभाव मुवगएय सव्व पाण भूय जीव सत्तेसु मेत्तीभाव मुप्पाएइ, मेत्तीभाव मुवगएयावि जीवे भावविसोहिं काऊण निब्भए भवइ॥१७॥

अहो भगवन! वैर भाव की निवृत्तिरूप क्षमता क्षमापना करने से जीव को कौन से गुण की प्राप्ति होवे? अहो गौतम! क्षमापना करने से चित्त प्रशान्त भावपने का प्राप्त करे, चित्त का प्राशान्तपना जीव सर्व प्राणभूत जीव सत्त्व का हितचिन्तक बने, यों सब से मैत्रीभाव को प्राप्त हुआ जीव भाव विशुद्धि से रागद्वेष रहित बन कर सातों भय से रहित बने॥१७॥

सज्झाएणं भंते! जीवे किं जणयइ? सज्झाएणं नाणावरणिज्जं कम्मं खवेइ॥१८॥

अहो भगवन! स्वाध्याय करने से जीव को कौन से गुण की प्राप्ति होवे? अहो गौतम! स्वाध्याय करने से ज्ञानावरणीय कर्म का क्षय करे॥१८॥

वायणाएणं भंते! जीवे किं जणयइ? वायणाएणं निज्जरं जणयइ, सुयस्सय अणासायणाए बट्टए, सुयस्स अणासायणाए वट्टमाणे, तित्थ धम्मं अबलंबइ, तित्थधम्मं अवलंबमाणे महानिज्जरे भवमहापज्जवसाणे भवइ॥१९॥

अहो भगवन्! शास्त्र की वांचना देने से जीव को कौन से गुण की प्राप्ति होवे? अहो गौतम! वांचना देने से कर्मों की निर्जरा रूप फलोपार्जन करे, सिद्धान्त की आसातना टालने वाला होवे, सिद्धान्त की असातना टालने से तीर्थंकर गणधर का श्रुत धर्म दान धर्म का आचार का आचरण कर धर्म का आचरण करता हुआ महा निर्जरा का करने वाला भव का तथा कर्म का अन्त करने वाला होवे॥१९॥

पडिपुच्छणयाएणं भंते! जीवे किं जणयइ? पडिपुच्छणयाएणं सुत्तत्थ तदुभयाइं विसोहेइ, कंखा मोहणिज्जं कम्मं बोच्छिंदइ॥२०॥

अहो भगवन्! सूत्र अर्थादिक का संदेह निवारने के लिये प्रश्न पूछने से जीव को कौन से गुण की प्राप्ति होवे? अहो गौतम! प्रश्न पूछने से सूत्र का अर्थ का निर्मल करने वाला होवे, और सूत्रार्थ में निःसन्देह बना हुआ शास्त्राभ्यास मुझे करना या नहीं? इस प्रकार की कांक्षा मोहनीय कर्म तथा संशय रूप मिथ्यारूप मोहनीय कर्म का छेदन करने वाला होवे॥२०॥

परियट्टणाएणं भंते! जीवे किं जणयइ? परियट्टणाएणं वंजणाइं जणयइ, वंजणलद्धिं च उप्पाएइ॥२१॥

अहो भगवन्! सूत्र या सूत्रोक्त ज्ञान को बारम्बार फेरने से जीव को कौन से गुण की प्राप्ति होवे? अहो गौतम? सूत्रोक्त ज्ञान बारम्बार फेरने से भूले से भूले हुये ज्ञान को याद करने वाला होवे तथा अक्षरानुसारिणी पदानुसारिणी लब्धि प्राप्त होवे॥२१॥

अणुप्पेहाएणं भंते! जीवे किं जणयइ? अणुप्पेहाएणं आउयवज्जाओ सत्तकम्मपगडीओ धणिय बंधण बद्धाओ सिढिल बंधण बद्धाओ पकरेइ, दीहकाल ठिईयाओ हस्सकालठिईयाओ करेइ, तिव्वाणु भावाओ मंदाणुभावाओ पकरेइ, बहुपएसग्गाओ अप्पपएसग्गाओ पकरेइ, आउयंचणं कम्मं सिया बंधइ सिया नो बंधइ, आसायावेयणिज्जंचणं कम्मं नो भुज्जो भुज्जो उवचिणाई, अणाइयं चणं अणवदग्गं दीहमद्धं चाउरंतं संसारकंतारं खिप्पामेव वीइवयइ॥२२॥

अहो भगवन्! सूत्रार्थ का चिन्तवन (ध्यान) करने से जीव को कौन से गुण की प्राप्ति होवे? अहा गौतम! सूत्रार्थ के चिन्तवन करने से आयुष्य कर्म छोड़कर अन्य के सातों कर्म प्रकृति मजबूत बन्धी हो उसके ढीले बन्धन करें, जिन कर्मों की बहुत काल की स्थिति हो उसे थोड़े काल की करें। जो तीव्र रस रूप बहुत दुःख से भोगने की हो उसे मंद रस सहज में भुक्त ली जावे ऐसी करें, कर्म पुद्गलों के दल बहुत होवे उन्हें थोड़े करें, और आयुष्यकर्म का बन्धन कोई करे कोई नहीं भी करे[1], असातवेदनीय कर्म का बन्ध बारम्बार नहीं करे, और जो अनादि अनन्त महा दीर्घ रास्ते वाला जो यह संसार रूप अरण्य (अटवी) है। उसे शीघ्रता से उल्लंघन कर मोक्ष प्राप्त करे॥२२॥

धम्मकहाए णं भंते! जीवे किं जणयइ? धम्मकहाएणं निज्जरं जणयइ, धम्मकहाएणं पवयणं पभावेई पवयण-पभावेण जीवे आगमेसस्स भद्दत्ताए कम्मं निबंधइ॥२३॥

अहो भगवन्! धर्मकथा कहने से जीव को कौन से गुण की प्राप्ति होवे? अहो गौतम! धर्म कथा कहने से कर्म क्षय करने की विधि का उपार्जन करे, धर्म कथा कहने से प्रवचन (शास्त्र) की प्रभावना करे[2], प्रभावना करता हुआ जीव आगामिक काल में अपनी आत्मा का भद्र कल्याणकारी फल की उपार्जना करे॥२३॥

---

१. क्योंकि संख्यात वर्षायुवाले के आगामिक आयुर्बन्ध भोगवते हुवे आयु के तीसरे विभाग में होता है, वह हो गया हो या आगे को होने का हो वह उस समय बन्ध नहीं करता है और उस समय आयुर्बन्ध होने का हो वह उसी समय करता है।

२. प्रभावना ८ प्रकार की–१ सिद्धान्त के गुण कथन कर जैन मार्ग दीपावे, २ धर्म कथा कहकर जैन मार्ग दीपावे, ३ संवाद (धर्म चरचा) करके जैन मार्ग दीपावे, ४ तीनों काल का ज्ञान होकर जैन मार्ग दीपावे, ५ तपश्चर्या करके जैन मार्ग दीपावे, विद्या के प्रभाव से जैन मार्ग दीपावे, ७ सिद्धान्त का चमत्कारिक बातों से जैन मार्ग दीपावे और ८ कविता कहकर दीपावे।

सुयस्स आरहणयाएणं भंते! जीवे किं जणयइ? सुयस्स अराहणयाएणं अन्नाणं खवेइ नय संकिलिस्सइ॥२४॥

अहो भगवन्! सिद्धान्त के वचनों की आराधना करने से जीव को कौन से गुण की प्राप्ति होवे? अहो गौतम! सिद्धान्त के वचनों की आराधना करने से अज्ञान का क्षय करे और क्लेश का भोक्ता नहीं होवे॥२४॥

एगग्गमण संनिवेसणयाएणं भंते! जीवे किं जणयइ? एगग्गमण संनिवेसणयाएणं चित्तनिरोहं करेइ॥२५॥

अहो भगवन्! ज्ञानादि शुभ पदार्थ में एकाग्र मन की स्थापना करने से जीव को कौन से गुण की प्राप्ति होवे? अहो गौतम! श्रुतादि अवलम्बन कर एकाग्रमन की स्थापना करने से चित्तवृत्ति उन्मार्ग में जाती हो उसका निरूंधन करे॥२५॥

सजमेणं भंते! जीवे किं जणयइ? संजमेणं अणण्हयत्तं जणयइ॥२६॥

अहो भगवन्! सतरा प्रकार का संयम के पालन करने से जीव को कौन से गुण की प्राप्ति होती है? अहो गौतम! संयमाराधन कर आश्रव का निरूंधन करे॥२६॥

तवेणं भंते! जीवे किं जणयइ? तवेणं वोदाणं जणइ॥२७॥

अहो भगवन्! बारा प्रकार के तप करने से जीव को कौन से गुण की प्राप्ति होवे? अहो गौतम! तपश्चर्या करने से पूर्वोपार्जित कर्म को निर्बल करे (निकन्दन करे)॥२७॥

वोदाणेणं भंते! जीवे किं जणयइ? वोदाणेणं अकिरियं जणयइ, अकिरियाए भवित्ता तओ पच्छा सिज्झइ, बुज्झइ, मुच्चइ, परिनिव्वायइ, सव्वदुक्खाणमंतं करेइ॥२८॥

अहो भगवन्! कर्म को व्यवदान करने से जीव को कौन से गुण की प्राप्ति होवे? अहो गौतम! कर्म को व्यवदान करने से पाप की क्रिया रहितपना उपार्जन करे, पाप की क्रिया रहित होने वाला सर्व अर्थ की सिद्धी करता सिद्ध होवे, सर्वज्ञ होवे, बुद्ध होवे, संसार से मुक्त होवे, कषाय अग्नि बुझा शीतल होवे, और जन्मादि सर्व दुःख का क्षय करे॥२८॥

सुहसाएणं भंते! जीवे किं जणयइ? सुएसाएणं अणुस्सुयत्तं जणयइ, अणुस्सुयाएणं जीवे अणुकंपए, अणुब्भडे विगयसोगे चरित्तमोहणिज्जं कम्मं खवेइ॥२९॥

अहो भगवन्! सुख सेलीया (सुकुमाल) पना टालने से जीव को कौन से गुण की प्राप्ति होवे? अहो गौतम! सुखेच्छा का त्याग करने से अनुत्सुकता (उछरंग रहितपना) उपार्जन करे, अनुत्सुक बना हुआ जीव परजीवों का दुःखी देखकर तत्काल अनुकम्पा करे और हर्ष विषाद रहित शोक रहित रहकर मोहनीय कर्म क्षय करे॥२९॥

अप्पडिबद्धयाएणं भंते! जीवे किं जणयइ? अप्पडिबद्धयाएणं निस्संगत्तं जणयइ, निस्संगत्तेणं जीवे एगग्गचित्ते दिया य राओ य असज्जमाणे अप्पडिबद्धेयावि विहरइ॥३०॥

अहो भगवन! गृहस्थादि के प्रतिबन्धन रहित रहने से जीव को कौन से गुण की प्राप्ति होती

है? अहो गौतम! गृहस्थादि के प्रतिबंधता रहित रहने से असंगीपना प्राप्त करे, असंगी जीव अकेला राग द्वेष रहित ज्ञानादि में चित्त की एकाग्रता युक्त रात्रिदिन किसी भी सम्बन्ध को नहीं सज्जता हुआ सर्व संग का परित्याग करता हुआ अप्रतिबन्ध विहारी बने॥३०॥

विवित्त सयणासणयाएणं भंते! जीवे किं जणयइ, विवित्त सयणासणयाएणं चरित्तगुत्तिं जणयइ चरित्तगुत्तेयणं जीवे विवित्ताहारे दढचरित्ते एगंतरए मोक्खभाव पडिवन्ने अट्ठविहकम्मगंठिं निज्जरेइ॥३१॥

अहो भगवन्! स्त्री पशु नपुंसक रहित स्थानक पाटादि भोगवने जीव को कौन से गुण की प्राप्ति होवे? अहो गौतम! स्त्री पशु नपुंसक रहित स्थान आदि में रहने से चारित्र का रक्षण करने वाला होता है। और चारित्र रक्षण करने वाला जीव विगय की सरसाइ रहित आहार करता हुआ निश्चल चारित्र का धारक होवे, निश्चल संयम में अनुरक्त व तत्पर बना हुआ मोक्ष का साधक आठ कर्म की ग्रंथी (गांठ) को निर्जरे॥३१॥

विनियट्टयाएणं भंते! जीवे किं जणयइ? विनियट्टयाएणं पावकम्माणं अकरणयाए अब्भेट्ठेइ, पुव्वबद्धाणंय निज्जरणयाए पावं नियत्तेइ, तओ पच्छा चाउरंतं संसारकंतारं वीइ-वयइ॥३२॥

अहो भगवन्! विषय से विरक्त आत्मा को करता हुआ जीव कौन से गुण की प्राप्ति करता है? अहो गौतम! विषय विरक्त जीव पाप कर्म त्यागी होने से धर्म में उद्यमवंत होवे, पूर्वोपार्जित पाप कर्म की निर्जरा करे, पाप को आत्मा से दूर कर चतुर्गति रूप संसार अटवी का उल्लघंन कर मोक्ष को प्राप्त करे॥३२॥

संभोगपच्चक्खाणेणं भंते! जीवे किं जणयइ? संभोगपच्चक्खाणेणं आलंबणाइं खवेइ, निरालंबणस्स य आयतट्ठिया योगा भवंति, सएणं लोभणं संतुस्सइ, परलाभं नो आसादेइ, परलाभं नो तक्केइ नो पीहेइ, नो पत्थेइ, नो अभिलसइ, परलाभं अणस्सायमाणे अतक्केमाणे अपीहेमाणे अपसत्थेमाणे अणभिलसमाणे, दुच्चं सुहसेज्जं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ॥३३॥

अहो भगवन्! संभोग के प्रत्याख्यान से अर्थात् साधुओं को प्राप्त हुये आहार वस्त्रादि का संविभाग (हिस्सा) को ग्रहण करने से त्याग करने से (आप को प्राप्त हुआ ही आप भोगवे अन्य साधु को प्राप्त हुआ ग्रहण नहीं करे) उस जीव को कौन से गुण की प्राप्ति होती है? अहो गौतम! संभोग के प्रत्याख्यान करने से दूसरे के अवलम्बन रहित होवे, अवलम्बन रहित बिना मोक्ष प्राप्त रूप आत्मार्थ है जिसका ऐसे साधु को संयम व्यापार की वृद्धि होवे, वह साधु अपने ही लाभ कर संतोष को प्राप्त होवे, दूसरे साधु के लाभ की आशा करे नहीं, इस प्रकार आशा रहित बना, वह इस प्रकार की कल्पना भी नहीं करे की अमुक मुझे देवो, वचन कर कहे भी नहीं की अमुक मुझे देवो, इस प्रकार अन्य साधु के लाभ की इच्छा नहीं करता हुआ अपनी वांछा अन्य को नहीं जगाता हुआ दूसरी सुख शैय्या का अवलम्बन कर विचरने वाला होवे॥३३॥

उवहि पच्चक्खाणेणं भंते! जीवे किं जणयइ? उवहि पच्चक्खाणेणं अपलिमंथं जणयइ, निरुवहिएणं जीवे निक्कंखी उवहिमंतरेणय न संकिलिस्सई॥३४॥

अहो भगवन! वस्त्र पात्रादि उपाधि प्रत्याख्यान करने से जीव को कौन सी प्राप्ति होती है? अहो गौतम! उपाधी के प्रत्याख्यान करने से जीव वस्त्र पात्रादि की अभिलाषा रहित बना शारीरिक तथा मानसिक क्लेश रहित होवे॥३४॥

आहार पच्चक्खाणेणं भंते! जीवे किं जणयइ? आहार पच्चक्खाणेणं जीविया संसप्पओगं वोच्छिंदइ, जीविया संसप्पओगं वोच्छिंदित्ता जीवे आहारमंतरेणं न सकिलिस्सइ॥३५॥

अहो भगवन्! आहार के प्रत्याख्यान कर चउत्थ भक्तादि तपश्चर्या करने से आत्मा को कौन से गुण की प्राप्ति होवे? अहो गौतम! आहार के प्रत्याख्यान करने से जीवित की आशा वांछा का छेदन करे जीवित की आशा को छेदे आहार की प्राप्ति नहीं होने से क्लेशी नहीं बने॥३५॥

कसायपच्चक्खाणेणं भंते! जीवे किं जणयइ? कसाय पच्चक्खाणेणं वीयरागभावं जणयइ, वीयराग भाव पडिवन्नेक्यिणं जीवे समसुह दुक्खे भवइ॥३६॥

अहो भगवन्! कषाय के प्रत्याख्यान करने से जीव को कौन से गुण की प्राप्ति होवे? अहो गौतम! कषाय के प्रत्याख्यान कर वीतरागी (रागद्वेष रहित) प्राप्त होवे, और वीतरागभाव को प्राप्त हुआ जीव दुःख सुःख में समभावी बने॥३६॥

जोग पच्चक्खाणेणं भंते! जीवे किं जणयइ? जोग पच्चक्खाणेणं अजोगत्तं जणयइ, अजोगीणं जीवे नवंकम्मं न बंधइ, पुव्वबंधं निज्जरेइ॥३७॥

अहो भगवन्! मन वचन काय के योगों की प्रवृत्तिरस का रूंधन कर योग के प्रत्याख्यान करने से जीव को कौन से गुण की प्राप्ति होवे? अहो गौतम! योग के प्रत्याख्यान करने से अयोगी होवे अर्थात् योगों की चपलता रहित होवे। अयोगी बने जीव नव कर्मों का बन्धन नहीं करे और पुराने कर्मों की निर्जरा करे॥३७॥

सरीर पच्चक्खाणेणं भंते! जीवे किं जणयइ? सरीर पच्चक्खाणेणं सिद्धातिसयगुणकित्तणं निव्वत्तेइ, सिद्धाईसयगुण संपन्नेय णं जीवे लोगग्गभावभुवगए परमसुही भवइ॥३८॥

अहो भगवन्! शरीर की शोभा शुश्रुषा के प्रत्याख्यान करने से जीव को कौन से गुण की प्राप्ति होवे? अहो गौतम! शरीर के प्रत्याख्यान करने से सिद्ध के अतिशय गुण कर संयुक्त होवे (सिद्ध के ३१ अतिशय ४ वर्ण, २ गंध, ५ रस, ८ स्पर्श, ५ संस्थान, ३ वेद, ९ काया, ९ मृत्यु रहित हैं। वैसा वह भी बने) सिद्धातिशय गुण को प्राप्त हुआ जीव लोगाग्र मोक्ष स्थान में संस्थित होवे सुखी बने॥३८॥

सहाय पच्चक्खाणेणं भंते! जीवे किं जणयइ? सहाय पच्चक्खाणेणं एगीभावं जणयइ, एगीभावभूए वि य णं जीवे एगग्गं भावेमाणे अप्पसद्दे, अप्पझंजे अप्पकलहे अप्पकसाए अप्पतुंतुमे, संजमबहुले, संवरबहुले, समाहिएयावि भवइ॥३९॥

अहो भगवन्! सहायक (शिष्य चेला) के प्रत्याख्यान करने से जीव को कौन से गुण की प्राप्ति होवे? अहो गौतम! अपना शिष्य करने का प्रत्याख्यान करने से एकीभावपना उपार्जन करे, अकेला बना जीव एकत्व भावना भावता हुआ उसे झिझककर बोलना नहीं पड़े, क्लेश करना नहीं पड़े, अभिमान रूप कषाय नहीं होवे, किसी को तू कारे से बोलाना नहीं पड़े और उसके संयम की वृद्धि होवे, संवर की वृद्ध होवे, सदैव समाधि भाव में अनुरक्त रहे॥३९॥

भत्त पच्चक्खाणेणं भंते! जीवे किं जणयइ? भत्तपच्चक्खाणेण अणेगाइ भव सयाइ निरुंभइ॥४०॥

अहो भगवन्! भक्त प्रत्याख्यान भोजन के त्याग करने से जीव को कौन से गुण की प्राप्ति होती है? अहो गौतम! भक्त प्रत्याख्यान करने से अनेक सहस्त्रों भवों में परिभ्रमण का नाश कर थोड़े ही भव में संसार पार होवे॥४०॥

सब्भाव पच्चक्खाणेणं भंते! जीवे किं जणयइ? सब्भाव पच्चक्खाणेणं, अनियट्टिं जणयइ, अनयट्टिं पडिवन्ने य अणगारे चत्तारि केवलि कम्मंसे खवेइ, तंजहा-वेयणिज्जं, आउयं, नामं, गोयं, तओ पच्छा सिज्झइ, बुज्झइ, मुच्चई, परिनिप्वायइ, सव्व दुक्खाण मंतं करेइ॥४१॥

अहो भगवन्! जीव के सद्भाव प्रत्याख्यान करने से जीव को कौन से गुण की प्राप्ति होवे? अहो गौतम! सद्भाव के प्रत्याख्यान करने से जीव अनिवृत्ति शुल्कध्यान युक्त बने, अनिवृत्ति करण प्राप्त हुआ साधु केवल ज्ञानी के जो चार अघातिक कर्म रहे थे उनके नाम–१ वेदनीय, २ आयुष्य, ३ नाम और ४ गौत्र इन का क्षय हुये बाद सिद्ध बुद्ध मुक्त हो सर्व दुःख का अन्त करे॥४१॥

पडिरूव याएणं भंते! जीवे किं जणयइ? पडिरूवयाएणं, लाघवियं जणयइ, जघुभूएणं जीवे अप्पमत्ते, पागडलिंगे पसतथालिंगे, विसुद्धसम्मत्ते, सत्तसमिइसमत्ते, सव्व पाणभूय-जीवसत्तेसुवीससणिज्जरूवे, अप्पडिलेह जिइंदिए, विउलतवसमिइसमन्नागए यावि भवइ॥४२॥

अहो भगवन्! प्रतिरूपता अर्थात् जैसा साधु का बाह्य लिंग है वैसा ही साधु के गुण अन्दर होने से उस जीव को कौन से गुण की प्राप्ति होती है? अहो गौतम! प्रतिरूपता धारण करने से वह द्रव्य से अल्प उपकरण वाला और भाव से अप्रतिबन्धपना उपार्जन करे, यों दोनों प्रकार हल्का होवे, वह प्रमाद रहित होवे और उसका वेष निश्चय में तथा व्यवहार में दोनों प्रकार से शुद्ध होवे, और उसका जो वेष रजोहरण मुख वस्त्रिकादि है वे सब जीवदया के हेतू भूत है। वह निर्मल सम्यक्त्व का धारक होता है। उसका सम्यक्त्व धैर्यता पांच समिति आदि साधु के गुण सम्पूर्ण है। जिससे वह सब प्राणी बेइन्दिय आदि सब भूतवनस्पति, सब जीव पंचेन्दिय और सब सत्व पृथव्यादि इन सबका विश्वास पात्र होता है। वह किसी का हिंसा नहीं करे, इसलिये उससे भी कोई डरे नहीं, और भी जिस के अल्प उपकरण है। उसका प्रतिलेखनादि कार्य भी थोड़ा होता है जिस कर ज्ञानाभ्यास इन्द्रिय जय विस्तीर्ण तप समिति आदि अनेक गुणों को वृद्धि होवे॥४२॥

वेयावच्चेणं भंते! जीवे किं जणयइ? वेयावच्चेणं तित्थयर णाम गोत्तं कम्मं निबन्धइ॥४३॥

अहो भगवन्! वैयावच्च से जीव को कौन से गुण की प्राप्ति होवे? अहो गौतम! आचार्यादि की वैयावच्च करने से जीव तीर्थंकर गोत्र नाम कर्म का उपार्जन करे॥४३॥

सव्व गुण संपन्नयाएणं भंते! जीवे किं जणयइ? सव्व गुण संपन्नयाए अपुणरावत्तिं जणयइ, अपुणरावत्तिं पत्तएयणं जीवे सारीर माण साणं दुक्खाणं नो भागी भवइ॥४४॥

अहो भगवन्! ज्ञानादि सब गुण सम्पन्न होवे उस जीव को कौन से गुण की प्राप्ति होवे? अहो गौतम! सब गुण सम्पन्न पुनरावृत्ति कर रहित जो मोक्ष गति में जावे कि जहाँ से वापस संसार में अवतार नहीं लेना पड़े, और जो जीव संसार से पुनः अवतार नहीं लेगा वह जीव व्याधि वेदनादि शारीरिक दुःख और चिन्ता रूप मानसिक दुःख का भोगने वाला नहीं होवेगा॥४४॥

वीयरागयाएणं भंते! जीवे किं जणयइ? वीयरागयाएणं नेहाणुबंधणाणि तण्हाणुबंधणाणि य वोच्छिंदइ, मनुन्नामणुन्नेसु-सद्द-फरिस-रूव-गंधेसु सचितासचित मीस एसु चेव विरज्जइ॥४५॥

अहो भगवन! राग द्वेष रहित वीतराग भाव धारण करने से जीव को कौन से गुण की प्राप्ति होती है? अहो गौतम! वीतरागता धारण करने से जीव स्नेहरूप बन्धन लोभरूप बन्धन का छेदन करे, मनोज्ञ अमनोज्ञ शब्द रूप गंध रस स्पर्श में विरक्त धारण करे॥४५॥

खंतीएणं भंते! जीवे किं जणयइ? खंतीएण परिसहे जिणइ॥४६॥

अहो भगवन्! क्षमा करने से जीव को कौन से गुण की प्राप्ति होवे? अहो गौतम! क्षमा करने से प्राप्त होते परिषह उपसर्ग का जय करने वाला होवे॥४६॥

मुत्तीएणं भंते! जीवे किं जणयइ? मुत्तीएणं अकिंचणं जणयइ, अकिंचणे य जीवे अत्थलोलाणं अपत्थणिज्जो भवइ॥४७॥

अहो भगवन्! मुक्ति निर्लोभता धारण करने जीव को कौन से गुण की प्राप्ति होवे? अहो गौतम! निर्लोभता धारण करने से अकिंचन (धन रहित) वृतिवाला होवे, अकिंचन वृत्तिवाला जीव जो अर्थ के लोलुपी चोरादि जीव हैं उनका अप्रार्थनीय होवे अर्थात् वे उसे लूटने का विचार करें॥४७॥

अज्जवयाएणं भंते! जीवे किं जणयइ? अज्जवयाएणं काउज्जुययं भावुज्जुययं, भावुज्जुययं अविसंवायणं जणयइ, अविसंवायण संपन्नयाएणं जीवे धम्मस्स आराहए भवइ॥४८॥

अहो भगवन्! आर्यता-सरलता-निष्कपटता रूप गुण धारण करने से जीव को कौन से गुण की प्राप्ति होवे? अहो गौतम! सरलता धारण करने से काया का भी सरल होवे, भाव-अभिप्राय का भी सरल वचन भाषा सरल होवे, मन वचन काया के योगों की विषमता रहित होवे और मनादि योगों की अविषमता धारण किया हुआ जीव अवक्रता नहीं करता हुआ श्रुतधर्म चारित्र धर्म का आराधक होवे॥४८॥

मद्दवयाएणं भंते! जीवे किं जणयइ? मद्दवयाएणं अणुस्सियत्तं जणयइ अणुस्सियत्तेणं जीवे मिउमद्दवसंपन्ने अट्ठ मयठाणाइं निट्ठावेइ॥४९॥

अहो भगवन्! मार्दवता-निरभिमानी जीव को कौन से गुण की प्राप्ति होवे? अहो गौतम! अहंकार रहित जीव को अनुत्सुकता (उछरंग रहित) रूप गुण की प्राप्ति होवे अनुद्धत बना जीव मृदु कोमल नम्र स्वाभाव वाला बने, अहंकार रहित जीव–१ जाति, २ कुल, ३ बल, ४ रूप, ५ तप, ६ श्रुत, ७ लाभ, ८ ऐश्वर्य, इन आठों मद के स्थान से निवृत्ति भाव धारण करे॥४९॥

भावसच्चेणं भंते! जीवे किं जणयइ? भावसच्चेणं भावविसोहिं जणयइ। भावविसोहीए वट्टमाणेजीवे अरहंतपण्णत्तस्स धम्मस्स आराहणयाए अब्भुट्ठेइ। अरहंतपण्णत्तस्स धम्मस्स आराहणयाए अब्भुट्ठित्ता परलोग धम्मस्स आराहए भवइ॥५०॥

अहो भगवन्! भाव की सत्यता अर्थात् अन्तःकरण की विशुद्धता करने से जीव को कौन से गुण की प्राप्ति होवे? अहो गौतम! भाव की सत्यता रखने से जीव भाव की विशुद्धता रूप गुण की उपार्जना करता है, भाव विशुद्ध बना जीव अर्हत प्रणीत धर्म के आराधन में उद्यमवंत होवे और जो अर्हत प्रणीत धर्म को आराधने में उद्यमी बना वह परलोक में भी धर्म का आराधिक होवे॥५०॥

करण सच्चेणं भंते! जीवे किं जणयइ? करणसच्चेणं करणसत्तिं जणयइ, करण सच्चे वट्टमाणे जीवे जहा वाई तहा कारीयावि भवइ॥५१॥

अहो भगवन्! साधु की प्रतिलेखनादि जो क्रिया है उसकी विशुद्धता करते हुये जीव को कौन से गुण की प्राप्ति होवे? अहो गौतम! क्रिया की विशुद्धता कर जीव को क्रिया करने का सामर्थ्य (बल) प्राप्त होवे, और विधी युक्त क्रिया करता हुआ वह जिस प्रकार अन्य को क्रिया करने का उपदेश करता है वैसे ही स्वयं भी करने वाला होता है॥५१॥

जोग सच्चेणं भंते! जीवे किं जणयइ? जोग सच्चेणं जोगं विसोहेइ॥५२॥

अहो भगवन्! मन वचन काया के योगों की सत्यता कर जीव को कौन से गुण की प्राप्ति होवे? अहो गौतम! योग प्रवर्ती को सत्यता कर मनादि त्रियोग के जो दोषों हैं उनके रहित होवे॥५२॥

मणगुत्तयाएणं भंते! जीवे किं जणयइ? मणगुत्तयाए णं जीवे एगग्गं जणइ, एगग्गचित्ते णं जीवे मणगुत्ते संजमाराहए भवइ॥५३॥

अहो भगवन्! पाप विचार से मन को गुप्त कर रखने से जीव को कौन से गुण की प्राप्ति होती है। अहो गौतम! मनगुप्ति करने से जीव धर्म में चित्तवृत्ति को एकाग्र कर सकता है। और धर्म में चित्त की एकाग्रता होने से वह जीव संयम का आराधक होता है॥५३॥

वयगुत्तयाए णं भंते! जीवे किं जणयइ? वयगुत्तयाएणं निव्वियारत्तं जणयइ, निव्विकारे णं जीवे वइगुत्ते अज्झप्पजोग साहणजुत्तेयावि भवइ॥५४॥

अहो भगवन्! पापोच्चार से वचन को गुप्त रखने से जीव को कौन से गुण की प्राप्ति होती है? अहो गौतम! वचन गुप्ति करने से विकथा (अनर्गल बातों) का करने वाला नहीं होता है, विकथा नहीं करता हुआ वचन को गुप्त रखने से स्वाध्याय ध्यानादि व्यापार की वृद्धि करने वाला होता है॥५४॥

कायगुत्तयाएणं भंते! जीवे किं जणयइ? कायगुत्तयाएणं संवरं जणयइ, संवरेणं कायगुत्ते पुणो पावासवनिरोहं करेइ॥५५॥

अहो भगवन्! पापाचार से काया की गुप्ति करने से जीव को कौन से गुण की प्राप्ति होती है? अहो गौतम! काया गुप्ति करने से स्वंय धर्म की उपार्जना करता है। संवर धर्म उपार्जन कर काया गुप्ति युक्त जीव पाप के आने के आश्रव द्वारों का निरूंधन करता है॥५५॥

मण समाहारण याएणं भंते! जीवे किं जणयइ? मणसमाहारणयाए णं एगग्गं जणयइ एगग्गंजणइ त्ता नाण पज्जवे जणयइ, नाणपज्जवे जणइत्ता सम्मत्तं विसोहेइ, मिच्छत्तं च निज्जरेइ॥५६॥

अहो भगवन्! मन की समधारा धर्म ध्यानादि में प्रवर्तन करने से जीव को कौन से गुण की प्राप्ति होती है? अहो गौतम! मन की समधारा प्रवर्तने से धर्म ध्यान में चित्त की एकाग्रता होती है। और धर्म में चित्त की एकाग्रता होने से ज्ञान के पर्याय की उपार्जना होती है। जिस के ज्ञान के पर्याय की उपार्जना होती है। उसके सम्यक्त्व की निर्मलता विशुद्धता होकर मिथ्यात्व मैल दूर होता है॥५६॥

वय समाहारणयाएणं भंते! जीवे किं जणयइ? वय समाहारणयाए णं वयसाहारणदंसण पज्जवे विसोहे वयसाहारण दंसण पज्जवे विसोहित्ता सुलह बोहियत्तं निव्वत्तेइ, दुल्लह बोहियत्तं निज्जरेइ॥५७॥

अहो भगवन्! वचन की समधारा वांचन पृछन परियट्टन धर्म कथा में प्रवृत्ति करने से जीव को कौन से गुण की प्राप्ति होती है? अहो गौतम! वचन की समधारा होने से जीव सम्यक्त्व के पर्याय की निर्मलता करता है। जिसके सम्यक्त्व के पर्याय की निर्मलता हूई वह जीव सुलभ बोधीपने की उपार्जना करता है और दुर्लभ बोधता का निकन्दन करता है॥५७॥

काय समाहारणयाए णं भंते! जीवे किं जणयइ? काय समाहारणयाए चरित्त पज्जवे विसोहेइ, चरित्त पज्जवे विसोहित्ता अहक्खाय चरित्तं विसोहेइ, अहक्खाय चरित्तं विसोहित्ता चत्तारि केवली कम्मंसे खवेइ, तओ पच्छा सिज्झइ, बुज्झइ, मुच्चइ, परिनिव्वायइ, सव्व दुक्खाण मंतं करेइ॥५८॥

अहो भगवन्! काया की समधारा तप जप संयमादि में प्रवर्ता ने जीव को कौन से गुण की प्राप्ति होती है? अहो गौतम! काया की समधारा प्रवर्तने से जीव चारित्र के पर्याय की निर्मलता करता है। चारित्र पर्याय की विशुद्धिवाला जीव अनुक्रम से यथाख्यात चारित्र को प्राप्त करता है। जब यथाख्यात चारित्र पर्याय निर्मल हुये तब–१ वेदनीय, २ आयुष्य, ३ नाम और ४ गोत्र इन चारों अघातिक कर्मों का क्षय कर फिर सर्व कार्य की सिद्धि से सिद्ध होता है। सर्वज्ञ हो बुद्ध होता है। संसार से मुक्त होता है। कषाय अग्नि बुझा शीतल होता है। और जन्मादि सर्व दुःख का क्षय करता है॥५८॥

नाण संपन्नयाए णं भंते! जीवे किं जणयइ? नाण संपन्नयाएणं जीवे सद्दभावाहिगमं

जणयइ, नाणसंपन्नेणं जीवे चाउरंते संसारकंतारे न विणस्सइ, जहा सूई ससुत्ता न विणस्सइ, तहा जीवे ससुत्ते संसारे न विणस्सइ, नाणविणय तवचरित्त जोगे संपाउणइ, ससमय परसमय विसारएय असंघायणिज्जे भवइ॥५९॥

अहो भगवन्! श्रुतादि ज्ञान युक्त होने से जीव को कौन से गुण की प्राप्ति होती है? अहो गौतम! श्रुतादि ज्ञान सम्पन्न होने से जीव सर्व जीवादि नव ही पदार्थ का ज्ञान उपार्जन करता है। और ज्ञान युक्त बना जीव चारों गति संसार रूपी अटवी में विनाश नहीं पाता है अर्थात् मुक्तिपंथ से दूर नहीं होता है। जिस प्रकार सूत-धागे से युक्त सूई होती है। वह खोती नहीं है। वैसे वह भी जीव सिद्धान्त प्रवचन का ज्ञान कर संसार में विनाश को प्राप्त होता नहीं है। परन्तु विनय तप चारित्र योग्य प्रधान व्यापार को प्राप्त होता है और स्वसमय जैन मत तथा पर समय अन्य मत दोनों के सिद्धान्त को परस्पर मिलाकर शुद्ध तत्त्व स्वरूप का जानकार होता है॥५९॥

दंसण संपन्नयाए णं भंते! जीवे किं जणयइ, दंसणसंपन्नयाएणं भावमिच्छत्त छेयणं करेइ, परं न विज्झायइ, परं अविज्झाए माणे अणुत्तरेणं नाणदंसणेणं अप्पाणं संजोएमाणे सम्मं भावेमाणे बिहरइ॥६०॥

अहो भगवन्! दर्शन सम्यक्त्व सहित जीव होवे उसे कौन से गुण की प्राप्ति होती है? अहो गौतम! दर्शन युक्त जीव भव करने के हेतु जो मिथ्यात्व है उसका निकन्दन करता है। वह उत्कृष्ट उस ही भव में केवल ज्ञान की प्राप्ति कर सकता है। सम्यक्त्वी जीवों का ज्ञान रूप दीपक का प्रकाश कदापि मन्द होता नहीं है। उत्कृष्ट केवल ज्ञान तक वह प्रकाश को बढ़ा सकता है। प्रधान दर्शन गुण में अपनी आत्मा का स्थापन कर सत्य भाव से आत्मा को प्रकाशित करता हुआ विचरता है॥६०॥

चरित्तसंपन्नयाए णं भंते! जीवे किं जणयइ? चरित्त संपन्नयाए णं सेलेसी भावं जणयइ, सलेसिं पडिवन्ने य अणगारे चत्तारि केवलि कम्मंसे खवेइ, तओ पच्छा सिज्झइ, बुज्झइ, मुच्चइ, परिनिव्वायइ सव्वदुक्खाणमंतं करेइ॥६१॥

अहो भगवन्! सामायिकादि चारित्र सम्पन्न होने से जीव को कौन से गुण की प्राप्ति होती है? अहो गौतम! चारित्र सम्पन्न जीव शैलेषी (पर्वत जैसी योगों की स्थिरता रूप) करण की उपार्जना करता है और शैलेषी भाव अंगीकार करने वाल साधु-१ वेदनीय, २ आयुष्य और ३ नाम और ४ गोत्र इन चारों कर्मों का क्षय कर सिद्ध बुद्ध मुक्त शीतल हो सब दुःख का अन्त करता है॥६१॥

सोइंदिय निग्गहेणं भंते! जीवे किं जणयइ? सोइंदिय निग्गहेणं मणुन्नामणुन्नेसु सद्देसु रागदोस निग्गहं जणयइ तप्पच्चइयं कम्मं न बंधइ, पुव्वबद्धं च निज्जरेइ॥६२॥

अहो भगवन्! श्रोतान्द्रिय को जीव मिश्र के शब्द से निग्रह करने से जीव को कौन से गुण की प्राप्ति होती है? अहो गौतम! श्रोतेन्द्रिय का निग्रह करने से जीव मनोज्ञ अमनोज्ञ शब्द से राग द्वेष करने से निवर्तता है। राग द्वेष से निवृत्ति पाया जीव शब्द कर्म बन्धन नहीं करता है और प्रथम बन्धे हुए कर्मों की निर्जरा करता है॥६२॥

चक्खिंदिय निग्गहेणं भंते! जीवे किं जणयइ? चक्खिंदिय निग्गहेणं मणुन्नामणुन्नेसु रूवेसु रागदोस निग्गहं जणयइ, तप्पच्चइयं कम्मं न बधइ, पुव्वबद्धं च निज्जरेइ॥६३॥

अहो भगवन्! कृष्ण नील रक्त पित श्वेत रंग के पुद्गलों के अवलोकन से चक्षुइन्द्रिय का निग्रह करने से जीव कौन से गुण की प्राप्ति होती है? अहो गौतम! चक्षुइन्द्रिय का निग्रह करने से मनोज्ञ अमनोज्ञ रूप में राग द्वेष नहीं करता है। राग द्वेष का निग्रह होने से जीव चक्षु इन्द्रिय कर नए कर्म का बंध नहीं करता है। और प्रथम बन्धे हुए कर्मों की निर्जरा करता है॥६३॥

घाणिंदिय निग्गहेणं भंते! जीवे किं जणयइ? घाणिंदिय निग्गहेणं मणुन्नामणुन्नेसु गंधेसु रागदोस निग्गहं जणयइ, तप्पच्चइयं कम्मं नबंधइ पुव्वबद्धं च निज्जरेइ॥६४॥

अहो भगवन्! प्रिय व अप्रिय गन्ध से घ्राणेन्द्रिय (नाक) का निग्रह करने से जीव को कौन से गुण की प्राप्ति होती है? अहो गौतम! घ्राणेन्द्रिय के निग्रह करने से जीव मनोज्ञ अमनोज्ञ गंध में राग द्वेष को प्राप्त नहीं होता है। गंध में राग द्वेष नहीं करने से जीव घ्राणेन्द्रिय कर नए कर्म की उपार्जन नहीं करता है। और प्रथम उपार्जन किये हुए कर्मों की निर्जरा करता है॥६४॥

जिब्भिंदिय निग्गहेणं भंते! जीवे किं जणयइ? जिब्भिंदिय निग्गहेणं मणुन्नामणुन्नेसु रसेसु रागदोस निग्गहं जणयइ, तप्पच्चइयं कम्मं न बंधइ, पुव्वबद्धं च निज्जरेइ॥६५॥

अहो भगवन्! खट्टा, मधु, तीखा, कटु, कषायले रस से रसेन्द्रिय का निग्रह करने से जीव को कौन से गुण की प्राप्ति होती है? अहो गौतम! रसनेन्द्रिय का निग्रह करने से जीव मनोज्ञ अमनोज्ञ रस में राग द्वेष को प्राप्त नहीं होता है। स्पर्श से राग द्वेष से निवृत्ता जीव रसनेन्द्रिय कर नवीन कर्म का बन्धन नहीं करता है। और पहले बन्धे कर्म की निर्जरा करता है॥६५॥

फासिंदिय निग्गहेणं भंते जीवे किं जणयइ? फायिंदिय निग्गहेणं मणुन्नामणुन्नेसु फासेसु रागदोसनिग्गहं जणयइ, तप्पच्चइयं कम्मं न बंधइ, पुव्वबद्धं च निज्जरेइ॥६६॥

अहो भगवन्! लघु गुरु शीत ऊष्ण, मृदु, कठिन, ऋक्ष स्निग्ध इन आठों स्पर्श से स्पर्शेन्द्रिय का निग्रह करने से जीव को कौन से गुण की प्राप्ति होती है? अहो गौतम! स्पर्श इन्द्रिय का निग्रह करने से मनोज्ञ अमनोज्ञ स्पर्श को प्राप्त हो राग द्वेष नहीं करता है। स्पर्श से राग द्वेष की निवृत्ति वाला जीव स्पर्श कर नए कर्म का बन्ध नहीं करता है। पहले बन्धे हुए कर्मों की निर्जरा करता है॥६६॥

कोहविजएणं भंते! जीवे किं जणयइ? कोहविजएणं खंतिं जणयइ, कोहवेयाणिज्जं कम्मं न बंधइ, पुव्वबद्धं च निज्जरेइ॥६७॥

अहो भगवन्! क्रोध कषाय जीतने से जीव को कौन से गुण की प्राप्ति होती है? अहो गौतम! क्रोध कषाय को विजय पाने से क्षमा गुण की प्राप्ति करता है। क्रोध से जो कर्मों का बन्धन होता है। वह उसके नहीं होता है। और पहले बन्धन किये कर्मों की निर्जरा करता है॥६७॥

माणविजएणं भंते! जीवे किं जणयइ? माणविजएणं मद्दवं जणयइ, माणवेयणिज्जं कम्मं न बंधइ, पुव्वबद्धं च निज्जरेइ॥६८॥

अहो भगवन्! मान, कषाय का विजय करने से जीव को कौन से गुण की प्राप्ति होती है? अहो गौतम! मान, कषाय का विजय करने से मार्दव गुण–अहंकार रहितता प्राप्त करता है। मान कर जो कर्म बन्धते हैं। उन कर्मों का बन्धन वह नहीं करता है। और पहले बन्धे हुए कर्मों की निर्जरा करता है॥६८॥

मायाविजएणं भंते! जीवे किं जणयइ? मायाविजएणं अज्जवं जणयइ, मायावेयणिज्जं कम्मं न बंधइ, पुव्वबद्धं च निज्जरेइ॥६९॥

अहो भगवन्! माया कषाय का विजय करने से जीव को कौन से गुण की प्राप्ति होती है? अहो गौतम! माया कषाय का विजय करने से आर्यता सरलता रूप गुण की प्राप्ति होती है। माया कर जो कर्म बन्धन हैं वे उसके नहीं बंधते हैं और पहले बन्धे कर्मों की निर्जरा करता है॥६९॥

लोभविजएणं भंते! जीवे किं जणयइ? लोभविजएणं संतोसं जणयइ। लोभवेयणिज्जं कम्मं न बंधइ पुव्वबद्धं च निज्जरेइ॥७०॥

अहो भगवन्! लोभ कषाय का विजय करने से जीव को कौन से गुण की प्राप्ति होती है? अहो गौतम! लोभ कषाय का विजय करने से संतोष रूप गुण की प्राप्ति होती है। लोभ कर जो कर्म बन्धते हैं। वे उसके नहीं बंधते हैं। और पहले बन्धे कर्मों की निर्जरा होती है॥७०॥

पिज्जदोस मिच्छादंसण विजएणं भंते! जीवे किं जणयइ? पिज्जदोस मिच्छादंसण विजएणं नाण दंसण चरित्ताराहणयाए अब्भुट्ठेइ, अट्ठविहस्स कम्मस्स्स कम्मगंठि विमोयणयाए तप्पढमयाए जहाणुपुव्वीए अट्ठवीसविहं मोहणिज्जं कम्मं उग्घाएइ, पंचविहं नाणावरणिज्जं नवविहं दंसणावरणिज्जं पंचविहं अंतराइयं, एएतिन्निवि कम्मंसे जुगवं खवेइ, तओ पच्छा अणुत्तरं अणंतं कसिणं, पडिपुण्णं, निरावरणं वितिमिरं, विसुद्धं, लोगालोगप्पभावं, केवल-वरणाण दंसणसमुप्पादेइ, जाव सजोगी भवइ, ताव इरियाबहियं कम्मं निबंधइ, सुहफरिसं दुसमयठिइयं तं पढमसमए बद्धं, विइय समए वेइयं, तइय समए निज्जिण्णं, तं बद्धं पुट्ठं उदीरियं वेइयं निज्जिण्णं सेयालेय अकम्मं चावि भवइ॥७१॥

अहो भगवन्! राग द्वेष तथा मिथ्यात्व दर्शन इन तीनों को जीतने से जीव को कौन से गुण की प्राप्ति होती है? अहो गौतम! राग द्वेष मिथ्यात्व दर्शन का विजय करने से ज्ञान दर्शन चारित्र रूप गुण की आराधना करने में जीव उद्यमी बनता है। और जो अति दुःखरता से क्षय को ऐसी आठ कर्म रूप ग्रन्थी को क्षय करने का उद्यम करता है और जिस मोहनीय कर्म का प्रथम क्षय नहीं हुआ था उस मोहनीय कर्म की अठाईसवीं प्रकृति का अनुक्रम से क्षय करता है। मोहनीय कर्म के क्षय होने से पांच ज्ञानावर्णिय नव दर्शनावर्णिय और पांच अन्तराय, इन तीनों कर्मों के अंश को एक ही साथ में क्षय करता है। फिर अनुत्तर–सर्व ज्ञानों में प्रधान कृत्स्न अखण्ड प्रतिपूर्ण आवरन पडल ढक्कन रहित, अज्ञान अन्धकार रहित विशुद्ध निर्मल लोकालोक का प्रकाशक, प्रधान केवल ज्ञान केवल दर्शन की प्राप्ति करता है। वे केवल ज्ञानी के जहाँ तक मन वचन काया के योगों की प्रवृत्ति रहती है। वहाँ तक ईर्या वही कर्म बन्धन करते हैं। वह बन्ध सुखप्रद होता

है परन्तु दुःख प्रद नहीं होता है। उस बन्ध की केवल दोसमय की ही स्थिति होती है। अर्थात् प्रथम समय बन्ध कर दूसरे समय उसे वेद कर तीसरे समय में उसकी निर्जरा कर देता है। यों इर्यावही कर्म बन्धा, स्पर्शन किया उदय आया भोगवा और वह कर्म क्षय भी हो गया, इसलिये अनागत काल चौथे समय में वे कर्म रहित हो जाते हैं॥७१॥

अह आउयं पालइत्ता अतोमुहुत्तद्धावसेसाए जोगनिरोहं करेमाणे सुहुम किरियं अप्पडिवाइं सुक्कज्झाणं झायमाणे मणजोगं निरुब्भइ, वइजोगं निरुब्भइ, आणपाणनिरोहं करेइ, इसि पंच रहस्सक्खरुच्चारणट्ठाए य णं अणगारे समुच्छिन्नकिरियं अनियट्टि सुक्कज्झाणं झियायमाणे वेयणिज्जं, आउयं, णामं, गोयं, च एए चत्तारि कम्मं जुगवं खवेइ॥७२॥

उन केवली भगवान का अन्तर्मुहूर्तादि कुछ कम क्रोड पूर्व पर्यन्त जितना आयुष्य होता है। उतना पालन कर शेष अन्तर मुहूर्त आयुष्य रहे तब मन वचन काया के योगों का व्यापार प्रवर्ती का निरूंधन कर जिस को ग्रहण कर पीछा पड़ना न हो ऐसा शुक्ल ध्यान के तीसरे भेद को ध्याते हुए प्रथम मन का व्यापार का रूंधन करें। फिर वचन योग का निरूंधन करे, फिर काया योग का रूंधन करे। फिर श्वासोश्वास को रूंधें, फिर अ, इ, उ, ऋ, लृ इन पांचों स्वर का उच्चार करने में जितना काल लगता है। उतने काल में शैलशी (पर्वत जैसी) अवस्था में रहे वे साधु मन वचन काया की क्रिया रहित बने, ये कर्मों का क्षय किये बिना सध्यान की निवृत्ति होवे नहीं ऐसा शुक्ल ध्यान का चौथे चरण को ध्याकर १ वेदनीय, २ आयुष्य, ३ नाम और ४ गौत्र इन चारों कर्मों के अंश को एक ही समय में क्षय करें॥७२॥

तओ ओरालियं तेयं कम्माइं सव्वाहिं विप्पजहणाहिं विप्पजहित्ता, उज्जु सेढि पत्ते अफुसमाणगइ उड्ढं, एगसमएणं अविग्गहेणं तत्थ गंता सागरोवउत्ते सिज्झइ, बुज्झइ, जाब अंतंकरेइ॥७३॥ एस खलु सम्मत्त परक्कमस्स अज्झयणस्स अट्ठे समणेणं भगवया महावीरेणं-आघविए, पन्नविए, दंसिए, उवदंसिए॥ त्ति बेमि॥

इति सम्मत्त परकम्मे नामज्झयणं सम्मत्तं॥२९॥

तब फिर-१ औदारिक, २ तेजस ४ कार्मन इन तीनों शरीर का सर्वथा त्याग कर वक्र नहीं परन्तु ऋजु सरल आकाश की श्रेणी में प्रतिपन्न हुऐ जितने आत्मा के प्रदेश हैं। उतने ही आकाश प्रदेश का स्पर्श न करने ज्यादा प्रदेश को बिना छुये एक ही समय मात्र में उर्ध्वगति में मोक्षगति पर्यन्त गमन करें, वहाँ ज्ञान उपयोग सहित सर्व अर्थ काम की सिद्ध होवे, सर्वज्ञ तत्त्वज्ञ बुद्ध बने संसार से मुक्त होवे, शीतलीभूत होवे, सर्व दुःख का क्षय कर परम सुख के भोक्ता बने॥७३॥

श्री सुधर्मा स्वामी जी कहते हैं कि अहो जम्बू निश्चय से यह सम्यक्त्व में पराक्रम पुष्टता का कर्ता अध्ययन श्रमण भगवंत श्री महावीर स्वामी जी ने सक्यक् प्रकार कहा, सभी ७३ बोल का फल बताया, स्वरूप कर प्ररूपन किया, बहुत भेद दृष्टान्त कर समझाया, द्वादश परिपदा में उपदेशा, मैंने जैसा भगवंत के मुख से सुना वैसा तुम से कहा॥

सम्यक्त्व पराक्रम नाम का उनतीसवां अध्ययन सम्पूर्ण।

३०

तीसइमं तवमग्गगइज्जं अज्झयणं
तपमार्ग नामकं त्रिंशत्तममध्ययन्

उन्तीसवें अध्ययन में सम्यक्त्व पराक्रम कहा, तो जो सम्यक्त्व पराक्रम सहित तप करे वही योग्य गिना जावे इसलिये तीसवें अध्ययन में तप का कथन कहते हैं। श्री सुधर्मा स्वामीजी कहते हैं–

जहा उ पावगं कम्मं, राग-दोससमज्जियं।
खवेइ तवसा भिक्खू, तकेगग्गमणो सुण॥१॥

अहो जम्बू! इस जीव ने जो राग द्वेष करके पाप कर्मों का उपार्जन किया है। उन कर्मों का नाश साधु तप करके करते हैं उसका अधिकार मैं कहता हूँ सो तुम दत्त चित्तकर श्रवण करो॥१॥

पाणिवह-मुसावाया, अदत्त-मेहुण-परिग्गहा
विरओ राईभोयणविरओ, जीवो भवइ अणासवो॥२॥

प्राणवध–जीव हिंसा, मृषावाद झूठ बोलना। अदत्तादान-चोरी करना, मैथुन-स्त्री आदि का सेवन, परिग्रह-पुद्गलों पर मूर्छा, और रात्रि में चारों आहार का भोगवना। इन छः ही कर्मों का जिन्होंने त्याग किया है वे जीव नवीन कर्मों को ग्रहण करने से निवर्ते हैं॥२॥

पंचसमिओ तिगुत्तो, अकसाओ जिइन्दिओ।
अगारवो य निस्सल्लो, जीवो भवइ अणासवो॥३॥

और जो पांच समिति तीन गुप्ति, चारों कषाय रहित, पांचों इन्द्रिय जीतने वाले, ऋद्धि आदि तीनों गर्व रहित, मायादि तीनों शल्य रहित। इन गुण कर सहित होते हैं वे भी नवे कर्मों को ग्रहण करने से (कर्म बन्ध से) निवर्ते हैं॥३॥

एएसिं तु विवच्चासे, राग-दोससमज्जियं।
खवेइ उ जहा भिक्खू, तं मे एगमणो सुण॥४॥

अहो शिष्य! उक्त ५ महाव्रत ५ समिति, ३ गुप्ति, ४ अकषायी, ५ जितेन्दि, ३ अमायी, ३ निशल्य। इन २९ गुनकर रहित पना प्रथम था उस वक्त जीवने राग द्वेष कर अतिशय पाप कर्मों का उपार्जन किया था उन कर्मों का आगम तो २९ गुण घात कर रोक दिया परन्तु प्रथम के संचित कर्म बाकी रहे हैं उसे तप कर क्षय करते हैं वही तप का अधिकार मैं तुम से कहता हूँ सो तुम दत्तचित्त श्रवण करो॥४॥

जहा महातलागस्स, सन्निरूद्धे जलागमे।
उस्सिंचणाए तवणाए, कमेणं सोसणा भवे॥५॥

इस पर दृष्टान्त ज्ञातव्य है जैसे महा तलाब में जो नालों का पानी आता था उसे तो पाल बान्ध नालों को बन्ध कर रोक दिया और अन्दर रहा हुआ प्रथम के पानी को निकालने से तथा सूर्य के अताप से अनुक्रम से शेष कर सुखाते हैं तब वह तलाब निर्लेप होता है॥५॥

एवं तं संजयस्सावि, पावकम्मनिरासवे।
भवकोडीसंचियं कम्मं, तवसा निज्जरिज्जइ॥६॥

इसी प्रकार निश्चय से संयम व्रत कर नए आते हुए कर्मों को तो रोक दिये और प्रथम के भवकोटी के संचित कर्मों को तपश्चर्या कर क्षय करते हैं॥६॥

सो तवो दुविहो वुत्तो, बाहिरिऽब्भंतरो तहा।
बाहिरो छब्विहो वुत्तो, एवमब्भंतरो तवो॥७॥

वह कर्म क्षय करने का तप दो प्रकार का कहा है यथा–१ बाह्य जो तप शरीर की दुर्बलतादि लक्षणों द्वारा प्रगट में देखने में आवे और २ आभ्यन्तर जो तप-प्रगट देखने में तो न आवे परन्तु गुप्त रूप से ही कर्मों का क्षय करे। इसमें बाह्य तप के भी छः प्रकार कहे हैं और आभ्यन्तर तप के भी छः प्रकार कहे हैं॥७॥

अणसणमूणोयरिया[1], [2]भिक्खारिया[3] य रसपरिच्चायो[4]।
कायकिलेसो[5] संलीणया[6], य बज्झो तवो होई॥८॥

अब छः प्रकार के बाह्य तप के नाम कहते हैं–१ अनशन, २ ऊणोदरी, ३ भिक्षाचरी, ४ रस परित्याग, ५ काया क्लेश और ६ प्रति संलिनता। यह छः प्रकार का बाह्य तप कहा॥८॥

इत्तरिय मरणकाला य, अणसण दुविहा भवे।
इत्तरिय सावकंखा निरवकंखा उ बिइज्जिया॥९॥
जो सो इत्तरियतवो समासेण छव्विहो।
सेढितवो पयरतवो घणो य तह होइ बग्गो य॥१०॥
तत्तो य वग्गवग्गो उ पंचमो छट्ठओ पइन्नतवो।
मणइच्छिचित्तत्थो नायव्वो होइ इत्तरिओ॥११॥

इसमें प्रथम अनशन तप का स्वरूप कहते हैं–अनशन तप दो प्रकार का यथा–१ इतरीय थोड़े (मर्यादित) काल का और २ अवकाहिक-जावज्जीव का। इसमें इतरिये तप छः प्रकार का कहा है। यथा–१ श्रेणी तप, नोकारसी, पोरसी यावत् एक उपवास दो उपवास यावत् छः महिने के उपवास यों छः महिने उपरांत तप नहीं हैं। २ प्रतर तप की विधी यंत्र से जानना सोले कोटे में जिस प्रकार अंक भरे हैं उस प्रकार अनुक्रम से तप करे। तप ८× ८+६४। ३ इस प्रकार कोष्टक में अंक आवे वैसा तप करे वह घन तप, ४ ऐसे ६४×६४=४०८६ कोष्टक में अंक आवे वैसा

तप करे वह वर्ग तप', ५ ऐसे ही ४०८६×४०८५=१६७७७२१ कोष्टक में अंक आवे वैसा तप करे वह 'वर्गावर्ग तप' ओर ६५ प्रकीर्ण तप सो कनकावली, रत्नावली, मुक्तावली, एकावली, लघुसिंह क्रीडा, वृद्ध सिंह क्रीडा, सर्वतोभद्र प्रतिमा, भद्रप्रतिमा, महा भद्रप्रतिमा, वज्रमध्यप्रतिमा, जवमध्यप्रतिमा, गुणरत्न संवत्सर तप, वर्ध आयंबिल वर्धमान तप इत्यादि अनेक प्रकार के जानना। यह अन्य तप के भेद हुए। इस प्रकार अनेक प्रकार के तप मोक्ष की अभिलाषा कर कर्म क्षयार्थ करते हैं जिसके भेद कहे॥९-११॥

१	२	३	४
२	३	४	१
३	४	१	२
४	१	२	३

जा सा अणसणा मरणे, दुविहा सा वियाहिया।
सवियारा मवियारा, कायचिट्ठं पई भवे॥१२॥

अब जो आवकाहिक तप जावज्जीव सम्बन्धी है उसे अनसन तप भी कहते हैं उसके दो भेद, तद्यथा–१ जो केवल तीन आहार के या चारों आहार के प्रत्याख्यान जावज्जीव पर्यंत करे परंतु हलन चलन विहारादि करे वह भक्त प्रत्याख्यान और जो आहार के तथा शरीर के दोनों के प्रत्याख्यान कर कटी हुई वृक्ष का डाली की तरह हलन चलन रहित जावज्जीव रहे सो पादोपगमन तप॥१२॥

अहवा सप्परिकम्मा अपरिकम्मा य आहिया।
नीहारिअनीहारी आहारच्छेओ य दोसु वि १॥१३॥

अथवा और भी अवकाहिक तप के छः प्रकार कहे हैं तद्यथा–१ जो भक्त प्रत्याख्यान कर अन्य साधुओं के पास से वैयावच्च कराके वह प्रतिक्रमण सहित होता है अर्थात् वे देवसी रायसी आदि प्रतिक्रमण करते हैं और २ जो पदोपगमन है वह अन्य साधु के पास वैयावच्च नहीं कराते हैं तथा प्रतिक्रमण भी नहीं करते हैं और भी दो भेद–१ एक ग्राम में करे उनके शरीर का निहारन होवे और जो ग्राम के बाहर गिरी कंदरादि में करे उनके शरीर का निहारन नहीं होवे। इन दोनों प्रकार के तप में जावज्जीव आहार का त्याग कहा। इति अशन तप॥१३॥

ओमोयरणं पंचहा, समासेण विहाहिय।
दव्वओ खेत्त-कालेणं, भावेणं पज्जवेहिं य ॥१४॥

अब दूसरा ऊणोदरी तप कहते हैं–इच्छा की पूर्ति करे नहीं वह ऊणोदरी तप पांच प्रकार से कहते हैं। तद्यथा–१ द्रव्य से, २ क्षेत्र से, ३ काल से, ४ भाव से और ५ पर्याय से॥१४॥

जो जस्स उ आहारो, तत्तो ओमं तु जो करे।
जहन्नेणेगसित्थाई, एवं दव्वेण ऊ भवे॥१५॥

जिस जीव का जितना आहार होवे उसमें से एक ग्रास-केवल मात्र कुछ कम आहार करे उसे द्रव्य से ऊणोदरी तप कहना॥१५॥

गामे नगरे तह रायहाणि, निगमे य आगरे पल्ली।
खेडे कब्बड-दोणमुह, पट्टण-मडंब-संबाहे॥१६॥
आसमपए विहारे, सन्निवेंसे समाय-घोसे।
थलि सेणा-खंधारे, सत्थे संबट्ट-कोट्टे य॥१७॥
वाडेसु व रत्थासु व, घरेसु वा एवमेत्तियं खेत्तं।
कप्पइ उ एवमाई, एवं खेत्तेण ऊ भवे॥१८॥

क्षेत्र से–१ जहाँ वस्तु का कर लगे ऐसे ग्राम में। २ जहाँ वस्तु का कर नहीं लगे ऐसे नगर में, ३ राजा रहता हो ऐसी राजधानी में, ४ बनीये की बस्ती बहुत हो ऐसे निगम में, ५ सुवर्णादि की खान हो ऐसे आगर में, ६ चोरों की बस्ति अधिक हो ऐसी पल्ली में, ७ जहाँ धूल का कोट हो ऐसे गांव में, ८ छोटा ग्राम हो ऐसे कर्बट में, ९ जहाँ जलपंथ स्थलपंथ दोनों हो ऐसे द्रोणमुख बंदर में, १० जहाँ सर्व प्रकार के पदार्थ मिले ऐसे पाटन में, ११ जहाँ चारों दिशाओं में अढाई-२ कोश ग्राम न हो ऐसे मंडप में। १२ पर्वत पर ग्राम हो ऐसे संवाह में, १३ जहाँ तापसों की बस्ती हो ऐसे आश्रम में, १४ जहाँ भिक्षकों की बस्ती हो ऐसे विहार में, १५ जहाँ गोपालकों की बस्ती हो ऐसे सन्नी वेस में, १३ जहाँ पंथीजन विश्राम लेते हों ऐसी सराय धर्मशालाओं में, १७ जहाँ गवादि गोकुल रहता हो ऐसे घोस में। १८ रेती के ढग हो ऐथली में, १९ जहाँ चतुरंगिणी सेना रहती हो ऐसे सेना स्थान में २० जहाँ सेना होती हो ऐसे खंधार में, २१ जहाँ सार्थवाही उतरते हों ऐसे सार्थ में २२ कुछ भय प्राप्त होने से मनुष्य छिपकर रहे ऐसे संवाह में, २३ किले के अंदर बस्ती हो ऐसे कोट में, २४ ग्राम के मौहल्ले में, २५ घरान्तर की गलियों में, २५ घर की कोटड़ियों में, इत्यादि स्थान में आहार प्राप्त हो उसे ग्रहण करे वह क्षेत्र से ऊनोदरी॥१६-१८॥

पेडा य अद्धपेडा, गोमुत्ति पयंगवीहिय चेव।
संबुक्कावट्टाययगंतुं, पच्छा छट्ठा॥१९॥

और भी क्षेत्र से ऊणोदरी के छः भेद कहे हैं, तद्यथा–१ पेटी (संदूका) के आकार से चारों कोने के चार घर की गौचरी करें, २ आधी पेटी के आकार दो कौने के दो घर स्पर्शे। ३ बेल के मूत्र की तरह एक घर इधर का एक उधर का यों गौचरी करे, ४ पतंगीया उडे त्यों थोड़े घरों की गौचरी करे। ५ शंखावर्त एक ऊपर का एक नीचे का फिर एक ऊपर का इस प्रकार गौचरी करे, ६ सलंग सतरबन्ध घरों की गौचरी करे॥१९॥

दिवसस्स पोरुसीणं, चउण्हं पि उ जत्तिओ भवे कालो।
एव चरमाणो खलु, कालोमाणं मुणेयव्वं॥२०॥

अब काल से ऊणोदरी तप कहते हैं–दिन के चार प्रहर में से हर किसी एक प्रहर में आहार ग्रहण करूंगा। अमुक प्रहर में भोग लूंगा ऐसा अभिग्रह करे यह काल से ऊणोदरी तप॥२०॥

अहवा तइयाए पीरिसीए, ऊणाए घासमेसंतो।
चउभागूणाए वा, एवं कालेण ऊ भवे॥२१॥

अथवा तीसरे प्रहर में कुछ कम तीसरे प्रहर में, चौथे प्रहर में अथवा पांच भाग कम पोरसी में इत्यादि काल में आहार आदि मिलेगा तो लूंगा वह काल से ऊणोदरी तप॥२१॥

इत्थी वा पुरिसो वा, अलंकिओ वाऽणलंकिओ वा वि।
अन्नतरवयत्थो वा, अन्नतरेणं व वत्थेणं॥२२॥
अन्नेणविसेसेणं, वण्णेणं भावमणुमुयंते उ।
एवं चरमाणो खलु, भावोमाणं मुणयव्वं॥२३॥

अब भाव से ऊणोदरी तप कहते हैं–स्त्री अथवा पुरुष भूषण कर अलंकृत हो व नहीं हो, अनेक प्रकार के वस्त्र में से साटिकादि अमुक वस्त्र का धारक हो, अमुक विशेषण नाम का धारक हो, अमुक अवस्था वाला हो, कृष्णादि अमुक वर्णवाला हो, इत्यादि धारण प्रमाणे दातार हो। उसके हाथ से आहार ग्रहण करूंगा। इस प्रकार अभिग्रह धारण करे उसे भाव ऊणोदरी तप कहना॥२२-२३॥

दव्वे खेत्ते काले, भावम्मि य आहिया उ जे भावा।
एएहिं ओमचरओ, पज्जवचरओ भवे भिक्खू २॥२४॥

अब पर्याय ऊणोदरी तप कहते हैं। दव्य से क्षेत्र से काल से और भाव से उक्त कथन प्रमाण चारों प्रकार से साथ ही अभिग्रह धारण करे उसे पर्याय उनोदरी कहते हैं। यह दूसरा उणोदरी तप हुआ॥२४॥

अट्ठविहगोयरग्गं, तु तहा सत्तेव एसणा।
अभिग्गहा य जे अन्ने, भिक्खायरियमाहिया ३॥२५॥

अब तीसरा भिक्षाचरी तप कहते हैं–भिक्षाचरी के ८ भेद–तद्यथा–१ पूरी संदूक के आकार, २ आधी संदूक के आकार, ३. गोमूत्र के आकार, ४ पतंगीये के आकार, ५ अभ्यंतर शंखावर्त, ६ बाह्य शंखावर्त, ७ सीधा और ८ बांका। यों आठ प्रकार से भिक्षाचरी करे तथा एषणा के सात भेद–१ संसठ भरे हाथ से ले, २ असंसठ बिना भरे हाथ से ३ उद्धड जिस द्रव्य से भाजन तथा हाथ भरा वही द्रव्य लेना, ४ अल्पलेपी सीका हुआ धान्यादि ग्रहण करे ५ उदग्राहिता-मालिक के ही हाथ से ले ६ पर गृहता, अन्य के हाथ से ले और ७ उझित धर्म जो पदार्थ जला वला नाली पर डालने जावे वैसा ले तथा उणोदरी में कहे अनुरूपी ही द्रव्य क्षेत्र काल भाव के भिक्षाचरी के अभिग्रह धारण करे। उसे भिक्षाचरी तप कहना यह तीर्थंकरों का कहना हैं॥२५॥

खीर-दहि-सप्पिमाई, पणीयं पाण-भोयणं।
परिवज्जणं रसाणं तु, भणियं रसविवज्जणं ४॥२६॥

अब चौथा रस परित्याग तप कहते हैं–१. दूध, २. दही, ३. घृत, ४. तेल, ५. मिठाई, इन पांचों विगय का त्याग करें। उसे रस परित्याग तप कहना॥२६॥

ठाणा वीरासणाईया, जीवस्स उ सुहावहा।
उग्गा जाह धरिज्जंति, कायकिलेसं तमाहियं ५॥२७॥

अब पांचवां कायाक्लेश तप कहते हैं–एक स्थान खड़ा रहे या बैठा रहे, जमीन को पांव लगा खुरसी पर बैठे फिर खुरसी निकाल ले वह उस ही प्रकार बैठा रहे वह वीरासन, दंडासना दोनों लम्बे हाथ कर खड़ा रहे। इत्यादि अनेक प्रकार के आसन से स्थिर रहे, मोक्ष सुख की प्राप्ति करने के लिए काया को धर्मार्थ कष्ट पहोंचावे उसे कायाक्लेश तप कहा है॥२७॥

एगंतमणावाए, इत्थी-पसुविवज्जिए।
सयणासणसेवणया, विवित्तसयणासणं ६॥२८॥

अब छठा प्रतिसंलीनता तप कहते हैं। एकान्त जहाँ स्त्री पशु आदि चित्त को विग्रह करने वाले की बस्ती न हो वैसी शैय्या (स्थानक) आसन का सेवन कर पांचों इन्द्रिय चारों कषाय, तीनों योगों का निग्रह कर रहे। वह छठा प्रतिसंलीनता तप जानना॥२८॥

एसो बाहिरंगतवो, समासेण वियाहिओ।
अब्भंतरं तवं एत्तो, वोच्छामि अणुपुव्वसो॥२९॥

अहो जम्बू! यह छः प्रकार के बाह्य तप का स्वरूप कहा। अब आगे छः प्रकार के आभ्यन्तर तप का स्वरूप अनुक्रम से कहता हूँ उसे दत्त चित्त श्रवण करो॥२९॥

पायच्छितं विणओ, वेयावच्चं तहेव सज्झाओ।
झाणं च विउस्सगो, एसो अब्भंतरो तवो॥३०॥

आभ्यन्तर तप भी छः प्रकार के कहे हैं उनके नाम–१ प्रायश्चित, २. विनय, ३. वैयावच्च, ४. स्वाध्याय, ५. ध्यान, और ६. व्युत्सर्ग। यह छः आभ्यन्तर तप जानना॥३०॥

आलोयणारिहादीयं, पायच्छित्तं तु दसविहं।
जे भिक्खू वहई सम्मं, पायच्छित्तं तमाहियं १॥३१॥

प्रथम प्रायश्चित तप के १० प्रकार, तद्यथा १. आलोचना। किसी कार्य के लिये स्थानक बाहर जावे वापस आवे तब जिस प्रकार वह कार्य किया हो सो गुरु के आगे प्रकाश करे, यह आलोचना प्रायश्चित, २ प्रतिक्रमण-आहार विहार भाषण में बिना उपयोग से लगे पापों की शुद्धी के लिये प्रतिक्रमण प्रायश्चित ३. दूसरा प्रायश्चित का काम उपयोगयुक्त करे जिसकी आलोचना प्रतिक्रमण दोनों प्रायश्चित, ४. विवक्त-अशुद्ध आहारादि को परिठावना का प्रायश्चित ५. दुःस्वप्नादि पाप का कायुत्सर्ग प्रायश्चित, ६. सचित्तादि का संघटा का आदि का आंयबिल उपवासादि तप का प्रायश्चित ७. अपवाद मार्ग सेवनादि का पांच दिनादि दीक्षा का छेद का प्रायश्चित ८. जानकर हिंसादि पाप सेवनादि का मूल से पुनः संयम देने का प्रायश्चित ९. अनवस्थित-स्वात्म तथा परात्म का क्रूर भाव से प्रहार आदि पाप लगाने वाले के पास ऐसा

कठिनतप कराने की उससे दूसरे के सारे बिना उठा नहीं जावे वह अनवस्थ प्रायश्चित और १० पारंचिय-प्रवचना उत्थापकादि पाप के सेवन करने वाले को ६ महिने से १२ वर्ष पर्यंत संघ के बाहर रखा फिर दीक्षित करे वह पारंश्विय प्रायश्चित। इन दसों प्रायश्चितों को सम्यक् प्रकार सेवन करे। वह प्रायश्चित तपः॥३१॥

अब्भुट्ठाणं अंजलिकरणं, तहेवासणदायणं।
गुरूभक्ति-भावसुस्सूसा, विणओ एस वियाहिओ २॥३२।

दूसरा विनय तप–१ गुरु आदि जेष्ट को आते जान उनके सन्मुख जावे, २ दोनों हाथ जोड़ वार्तालाप करे, ३ जाते-आते मत्थएण वंदामि शब्द कहे, ४ आसन छोड़ खड़ा रहे तथा उनको आसन पर बैठने के लिए का आमंत्रित करे, ५ यथा उचित उनकी भक्ति करे, ६ अन्तःकरण की प्रीतिपूर्वक गुरु आज्ञा को इच्छे तथा ५ ज्ञान का, २ दर्शन का, ५ चारित्र का, ३ योगों का, ४ लोक व्यवहार इत्यादि ४५ प्रकार का विनय का सांचवन करे वह विनय तप॥३२॥

आयरियमाईए, वेयावच्चम्मि दसविहे।
आसेवणं जहाथामं, वेयावच्चं तमाहिय ३॥३३॥

तीसरा वैयावच्च तप कहते हैं–१ आचार्य, २ उपाध्याय, ३ स्थविर, ४ तपस्वी, ५ रोगी, ६. नवदीक्षित-शिष्य, ७ स्वधर्मी, ८ कुल–गुरु भ्रात, ९. गण–एक सम्प्रदाय के और १० संघ–चारों तीर्थ इन दशों की अपनी शक्ति प्रमाने सेवा भक्ति करे वह वैयावच्च तप॥३३॥

वायणा पुच्छणा चव, तहेव परियट्टणा।
अणुप्पेहा धम्मकहा, सज्झाओ पंचहा भवे ४॥३४॥

चौथा स्वाध्याय तप पांच प्रकार का–१ गुरु आदि को विनय भक्ति से प्रसन्न कर उनके पास सुत्रादि की वांचनाले तथा आप स्वयं वांचे वह वांचना, २ संदेह निवारन करने प्रश्नादि पूछे वह पूछना, ३ सूत्रार्थ पढे हुए को बारम्बार फेरे वह परीयटना, ४ सूत्रार्थ को दीर्घ दृष्टि से विचार करे वह अनुप्रेक्षा और ५. धर्मोपदेश देवे वह धर्म कथा। यह पांच प्रकार स्वाध्याय तप जानना॥३४॥

अट्ट-रुदाणि वज्जित्ता, झाएज्जा सुसमाहिए।
धम्म-सुक्काइं झाणाइ, झाणं तं तु बुहा वए ५॥३५॥

अब पांचवां ध्यान तप कहते हैं–ध्यान चार प्रकार के इष्ट का संयोग, अनिष्ट का वियोग, रोग का नाश और भोग की आश करे सो आर्तध्यान, हिंसा झूठ चौरी शरीर संरक्षण का अनुबन्ध करे सो रौद्रध्यान यह दोनों ध्यान अप्रशस्त हैं। इनको छोड़कर–वीतराग की आज्ञा का, कर्म से होते अपाय का, शुभाशुभ कर्मों का, और लोक के संस्थान का विचार करे सो धर्म ध्यान और एकत्ववीतर्क, अन्यत्ववीतर्क, सूक्ष्मक्रिया, अप्रतिपाति, समूच्छिन्नक्रिया अनिवृति। सो शुक्लध्यान यह दो ध्यान प्रशस्त अच्छे हैं इनको चित्त की दृढता से समाधिवंत ध्यावे उसे ध्यान तप कहना॥३५॥

सयणासण ठाणे वा, जे उ भिक्खू न वावरे।
कायस्स विउस्सग्गो, छट्ठो सो परिकित्तिओ ६॥३६॥

अब छठा कायोत्सर्ग तप कहते हैं–सोता हुआ बैठा खड़ा रहा कायोत्सर्ग करे हलन चलन नहीं करे वह कायोत्सर्ग तप। यह छः प्रकार का अभ्यन्तर तप कहा॥३६॥

एवं तवं तु दुविहं, जं सम्मं आयरे मुणी।
से खिप्पं सव्वसंसारा, विप्पमुच्चइ पंडिओ॥३७॥ त्ति बेमि।
॥तवमग्गइज्जं समत्तं॥३०॥

यह छः प्रकार का बाह्य तप और छः प्रकार का आभ्यन्तर यों बारह प्रकार का तप कहा। उसे साधु सम्यक् प्रकार समाचारे–आदरे वे पंडित संसार समुद्र से शीघ्र मुक्त होवे॥३७॥

यों सुधर्मा स्वामी कहते हैं कि अहो जंबू! जैसा मैंने सुना वैसा तुम से कहा।

तप नामक तीसवां अध्ययन समाप्त।

३१

इगतीसइमं चरणविहि अज्झयणं
चरणविधि नामकं एकत्रिंशत्तममध्ययनम्

तीसवें अध्ययन में तप का कथन कहा वह तो चारित्रवंत को होता है इसलिये इस इकतीसवें अध्ययन में चारित्र का कथन कहते हैं। श्री सुधर्मा स्वामी कहते हैं–

चरणविहिं पवक्खामि, जीवस्स उ सुहावहं।
जं चरित्ता बहू जीवा, तिण्णा संसारसागरं॥१॥

अहो जम्बू! जिस चारित्र को अंगीकार करके बहुत से जीव संसार समुद्र को तिरकर पार हुए हैं उस चारित्र की विधि मैं तुम्हें कहता हूँ सो तुम दत्तचित्त से श्रवण करो॥१॥

एगओ विरइं कुज्जा, एगओ य पवत्तणं।
असंजमे नियत्तिं च, संजमे य पवत्तणं॥२॥

चारित्री–एक प्रकार के असंयम से अपनी आत्मा को निवारकर एक प्रकार के संयम में प्रवर्ती करे॥२॥

रागे-दोसे य दो पावे, पासकम्मपवत्तणे।
जे भिक्खू रूंभई निच्चं, से न अच्छइ मंडले॥३॥

जो मिथ्यात्व मैलकर मलीन बने हुए और पाप कर्मों में प्रवृत्ति के कराने वाले ऐसे राग और द्वेष यह दोनों ही हैं इससे अपना आत्मा को दूर करेगा वह इस संसार मंडल में परिभ्रमण नहीं करेगा॥३॥

दंडाणं गारवाणं च, सल्लाणं च तियं तियं।
जे भिक्खू चयई निच्चं, से न अच्छइ मंडले॥४॥

१. मन दंड, २. वचन दंड और ३. काया दंड, यह तीन दंड, २. ऋद्धि गर्व, २ रस गर्व, और ३ साता गर्व, यह तीन गर्व, १ माया (कपट) शल्य, निदान (करनी के फल का मांगना) शल्य और ३ मिथ्यात्व दैर्शन शल्य, इन तीनों के तीन-तीन भेदों को जो साधु सदैव आत्मा से दूर करेगा वह संसार मंडल में परिभ्रमण नहीं करेगा॥४॥

दिव्वे य उवसग्गे, तहा तेरिच्छ-माणुसे।
जे भिक्खू सहइ निच्चं, से न अच्छइ मंडले॥५॥

देवता सम्बन्धी मनुष्य सम्बन्धी और तिर्यंच सम्बन्धी इन तीनों प्रकार में से जो उपसर्ग या संकट प्राप्त होवे उसे समभाव सहे वह संसार मंडल में परिभ्रमण नहीं करें॥५॥

विगहा-कसाय-सन्नाणं, झाणाणं च दुयं तहा।
जे भिक्खू वज्जए निच्चं, से न अच्छइ मंडले॥६॥

१ स्त्री कथा, २ भोजन कथा, ३ देश कथा। और ४ राजकथा यह चार विकथा १ क्रोध, २ मान, ३ माया और ४ लोभ यह चार कषाय १ आहार संज्ञा २ भय संज्ञा, ३ मैथुन संज्ञा ४ परिग्रह संज्ञा और १ आर्त ध्यान, इन सब को सदैव काल आत्मा से दूर कर धर्म ध्यान और शुक्ल ध्यान ध्यावेगा वह संसार मंडल में परिभ्रमण नहीं करे॥६॥

वएसु इंदियत्थेसु, समितीसु किरियासु य।
जे भिक्खू जयई निच्चं, से न अच्छइ मंडले॥७॥

१ अहिंसा, २ सत्य, ३ अदत्त, ४ ब्रह्मचर्य और ५ निर्ममत्व इन पांच महाव्रत की १ श्रोत्र, २ चक्षु, घ्राण रस और स्पर्श इन पांच इन्द्रियों के अर्थ में, ईर्या, भाषा, ३ एषणा, ४ आदान निक्षेपना और ५ परिठावणिया, यह पांच समिति १ कायिकी, २ अधिकरणी, ३ पाउसिका, ४ परितावणी और ५ प्राणातिपातकी इन पांच क्रिया में इन सब को जो साधु सदैव यत्ना करे अर्थात् महाव्रत, समिति का आचरण करें और इन्दिय के विषय तथा क्रिया का त्याग करें। वह संसार मंडल में परिभ्रमण नहीं करे॥७॥

लेसासु छसु काएसु, छक्के आहारकारणे।
जे भिक्खू जयई निच्चं, से न अच्छइ मंडले॥८॥

१ कृष्ण, २ नील, ३ कापोत, ४ तेजो, ५ पद्म और ६ शुक्ल इन छः लेश्या में से प्रथम तीनों लेश्या के परिणाम छोड़े और अन्तिम तीन लेश्या के परिणाम प्रवर्तावे, १ पृथ्वी, २ पानी, ३ अग्नि, ४ वायु, ५ वनस्पति ओर ६ त्रस यह छः काया की यत्ना करें। क्षुधा वेदना समाने, २ वैयावच्च करने, ३ ईर्या शोधने, ४ संयम पालने, ५ प्राणियों रक्षार्थ, और ६ धर्म ध्यान का चिन्तवन करने, इन छः कारण से आहार करे, बिना कारण आहार करे नहीं। इन गुणों को जो साधु सदैव धारण करेगा वह संसार मंडल में परिभ्रमण नहीं करेगा॥८॥

पिंहोग्गहपडिमासू, भयट्ठाणे सु सत्तसु।
जे भिक्खू जयइ निच्चं, से न अच्छइ मंडले॥९॥

१ असंसठ-स्वच्छ (बिना भरे) हाथ व पात्र से दे तो लेवूंगा, २ अस्वच्छ (भरे हुवे) हाथ व भोजन से देवे तो लेवुं, ३ उद्धत-भोजन में से निकालता हुआ देवे तो लेवुं, ४ अप्पलेपी-चने आदि जिसका लेपन लगे ऐसा लेवुं, ५ उदग्राही अपने भोगवने को थाली आदि में ग्रहण किया वह देवे तो लेऊं, ६ प्रागरहित अन्य को देने निकाला हुआ देवे तो लेवुं और ७ जो खुरचना आदि भोजन गन्दगी पर डालने जैसा हो उसे देवे तो लेवुंगा। इस प्रकार सात पिण्ड एषणा का

अभिग्रह धारण करें। १ इस लोक मनुष्य सम्बन्धी भय, २ परलोक देवता तिर्यंच सम्बन्धी भय, ३ आदान चोरों का भय, ४ अकस्मात अचिन्त भय, ५ आजीविका उदरपूर्ति का भय, ६ मृत्यु का भय और ७ पूजा श्लाघा का भय, इन सातों भय से भयभीत नहीं बने। इस प्रकार जो साधु सात पिण्डैषणा सात भय की सदैव यत्ना करते हैं वे संसार मंडल में परिभ्रमण नहीं करते हैं॥९॥

मएसु बंभगुत्तीसु, भिक्खुधम्मम्मि दसविहे।
जे भिक्खू जयई निच्चं, से न अच्छइ मंडले॥१०॥

१ जाति का मद, २ कुल मद, ३ बल मद, ४ रूप मद, ५ तप मद और ६ श्रुत मद, ७ लाभ मद और ८ ऐश्वर्य मद, इन आठ प्रकार के मद को करे नहीं। ब्रह्मचारी–१ स्त्री पशु नपुंसक के स्थान में रहे नहीं, २ स्त्री के शृंगार की कथा करे नहीं, ३ स्त्री के साथ एकासन पर बैठे नहीं, ४ स्त्री के अंगोपांग निरखे नहीं, ५ भींत टट्टी पड़दे के अन्तर से स्त्री पुरुष के क्रीड़ा के शब्द सुने नहीं, ६ पूर्वकृत क्रीड़ा का स्मरण (याद) करे नहीं, ७ सदैव सरस आहार करे नहीं, ८ मर्यादा उपरान्त आहार करे नहीं, ९ शरीर वस्त्रादि का शृंगार सजें नहीं इन ९ वाड युक्त ब्रह्मचर्य गुप्ति का पालन करें, १ खंति क्षमा करे, २ मुत्ति लोभ छोड़े, ३ अज्जव सरलता रखे, ४ मार्दव मान नहीं करे, ५ लाघव हलका रहे, ६ सच्च सत्य बोले, ७ संयम पाले, ८ तप करे, ९ चैइय ज्ञानाभ्यास करे, और १० ब्रह्मचर्य की गुप्ति करे, यह दश साधु के धर्म का पालन करे, इस प्रकार जो साधु सदैव यत्ना करेगा वह संसार मंडल में परिभ्रमण नहीं करेगा॥१०॥

उवासगाणं पडिमासु, भिक्खूणं पडिमासु य।
जे भिक्खू जयई निच्चं, से न अच्छइ मंडले॥११॥

१ सम्यक्त्व निर्मल पाले, २ व्रत निर्मल पाले, ३ त्रिकाल शुद्ध सामायिक करे, ४ महिने के छः पौषध करे, ५ चार प्रहर का कायोत्सर्ग करे, स्नान करे नहीं, रात्रि भोजन नहीं करे, काछ लगावे नहीं, दिन का ब्रह्मचर्य पाले, इन पांच बोल का पालन करे, ६ सर्वथा ब्रह्मचर्य पाले, ७ सचित्त का आहार नहीं करे, ८ स्वयं आरंभ नहीं करे, ९ अन्य के द्वारा भी आरंभ नहीं करावे, १० आरंभ की अनुमोदना भी करे नहीं और ११ साधु वेष धारण करे विशेष सिर पर चोटी रखे ज्ञातकुल की गौचरी करे। इन ग्यारह श्रावक की प्रतिमा श्रावक को बतावे। १. प्रथम महिने एक-एक दांती आहार पानी की, २ दूसरे महिने दो दांती आहार पानी की, ३ तीसरे महिने तीन २ दांती आहार पानी की, ४ चौथे महिने चार २ दांती आहार पानी की, ५ पांचवें महिने पांच २ दाती आहार पानी की, ६ छठे महिने छः दाती आहार पानी की, ७ सातवे महिने सात दाती आहार पानी की। ८ आंठवे महिने में सात अहो रात्रि चौंविहार एकान्तर उपवास करे, दिन को सूर्य की आतापनाले, रात्रि को तीन प्रकार के आसन करे, १ सोते, २ बैठे, ३ खड़े आसन पलटे नहीं। ९ सात अहो रात्रि चौबिहार एकान्तर उपवास करे, दिन को सूर्य की आतापना ले रात्रि का–गोदह आसन, वीरासन और अंबखुजासन इन तीनों आसनों में का आसन करे, १० सात अहोरात्रि चौविहार एकान्तर उपवास करे, दिन को सूर्य की आतापना ले रात्रि को–गोदुहआसन, वीरासन, अंबखुजासन। इन तीनों में से एक आसन करे, ११ चौविहार छठ भक्त (बेला) करे, बेले को ग्राम बाहर एक अहो रात्रि का कायोत्सर्ग करे, और १२ चौविहार अष्टम भक्त (तेला) करे। तेले के दिन श्मशान में एक पद्गल पर दृष्टि रखकर कायोत्सर्ग करे। तिर्यंच मनुष्य

देवता सम्बन्धी उपसर्ग को सहे। इन १२ प्रतिमा में साधु सदैव यत्नावंत बनेगा वह संसार मंडल में परिभ्रमन नहीं करेगा॥११॥

किरियासु भूयगामेसु, परमाहम्मिएसु य।
जे भिक्खू जयई निच्चं, से न अच्छइ मंडले॥१२॥

२ अर्थादंडक्रिया-मतलब सिर पाप करे, २ अनर्था दंडक्रिया। बिना मतलब पाप करे, ३. हिंसा दंडक्रिया-हिंसा करे, ४. अकस्मात् दंडक्रिया-मारे किसे और कोई मर जाय। ५. दृष्टि विपरियसिया क्रिया-शत्रु के भरोसे मित्र को मार डाले, ६. मोसवती-झूठ बोले, ७ अदीन दानवती-चोरी करे, ८. अज्झत्यवति-खराबविचार करे, ९. मित्रदोषवती-मित्रों के साथ विरोध रखे, १०. मानवती अभिमान करे, ११. मायावती-दंगलबाजी करे, १२. लोभवती-लालच करे और १३ इर्यावही सो केवली भगवंत को योगों की प्रवृति से प्रथम समय लगे दूसरे समय वेदे तीसरे समय निर्जरा कर दूर करे इन तेरह ही क्रिया का त्याग करे॥१ सूक्ष्म एकेन्दिय का, २. बादर एकेन्दिय, ३. बेइन्दिय, ४. तेइन्दिय, ५. चौरिन्दिय, ६. असंज्ञी पंचेन्दिय, और संज्ञी पंचेन्दिय। इन सात का अपर्याप्ता और पर्याप्ता यह १४ जीव के भेद जानना। १ अंब, २ अंबरीस, ३ शाम, ४ सबल, ५ रौद्र, ६ वैरोद्र, ७ काल, ८ महाकाल, १ असीपत्र, १० धनुष्य, ११ कुंभ, १२ बालु, १३ वैतरणी, १४ खरस्वर, और १५ महाघोष। यह १५ परमाधामी देव। इनमें जो साधु सदैव प्रयत्न करे वह संसार मंडल में परिभ्रमण नहीं करे॥१२॥

गाहासोलसएहिं, तहा असंजमम्मि य।
जे भिक्खू जयई निच्चं, से न अच्छइ मंडले॥१३॥

१ स्वसमय पर समय, २ वैताली, ३ उपसर्ग, ४ स्त्री प्रज्ञा, ५ नरक विभूती, ६ वीर स्तुती, ७ कुशील प्रभ, ८ सकाम अकामवीर्य, ९ धर्म, १० समाधी, ११ मोक्षमार्ग, १२ समवसरण, १३ यथातथ्य, १४ ग्रन्थ, १५ आदानियाख्य, और १६ गाहावती। इन १६ ही सुयगडांग सूत्र के अध्ययन का अर्थ यथार्थ श्रद्धान करे। १७ प्रकार का असंयम–१ पृथ्वी, २ पानी, ३ अग्नि, ४ वायु, ५ वनस्पति, ६ बेइन्दिय, ७ तेइन्दिय, ८. चौरिन्दिय, ९. पंचेन्दिय, १० आजीविका। इन दसों की यत्ना करे। ११ पेहा-सर्व जीवात्मा निजात्मा सम जाने, १२ उपेहा-सदैव उपयोग युक्त क्रिया करे, १३ प्रमार्जन देख कर पूंज कर वस्तु समेटे, १४ परिठावणिया-यत्ना से परिठावे (फेंकने योग्य वस्तु फेंके), १५ मन, १२ वचन और १७ काया, इन तीनों योगों को शुभ प्रवर्तावे। यह १७ प्रकार संयम पाले और असंयम टाले। इनमें जो साधु सदैव यत्नावंत होगा यह संसार मंडल में परिभ्रमण नहीं करे॥१३॥

बंभम्मि नायज्झयणेसु, ठाणेसु असमाहिए।
जे भिक्खू जयइ निच्चं, से न अच्छइ मंडले॥१४॥

१-३ औदारिक शरीर सम्बन्धी मैथुन सेवे नहीं, मन-वचन-काया कर, ४-६ सेवावो नहीं मन वचन काया कर ७-९ सेवना अच्छा जाने नहीं। मन-वचन-काया-कर, इस प्रकार ही ९ भांगे वैक्रेय शरीर के। यों १८ प्रकार अब्रह्म का सेवन नहीं करे उन्नीस ज्ञाता धर्म कथांग के अध्ययन १. मेघकुमार का। २ धनासेठ का, ३ मयूरइंडा का, ४ काछवा का, ५. थावरचा पुत्र का, ६ तुम्बडी का, ७ रोहिणी का, ८ मल्लीनाथ जी का, ९ जिनरक्ष जिनपाल का, १० चन्द्रमा का, ११ दवदव

वृक्ष का। १२ सुबुद्धि प्रधान का, १३ नंद मणियार का, १४ पोटिला का, १५ नंदीफल का, १६ द्रौपदी का, १७ आकीर्ण जाति के घोड़े का, १८ सुसमा पुत्री का और १९ कुंडरिक पुंडरिक का। इन उन्नीस अध्ययन के न्याय प्रमाने संयमपाले॥ बीस असमाधि दोष शीघ्रता से चले, २ बिना पूंजे चले, ३ पूंजे जहां पांव रखे, ४ पाटादि अधिक भोगवे, ५ बडे के सन्मुख बोले, ६ स्थविर की घात चिन्तवे, ७ सर्व जीवों की घात चिन्तवे, ८ क्षण २ में क्रोध करे, ९ दूसरे की निन्दा करे, १० बारबार निश्चय भाषा बोले, ११ नया क्लेश करे, १२ पुराना क्लेश प्रकट करे, १३ अकाल में स्वाध्याय करे, १४ सचित रजभरे पांव तथा आसन बिना पूंजे बैठे, १५ प्रहर रात बाद जोर से बोले, १६ महाक्लेश करे, १७ झूठ वचन बोले, १८ अपनी पराई आत्मा को असमाधि करे, १९ प्रभात से शाम तक लाना २ खाना २ करे, और २० अशुद्ध आहार भोगवे। इन २० असमाधि दोष से आत्मा बचावे॥१४॥

एकवीसाए सबले, बावीसाए परीसहे।
जे भिक्खू जयई निच्चं, से न अच्छइ मंडले॥१५॥

इक्कीस सबल दोष–१ हस्त कर्म करे, २ मैथुन सेवे, ३ रात्रि भोजन करे, ४ आधा कर्मी आहार करे, ५ राज्यपिंड आहार भोगवे, ६ मोल का, उदार लिया, छीनकर लिया, मालिक की आज्ञा बिना, सन्मुख लाया, इन पांच दोष सहित आहार भोगवे, ७ बार-बार प्रत्याख्यान का भंग करे, ८ छः महिने पहले सम्प्रदाय बदले, ९. एक महिने में तीन नदी का लेप लगावे १० एक महिने में तीन माया स्थान सेवे, ११ शैयांतर का आहर ग्रहण करे, १२ जानकर, हिंसा करे। १३ जानकर झूठ बोले, १४ जानकर चोरी करे, १५ सचित्त पृथ्वी पर सोवे बैठे, १६ सचित्त रज से भरे पाटलादि पर सोवे बैठे, १७ सड़े हुए पाट पाटले भोगवे, १८ मूल, कन्द, स्कन्ध त्वचा, प्रवाल, पत्र, फूल, फल बीज, हरी यह दस प्रकार की वनस्पति भोगवे, १९ एक वर्ष में दस नदी के लेप लगावे, २० एक वर्ष में दस माया स्थान सेवे, और २१ सचित्त वस्तु में हाथ भाजन भरा हो उससे आहार आदि ग्रहण करे। यह २१ सबल दोष को सदैव बर्जे। बाइस परिषह–१ क्षुधा का, २ तृषा का, ३ शीत का, ४ उष्ण का ५ दंश मशक का, ६ अचेल का, ७ अरतिका, ८ स्त्री का, ९ चलने का, १० बैठने का १२ स्थानक का, १३ अक्रोश वचन का, १४ वध-मारने का, १५ अलाभ का, १६ रोग, १७ तृण स्पर्श का, ८ जल मैल का, १९ सत्कार सन्मान का, २० प्रज्ञा का, २१ अज्ञान का और २२ दर्शन-सम्यक्त्व का। इन २२ परिषह को सम्यक् प्रकार से सहे। इस प्रकार जो साधु यत्ना करता है वह संसार मंडल में परिभ्रमण नहीं करता है॥१५॥

तेवीसइसूयगडे, रूवाहिएसु सुरेसु य।
जे भिक्खू जयई निच्चं, से न अच्छइ मंडले॥१६॥

सुयगडांग सूत्र के प्रथम श्रुतस्कन्ध के १६ अध्याय तो पहले कहे ओर दूसरे श्रुतस्कन्ध के ७ अध्याय १ पुष्करणी का, २ क्रिया, ३. आहार प्रज्ञा ४ प्रत्याख्यान प्रज्ञा, ५ भाषा का, ६ आर्द्रकुमार का और ७ उदकपेडाल पुत्र का। यों २३ ही अध्ययन का अर्थ सम्यक् प्रकार श्रद्धे चौंबीस देव १० भुवनपति ८ व्यन्तर ५ ज्योतिष और १ वैमानीक यों २४ देवताको जाने। इनमें जो सदैव यत्ना करे वह संसार में परिभ्रमण नहीं करें।१६॥

पणवीसभावणासु, उद्देसेसु दसाईण।
जे भिक्खू जयई निच्चं, से न अच्छइ मंडले॥१७॥

पांच महाव्रत की २५ भावना १ ईर्या, २ मन, ३ वचन, ४ एषणा, ५ निक्षेपना (वह पहले महाव्रत की), ६ विचारकर बोले, ७ क्रोधवश झूठ नहीं बोले, ८ लोभवश झूठ नहीं बोले, ९ भयवश झूठ नहीं बोले, १० हास्यवश झूठ नहीं बोले, (यह पांच दूसरे महाव्रत की), ११ निर्दोष स्थान याचकर भोगवे, १२ तृण काष्ट कंकरादि याचकर भोगवे, १३ छः कायका आरंभकर स्थानक नहीं ठहरे, १४ राजा का, सेठ का गुरु का देव का अदत्त नहीं लेवे १५ गुरु ज्ञानी रोगी तपस्वी नव दीक्षित की वैयावच्च करे, (यह ५ तीसरे महाव्रत की) १६. स्त्री पशु रहित स्थान भोगवे, १७ स्त्री की कथा करे नहीं, १८ स्त्री के अंगोपांग निरखे नहीं, १९ पूर्वकृत कामभोग याद करे नहीं, २० नित्य प्रति सरस आहार करे नहीं (यह ५ चौथे महाव्रत की) २१ शब्द, २२ रूप, २३ गंध, २४ रस, २५ स्पर्श। अच्छे पर राग करे नहीं और अशुभ पर द्वेष करे नहीं। इन २५ भावना का सम्यक् प्रकार पालन करे। १० दशाश्रुत स्कन्ध के, ६ बृहत्कल्प के, १० व्यवहार के, इन ३६ उद्देश्य का कालोकाल पठन करे। इनकी जो साधु सदैव यत्ना करेगा वह संसार मंडल में परिभ्रमण नहीं करेगा॥१७॥

अणगारगुणेहिं च, पगप्पंमि तहेव य।
जे भिक्खू जयइ निच्चं, से न अच्छइ मंडले॥१८॥

सत्ताइस साधु के गुण–५ महाव्रत, पंचेन्दिय निग्रह, चार कषाय टाले, वह १४ और १५ भाव सत्य, १६ करण सत्य, १७ जोग सत्य, १८ क्षमावंत, १९ वैराग्यवंत, २० मन समाधारना, २१ वचन समाधारना; २२ काया समाधारना; २३ ज्ञान संपन्न; २४ दर्शन संपन्न, २५ चारित्र संपन्न, २६ वेदनीय अहिया से; और २७ मरणांतिक अहिया से। इन २७ गुण साधु के धारण करे। २८ प्रकार के प्रायश्चित के स्थानक आचार कल्प। इनमें जो साधु सदैव यत्ना करे वह संसार में परिभ्रमण नहीं करे॥१८॥

क्रम	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४
महिने	१	१	१	१	१	१	२	२	२	२	२	२	३	३
दिन	०	५	१०	१५	२०	२५	९	५	१०	१५	२०	२५	९	५
क्रम	१५	१६	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४	२५	२६	२७	२८
महिने	३	३	३	३	४	४	४	४	४	४	४	५	५	६
दिन	१०	१५	२०	२५	०	५	१०	१५	२०	२५	२७	०	२७	०

पावसुयपसंगेसु, मोहट्ठाणेसु चेव य।
जे भिक्खू जयइ निच्चं, से न अच्छइ मंडले॥१९॥

उन्नतीस पाप सुत्र १ भूमीकम्प, २ उत्पात, ३ स्वप्न, ४ अंतलिख, ५ अंग स्फुर्ण, ६ स्वर, ७ व्यंजन और ८ लक्षण इन ८ का सूत्र ८ का अर्थ की कथा सब २४ और २५ विकथा का

२६ विद्या का २७ यंत्र का, २८ योग का (तंत्र का) और २९ अन्यमतियों के आचार का इन २९ पाप सूत्र का उपदेश करे नहीं, तीस महामोहनी बन्ध स्थान १ त्रस जीव को पानी में डूबा के मारे, २ त्रस जीव के श्वासोच्छवा रोक कर मारे, ३ त्रस जीव को धूम्र कर के मारे, ४ त्रस के मस्तक में खक्षांदि के घाव कर मारे, ५ त्रस के मस्तक में चमडा बींट कर मारे, ६ बावले गुंगे की मस्करी करे, ७ अनाचार सेवन कर छिपावे, ८ आप अनाचार सेवन कर दूसरे के सिर डाले, ९ सभा में मिश्र भाषा बोले, १० भोगी के भोग रूंधे, ११ बालब्रह्मचारी नहीं बालब्रह्मचारी नाम धरावे, १२ ब्रह्मचारी नहीं ब्रह्मचारी नाम धरावे, १३ सेठ का धन दबावे, १४ पांच मिल बढ़ा स्थापन किया यह पंचों को दुःख दे, १५ विश्वास घात कर स्त्री पुरूषादि परस्पर घात करे, १६ एक देश के राजा की घात चिंतवे, १७ बहुत देश के राजा की घात चिंतवे, १८ साधु को संयम से भ्रष्ट करे, १९ तीर्थंकर की निन्दा करे, २० तीर्थंकर के मार्ग की निन्दा करे, २१ आचार्य उपाध्याय की निन्दा करे, २२ आचार्य उपाध्याय का विनय वैयाच्च नहीं करे, २३ बहुसूत्री नहीं बहुसूत्री नाम धरावे, २४ तपस्वी नहीं तपस्वी नाम धरावे, २५ वृद्ध रोगी तपस्वी का विनय वैयावच्च नहीं करे, २६ चार तीर्थ में फूट डाले, २७ ज्योतिष निमित्त वशीकरण प्रकाशे, २८ अन होते देव मनुष्य तिर्यंच के काम भोग इच्छे, २९ संयम पाल देवता हुए उनकी निन्दा करे, ३० चार जाति के देवता अपने पास नहीं आते हो और कहे कि मेरे पास देवता आते हैं। इन ३० काम को करने से महा मोहनीय कर्म का बन्ध होता है। जिससे ७० क्रोडाक्रोड सागरोपम तक संसार में भटकना पड़े, इन काम से जो साधु सदैव बचे वह संसार मंडल में परिभ्रमण नहीं करे॥१९॥

सिद्धाइगुण-जोगेसु, तेत्तीसासायणासु य।
जे भिक्खू जयइ निच्चं, से न अच्छइ मंडले॥२०॥
इय एएसु, ठाणेसु जे भिक्खू जयइ सया।
खिप्पं से सव्वसंसारा, विप्पमुच्चइ पण्डिओ॥२१॥ त्ति बेमि॥
॥ चरणविहि अज्झयण समत्तं॥३१॥

इक्कर्तास सिद्ध के गुन ५ प्रकार ज्ञानावरणीय क्षय किया, ९ प्रकार दर्शनावरणीय कर्म क्षय किया, २ प्रकार वेदनीय कर्म क्षय किया, २ प्रकार मोहनीय कर्म क्षय किया, ४ प्रकार आयुष्य कर्म क्षय किया, २ प्रकार नाम कर्म क्षय किया, २ प्रकार गौत्र कर्म क्षय किया, और ५ प्रकार अन्तराय कर्म क्षय किया, यों ३१ सिद्ध भगवंत के गुण गाण करे बत्तीस योग संग्रह १ लगे दोष गुरु के आगे प्रकाशे, २ वे दोष गुरु किसी को कहे नहीं, ३ कष्ट पड़े धर्म में दृढ़ रहे ४ इस लोक परलोक के सुख की इच्छा रहित तप करे, ५ असेवना ज्ञान की और ग्रहण आचार की दोनों शिक्षा धारण करे, ६ शरीर की विभूषा नहीं करे, ७ आज्ञात कुल की गौचरी करे, ८ गुप्त तपस्या करे, ९ परिषह उत्पन्न हुए क्षमा भाव धारे, १० सदा सरल भाव रखे, ११ संयम सहित प्रवर्ते १२ सम्यक्त्व सहित प्रवर्ते, १३ चित्त की समाधि सहित प्रवर्ते, १३ पांच प्रकार के आचार सहित प्रवर्ते, १५ विनय प्रवर्ते १६ तप में वीर्य करें २७ वैराग्य सहित प्रवर्ते, १८ आत्मा के यत्न निवान समाप्त करे, १९ पास थे के भाव सहित प्रवर्ते २० संवर की पुष्टी करे, २९ आत्मा के अवगुन दूर करे, २२ सब काम भोग से निवर्ते, २१ प्रति दिन प्रत्याख्यान में वृद्धि

करे २४ उपाधि अहंकार को त्याग कर कायोत्सर्ग करे २५ पांच प्रमाद छोड़े, २६ थोड़ा बोले और कालोकाल क्रिया करे, २७ धर्म ध्यान शुक्ल ध्यान ध्यावे, २८ शुभ योग सहित प्रवर्ते २९ मरणांतिक वेदना प्राप्त हुए समभाव रखे ३० सर्प संग का परित्याग करे अलोयना निन्दना कर निशल्य होवे और ३२ श्लेषणा कर संथारा करे इन ३२ योग संग्रह अंगीकार करे॥ १ तेत्तीस अशातना-गुरु के आगे चले २ गुरु के पीछे अड़कर चले, ३ गुरु के दोनों बाजू अड़कर चले, ४ गुरु के आगे खड़ा रहे, ५ गुरु के बराबर खड़ा रहे, ६ गुरु के पीछे अड़कर खड़ा रहे, ७ गुरु के आगे बैठे, ८ गुरु के बराबर बैठे, ९ गुरु के पीछे अड़कर बैठे, १० गुरु शिष्य एक ही पातरी ले जंगल गये हों गुरु पहिले चेला शुची करे, ११ गुरु शिष्य बाहर जाकर आये गुरु पहले इर्यावही प्रतिक्रमे, १२ स्थानक में आये पुरुषादि को गुरु के पहले आप बोलावे, १३ रात्रि को गुरु पूछे की कौन-२ सोते कौन जगते हैं? आप जागता हुआ भी उत्तर नहीं दे, १४ शिष्य गौचरी कर आया हो और प्रथम दूसरे साधु के आगे आलोचना करे फिर गुरु आगे आलोचना करे, १५ वैसे ही वह आहार पहले छोटे साधु का बतावे फिर गुरु को बतावे, १६ वैसे ही लाया हुआ पदार्थ पहले छोटे साधु को आमंत्रे फिर गुरु को आमंत्रे, १७ वह लाया हुआ आहार आदि प्रथम छोटे साधु को दे फिर गुरु को दे, १८ गुरु शिष्य दोनों एक मंडल पर भोजन करने बैठे तब गुरु की आज्ञा बिना सरस २ आहार आप भोगवे, १९ गुरु का वचन सुना अनसुना करे, २० गुरु शिष्य को बोलावे तब आसन ऊपर बैठा ही उत्तर दे २२ गुरु को शिष्य बोलावे तब कहे क्या कहते हो? २२ गुरु को रेकारे तूकारे आदि हलके वचन से बोलावे, २३ गुरु हित शिक्षा दे तब उनके सन्मुख वैसा ही प्रत्युत्तर दे, २४ गुरु कहे वृद्ध रोगी तपस्वी नव दीक्षित की विनयवैयावच्च करो तुम्हारे को लाभ होगा? शिष्य कहे तुम वैयावच्च करोगे तो तुम्हारे को भी लाभ होगा, २५ गुरु धर्म कथा कहते हुए कुछ गाथादि भूल गये हों तो उनको ठीक करने कहे यह ऐसे नहीं परंतु ऐसे हैं। २६ गुरु प्रश्नोत्तर कहते या धर्म कथा कहते कहे कि यह बात फिर याद कर कहूँगा? तब शिष्य कहे क्या इतना भी याद नहीं है। २७ गुरु की प्रशंसा सुनकर नाराज होवे, २८ यह गुरुजी के श्रावक और यह मेरे श्रावक यों फूट डाले, २९ गुरु धर्म कथा कहते हो तब रस छेदन करे, अर्थात् कहाँ तक ताने जावोगे गौचरी का वक्त हो गया। आदि ३० गुरु की कहीं हुई धर्म कथा उस ही परिषदा में पीछे आप विस्तार से कहे गुरु का अपमान करे, ३१ गुरु के बीछोने भंडोपकरन को पांव लगावे, ३२ गुरु के बिछाने पर शैय्या करे बैठे, और ३३ गुरु से द्रव्य आसनादि कर भाव अभिमान कर ऊँचा रहे, इन तैंतीस काम करने से गुरु की अशानना लगती है। उसे टाल कर सदैव प्रवर्ते वह साधु संसार मंडल में परिभ्रमण नहीं करे॥२०-२१॥

इन ३३ बातें में से जानने योग्य बोल जाने, आदर ने योग बोल आदरे और छोड़ने योग बोले छोड़े, वह शीघ्रता से संसार समुद्र के पार होवे। यों सुधर्मा स्वामी ने जम्बू स्वामी से कहा।

आचार विधि नाम का एकतीसवा अध्ययन समाप्त।

३२

बत्तीसइमं पमायट्ठाणं अज्झयणं
प्रमाद स्थान नामकं द्वात्रिंशत्तममध्ययनम्

एकतीसवें अध्ययन में चारित्र पालने का कथन कहा। जो अप्रमादी होता है। वही शुद्ध चारित्र पाल सकता है। इसलिये इस अध्ययन में अप्रमादी का कथन कहते हैं। सुधर्मा स्वामी कहते हैं–

अच्चंतकालस्स समूलगस्स, सव्वस्स दुक्खस्स उ जो पमोक्खो।
तं भासओ मे पडिपुण्णचित्ता! सुणेह एगंताहियं हियत्थं॥१॥

अहो जम्बू! यह अनादि संसार मिथ्यात्वादि मूल सहित दुःख का सागर इस से मुक्त होने का उपाय जो सर्व प्रकार हित का कर्त्ता मोक्ष का अर्थ है वह तुम से कहता हूँ। सो दत्त चित्त से श्रवण करो॥१॥

नाणस्स सव्वस्स पगासणाए, अन्नाण-मोहस्स विवज्जणाए।
रागस्स दोसस्स य संखएणं, एगंतसोक्खं समुवेइ मोक्खं॥२॥

जो अज्ञान और दर्शन मोह का क्षय करे मतिज्ञानादि ज्ञान की प्राप्ति कर राग द्वेष का सर्वथा प्रकार से क्षय करेगा वह एकान्त निराबाध मोक्ष के शाश्वत सुख को प्राप्त करेगा॥२॥

तस्सेस मग्गो गुरु-विद्धसेवा, विवज्जणा बालजणस्स दूरा।
सज्झायएगंतनिसेवणा य, सुत्तत्थसंचिंतणया धिईय॥३॥

मोक्ष की प्राप्ति के लिये ज्ञानादि गुण करके सहित गुरु की सेवा करें और जो पासत्था तथा अज्ञानियों की संगत से दूर रहे और एकान्त स्थान में रहकर शास्त्रार्थ स्वाध्याय तथा एकाग्रचित्त ध्यान करे॥३॥

आहारमिच्छे मितमेसणिज्जं, सहायमिच्छे निउणट्ठबुद्धिं।
निकेयमिच्छेज्ज विवेगजोग्ग, समाहिकामे समणे तवस्सी॥४॥

जो ज्ञान दर्शन चारित्र तप रूप मोक्ष मार्ग में समाधि सहित विचरने की इच्छावाले साधु हैं। उनको आहार की इच्छा होवे तो मर्यादा पूर्वक ४२ दोष रहित शुद्ध आहार को ग्रहण कर भोगवे, जिसको शिष्य की इच्छा हो तो जिसको जीवादि नव तत्त्व में निर्मल बुद्धि हो ऐसे शिष्य की इच्छा करे, और उपाश्रय की इच्छा हो तो स्त्री पशु नपुंसक रहित उपाश्रय की वांच्छा करे॥४॥

न वा लभेज्जा निउणं सहायं, गुणाहिय वा गुणओ समं वा।
एगो वि पावाइ विवज्जयतो, विहरेज्ज कामेसु असज्जमाणो॥५॥

जो कदाचित्त अपने से गुणकर अधिक तथा समान उत्तम शिष्य की प्राप्ति नहीं भी होवे तो अकेला ही पापकारी अनुष्ठान का त्यागकर, कामभोग का प्रतिबन्ध करता हुआ संयम में विचरे॥५॥

जहा य अंडप्पभवा बलागा, अंडं बलागप्पभव जहा य।
एमेव मोहाययणं खु तण्हा, मोहं च तण्हायतणं वयंति॥६॥

श्री तीर्थंकर भगवन्त ने कहा है। कि जिस प्रकार अण्डे से पक्षी की उत्पत्ति होती है। और पक्षी से अण्डे की उत्पत्ति होती है। उस ही प्रकार मोह से तृष्णा होती है और तृष्णा से मोह होता है॥६॥

रागो य दोसो वि य कम्मबीयं, कम्मं च मोहप्पभवं वयंति।
कम्मं च जाई-मरणस्स मूलं, दुक्खं च जाई-मरणं वयंति॥७॥

श्री तीर्थंकर भगवान ने कहा है–राग और द्वेष यह दोनों कर्म के बीज हैं और कर्म से मोह की उत्पत्ति होती है। यह कर्म है वे ही जन्म मृत्यु के मूल हैं और दुःख का मुख्य हेतु जन्म मृत्यु ही है॥७॥

दुक्खं हयं जस्स न होइ मोहो, मोहो हओ जस्स न होइ तण्हा।
तण्हा हया जस्स न होइ लोहो, लोहो हओ जस्स न किंचणाइं॥८॥

जिसने दुःख की घात की है। उसको मोह नहीं होता है और जिसके मोह नहीं होता है। उसके धनादि की तृष्णा नहीं होती है और जिसके तृष्णा नहीं होती है। उसके लोभ नहीं होता है और जिसके लोभ नहीं होता है। उसके धनादि कुछ भी नहीं होता है॥८॥

राग च दोस च तहेव मोहं उद्धत्तुकामेण समूलजालं।
जे जे उवाया पडिवज्जियव्वा, ते कित्तइस्सामि अहाणुपुव्विं॥९॥

अहो जम्बू! अब आगे मैं मोह वृक्ष के मूल रूप जो राग द्वेष का समूह है इनको उद्धार करने की इच्छावाले उनका उद्धार करने का उपाय अनुक्रम से कहता हूँ। सो तुम दत्त चित्त श्रवण करो॥९॥

रसा पगामं न निसेवियव्वा, पायं रसा दित्तिकरा नराणं।
दित्तं च कामा समभिद्दवंति दुमं जहा साउफलं व पक्खी॥१०॥

जिस प्रकार फल फूल कर पुष्ट हुए वृक्ष को बहुत से पक्षी आकर दुःख देते हैं वैसे ही जिसने दुग्धादि पांचों विगय का सेवन कर अपने शरीर को पुष्ट बनाया है वैसे उन्मत का काम-कर्दम सम्मुख आकर दुःखी करता है। ऐसा जानकर काम के जय की इच्छावाले साधु दूध दही घृत तेल मिष्ठान पदार्थ का सेवन नहीं करते हैं॥१०॥

जहा दवग्गी पउरिंधणे वणे, समारुओ नोवसमं उवेइ।
एविंदियग्गी वि पगामभोइणो, न बंभचारिस्स हियाय कस्सई॥११॥

जिस प्रकार जिस बन में काष्ठ बहुत होता है वहाँ अग्नि लगकर के वायु से योग वृद्धि ही पाती जाती है। परंतु जल्दी से बुझती नहीं है। वैसे ही इन्द्रियों के विषय रूप अग्नि सरस आहार के भोग से प्रज्वलित हो विचार वायु से वृद्धि पाती है। इसलिये ब्रह्मचारी को सरस भोजन हित का करता नहीं होता है॥११॥

विवत्तसेज्जासणजंतियाणं, ओमासणाणं, दमिइंदियाणं।
न रागसत्तू धरिसेइ चित्तं, पराइओ बाहिरिबोसहेहिं॥१२॥

जिस प्रकार रोगियों का रोग औषधि और उपचार से नाश पाता है उस ही प्रकार राग रूपी रोग स्त्री पशु नपुंसक रहित उपाश्रय के सेवन से ५ इन्द्रियों का दमन करने से पराभव नहीं कर सकता है॥१२॥

जहा बिरालावसहस्स मूले, न मूसगाणं वसही पसत्था।
एमेव इत्थीनिलयस्स मज्झे, न बंभचारिस्स खमो निवासी॥१३॥

जिस प्रकार जिस मकान में बिल्ली रहती हो उस मकान में चूहे का रहना कल्याणकारी नहीं होता है। उसी प्रकार जिस मकान में स्त्री रहती हो उस मकान में ब्रह्मचारी का रहना कल्याणकारी नहीं होता है॥१३॥

न रूव-लावण्ण-विलास-हासं, न जंपियं इंगिय-पेहियं वा।
इत्थीण चित्तंसि निवेसइत्ता, दट्ठुं ववस्से समणे तवस्सी॥१४॥

ब्रह्मचारी १ स्त्री का रूप लावण्यता, २ बोलने की चतुरता, ३ वस्त्र की शोभा, ४ भोग की लीला, ५ मुस्कराकर हंसना, ६ मनमोहक शब्दोचार, ७ अंगोपांग मरोड़ने, ८ कटाक्ष दृष्टि देखने, इतने स्त्री के काम जाग्रत करने के जो लक्षण हैं। उसको कदापि दृष्टि कर देखे नहीं, किं बहुना में चिन्तवन मात्र भी नहीं करे परंतु संयम तप से आत्मा भावता विचरे॥१४॥

अदंसणं चेव अपत्थणं च, अचिंतणं चेव अकित्तणं च।
इत्थीजणस्सारियझाणजुग्गं, हियं सया बंभवए रयाणं॥१५॥

जो सदैव ब्रह्मचर्य में रक्त व धर्म ध्यान में स्थिर आत्मा है वो स्त्री का दर्शन मात्र भी नहीं करे स्त्री की इच्छा भी नहीं करें, कदाचित् स्त्री का रूप देखने में आ गया हो तो उसका विचार नहीं करते हैं और स्त्री के गुण के कीर्तन कथा भी नहीं करते हैं॥१५॥

कामं तु देवीहिं वि भूसियाहिं, न चाइया खोभइउं तिगुत्ता।
तहा वि एगंतहियं ति नच्चा, विवित्तवासो मुणिण पसत्थो॥१६॥

जो साधु तीन गुप्तिकर गुप्तात्मा है उनको सर्व अलंकार से अलंकृत बनी अप्सरा भी अनेक छल करके भी छलित नहीं कर सकती है। क्षोभ नहीं उपजा सकती हैं। ऐसे धैर्ययंत साधु को भी स्त्री पशु पडंग रहित ही स्थानक में रहना श्रेय है॥१६॥

मोक्खाभिकंखिस्स उ माणवस्स, संसारभीरुस्स ठियस्स धम्मे।
नेयारिसं दुत्तरमत्थि लोए, जहित्थिओ बालमणोहराओ॥१७॥

अज्ञानियों के मन को हरन करने वाली स्त्री को जानकर चतुर्गति रूप संसार के परिभ्रमण से डर कर मोक्ष की इच्छा वाले धर्म में दृढात्मा बने ऐसे मनुष्य को स्त्री का त्याग करना जितना दुष्कर होता है। उतना दुष्कर किसी भी वस्तु का त्याग करना नहीं होता है॥१७॥

एए य संगे समइक्कमित्ता, सुहुत्तरा चेव भवंति सेसा।
जहा महासागरमुत्तरित्ता, नई भवे अवि गंगासमाणा॥१८॥

जिस प्रकार सब समुद्रों से बड़ा स्वयंभूरमण समुद को तिर तो गंगा जैसी नदी को तिरना कठिन नहीं होता है। उसी प्रकार स्त्री का त्याग किये बाद शेष धनादि सामग्री छोड़ना कठिन नहीं होता है॥१८॥

कामाणुगिद्धिप्पभवं खु दुक्खं, सव्वस्स लोगस्स सदेवगस्स।
जं काइयं माणसियं च किंचि, तस्संतगं गच्छइ वीयरोगो॥१९॥

इस जगत् में व्याधि आदि शारीरिक दुःख और चिन्ता आदि मानसिक दुःख हुवे हैं वे सब निश्चय निरतंर काम भोग की इच्छा से ही उत्पन्न हुए हैं। इन दुःखों का अन्त वीतराग ही कर सकते हैं॥१९॥

जहा व किंपागफला मणोरमा, रसेण वण्णेण य भुज्जमाणा।
ते खुद्दए जीविए पच्चमाणा, एओवमा कामगुणा विवागे॥२०॥

जिस प्रकार किंपाक जाति के वृक्ष का फल वर्ण कर के मनोरम स्वाद कर के मिष्ट होते हैं। परन्तु भोगवे बाद क्षण मात्र में आयुष्य का नाश करते हैं। मृत्यु प्राप्त करते हैं वैसे ही काम भोग भी देखने में मनोहर भोगवते अच्छे लगते हैं। परन्तु उनके पाप के फल भोगते हुए बहुत दुःखदायक होते हैं॥२०॥

जे इंदियाणं विसया मणुन्ना, न तेसु भावं निसिरे कयाइ।
न यामणुन्नेसु मणे वि कुज्ज। समाहिकामे समणे तवस्सी॥२१॥

ऐसे जो समाधि के वांछक तपस्वी साधु हैं वे पांचों इन्द्रिय के मनोज्ञ विषय में कभी मन को रागमय बनाते नहीं हैं। और अमनोज्ञ विषय में द्वेष मय बनाते नहीं हैं। यों राग द्वेष का त्याग कर वे सदैव मध्यस्थभावी रहते हैं॥२१॥

चक्खुस्स रूवं गहणं वयंति, तं रागहेउ तु मणुन्नमाहु।
तं दोसहेउं अमणुन्नमाहु, समो उ जो तेसु स वीयरागो॥२२॥

अब पांचों इन्द्रिय के विषय का कथन कहते हैं प्रथम चक्षुन्द्रिय का कथन कहते हैं। श्री तीर्थंकर भगवान कहते हैं कि प्रत्येक वस्तु के रूप का ग्रहण चक्षु इन्द्रिय करती हैं। उस में से जो मनोज्ञ रूप होता है। उस पर राग भाव के हेतु भूत हैं। और जो अमनोज्ञ रूप हैं वह द्वेष

भाव के हेतु भूत हैं। इन मनोज्ञ अमनोज्ञ दोनों में जो राग द्वेष नहीं करते हैं। वे ही वीतराग कहे जाते हैं॥२२॥

रूवस्स चक्खुं गहणं वयंति, चक्खुस्स रूवं गहणं वयंति।
रागस्स हेउं समणुन्नमाहु, दोसस्स हेउ अमणुन्नमाहू॥२३॥

तीर्थंकर कहते हैं कि रूप का ग्रहण चक्षुरेइन्द्रिय करती हैं और चक्षुइन्द्रिय रूप को ग्रहण करने योग्य हैं। उसमें मनोज्ञ रूप राग का कर्त्ता होता है। और अमनोज्ञ रूप द्वेष का कर्त्ता होता है॥२३॥

रूवेसु जो गिद्धिमुवेइ तिव्वं, अकालियं पावइ से विणासं।
रागाउसे से जह वा पयंगे, आलोगलोले समुवेइ मच्चुं॥२४॥

जिस प्रकार दीपक पर आसक्त हो पतंगीया मंडराकर कर मृत्यु को प्राप्त होता है। वैसे ही रूप में तीव्र मूर्च्छा वाला जीव अकाल मृत्यु को प्राप्त होता है॥२४॥

जे यावि दोसं समुवेइ निच्चं, तंसि वखणे से उ उवेइ दुक्खं।
दुद्दंतदोसेण सएण जंतू, न किंचि रूवं अवरज्झई से॥२५॥

जो कोई अमनोज्ञ रूप को देखकर तीव्र द्वेष भाव को प्राप्त होता है। वह जीव स्वयं ही दुःख को प्राप्त होता है। परन्तु वह अमनोज्ञ रूप इसका किसी प्रकार अपराधी नहीं है। ऐसे द्वेष रूप दुर्दन्त शत्रु के कब्जें में पड़ जीव स्वयं ही दुखी होता है॥२५॥

एगंतरत्तो रुइरंसि रूवे, अतालिसे से कुणई पओसं।
दुक्खस्स संपीलमुवेइ बाले, न लिप्पई तेण मुणी विरागो॥२६॥

जो जीव एकान्त मनोज्ञ रूप में ही रक्त होते हैं उनको मनोहर रूप सहज ही द्वेष भूत होते हैं। जिस प्रकार वे स्वयं ही दुःख को प्राप्त होते हैं। ऐसा जानकर जो वीतराग होते हैं। द्वेष रूप मैल कर अपनी आत्मा को लिप्त नहीं करते हैं॥२६॥

रूवाणुगासाणुगए य जीवे, चराचरे हिंसइ णेगरूवे।
चित्तेहि ते परितावेइ बाले, पीलेइ अत्तट्ठगुरु किलिट्ठे॥२७॥

जिस अज्ञानी ने मनोज्ञ रूप प्राप्त करने को ही आत्मा का महाअर्थ महालाभ समझ उस मनोज्ञ रूप को प्राप्त करने (या प्राप्त मनोज्ञ रूप का रक्षण करने को) अनेक प्रकार के त्रस स्थावर प्राणीयों की अनेक प्रकार के शस्त्रकार घात करता पीड़ित करता है॥२७॥

रूवाणुवाए ण परिग्गहेण, उप्पायणे रक्खण-सन्निओगे।
वए विओगे य कहं सुहंसे, संभोगकाले य अतित्तिलाभे?॥२८॥

मनोज्ञ रूप का रागी बना मनोज्ञ रूप को ग्रहण करने की मूर्च्छा करके सुरूप स्त्रीयादि पदार्थ रूप परिग्रह अपने लिये या परके लिये सम्यक् प्रकार से काम में आने के लिये उपार्जन करता है। उन उपार्जन किये का चोर जारादि से स्वरक्षण करता है। यों करते-२ दोनों में से एक (वह

रूपवंत पदार्थ तथा उसका स्वामी) अवश्य नाश को प्राप्त होता है तो कहों उस सुरूप पदार्थ से उसको किस प्रकार सुख की प्राप्ति होवे? अर्थात् मनोज्ञ रूप का रागी कदापि सुखी नहीं होता है॥२८॥

रूवे अतित्ते य परिग्गहम्मि, सत्तोवसत्तो न उवेइ तुट्ठिं।
अतुट्ठिदोसेण दुही परस्स, लोभाविले आययई अदत्तं॥२९॥

मनोज्ञ रूप में असन्तोषी जीव रूपवंत परिग्रह में अत्यन्त लुब्ध बना हुआ किंचित भी संतोष प्राप्त नहीं करता हुआ फिर सुरूप के लोभ कर जिस का चित्त मलीन बना है। वह जीव असन्तोष के द्वेष कर अन्य की रूपवंत वस्तु को देखकर उस वस्तु के मालिक की आज्ञा बिना उस वस्तु को ग्रहण करता है। अर्थात् चोरी करके भी इच्छा तृप्त करता है॥२९॥

तण्हाभिभूयस्स अदत्तहारिणो, रूवे अतित्तसस परिग्गहे य।
मायामुसं वड्ढइ लोभदोसा, तत्थावि दुक्खा न विमुच्चई से॥३०॥

रूपवंत परिग्रह को प्राप्त करने में असंतोषवना जीव तृष्णाकार पराभव पाया हुआ रूपवंत वस्तु की चोरी करने वाला होता है। उसके कोई पूछे कि तूने अमुक वस्तु ग्रहण की? तब उसको कपट युक्त झूठा जवाब देते भी उस पाप के फल भुक्तने से वह जीव मुक्त नहीं होता है। पाप फल तो अवश्य भुक्तने ही पड़ते हैं॥३०॥

मोसस्स पच्छा य पुरत्थओ य, पओगकाले य दुही दुरंते।
एवं अदत्ताणि समाययंतो, रूवे अतित्तो दुहिओ अणिस्सो॥३१॥

रूप गृद्धी जीव उक्त प्रकार झूठ बोलने बाद भी पश्यातापं करता है वैसे ही पहले भी पश्यातापं करना पड़ता है। उसका मन सदैव चिन्ता ग्रस्त बना रहता है। कि अमुक मुझसे पूछेगा तो मैं क्या उत्तर दूंगा? मेरा झूठ या चोरी प्रगट हो जावे, इस प्रकार रूपवंत स्त्री आदि वस्तु के चोरने वाले दुःख भोगवते हैं। उनका कोई सखा (सहायक) भी नहीं होता है। इस प्रकार उसके दुःख का अन्त आना बहुत कठिन होता है॥३१॥

रूवाणुरत्तस्स नरस्स एवं, कत्तो सुहं होज्ज कयाइ किंचि?।
तत्थोवभोगे वि किलेसदुक्खं, निव्वत्तई जस्स कए ण दुक्ख॥३२॥

उक्त प्रकार जो जीव रूप में आसक्त हो रहे हैं। उनको सुख की प्राप्ति क्या किसी भी प्रकार हो सकती? अर्थात् वे किसी प्रकार सुखी नहीं होते हैं। विपरीत उस मनोज्ञ सुरूप स्त्री आदि के भोग में फंस अनेक प्रकार के क्लेश भोगवते हैं उसके भोगवने के लिये अनेक कष्ट करते हैं॥३२॥

एमेव रूवम्मि गओ पओसं, उवेइ दुक्खोधपरंपराओ।
पदुट्ठचित्तो य चिणाइ कम्मं, जं से पुणो होइ दुह वि वागे॥३३॥

और इस प्रकार ही खराब रूप में द्वेष को प्राप्त हुआ मनुष्य भी दुःख के समूह को प्राप्त होता है। विशेष में द्वेष से कर्म बन्ध होता है। सो अलग फिर वे कर्म उस जीव को इस लोक में तथा परलोक में भुक्तने बहुत दुःखदायक होते हैं॥३३॥

रूवे विरत्तो मणुओ विसोगो, एएण दुक्खोघपरंपरेण।
न लिप्पई भवमज्झे वि संतो, जलेण वा पुक्खरिणीपलासं॥३४॥

और जो ज्ञानीजन मनोज्ञ रूप में विरक्त भाव धारण करते हैं वे शोक रहित होते हैं। उक्त प्रकार के दुःख भोगवने वाले नहीं होते हैं। वे जिस प्रकार पानी में कमल पत्र अलिप्त रहता है। वैसे वे भी निर्लेप रहते हैं। इति चक्षु इन्द्रिय का कथन॥३४।१॥

सोयस्स सद्दं गहणं वयंति, तं रागहेउं तु मणुन्नमाहु।
तं दोसहेउं अमणुन्नमाहुस, समो य जो तेसु स वीयरागो॥३५॥

अब श्रोतेन्द्रिय (कान) का कहते हैं–श्री तीर्थंकर भगवंत ने कहा है कि श्रोतन्द्रिय शब्द को ग्रहण करने योग्य है। उसमें जो शब्द मनोज्ञ होते हैं। इन मनोज्ञ व अमनोज्ञ शब्दों में जो राग द्वेष को प्राप्त नहीं होता है। वह वीतराग जानना॥३५॥

सद्दस्स सोयं गहणं वयंति, सोयस्स सद्दं गहणं वयंति।
रागस्स हेउं समणुन्नमाहू, दोसस्स हेउं अमणुन्नमाहु॥३६॥

श्री तीर्थंकर भगवंत कहते हैं–कान शब्द को ग्रहण करने वाले हैं, कान को शब्द ग्रहण करने योग्य है। उसमें जो मनोहर शब्द हैं वे राग के हेतु हैं और अमनोज्ञ शब्द हैं वे द्वेष के हेतु हैं॥३६॥

सद्देसु जो गेहिमुवेइ तिव्वं, अकालियं पावइ से विणासं।
रागाउरे हरिणमिगे ब्व मुद्धे, सद्दे अतित्ते समुवेइ मच्चुं॥३७॥

जिस प्रकार शब्द का अनुरागी बनकर मृग पशु काल अकाल में मृत्यु को प्राप्त होता है। वैसे ही जो शब्द में तीव्र मूर्च्छा वाला जीव है। वह अकाल में मृत्यु पाता है॥३७॥

जे यावि दोसं समुवेइ तिव्वं, तसिं खणे से उ उवेइ दुक्खं।
दुद्दंतदोसेण सएण जंतू, न किंचि सद्दं अवरज्झई से॥३८॥

जो कोई अमनोज्ञ शब्द को सुनकर तीव्र द्वेष को प्राप्त होता है वह जीव स्वयं ही दुःख को प्राप्त होता है। वह अमनोज्ञ शब्द इसलिये किसी प्रकार अपराधी नहीं है। ऐसे द्वेष रूप शत्रु के क्रोध में पड़े जीव स्वयं दुःखी होते हैं॥३८॥

एगंतरत्ते रुइरंसि सद्दे, अतालिसे से कुणई पओसं।
दुक्खस्स संपीलमुवेइ बाले, न लिप्पई तेण मुणी विरागो॥३९॥

जो जीव एकान्त मनोज्ञ शब्द में रक्त होते हैं वे अमनोज्ञ शब्द पर सहज ही द्वेष को प्राप्त होते हैं। जिससे वे स्वयं ही दुःख को प्राप्त होते हैं। ऐसा जानकर जो वीतराग होते हैं वे द्वेष रूप मैल कर लिप्त नहीं होते हैं॥३९॥

सद्दाणुगसाणुगए य जीवे, चराचरे हिंसई णेगरूवे।
चित्तेहिं ते परितावेइ बाले, पीलेइ अत्तट्ठगुरू किलिट्ठे॥४०॥

जिस अज्ञानी ने मनोज्ञ शब्द प्राप्त करने में कोई आत्मा का महाअर्थ महालाभ समझ रखा

है। वह मनोज्ञ शब्द के राग कर पीड़ित हुआ मनोज्ञ शब्द के पीछे-२ चलता है। अर्थात् मनोज्ञ शब्द को प्राप्त करने अनेक प्रकार के त्रस स्थावर प्राणियों को अनेक प्रकार से पीड़ित करता है या घात करता है।।४०।।

सद्दाणुवाए ण परिग्गहेण, उप्पायणे रक्खण-सन्निओगे।
वए विओगे य कहं सुहं से, संभोगकाले य अतित्तिलाभे?।।४१।।

मनोज्ञ शब्द का रागी बना हुआ मनोज्ञ शब्द को ग्रहण करने की मूर्च्छा करके सुशब्दवाली वीणा आदि परिग्रह को अपने लिये या अन्य के लिये सम्यक् प्रकार से काम में आने के लिये उपार्जन करता है। उन महा कष्ट से उपार्जन किये पदार्थों का चोरादि स्वरक्षण करता है। यों करते-२ भी दोनों में से (उस शब्द संजोगी पदार्थ का या प्राप्त करने वाले का) एक का तो अवश्य ही विनाश होता है, तो कहो वह शब्द संजोगी पदार्थ उसको किस प्रकार सुखदाई बन सके? अर्थात् मनोज्ञ शब्द का रागी कदापि सुखी नहीं होता है।।४१।।

सद्दे अतित्ते य परिग्गहम्मि, सत्तोवसत्तो न उवेइ तुट्ठिं।
अतुट्ठिदोसेण दुही परस्स, लोभाविले आययई अदत्तं।।४२।।

मनोज्ञ शब्द में असंतोषी जीव मनोज्ञ शब्दों में लुब्ध बना किंचित् भी संतोष को प्राप्त नहीं होता हुआ सुशब्द के अनुराग कर जिसका चित्त मलीन बना है। वह जीव असंतोष के दोष कर अन्य की सुशब्द वाली वस्तु को देखकर उस वस्तु के स्वामी की आज्ञा बिना उस वस्तु को ग्रहण करता है अर्थात् चोरी करके भी इच्छा तृप्त करता है।।४२।।

तण्हाभिभूयस्स अदत्तहारिणो, सद्दे अतित्तस्स परिग्गहे य।
मायामुसं वड्ढइ लोभदोसा, तत्थावि दुक्खा न विमुच्चई से।।४३।।

मनोज्ञ शब्द रूप परिग्रह को प्राप्त करने में असंतोषी बना हुआ जीव तृष्णा कर पराभव पाया हुआ सुशब्द वाली वस्तु का चोरी करने वाला होता है। उसे कोई पूछे कि तूने अमुक वस्तु ग्रहण की? तब वह उसको कपट युक्त झूठा जवाब देने से भी उस पाप के फल भूगतने से उसका मुक्ति नहीं होती है, अर्थात् पाप के फल जरूर ही भुक्तने पड़ते हैं।।४३।।

मोसस्स पच्छा य पुरत्थओ य, पओगकाले य दुही दुरंते।
एवं अदत्ताणि समाययंतो, सद्दे अतितो दुहिओ अणिस्सो।।४४।।

शब्दानुरागी जीव उक्त प्रकार झूठ बोले बाद भी पश्यातात करता है वैसे पहले भी पश्यातात करता है, अर्थात् उसका मन सदैव चिन्ता ग्रस्त ही बना रहता है। अमुक मुझे पूछेगा तो मैं क्या जवाब दूंगा। कहीं मेरा झूठ या चोरी प्रगट हो जावे, इस प्रकार शब्द संयोगी पदार्थ के चोर दुःख भोगवते हैं। उनका कोई सहायक नहीं होता है, अर्थात् उसके दुःख का अन्त आना बहुत असंभव हो जाता है।।४४।।

सद्दाणुरत्तस्स नरस्स एवं, कत्तो सुहं होज्ज कयाइ किंचि?।
तत्थोवभोगे वि किलेसदुक्खं, निव्वत्तई जस्स कए ण दुक्खं॥४५॥

इस प्रकार जो जीव शब्द में आसक्त होते हैं। उनको सुख की प्राप्ति किसी भी प्रकार से है क्या? अर्थात् किसी भी उपाय से वे सुखी नहीं होते हैं। विपरीत उस मनोज्ञ सुशब्द के पदार्थों मे फंसकर अनेक प्रकार का क्लेश भोगवते हैं। उसकी प्राप्ति के लिये अनेक कष्ट उठाने पड़ते हैं॥४५॥

एमेव सद्दम्मि गओ पओसं, उवेइ दुक्खोघपरंपराओ।
पदुट्ठचित्तो य चिणाइ कम्मं, जं से पुणो होइ दुहं विवागे॥४६॥

और इस प्रकार ही अशुभ शब्द से द्वेष को प्राप्त हुवा मन भी दुःख के समूह को प्राप्त होता है। विशेष द्वेष से कर्म बन्ध होता है। वे कर्म इस जीव का इस लोक में तथा परलोक में भुक्तने बहुत दुःखकारी होते हैं॥४६॥

सद्दे विरत्तो मणुओ विसोगो, एएण दुक्खोघपरंपरेण।
न लिप्पई भवमज्झे वि संतो, जलेण वा पोक्खरिणीपलासं॥४७॥

और जो ज्ञानी जन मनोज्ञ शब्द में विरक्त भाव धारण करते हैं वे सर्व प्रकार की चिन्ता रहित होते हैं। उक्त दुःख के भोक्ता नहीं होते हैं। वे जिस प्रकार पानी में कमल पत्र की तरह अलिप्त रहता है वैसे ही वे अलिप्त रहते हैं। इति श्रोत्रेन्द्रिय कथन॥४७॥

घाणस्स गंधं गहणं वयंति, तं रागहेउं तु मणुन्नमाहु।
तं दोसहेउं अमणुन्नमाहु, समो व जो तेसु स वीयरागो॥४८॥

अब घ्राणेन्द्रिय का कथन कहते हैं। श्री तीर्थंकर भगवंत कहते हैं कि–घ्राणेन्द्रिय गंध को ग्रहण करने की योग्यता रखती है। उसमें जो सुरभिगंध होती है। वह राग भाव की उत्पादक होती है। और दरुभिगंध होती है। वह द्वेषभाव की उत्पादक होती है। इस मनोज्ञ अमनोज्ञ गंध में जो रागद्वेष को प्राप्त नहीं होते हैं वह वीतराग कहा जाता है॥४८॥

गंधस्स घाणं गहणं वयंति, घाणस्स गंधं गहणं वयंति।
रागस्स हेउं समणुन्नमाहु, दोसस्स हेउं अमणुन्नमाहु॥४९॥

श्री तीर्थंकर कहते हैं कि गंध को घ्राण ग्रहण करती है, और नाक को गंध ग्रहण करने योग्य होती है। उसमें जो मनोज्ञ गंध है वह रागभाव की उत्पादक होती है, और अमनोज्ञ गंध है वह द्वेष भाव का उत्पादक होता है॥४९॥

गंधेसु जो गेहिमुवेइ तिव्वं, अकालिय पावइ से विणासं।
रागाउरे ओसहिगंधगिद्धे, सप्पे, विलाओ विव निक्खमंत्ते॥५०॥

जिस प्रकार औषध जड़ी या पुष्पादि के गंध से लुब्ध बना सर्प बिल में से बाहर निकल कर दुःख को प्राप्त होता है। वैसे ही गन्ध गृद्धि जीव अकाल में मृत्यु को प्राप्त होता है॥५०॥

जे यावि दोसं समुवेइ तिव्व, तंसिक्खणे से उ उवेइ दुक्खं।
दुद्दंतदोसेण सएण जंतू, न किंचि गधं अवरज्झई से॥५१॥

जो कोई अमनोज्ञ गंध प्राप्त होने से तीव्र द्वेष भाव को प्राप्त होते हैं वे स्वयं ही अपने को दुःखी बना लेते हैं परंतु वह गंध उनकी अपराधिनी नहीं है। ऐसे द्वेष रूप दुर्दन्त शत्रु के कब्जे में पड़े हुए जीव स्वयं दुःखी होते हैं॥५१॥

एगंतरत्ते रुइरंसि गंधे, अतालिसे से कुणई पओसं।
दुक्खस्स संपीलमुवेइ बाले, न लिप्पई तेण मुणी विरागो॥५२॥

जो जीव एकान्त मनोज्ञ गंध में रत होते हैं। वे अमनोज्ञ गंध में सहज ही द्वेष को प्राप्त होते हैं। जिससे वे अज्ञानी दुःख को प्राप्त होते हैं। ऐसा जानकर द्वेष रूप मैल कर वीतराग लिप्त नहीं होते हैं॥५२॥

गंधाणुगासाणुगए य जीवे, चराचरे हिंसइ णेगरूवे।
चित्तेहिं ते परितावेइ बाले, पीलेइ अत्तइ अत्तट्ठगुरु किलिट्ठे॥५३॥

जिस अज्ञानी ने मनोज्ञ गंध को प्राप्त करने में ही आत्मा का महाअर्थ महालाभ समझ रखा है वह मनोज्ञ गंध के राग रूप रोग कर पीड़ित हुआ मनोज्ञ गंध के पीछे-२ ही चलता है, अर्थात् मनोज्ञ गंध को प्राप्त करने के लिए अनेक प्रकार के त्रस स्थावर प्राणियों की घात करता है। तथा पीड़ित करता है॥५३॥

गंधाणुवाए ण परिग्गहेण, उप्पायणे रक्खण-सन्निओगे।
वए विओगे य कहं सुहं से, संभोगकाले य अतित्तिलाभे?॥५४॥

मनोज्ञ गंध का रागी बना जीव मनोज्ञ गंध को ग्रहण करने की मूर्च्छा करके मनोज्ञ गंध वाले कस्तूरी आदि परिग्रह को अपने लिये या पर के लिये गंध के काम में आने के लिये उपार्जन करता है। उस उपार्जन किये पदार्थों का चोरादि से स्वरक्षण करता है। इस तरह करते-२ भी दोनों में से (उस गंध वाले पदार्थ का या उसके स्वामी का) एक का तो अवश्य ही नाश होता है। इसीलिए वह गंधलुब्धत्मा किसी भी प्रकार सुख को प्राप्त नहीं होता है॥५४॥

गंधे अतित्ते य परिग्गहम्मि, सत्तोवसत्तो न उवेइ तुट्ठिं।
अतुट्ठिदोसेण दुही परस्स, लोभाविले आययई अदत्तं॥५५॥

मनोज्ञ गंध में असंतोषी जीव मनोज्ञ गंध में लुब्ध बना हुआ किंचित् भी संतोष को प्राप्त नहीं होता है। सुरभिगंध के अनुराग कर जिस का चित्त मलीन होता है वह जीव असंतोष के दोष कर अन्य की सुगंधी वस्तु को देखकर उसे ग्रहण करने चोरी करता है। तो भी उसकी इच्छा तृप्त नहीं होती है॥५५॥

तण्हाभिभूयस्स अदत्तहारिणो, गंधे अतित्तस्स परिग्गहे य।
मायामुसं वड्ढइ लोभदोसा, तत्थावि दुक्खा न विमुच्चई से॥५६॥

मनोज्ञ गंध रूप परिग्रह को प्राप्त करने में असंतोषी बना हुआ जीव तृष्णा कर पराभव पाया

हुआ, सुगंध वाली वस्तु की चोरी करने वाला होता है, उसे कोई पूछे कि तूने अमुक वस्तु ग्रहण की? तब उसे कपट युक्त झूठा जवाब देने से भी उस पाप के फल भुक्तने उससे छुटकारा नहीं होता है अर्थात् पाप के फल जरूर ही भोगना पड़ता है॥५६॥

मोसस्स पच्छा य पुरत्थओ य, पओगकाले य दुही दुरंते।
एवं अदत्ताणि समाययंतो, गंधे अतितो दुहिओ अणिस्सो॥५७॥

गंधानुरागी जीव उक्त झूठ बोले बाद भी पाप फल भोगना पश्चाताप करता है वैसे पहले भी पश्चाताप करता है, अर्थात् उसका मन सदैव चिन्ताग्रस्त रहता है। अमुक मुझे पूछेगा तो मैं क्या जवाब दूंगा? मेरा झूठ चोरी प्रगट हो जावे! इस प्रकार गंध संयोगी पदार्थ के चोर दुःख ही दुःख भोगते हैं उनका कोई सहायक नहीं होता है। अर्थात् उसके दुःख का अन्त आना बहुत असंभव होता है॥५७॥

गंधाणुरत्तस्स नरस्स एवं, कत्तो सुहं होज्ज कयाइ किंचि?।
तत्थोवभोगे वि किलेसदुक्खं, निव्वत्तई जस्स कए ण दुक्खं॥५८॥

इस प्रकार गंध रक्त जीवों को सुख की प्राप्ति होवे ही कहाँ से? अर्थात् वे किसी भी उपाय कर सुख प्राप्त नहीं कर सकते हैं। विपरीत उस मनोज्ञ गंध के पदार्थों में फँस कर अनेक प्रकार के कष्ट भोगते हैं, उसकी प्राप्ति के लिये अनेक कष्ट उठाते हैं॥५८॥

एमेव गंधम्मि गओ पओसं, उवेइ दुक्खोहपरंपराओ।
पदुट्ठचित्तो च चिणाइ कम्म, जं से पुणो होइ दुहं विवागे॥५९॥

और इस ही प्रकार खराब गंध में द्वेष को प्राप्त हुआ मनुष्य भी दुःख के समूह को प्राप्त होता है, विशेष द्वेषी बनने से कर्म बन्ध होता है, वे कर्म उस जीव को इस लोक में पर लोक में दोनों लोक में बहुत दुःखकारी होते हैं॥५९॥

गंधे विरत्तो मणुओ विसोगो, एएण दुक्खोहपरंपरेण।
न लिप्पई भवमज्झे वि संतो, जलेण वा पुक्खरिणीपलासं॥६०॥

ऐसा जानकर जो ज्ञानी जन मनोज्ञ गंध में विरक्त भाव धारण करते हैं, वे सर्व प्रकार की चिन्ता रहित होते हैं। उक्त दुःख के भोक्ता नहीं होते हैं, वे जिस प्रकार पानी में कमल पत्र अलिप्त रहता है वैसे गंधकर कर्मों के लेप से अलिप्त रहते हैं। इति घ्राणेन्द्रिय कथन॥३॥६०॥

जिब्भाए रसं गहणं वयंति, तं रागहेउं तु मणुन्नमाहु।
तं दोसहेउं अमणुन्नमाहु, समो य जो तेसु स वीयरागो॥६१॥

अब जिह्वा इन्द्रिय का कथन कहते हैं। श्री तीर्थंकर भगवंत कहते हैं कि जिव्हा इन्द्रिय रस को ग्रहण करने की योग्यता रखती है उस में जो मनोज्ञ रस होता है वह रागोत्पादक होता है और अमनोज्ञ रस होता है वह द्वेषोत्पादक होता है इन मनोज्ञ अमनोज्ञ दोनों प्रकार के रस पर जो रागद्वेष नहीं करता है वही वीतराग कहा जाता है॥६१॥

रसस्स जिब्भं गहणं वयंति, जिब्भाए रसं गहणं वयंति।
रागस्स हेउं समणुन्नमाहु, दोसस्स हेउं अमणुन्नमाहु॥६२॥

श्री तीर्थंकर कहते हैं कि–रस को जिह्वा ग्रहण करती है। और जिह्वा का रस ग्रहण करने योग्य है। उसमें मनोज्ञ रस रागोत्पादक और अमनोज्ञ रस द्वेषोत्पादक होता है॥६२॥

रसेसु जो गेहिमुवेइ तिव्वं, अकालियं पावइ से विणासं।
रागाउरे बडिसविभिन्नकाए, मच्छे जहा आमिसभोगगिद्धे॥६३॥

जिस प्रकार मांस भक्षण के रस में लुब्ध बना मच्छ लोह के कांटे में अपना कंठ छेदन करा अकाल में मृत्यु को प्राप्त होता है, ऐसे ही रस गृद्धी जीव भी अकाल में मृत्यु को प्राप्त होते हैं॥६३॥

जे यावि दोसं समुवेइ तिव्वं, तस्सिं खणे से उ उवेइ दुक्खं।
दुद्दंतदोसेण सएण जंतू, न किंची रसं अवरज्झई से॥६४॥

जो कोई अमनोज्ञ रस की प्राप्ति से तीव्रद्वेष भाव को प्राप्त होते हैं वे स्वयं ही अपने को दुःखी बना लेते हैं परन्तु वह रस उस का अपराधी नहीं है। ऐसे द्वेष रूप दुर्दन्त शत्रु के अधिकार में पड़े हुए जीव स्वयं ही दुःखी होते हैं॥६४॥

एगंतरते रुइरे रसम्मि, अतालिसे से कुणई पओसं।
दुक्खस्स संपीलमुवेइ बाले, न लिप्पई तेण मुणी विरागो॥६५॥

जो जीव एकान्त मनोज्ञ रस में रक्त होते हैं वे अमनोज्ञ रस में सहज ही द्वेष को प्राप्त होते हैं जिससे वे ही अज्ञानी जीव दुःख के भोक्ता होते हैं। ऐसा जान द्वेष रूप मैलकर वीतरागी लिप्त नहीं होते हैं॥६५॥

रसाणुगासाणुगए य जीवे, चराचरे हिंसइ णेगरूवे।
चित्तेहि ते परितावेइ बाले, पीलेइ अत्तट्ठगुरू किलिट्ठे॥६६॥

जिस अज्ञानी ने मनोज्ञ रस ही आत्मा का महा अर्थ समझ रखा है, वह मनोज्ञ रस के राग रूप रोग कर पीड़ित हुआ मनोज्ञ रस के पीछे-पीछे ही चलता है, अर्थात् मनोज्ञ रस को प्राप्त करने अनेक त्रस स्थावर प्राणियों की घात करता है तथा पीड़ित करता है॥६६॥

रसाणुवाए ण परिग्गहेण, उप्पायणे रक्खण-संनिओगे।
वए विओगे य कहं सुहं से, संभोगकाले य अतित्तिलाभे?॥६७॥

मनोज्ञ रस का रागी बना जीव मनोज्ञ रस को ग्रहण करने की मूर्छा कर, मनोज्ञ रस वाले मिष्टान्नादि परिग्रह को अपने लिये व्यापार के लिये भोगपने के काम में आने के लिये उपार्जन करता है। फिर उपार्जन किये पदार्थों को चोरादिसे स्वरक्षण करता है। यों करते-करते दोनों में से एक का तो अवश्य ही नाश होता है। इसलिये वह रस लुब्ध जीव किसी भी प्रकार सुख को प्राप्त नहीं कर सकता है॥६७॥

रसे अतित्ते य परिग्गहम्मि, सत्तोवसत्तो न उवेइ तुट्ठिं।
अतुट्ठिदोसेण दुही परस्स, लोभाविले आययई अदत्तं॥६८॥

मनोज्ञ रस में असंतोषी जीव मनोज्ञ रस में लुब्ध बने हुए किंचित भी संतोष को प्राप्त नहीं होते हैं, स्वादि रस के अनुराग कर जिस का चित्त मलीन रहता है वह जीव असंतोष के दोष कर अन्य के भोजनादि को देखकर उसे ग्रहण करने चोरी करता है तो भी उसकी इच्छा तृप्त नहीं होती है॥६८॥

तण्हाभिभूयस्स अदत्तहारिणो, रसे अतितस्स परिग्गहे य।
मायामुसं वड्ढइ लोभदोसा, तत्थावि दुक्खा न विमुच्चई से॥६९॥

मनोज्ञ रस रूप परिग्रह को प्राप्त करने में असंतोषी बना हुआ जीव तृष्णा-कर पराभव पाया हुआ रसमय वस्तु की चोरी करने वाला होता है, उसे कोई पूछे–तूने अमुक वस्तु ग्रहण की? तब वह कपट युक्त झूठा जवाब देता भी उस पाप के फल भोगने से छुटकारा नहीं पाता है। अर्थात् पाप के फल जरूर ही भोगना पड़ता है॥६९॥

मोसस्स पच्छा य पुरत्थओ य, पओगकाले य दुही दुरंते।
एवं अदत्ताणि समाययंतो, रसे अतित्तो दुहिओ अणिस्सो॥७०॥

रसानुरागी जीव उक्त प्रकार झूठ बोलने के बाद भी पाप फल प्राप्त हुए पश्चाताप करते हैं अर्थात् उनका मन सदैव चिन्ताग्रस्त बना रहता है। अमुक मुझे पूछेगा तो मैं क्या जवाब दूंगा? मेरा झूठ या चोरी प्रगट हो जावे। इस प्रकार रस पदार्थ के चुराने वाले दुःख ही दुःख भोगते हैं, उनका कोई सहायक नहीं होता है। अर्थात् उसके दुःख का अन्त आना बहुत असंभव होता है॥७०॥

रसाणुरत्तस्स नरस्स एवं, कत्तो सुहं होज्ज कयाइ किंचि?।
तत्थोवभोगे वि किलोसदुक्खं, निव्वत्तई जस्स कए ण दुक्खं॥७१॥

इस प्रकार रस लुब्ध जीव को सुख की प्राप्ति होवे ही कहाँ से? वे किसी भी उपाय कर सुख प्राप्त नहीं कर सकते हैं विपरीत उन मनोज्ञ रस के पदार्थों में फंसकर अनेक प्रकार के कष्ट भोगवते हैं। उसकी प्राप्ति के लिये अनेक कष्ट उठाते हैं॥७१॥

एमेव रसम्मि गओ पओसं, उवेइ दुक्खोघपरंपराओ।
पदुट्ठचित्तो य चिणाइ कम्मं, जं से पुणो होइ दुहं विवागे॥७२॥

और इस ही प्रकार अशुभ रस में द्वेष को प्राप्त हुआ मनुष्य भी दुःख के समूह को प्राप्त होता है। विशेष द्वेषी बनने से कर्म बन्ध होता है। वे कर्म इस लोक में तथा परलोक में भोगते समय बहुत दुःखकारी होते हैं॥७२॥

रसे विरत्तो मणुओ विसोगो, एएण दुकखोघपरंपरेण।
न लिप्पई भवमज्झे वि संतो, जलेण वा पोवखरिणीपलासं॥७३॥

ऐसा जान जो ज्ञानी जन होते हैं वे मनोज्ञ रस में विरक्त भाव धारण करते हैं, वे सर्व

प्रकार की चिन्ता रहित होते हैं। वे उक्त दुःख के भोगी नहीं होते हैं। जिस प्रकार पानी में कमल अलिप्त रहता है वैसे ही वे अलिप्त रहते हैं। इति रसेन्द्रिय कथन॥७३॥

कायस्स फासं गहणं वयंति, तं रागहेउं तु मणुन्नमाहु।
तं दोसहेउं अमणुन्नमाहु, समो य जो तेसु स वीयरागो॥७४॥

अब स्पर्शेन्द्रिय का कथन कहते हैं॥ श्री तीर्थंकर भगवंत कहते हैं कि स्पर्शेन्द्रिय शीत उष्णादि स्पर्श को ग्रहण करने की योग्यता रखती है, उसमें जो मनोज्ञ स्पर्श होता है वह राग कर्ता होता है और अमनोज्ञ स्पर्श होता वह द्वेष कर्ता होता है। इन दोनों में जो राग द्वेष नहीं करते हुए समभाव रखते हैं, वे ही वीतरागी कहे जाते हैं॥७४॥

फासस्स कायं गहणं वयंति, कायस्स फासं गहणं वयति।
रागस्स हेउ समणुन्नमाहू, दोसस्स हेउं अमणुन्नमाहु॥७५॥

श्री तीर्थंकर भगवंत कहते हैं कि–स्पर्श को काया ग्रहण करती है उसमें से मनोज्ञ स्पर्श रागोत्पादक होता है और अमनोज्ञ स्पर्श द्वेषोत्पादक होता है॥७५॥

कासेसु जो गिद्धिमुवेइ तिव्व, अकालियं पावइ से विणासं।
रागाउरे सीयजलावसन्ने, गाहग्गहीण महिसे व रण्णे॥७६॥

जिस प्रकार पाडा-भैंसा शीतल स्पर्श की लुब्धता कर पानी में ही पड़ा रहता है, उसका भक्षण पानी में रहने वाले ग्रह नामक जलचर जीव करने से वह अकाल में मृत्यु को प्राप्त करता है वैसे ही स्पर्श गृद्धी जीव भी अकाल में मृत्यु को प्राप्त होते हैं॥७६॥

जे यावि दोस समुवेइ तिव्वं, तस्सिक्खणे से उ उवेइ दुक्खं।
दुद्दंतदोसेण सएण जंतू, न किंचि फासं अवरज्झई से॥७७॥

जो कोई अमनोज्ञ स्पर्श में तीव्र द्वेष भाव को प्राप्त होते हैं वे आप ही अपने को दुःखी बना लेते हैं। परन्तु वह स्पर्श उसका अपराधी नहीं होता है। ऐसे द्वेष रूप दुर्दन्त शत्रु के कब्जे में पड़े जीव स्वयं ही दुःखी होते हैं॥७७॥

एगंतरते रुइरंसि फासे, अतालिसे से कुणई पओसं।
दुक्खस्स संपीलमुवेइ वाले, न लिप्पई तेण मुणी विरगो॥७८॥

जो जीव एकान्त मनोज्ञ स्पर्श में रक्त होते हैं वे अमनोज्ञ स्पर्श पर सहज ही द्वेष करते हैं। जिससे वे अज्ञानी जीव दुःख के भोक्ता बनते हैं। ऐसा जान वीतरागी जन द्वेष रूप मैल में लिप्त नहीं होते हैं॥७८॥

फासाणुगासाणुगए य जीवे, चराचरे हिंसइ णेगरूवे।
चित्तेहिं ते परितावेइ बाले, पीलेइ अत्तट्ठगुरू किलिट्ठे॥७९॥

जिस अज्ञानी ने मनोज्ञ स्पर्श को ही आत्मा का महा अर्थ समझ रखा है। वे मनोज्ञ स्पर्श के राग रूप रोग कर पीड़ित हुए मनोज्ञ स्पर्श के पीछे-पीछे ही चलते हैं। मनोज्ञ स्पर्श को प्राप्त करने अनेक त्रस स्थावर प्राणियों की घात करते हैं॥७९॥

फासाणुवाए ण परिग्गहेण, उप्पायणे रक्खण-सन्निओगे।
वए विओगे य कहं सुहं से, संभोगकाले य अतित्तिलाभे?॥८०॥

मनोज्ञ स्पर्श का रागी बना जीव मनोज्ञ स्पर्श को ग्रहण करने की मूर्छा कर मनोज्ञ स्पर्श वाले स्त्री आदि परिग्रह का अपने या परके भोगवने के लिये उपार्जन करता है। फिर उपार्जन किये परिग्रह का चोरादि में रक्षण करता है, यों करते-करते दोनों में से एक का तो अवश्य ही नाश होता है। इसलिये वह स्पर्श लुब्ध जीव किसी भी प्रकार सुख को प्राप्त नहीं कर सकता है॥८०॥

फासे अतित्ते य परिग्गहम्मि, सत्तोवसत्तो न उवेइ तुट्ठिं।
अतुट्ठिदोसेण दुही परस्स, लोभाविले आययई अदत्तं॥८१॥

मनोज्ञ स्पर्श में असंतोषी जीव मनोज्ञ स्पर्श में लुब्ध बने हुए किंचित भी संतोषित नहीं होते हैं, मनोज्ञ स्पर्श के अनुराग कर जिसका चित्त मलीन हो रहा है वह जीव असंतोष के दोष कर अन्य के स्त्री शयनाशनादि देखकर उसे ग्रहण करने चोरी करता है, तो भी उस की इच्छा तृप्त नहीं होती है॥८१॥

तण्हाभिभूयस्स अदत्तहारिणो, फासे अतित्तस्स परिग्गहे य।
मायामुसं वड्ढइ लोभदोसा, तत्थावि दुकखा न विमुच्चई से॥८२॥

मनोज्ञ स्पर्श का परिग्रह प्राप्त करने में असंतोषी बना हुआ जीव तृष्णा कर पराभव पाया हुआ वस्त्र भूषणादि स्पर्श ने योग्य वस्तु की चोरी करने वाला होता है। उसको कोई पूछे कि तूने अमुक वस्तु ग्रहण की? तब वह कपट युक्त झूठा जवाब देता भी उस पाप के फल भोगने से छूटता नहीं है, अर्थात् पाप के फल जरूर ही भोगने पड़ते हैं॥८२॥

मोसस्स पच्छा य पुरत्थओ य, पओगकाले य दुही दुरंते।
एवं अदत्ताणि समाययंतो, फासे अतित्तो दुहिओ अणिस्सो॥८३॥

स्पर्श के रागी जीव उक्त प्रकार झूठ बोले बाद भी पश्यात्ताप करता है। वैसे ही पहले भी पश्यात्ताप करता है, यों उसका मन सदैव चिन्तातुर रहता है। अमुक मुझे पूछेगा तो मैं क्या कहूंगा? मेरा झूठ चोरी प्रकट हो जावे इस प्रकार स्पर्श के पदार्थ की चोरी करने वाला दुःख ही दुःख भोक्ता है। उसका कोई सहायक नहीं होता है। जिससे उस के दुःख का अन्त आना बहुत असंभव हो जाता है॥८३॥

फासाणुरत्तस्स नरस्स एवं, कत्तो सुहं होज्ज कयाइ किंचि?।
तत्थोवभोगे वि किलेसदुक्खं, निव्वत्तई जस्स कए ण दुक्खं॥८४॥

इस प्रकार स्पर्श के गृद्धि जीवों को सुख की प्राप्ति होवे ही कहाँ से? अर्थात् वे किसी भी उपाय कर सुखी नहीं हो सकते हैं। विपरीत उन मनोज्ञ स्पर्शमय पदार्थों में फंसकर अनेक प्रकार के कष्ट भोगते हैं, उसकी प्राप्ति के लिये अनेक कष्ट उठाते हैं॥८४॥

एमेव फासम्मि गओ पओसं, उवेइ दुक्खोघपरंपराओ।
पदुट्ठचित्तो य चिणाइ कम्मं, जं से पुणो होइ दुहं विवागे॥८५॥

और इस ही प्रकार खराब स्पर्श पर द्वेष को प्राप्त हुआ मनुष्य भी दुःख के समूह को प्राप्त

होता है। विशेष द्वेषी बना हुआ कर्मों का बन्धन करता है। वे कर्म इस लोक में तथा परलोक में भोगने बहुत ही दुःखकारी होते हैं॥८५॥

फासे विरत्तो मणुओ विसोगो, एएण दुक्खोहपरंपरेण।
न लिप्पई भवमज्झे वि संतो, जलेण वा पुक्खरिणीपलासं॥८६॥

ऐसा जान जो ज्ञानी होते हैं। वे मनोज्ञ स्पर्श से विरक्त भाव धारण करते हैं। वे सब प्रकार की चिन्ता रहित होते हैं। व उक्त कहे दुःख के भोक्ता नहीं होते हैं। जिस प्रकार पानी में कमल अलिप्त रहता है वैसे वह भी अलिप्त रहते हैं। इति स्पर्शेन्द्रिय कथन॥८६॥

मणस्स भावं गहणं वयंति, तं रागहेउं तु मणुन्नमाहु।
त दोसहेउं अमणुन्नमाहु, समो य जो तेसु स वीयरागो॥८७॥

अब नौ इन्द्रिय-मन का कथन कहते हैं। श्री तीर्थंकर भगवान कहते हैं कि–मन तो भाव ग्रहण करने योग्य है, उसमें जो मनोज्ञ भाव हैं वे राग के हेतु हैं और अमनोज्ञ भाव हैं वे द्वेष के हेतु हैं। इन दोनों प्रकार के भावों में जो राग द्वेष नहीं करते हैं। वे ही वीतराग कहे जाते हैं॥८७॥

मवस्स मणं गहणं वयंति, मणस्स भावं गहणं वयंति।
रागस्स हेउ समणुन्नमाहु, दोसस्स हेउं अमणुन्नमाहु॥८८॥

श्री तीर्थंकर भगवान कहते हैं कि–भाव को मन ग्रहण करता है। और मन को भाव ग्रहण करने योग्य होते हैं। इसमें मनोज्ञ भाव रागोत्पादक होते हैं। और अमनोज्ञ भाव द्वेषोत्पादक होते हैं॥८८॥

भावेसु जो गेहिमुवेइ तिव्वं, अकालियं पावइ से विणासं।
रागाउरे कामगुणेसु गिद्धे, करेणुमग्गाऽवहिए व नागे॥८९॥

जिस प्रकार हाथी पकड़ने वाले हाथी जितना खड्डा खोद उस पर पतले वांस की चीपट विछाकर कागज की हथनी खड़ी करते हैं उसमें लुब्ध बना हाथी खड्डे में गिर अकाल मृत्यु पाता है वैसे ही विषय गृद्धी मनुष्य भी अकाल में मृत्यु पाते हैं॥८९॥

जे यावि दोसं समुवेइ तिव्वं, तंसिक्खणे से उ उवेइ दुक्खं।
दुद्दंतदोसेण सएण जंतू, न किंचि भावं अवरज्झई से॥९०॥

जो कोई अमनोज्ञ भावों का सम्बन्ध होते तीव्र द्वेष को प्राप्त होता है। वह आप ही अपने को दुःखी बना लेता है। परंतु वह भाव उसका अपराधी नहीं है। ऐसे द्वेष रूप दुर्दन्त शत्रु के कब्जे में पड़े जीव स्वयं ही दुःखी होते हैं॥९०॥

एगंतरत्ते रुइरंसि भावे, अतालिसे से कुणई पओसं।
दुक्खस्स संपीलमुवेइ बाले, न लिप्पई तेण मुणी विरागो॥९१॥

जीव एकान्त मनोज्ञ भावों में रक्त होते हैं। वे अमनोज्ञ भावों पर सहज ही द्वेष को प्राप्त होते हैं। जिससे वे अज्ञानी जीव दुःख के भोक्ता बनते हैं। ऐसा जानकर वीतरागी जीव द्वेष रूप मैल से लिप्त नहीं होते हैं॥९१॥

भावाणुगासाणुगए य जीवे, चराचरे हिंसइ णेगरूवे।
चित्तेहिं ते परितावेइ बाले, पीलेइ अत्तट्टगुरु किलिट्ठे॥९२॥

जिस अज्ञानी ने मनोज्ञ भावों को ही महा अर्थ समझ रखा है। वे मनोज्ञ भाव रूप रोग कर पीड़ित हुए भावों के पीछे ही फिरते हैं। मनोज्ञ भावों को प्राप्त करने अनेक त्रस स्थावर की घात करते हैं पीड़ा देते हैं॥९२॥

भावाणुवाए ण परिग्गहेण, उप्पायणे रक्खण-सन्निओगे।
वए विओगे य कहं सुहं से, संभोगकाले य अतित्तिलाभे?॥९३॥

मनोज्ञ भावों का रागी बना जीव मनोज्ञ भावों को ग्रहण करने की मूर्च्छा कर मनोज्ञ भाव के उत्पादक नृत्यादि परिग्रह का अपने या परके भोग के लिये उपार्जन करता है। उपार्जन किये परिग्रह का रक्षण करता है। यों करते-२ दोनों में से एक का नाश जरूर ही होता है। इसलिये वह भाव लुब्ध जीव किसी भी प्रकार सुख की प्राप्ति नहीं कर सकता है॥९३॥

भावे अतित्ते य परिग्गहम्मि, सत्तोवसत्तो न उवेइ तुट्ठिं।
अतुट्ठिदोसेण दुही परस्स, लोभाविले आययई अदत्तं॥९४॥

मनोज्ञ भावों में असन्तोषी जीव मनोज्ञ भावों में लुब्ध बने हुए किंचित् भी संतोषी नहीं बनते हैं। मनोज्ञ भावों के अनुराग कर जिन का चित्त मलीन बना है। वह जीव असंतोष के दोष कर अन्य की नृत्यादि सामग्री देखकर उसे ग्रहण करने चोरी करते हैं तो भी उनकी इच्छा तृप्त नहीं होती है॥९४॥

तण्हाभिभूयस्स अदत्तहारिणो, भावे अतित्तस्स परिग्गहे य।
मायामुसं वड्ढइ लोभदोसा, तत्थावि दुक्खा न विमुच्चई से॥९५॥

मनोज्ञ भावों का परिग्रह प्राप्त करने में असंतोषी बना हुआ जीव तृष्णा कर पराभव पाया हुआ नृत्यादि सामग्री भावों के योग्य वस्तु की चोरी करने वाला होता है। उसे कोई पूछे तूने अमुक वस्तु ग्रहण की? तब वह कपट युक्त झूठा जवाब देता भी उसके कटु फल भोगने से छुटता नहीं है। पाप के फल जरूर ही भोगने पड़ते हैं॥९५॥

मोसस्स पच्छा य पुरत्थओ य, पओगकाले य दुही दुरंते।
एवं अदत्ताणि समाययंतो, भावे अतित्तो दुहिओ अणिस्सो॥९६॥

भावानुरागी जीव उक्त प्रकार झूठ बोले बाद भी पश्चाताप करते हैं, वैसे पहले भी पश्चाताप करते हैं, वे सदैव चिन्तातुर रहते हैं। अमुक मुझे पूछेगा तो मैं क्या कहूँगा? मेरा झूठ चोरी प्रगट हो जाये। यों भावों के पदार्थ की चोरी करने वाला। दुःख ही दुःख भोगता है उसका कोई सहायक नहीं होता है उसके दुःख का अन्त आना असंभव हो जाता है॥९६॥

भावाणुरत्तस्स नरस्स एवं, कत्तो सुहं होज्ज कयाइ किंचि?।
तत्थोवभोगे वि किलेसदुक्खं, निव्वत्तई जस्स कए ण दुक्खं॥९७॥

इस प्रकार भावों के गृद्धी जीवों को सुख की प्राप्ति होवे ही कहां से? वे किसी भी उपाय

कर सुखी नहीं होते हैं विपरीत उन मनोज्ञ भावों मय पदार्थों में फंसकर अनेक प्रकार के कष्ट भोगते हैं। उसकी प्राप्ति के लिये अनेक कष्ट उठाते हैं॥९७॥

एमेव भावम्मि गओ पओसं, उवेइ दुक्खोहयपरंपराओ।
पदुट्ठचित्तो य चिणाइ कम्मं, जं से पुणो होइ दुहं विवागे॥९८॥

और इस ही प्रकार खराब भाव पर द्वेष को प्राप्त हुआ मनुष्य भी दुःख के समूह को प्राप्त होता है। विशेष द्वेषी बना हुआ कर्मों का बन्ध करता है। उसके फल इस लोक परलोक में भोगने बहुत दुःखकारी होते हैं॥९८॥

भावे विरत्तो मणुओ विसोगो, एएण दुक्खोघपरंपरेण।
न लिप्पई भवमज्झे वि संतो, जलेण वा पोक्खरिणीपलासं॥९९॥

ऐसा जान जो ज्ञानी होते हैं वे मनोज्ञ भावों से विरक्त भाव धारण करते हैं। जिस प्रकार पानी में कमल अलिप्त रहता है। वैसे वे भी अलिप्त रहते हैं। वे सब प्रकार चिन्ता रहित होते हैं और किसी भी प्रकार के दुःख को प्राप्त नहीं होते हैं। इति भाव कथन॥९९॥

एविंदियत्था य मणस्स अत्था, दुक्खस्स हेउं मणुयस्स रागिणो।
ते चेव थोवं पि कयाइ दुक्खं, न वीयरागस्स करेंति किंचि॥१००॥

अब समुच्चय सद्बोध कहते हैं–इस प्रकार–१ शब्द, २. रूप, ३. गंध, ४. रस, ५. स्पर्श और ६. भाव। इनमें राग द्वेष में प्रवर्ते उसको दुःख का हेतू होता है परन्तु उक्त छः ही वस्तु में जो वीतराग रहता है और राग द्वेष नहीं करता है वह किंचिन्मात्र भी दुःख नहीं पाता है॥१००॥

न कामभोगा समयं उवेंति, न यावि भोगा विगइं उवेंति।
जे तप्पदोसी य परिग्गही य, सो तेसु मोहा विगइं उवेइ॥१०१॥

काम भोग को भोगवता हुआ जीव रागद्वेष से विरक्त कदापि नहीं होता है, वैसे ही उसे संतोष प्राप्त भी नहीं होता है। काम भोग से विषय विकार उत्पन्न नहीं होते हैं परन्तु पांचों इन्द्रिय और मन करके ही काम भोग की उत्पत्ति होती है और जो जीव रागद्वेष सहित होते हैं वे अमनोज्ञ काम भोग पर द्वेष करते हैं और मनोज्ञ काम भोग पर राग करते है, उन रागद्वेष सहित जीव को पांचों इन्द्रिय के विषय विकार मोहनीय कर्म से प्राप्त होते हैं॥१०१॥

कोहं च माणं च तहेव माय, लोहं दुगुंछं अरइं रइं च।
हासं भयं सोग-पुमित्थवेयं, नपुंसवेयं विविहे य भावे॥१०२॥

मोहनीय कर्म से १४ बोल की प्राप्ति होती है उनके नाम–१ क्रोध, २. मान, ३. माया, ४. लोभ, ५. दुर्गंच्छा, ६. अरति, ७. रति, ८. हास्य, ९. भय, १०. शोक, ११. पुरुषवेदोदय, १२. स्त्री वेदोदय, १३. नपुंसक वेदोदय, और १४. अनेक प्रकार के हर्ष विषाद॥१०२॥

आवज्जई एवमणेगरूवे, एवविहे कामगुणेसु सत्तो।
अन्ने य एयप्पभवे विससे, कारुण्णदीणे हिरिमे वइस्से॥१०३॥

जो काम भोग में आसक्त होते हैं वे रागद्वेष के विकार से पराभव पाये हुए पूर्वोक्त बहुत प्रकार के दुःख प्राप्त करते हैं। विषय के योग से क्रोधादि की उत्पत्ति होती है। विषय से ही

दुर्गति में जीव जाता है। विषय से ही दयापात्र (परवश) जीव दिखते हैं, दीनता (गरीबी) भी विषय से ही होती है। विषय अनेक अकार्य पर लोकों में लज्जावंत होता है। सब को अप्रतीतकारी होता है उसे देख प्रत्येक का द्वेष भाव उत्पन्न होता है, इत्यादि दोष विषय वांछा से उत्पन्न होते हैं॥१०३॥

कप्पं न इच्छिज्ज सहायलिच्छू, पच्छाणुतावेण तवप्पभावं।
एवं विचारे अमियप्पयारे, आवज्जई इंदियचोरवस्से॥१०४॥

जो साधु शिष्यादि सहाय को की तो इच्छा करता है। परन्तु शुद्धाचार पालने की इच्छा नहीं करता है वह साधु चारित्र अंगीकार करके तपश्चर्या करके भी खेदित दुःखी हो पश्चाताप करता है वैसे ही तप करने की तो इच्छा नहीं करें परन्तु कदापि करें वो तो भी तप के महाप्रभाव से जो कर्मों की निर्जरा होती है उसकी वांछा नहीं करता हुआ इस लोक में महिमा पूजा तथा लब्धि आदि और परलोक में चक्रवर्ती आदि के पद की वांछा करे। इस प्रकार जो इन्द्रियों रूपी चोरों के वश में पड़ा है वह प्रमाण रहित संसार में पड़ता है अर्थात् संसार में बहुत परिभ्रमण करता है॥१०४॥

तओ से जायंति पओयणाइं, निमज्जिउं मोहमहण्णवम्मि।
सुहेसिणो दुक्खविमोयणट्ठा, तप्पच्चयं उज्जमए य रागी॥१०५॥

जो वश में पड़ा है वह इन्द्रियों के विषय सेवन के लिये हिंसादि पापों का आचरण पाप सेवन से मोह रूपी महा समुद्र में अपनी आत्मा को डूबाता है, संसार के सुखों का गवेषी बना कुबुद्धि दुःख निकन्द करने दुःखोत्पादक रागद्वेष हिंसादि निमित मैं उद्यमी बनता है॥१०५॥

विरज्जमाणस्स य इंदियत्था, सद्दाइया तावइयप्पगारा।
न तस्स सव्वे वि मणुन्नयं, वा निव्वत्तयंती अमणुन्नयं वा॥१०६॥

और जो विषय विरक्त बने हैं वे इन्द्रियों को २३ विषय और २४० विकारादि भेद[1] हैं, उनमें से अच्छे पर राग और खोटे पर द्वेषपना उपार्जन नहीं करते हैं॥१०६॥

एवं ससंकप्पविकप्पणासुं, संजायई समयमुवट्ठियस्स।
अत्थे य संकप्पयतो तओ से पहीयए कामगुणेसु तण्हा॥१०७॥

इस प्रकार जो ज्ञान बुद्धि करके अपने अध्यवसाय के विचरों में जो सावधान है वे खराब

---

१. १ श्रोत्रेन्द्रिय की ३ विषय-१ जीव शब्द २ अजीव शब्द, और ३ मिश्र शब्द, इसके १२ विकार, उक्त तीनों शब्द को शुभ अशुभ से दुगुने करे ६ हुये और रागद्वेष से दुगुने किये १२ होते हैं, २ चक्षु इन्द्रिय की ५ विषय १ कृष्ण, २ नीला, ३ रक्त ४ पीत, और ५ शुक्ल इस के ६० विकार, उक्त सचित उक्त अचित उक्त मिश्र से तीन गुने किये १५ हुए, शुभ अशुभ से दरे गुणं किये ३० हुए, रागद्वेष से दुगुने किये ६० हुए, ३ घ्राणेन्द्रिये की २ विषय-सुगंध, इस के १२ विकार उक्त दो सचित्त दो अचित्त वमिश्र से तिगुने किये ६ हुए, रागद्वेष से दुगुने किये १२ हुए, ४ रसेन्द्रिय की ५ विषय तिक्त, कटु, कषाय, खट्टा और मधुर, इस के ६० विकार, चक्षु इन्द्रिस के वैसे जानना और ५ स्पर्शेन्द्रिय की ८ विषय कर्कश, कोमल, शीत, उष्ण, गुरु, लघु, ऋक्ष, स्निग्ध, इस के ९६ विकार-उक्त ८ सचित्त ८ मिश्र से तीन गुने करे २४ हुए, इसे शुभ, अशुभ से दुगुने करे ४८ हुए और इसे रागद्वेष से दुगुने किये ९६ होते हैं, यों पांचों इन्द्रिय के मिलकर सब २३ विषय और २४० विकार होते हैं।

अध्यवसाय को छोड़कर अच्छे अध्यवसाय में प्रवर्तते हैं। वे ही समता भाव उपार्जन करते हैं। वे समता भाव करके कामभोग की तृष्णा को कम करते हैं और तत्त्व ज्ञान के विचार में अनुरक्त (लीन) रहते हैं॥१०७॥

स वीयरागो कयसव्वकिच्चो, खवेइ नाणावरणं खणेणं।
तहेव जं दंसणमावरेई, जं चंतरायं पकरेइ कम्मं॥१०८॥

इस प्रकार जो तृष्णा का क्षय करते हैं वे ही वीतराग होते हैं। वे जीव क्षण मात्र में मोह के क्षय हुए बाद पांच प्रकार ज्ञानावरणीय ९ प्रकार दर्शनावरणीय और पांच प्रकार अन्तराय इन तीनों कर्मों को युगपत् (साथ ही) क्षय करते हैं॥१०८॥

सव्व तओ जाणइ पासइ य, अमोहणे होइ निरंतराए।
अणासवे झाणसमाहिजुत्ते, आउक्खए मोक्खमुवेई सुद्धे॥१०९॥

इस प्रकार मोहनीय यावत् अन्तराय इन चारों घन घातिक कर्म के आवरण रहित हुआ आत्मा केवल ज्ञान केवल दर्शन को प्राप्त कर सर्वज्ञ-सर्व जानने वाला सर्व दर्शी-सब देखने वाला हो जाता है फिर शुक्ल ध्यान कर शेष रहे चारों कर्मों को आयुष्य कर्म के साथ ही क्षय कर आठों कर्म रहित निर्मल बनकर मोक्ष प्राप्त करता है॥१०९॥

सो तस्स सव्वस्स दुहस्स मुक्को, जं बाहई सययं जंतुमेयं।
दीहामयविप्पमुक्को पसत्थो, तो होइ अच्चंतसुही कयत्थो॥११०॥

यों प्रत्यक्ष में निरन्तर दुःख दाता बहुत दीर्घ काल की स्थिति वाले कर्म रूप रोग से मोक्षगामी जीव मुक्त होते हैं। वे मोक्ष प्राप्त कर सर्व जगत् में प्रशंसा पात्र होते हैं। वैसे ही उन्होंने सब आत्महित के कार्य सिद्ध किये हैं, वे सिद्ध अनन्त सुख के भोक्ता होते हैं॥११०॥

अणाइकालप्पभवस्स एसो, सव्वस्स दुक्खस्स पमोक्खमग्गो।
बियाहिओ जं समुविच्च सत्ता, कमेण अच्चंतसुही भवंति॥१११॥ त्ति बेमि॥

॥पमायट्ठाणं अज्झयणं समत्तं॥३२॥

श्री तीर्थंकर भगवान ने अनादि काल के दुःख से मुक्त करने का न्याय मार्ग यही कहा है। इस मार्ग को प्राप्त करके बहुत से जीव गये काल में मोक्ष गये हैं, वर्तमान में महाविदेह क्षेत्र से जा रहे हैं और आगामिक काल में जायेंगे। अनंत सुख की प्राप्ति करते हैं, यों सुधर्मास्वामी ने जम्बू स्वामी से कहा॥१११॥

प्रमाद स्थान नामक बत्तीसवां अध्ययन समाप्त हुआ।



तेत्तीसइमं कम्मपयडि अज्झयणं
कर्मप्रकृति नामकं त्रयस्त्रिंशत्तममध्ययनम्

बत्तीसवें अध्ययन में प्रमाद का कथन कहा तो प्रमादी जीव कर्म बन्ध करता है। इसलिये तेतीसवें अध्ययन में कर्म का कथन करते हैं। श्री सुधर्मा स्वामी कहते हैं कि

अट्ठ कम्माइं वोच्छामि आणुपुव्विं जहाकमं।
जेहिं बद्धो अयं जीवो, संसारे परिवट्टई॥१॥

अहो जम्बू! जिन कर्मों के बन्ध में बन्धाया हुआ जीव इस संसार में परिभ्रमण करता है। उन कर्मों का कथन मैं अनुक्रम से कहता हूँ उसे तुम दत्त चित्तश्रवण से करो॥१॥

नाणस्सावरणिज्जं, दंसणावरणं तहा।
वेयणिज्ज तहा मोह, आउकम्मं तहेव य॥२॥
नामकम्मं च गोय च, अंतरायं तहेव य।
एवमेयाइ कम्माइं, अट्व उ समासओ॥३॥

कर्म की मूल प्रकृति आठ हैं–१ ज्ञानावरणीय, २ दर्शनावरणीय, ३ वेदनीय, ४ मोहनीय, ५ आयुष्य, ६ नाम, ७ गोत्र और ८ अन्तराय, १ जिस प्रकार सूर्य के तेज को बदल ढकते हैं। उस प्रकार आत्मा के ज्ञान गुण को ज्ञानावरणीय कर्म ने ढका हैं, २ जिस प्रकार आंख पर बन्धा पट्टा पदार्थ को देखने को देखने नहीं देता है। वैसे आत्मा के दर्शन गुण दर्शनावरणीय कर्म ने ढका हैं ३ मधु (शहद) का भरा हुआ खडग जिह्वा पर लगाने से किंचित् मधुर रस देकर मह दुःख दाता होता है। ऐसा वेदनीय कर्म आत्मिक सुख का घातिक है। ४ मदिरा पीने से जीव बेभान होता है। वैसे ही मोहनीय कर्म सम्यक्त्व गुण रोकता है। ५ जिस प्रकार चोर का खोडे में डाला हुआ पांव पहले छुटता नहीं है। वैसे आयुष्य कर्म से प्राप्त गति में जीव रहता है। ६ प्रकार चित्रकार मनमाने चित्र करता है। वैसा नाम कर्म से जीव नाम पाता है। ७ जैसे कुंभार मनमाने बर्तन बनाता है। वैसे गौत्र कर्म से जीव रीति आदि पाता है। और ८ जैसा धन देते राजा का भंडारी रोकता है। वैसे अन्तराय कर्म ने आत्म शक्ति गुण रोके हैं॥२-३॥

नाणावरणं पंचविहं सुयं आभिणिबोहियं।
ओहीनाणं तइयं, मणनाणं च केवलं॥४॥

अब आठों कर्म की उत्तर प्रकृति कहते हैं। प्रथम ज्ञान वरणीय कर्म की पांच प्रकृति १

मति ज्ञानावरणीय, २ श्रुति ज्ञानावणीय, ३ अवधि ज्ञानावरणीय, ४ मनःपर्यव ज्ञानावरणीय और ५ केवल ज्ञानावरणीय (इनका बन्ध ६ प्रकार से होता है–ज्ञानी की निन्दा करें, २ ज्ञानी का उपकार छिपावे, ३ ज्ञानी की असातना करे, ४ ज्ञान की अन्तराय देवे, ५ ज्ञानी पर द्वेष करे और ६ ज्ञानी के साथ व्यर्थ विवाद करे)॥४॥

निद्दा तहेव पयला, निद्दानिद्दा य पयलपयला य।
तत्तो य थीणगिद्धी उ, पंचमा होई नायव्वा॥५॥
चक्खु-मचक्खू-ओहिस्स, दंसणे केवले आवरणे।
एवं तु नवविगप्पं, नायव्वं दंसणावरणं॥६॥

दूसरा दर्शनावरणीय कर्म की ९ प्रकृति १ निदा सुख से आवे सुख से जाग्रत होवे, २ निद्रानिद्रा दुःख से आवे, ३ प्रचला बैठे-बैठे खड़े-खड़े आवे ४ प्रचला-प्रचला रास्ते चलते आवे ५ थीतधीनिद्रा–इस में वासुदेव का बल आवे, ६ चक्षु दर्शनावरणीय आंखों के पडल आवे, ७ अचक्षुदर्शनावरणीय चारों इन्द्रियों मन के पटल और ८ अवधि दर्शनावरणीय अवधि दर्शन से देख नहीं सके, और ९ केवल दर्शनावरणीय केवल दर्शन से देखने का पटल (यह कर्म ६ प्रकार बन्धे १ दर्शनी की निन्दा करें, २ दर्शनी का उपकार छिपावे, ३ दर्शनी की असातना करे, ४ दर्शनी की अन्तराय दे, ५ दर्शनी पर द्वेष करे और ६ दर्शनी के साथ झूठा झगड़े करे)॥५-६॥

वेयणीयं पि य दुविहं, सायमसायं च आहियं।
सायस्स उ वहूभेया, एमेव असायस्स वि॥७॥

तीसरे वेदनीय कर्म के दो प्रकार १ साता वेदनीय और २ असातना वेदनीय इसमें साता वेदनी कर्म के ८ भेद–१ इष्ट शब्द, २ इष्ट रूप, ३ इष्ट गंध, ४ इष्ट रस, ५ इष्ट स्पर्श, ६ मन का सुख, ७ वचन का सुख और ८ काया का सुख इन के विपरीत अनिष्ट शब्दादि आठ भेद असाता वेदनीय कम के भी जानना, (यह कर्म प्राण भूत जीव सत्व को दुःख झूरना पीटना शोक परिताप नहीं उपजावें साता देवे तो साता वेदनीय कर्म का बन्ध होता है। और दुःख पीड़ा आदि उपजावे तथा दुःख देवे तो असाता वेदनीय कर्म का बन्ध होता है)॥७॥

मोहणिज्जं पि दुविहं, दंसणे चरणे तहा।
दंसणे तिविहं वुत्तं, चरणे दुविह भवे॥८॥

चौथे मोहनीय कर्म के दो भेद कहे हैं–१ दर्शन मोहनीय जिस के तीन भेद और २ चारित्र मोहनीय जिसके दो भेद॥८॥

सम्मत्तं चेव मिच्छत्तं, सम्मामिच्छत्तमेव य।
एयासो तिन्नि पयडीओ, मोहणिज्जस्स दंसणे॥९॥

अब दर्शन मोहनीय के ३ भेद कहते हैं–१ सम्यक्त्व मोहनीय सो मिथ्यात्व के अशुद्ध पुद्गलों क्षय होवे तब सम्यक्त्व प्राप्त होवे, उसे जिस वक्त मिथ्या प्रकृति ग्रहण करे, तब सम्यक्त्व में

अतिचार लगे, तथा उपशामिकादि भाव में जिस वक्त मुरझावे उस वक्त सम्यक्त्व मोहनीय कहना, २ मिथ्यात्व मोहनीय जिस आत्मा के सम्यक्त्व का अभाव है। मिथ्वात्व के अशुद्ध दलिये से आत्मा अतत्त्व में तत्त्व बुद्धि और तत्व में अतत्त्व बुद्धि कर उस में मुरझावे वह मिथ्यात्व मोहनी, ३ मिश्र मोहनीय शुद्धाशुद्ध दलिक रूप जिस का जैन धर्म पर राग भी नहीं वैसा द्वेष भी नहीं वैसे ही अन्य धर्म पर राग भी नहीं वैसे द्वेष भी नहीं, ऐसा स्वभाव जब हो वह मिश्र मोहनी दृष्टान्त काले बादल में ढके हुए सूर्य समान मिथ्यात्व मोहनीय, कुछ काले कुछ श्वेत बदल में सूर्य ढके समान मिश्र मोहनीय और श्वेत बद्दल में ढके सूर्य समान सम्यक्त्व मोहनीय॥९॥

चरित्तमोहणं कम्मं, दुविहं तु वियाहियं।
कसायमोहयणिज्जं च, नोकसायं तहेव य॥१०॥

चारित्र मोहनीय के दो भेद–१ कषाय मोहनीय और २ नो कषाय मोहनीय॥१०॥

सोलसविहभेएणं, कम्मं तु कसायजं।
सत्तविहं नवविहं वा, कम्मं नोकसायजं॥११॥

कषाय मोहनीय के १६ भेद–१ अनन्तानुबन्धी क्रोध पत्थर की दरार जैसा, २ मान पत्थर के स्थंभ जैसा, ३ माया-वांस की जड़ जैसी, ४ लोभ-किरमजी रेशम के रंग जैसा, ५ अप्रत्याख्यानी-क्रोध भूमि की दरार, ६ मान हड्डी का स्थभ, ७ माया मेंढे का शृंग, ८ लोभ खंजर का रंग, ९ प्रत्याख्यानी क्रोध रेती की लकीर, १० मान काष्ट स्तम्भ, ११ माया चलते बेल का मूत्र, १२ लोभ कीचड़ का लेप, १३ संज्वल का क्रोध पानी की लकीर, १४ मान तृण का स्थम्भ, १५ माया बांस की छुंती और १६ लोभ पंतग का रंग, दूसरी कषाय की उत्पादक नो कषाय के ९ भेद–१ हास्य, २ रति, ३ अरति, ४ भय, ५ शोक, ६ दुगंच्छा, ७ स्त्री वेद, ८ पुरुष वेद और ९ नपुंसक वेद सब मोहनीय कर्म की २८ प्रकृति हुई॥११॥

नेरइय-तिरिक्खाउं, मणुस्साउं तहेव य।
देवाउयं चउत्थं तु, आउकम्मं चउव्विहं॥१२॥

आयुः कर्म की चार प्रकृति–१ नरक, २ तिर्यंच, ३ मनुष्य और ४ देव इसमें नरकायु चार प्रकार बन्धे–महा आरंभ, महा परिग्रह, पंचेन्दिय की घात, मांस का आहार, २ तिर्यंचायु चार प्रकार बन्धे–१ माया, २ निबड माया, झूठ बोले झूठे तोल माप रखे, ३ मनुष्यायु चार प्रकार बन्धे–१ स्वभाव से भद्रिक, २ स्वाभाव से विनीत, ३ दयावंत, २ मत्सर रहित, ४ देवता का आयुष्य चार प्रकार बन्धे–१ सराग संयम, २ संयमा संयम, ३ बाल तपस्वी, ४ अकाम निर्जरा॥१२॥

नामकम्मं तु दुविहं, सुहं असुहं च आहिय।
सुहस्स उ बहू भेया, एमेव असुहस्स वि॥१३॥

छठे नाम कर्म के दो भेद–१ शुभ नाम कर्म और २ अशुभ नाम कर्म, शुभ नाम कर्म चार प्रकार बन्धे–काया का सरल भाषा का सरल भाव का सरल और विषवाद योग रहित, अशुभ नाम कर्म ही चारों विपरीत प्रकार से बन्धे शुभ कर्म १४ प्रकार भोगवे–१-५ इष्टकारी शब्द

रूप, गधं रस, स्पर्श ६-९ इष्टकारी, गति, स्थिति, यश लावण्यता, १० इष्टस्वर, ११ कांतस्वर, १२ प्रियस्वर, १२ मनोज्ञ स्वर और १४ इष्ट उत्थान कर्म बल वीर्य पुरूषत्कार पराक्रम और २ अशुभ नाम कर्म उक्त १४ विपरीत प्रकार के भोगवे॥१३॥

गोयं कम्मं दुविहं, उच्चं नीयं च आहिय।
उच्चं अट्ठविहं होइ, एवं नीयं पि आहियं॥१४॥

सातंवा गोत्र कर्म के दो भेद १ ऊँच गौत्र और २ नीच गोत्र, नीच गोत्र आठ प्रकार बन्धे-१ जाति का, २ कुल का, ३ बल का, ४ रूप का, ५ तप का, ६ श्रुत का, ७ लाभ का और ८ ऐश्वर्यता का इन आठों का मद करे तो नीच गोत्र कर्म का बन्ध होवे और इन आठों का मद नहीं करे तो ऊँच गोत्र का बन्ध होवे नीच गोत्र का बन्ध होने से उक्त आठों ही वस्तु नहीं पावे और ऊँच गोत्र का बन्ध होने से उक्त आठों ही वस्तु का बन्ध होने से उक्त आठों का मद नहीं कर तो ऊँच गोत्र का बन्ध होवे नीच गोत्र का बन्ध होने से उक्त आठों की वस्तु हानि पावे, और ऊँच गोत्र का बन्ध होने से उक्त आठों ही वस्तु उत्तम पावे॥१४॥

दाणे लाभे य, भोगे य, उवभोगे वीरिए ताह।
पंचविहमंतरायं, समासेण वियाहियं॥१५॥

आठवां अन्तराय कर्म की ५ प्रकृति-१ दान अंतराय, २ लाभ अंतराय, ३ भोग अंतराय, ४ उपभोग अंतराय और ५ बल वीर्य अंतराय इन पांच काम की अंतराय देने से अंतराय कर्म का बन्ध होता हैं। वह पांचों ही की अप्राप्ति होने पांच प्रकार भोगवे॥१५॥

एयाओ मूलपगडीओ, उत्तराओ य आहिया।
पएसग्गं खेत्त-काले य, भावं च उत्तरं सुणं॥१६॥

यह आठों ही कर्म की मूल आठ प्रकृति और उत्तर ९३ प्रकृति कहीं। अब आगे अहो शिष्य! १ द्रव्य से जीव कितने पुग्दलों का बन्ध करता है। २ क्षेत्र से कितनी दिशा के पुग्दलों ग्रहण करता है। ३ काल से कर्मों की कितने काल की स्थिति है। और ४ भाव से कर्म पुग्दल किस प्रकार आते हैं। इनका स्वरूप कहता हूँ, सो दत्तचित्त से श्रवन कर॥१६॥

सव्वेसिं चेव कम्माणं, पएसग्गं मणंतगं।
गठियसत्ताईयं, अंतो सिद्धाण आहियं॥१७॥

श्री तीर्थंकर भगवंत ने कहा है कि-१ द्रव्य से आठों ही कर्म के सब पुद्गलों अनंतानंत है। जिसका एक ही समय में बन्ध करता है। उस अनंत प्रदेशिक स्कन्ध कहते हैं यों प्रत्येक कर्म के अनंतानंत स्कन्ध होते हैं। वे स्कन्ध अभव्य जीव से अनंत गुने अधिक और सिद्ध भगवंत से अनंत वे भाग जितने होते हैं॥१७॥

सव्वजीवाण कम्म तु, संगहे छद्दिसागयं।
सव्वेसु वि पएसेसु, सव्वं सव्वेण बद्धगं॥१८॥

क्षेत्र से–सब जीव कर्म बन्धन करते जो जो पुद्गलों ग्रहण करते हैं वे पूर्व दक्षिण पश्चिम उत्तर ऊँची नीची यो छः दिशा के पुद्गलों ग्रहण करते हैं। जिन २ पुद्गलों को कर्म बन्धरूप ग्रहण किये जाते हैं। वे सभी पुद्गल सभी जीवों के अपने-२ आत्म प्रदेश के साथ बान्धाते हैं॥१८॥

उदहीसरिसनामाण, तीसई कोडिकोडीओ।
उक्कोसिया ठिई होइ, अंतोमुहुत्तं जहन्निया॥१९॥
आवरणिज्जाण दुण्हं पि, वेयणिज्जे तहेवय य।
अंतराए य कम्मम्मि, ठिई एसा वियाहिया॥२०॥
उदहीसरिसनामाण, सत्तरिं कोडिकोडीओ।
मोहणिज्जस्स उक्कोसा, अंतोमुहुत्तं जहन्निया॥२१॥
तेत्तीससागरोवमा, उक्कोसेण वियाहिया।
ठिई उ आउकम्मस्स, अंतोमुहुत्तं जहन्निया॥२२॥
उदहीसरिसनामाण, बीसई कोडिकोडीओ।
नामगोत्ताणं उक्कोसा, अट्ठामुहुत्तं जहन्निया॥२३॥

अब काल से–१ ज्ञानावरणीय, २ दर्शनावरणीय, ३ वेदनीय और ४ अन्तराय इन चारों कर्मों की जघन्य अन्तर्मूहूर्त की स्थिति और उत्कृष्ट समुद्र के पानी के समान बहुत असंख्यात कोटा कोटी वर्ष एक सागरोपम, ऐसे तीस कोटाकोटी (क्रोड को क्रोड गुने करे इतने) सागरोपम की स्थिति कहीं है। (साता वेदनीय की १५ क्रोडाक्रोडी सागरोपम की हैं) ५ मोहनीय कर्म जघन्य अंतर्मूहूर्त की उत्कृष्ट सीत्तर (७०) कोटाकोटी सागरोपम की, आयुष्य कर्म की जघन्य अंतर्मुहूर्त की उत्कृष्ट तेंतीस सागरोपम की, नाम कर्म की और गोत्र कर्म की जघन्य अंतर्मुहूर्त की उत्कृष्ट बीस कोटाकोट सागरोपम की स्थिति जानना॥१९-२३॥

सिद्धाणऽणंतभागो य, अणुभागा भवंति उ।
सव्वेसु वि पएसग्ग, सव्वजीवेसुऽइच्छिय॥२४॥

अब भाव से–१ दव्य से जिस समय पूछो उस ही समय सुमुच्चय जीव आश्रिय सब सिद्ध भगवंत के अनंतवे भाग में जितने अनंत होते हैं। उतने अनंते कर्म के पुग्दलों के स्कध एक समय में जीव भोगवे हैं। २ क्षेत्र से जीवों से भोगवने से सर्व पुग्दलों के स्कन्ध की जो कदाचित् गिनती करें तो सब जगत् के जीवों से भी अनंत गुने अधिक होवें, काल वर्तमान काल में अनुभाग से भोगवने योग्य अनंत देशी स्कन्ध अनंत भोगवता है। उस एकेक स्कन्ध में अनंतानंत परमाणु हैं। इसलिये वे परमाणु सब जीव में अनंतगुण अधिक है। इतने अनंत परमाणुओं का भोग कर उनकी निर्जरा होती है॥२४॥

तम्हा एएसिं कम्माणं, अणुभागा वियाणिया।
एएसिं संवरे चेव, खवणे य जए बुहो॥२५॥ त्ति बेमि॥
॥ कम्मपगडी तेत्तीसइमं समत्तं॥३३॥

इसलिये जो तत्त्वज्ञ महापुरुष होते हैं। वे पूर्वोक्त आठों कर्म के अनुभागों के स्वरूप को जानकर नये कर्मों का तो बन्धन करे नहीं और जो प्रथम कर्म बन्ध किया हो उनकी निर्जरा करने में वे पूरे क्षय नहीं होवे वहाँ तक उद्यमवन्त तत्पर बने रहें, यों सुधर्मा स्वामी जी ने जम्बू स्वामी से कहा॥२५॥

कर्म प्रकृति नाम का तेतीसवां अध्ययन संपूर्ण हुआ।



चउतीसइमं लेसऽज्झयणं
लेश्याध्ययन नामकं चतुस्त्रिंशत्तममध्ययनम्

तेंतीसवें अध्ययन में कर्म कर्मों का बन्ध लेश्या से होता है। अतः इस अध्ययन में लेश्या का स्वरूप कहते हैं। सुधर्मा स्वामी जी कहते हैं कि

लेसज्झयण पवक्खामि, आणुपुव्विं जहक्कमं।
छण्हं पि कम्मलेसाणं, अणुभावे सुणेह मे॥१॥
नामाइं वण्ण-रस-गंध,-फास-परिणाम-लक्खणं।
ठाणं ठिइं गइं, चाउं, लेसाण तु सुणेह मे॥२॥

अहो शिष्य! लेश्या के ११ द्वार इस अध्ययन में हैं जिनके नाम-१ नामद्वार, २ वर्णद्वार, ३ गंधद्वार, ४ रसद्वार, ५ स्पर्शद्वार, ६ प्रमाणद्वार, ७ लक्षणद्वार, ८ स्थानद्वार, ९ स्थितिद्वार, १० गतिद्वार और ११ च्यवनद्वार इन द्वारों को अनुक्रम से मैं तुम्हें सुनाता हूँ, सो तुम दत्तचित्त से श्रवण करो॥१-२॥

किण्हा नीला य काऊ, य तेऊ पम्हा तहेव य।
सुक्कलेसा य छट्ठा उ, नामाइं य जहक्कमं॥३॥

पहला नाम द्वार-१ कृष्ण लेश्या, २ नील लेश्या, ३ कापोत लेश्या, ४ तेजो लेश्या, ५ पद्म लेश्या और ५ शुल्क लेश्या यह छः ही लेश्या के नाम अनुक्रम से जानना॥३॥

जीमूयनिद्धसंकासा, गवल-रिट्ठगसन्निभा।
खंजंजण-नयणनिभा, किण्हलेसा उ वण्णओ॥४॥

दूसरा वर्णद्वार-जैसे पानी का भरा बद्दल भैंसे का श्रृंग, अरिट्ठा का फल, गाडे के खंजन, काजल और आंख की कामे रंग वाले होते हैं। वैसा कृष्ण लेश्या का काला रंग जानना॥४॥

नीलासोगसंकासा, चासपिछसमप्पभा।
वेरुलियनिद्धसकासा, नीललेसा उ वण्णओ॥५॥

जैसा हरा अशोक वृक्ष, तोते की पांख, वैडूर्य रत्न का हरा रंग होता है। वैसा नीललेश्या का रंग जानना॥५॥

अयसीपुप्फसंकासा, कोइलच्छदसन्निभा।
पारेवय-गीवनिभा, काउलेसा उ वण्णओ॥६॥
हिंगुलुयधाउसंकासा, तरुणाइच्चसन्निभा।
सुयतुंड-पईवनिभा, तेउलेसा उ वण्णओ॥७॥

जैसे अलसी का फूल कोकिला की आँख, कबूतर की ग्रीवा, उदय पाता सूर्य, तोते का मुख, दीए की शिखा का जैस लाल रंग होता है। वैसा तेजो लेश्या रंग जानना॥६-७॥

हरियालभेयसंकासा, हलिद्दाभेयसमप्पभा।
सणासण-कुसुमनिभा, पम्हलेसा उ वण्णओ॥८॥

जैसे पीला हरिताल का टुकड़ा सन का फूल का पीला रंग होता है वैसा पीला पद्मलेश्या का रंग जानना॥८॥

संखंक-कुंदसंकासा, खीरपूरसमप्पभा।
रयय-हारसंकासा, सुक्कलेसा उ वण्णओ॥९॥

जैसा श्वेत शंख अंकरत्न अचकुन्द का फूल, दूध की धार, रूपे का हार का श्वेत रंग होता है। वैसा शुक्लेश्या का श्वेत रंग जानना॥९॥

जह कडुयतुंबगरसो निंबरसो, कडुयरोहिणि रसो वा।
एतो वि अणंतगुणो, रसो य किण्हाए नायव्वो॥१०॥

तीसरा रस द्वार जैसा कडुआ, तुम्बा, कडुआ निम, रोहणी वनस्पति का जैसा कडुआ स्वाद होता है। इससे अनंत गुन कडुआ कृष्णलश्या का स्वाद जानना॥१०॥

जह तिगडुगस्स य रसो, तिक्खो जह हत्थिपिप्पलीए वा।
एत्तो वि अणंतगुणो, रसो उ नीलाए नायव्वो॥११॥

जैसे तीखा त्रिकटु (सूठ पीपल मिर्च) के रस का स्वाद हस्ती पीपल का स्वाद जैसा तीखा होता है इससे अनंत गुन तीखा नीललेश्याा का स्वाद जानना॥११॥

जह तरुणअंबगरसो, तुवरकविट्ठस्स वा वि जारिसओ।
एत्तो वि अणंतगुणो रसो, उ काऊए नायव्वो॥१२॥

जैसे कच्चे आम (केरी) का खट्टा स्वाद तुम्बर वनस्पति का खट्टा स्वाद कच्चे कवीठ का खट्टा स्वाद होता है। इससे भी अनंत गुना खट्टा कापोतलेश्या का स्वाद जानना॥१२॥

जह परिणयंबगरसो, पक्ककविट्ठस्स वा वि जारिसओ।
एत्तो वि अणंतगुणो, रसो उ तेओए नायव्वो॥१३॥

जैसा पका हुआ आम, पक्का हुआ कवीठ का खट्टा मीठा स्वाद होता है। वैसा तेजोलेश्या का स्वाद जानना॥१३॥

वरवारुणीए व रसो, विविहाण व आसवाण जारिसओ।
महु-मेरगस्स व रसो, एत्तो पम्हाए परएणं॥१४॥

जैसा उत्तम वारुणी का रस, जैसे आधपका स्वाद होता है। इससे भी अनंतगुना मिठा पद्मलेश्या का स्वाद जानना॥१४॥

खज्जूर-मुद्दियरसो, खीररसो खंड-सक्कररसो वा।
एत्तो वि अणंतगुणो, रसो उ सुक्काए नायव्वो॥१५॥

जैसा खरजु का स्वाद द्राक्ष का, क्षीर का स्वाद, सक्कर का स्वाद जैसा मधुर मिष्ठ होता है। वैसा शुल्क लेश्या का स्वाद जानना॥१५॥

जह गोमडस्स गंधो, सुणगमडस्स व जहा अहिमडस्स।
एत्तो वि अणंतगुणो, लेसाणं अप्पसत्थाणं॥१६॥

अब चौथा गंध द्वार कहते हैं–जैसा गौके मडे (कलेवर) कुत्ते के मड़े की सांप के मडे की जैसी दुर्गंध होती है। ऐसी कृष्ण नील कपोत इन तीन अप्रशस्त लेश्या की दुर्गंध जानना॥१६॥

जह सुरहिकुसुमगंधो, गंध-वासाण पिस्समाणाण।
एत्तो वि अणंतगुणो, पसत्थलेसाण तिण्हं पि॥१७॥

जैसी केवड़े आदि फूलों की संगुध जैस केसरी कस्तूरी आदि पीसते हुए सुगंध हो उससे भी अनंत गुनी सुगंध तेजो पद्म-शुल्क इन तीन प्रशस्त लेश्या की जानना॥१७॥

जह करगयस्स फासो, गोजिब्भाए व सागपत्ताणं।
एत्तो वि अणंतगुणो, लेसाणं अप्पसत्थाणं॥१८॥

अब पांचवा स्पर्श द्वार कहते हैं–जैसा करवत का स्पर्श, जैसा गौ जिह्वा का स्पर्श, जैसे शाग वृक्ष के पत्ते का स्पर्श खरदरा होता है। इससे भी अनंत गुना कर्कश स्पर्श कृष्ण नील कापोत इन तीनों अप्रशस्त लेश्या का जानना॥१८॥

अह बूरस्स व फासो, नवणीयस्स व सिरीसकुसुमाणं।
एत्तो वि अणंतगुणो, पसत्थलेसाण तिण्हं पि॥१९॥

जैसे बूर वनस्पति का स्पर्श जैसे मक्खन का स्पर्श, जैसा सरसव के फूल का स्पर्श मृदु होता है उससे अनंत गुना कोमल स्पर्श तेजो शुक्ल इन तीन प्रशस्त लेश्या का जानना॥१९॥

तिविहो व नवविहो वा, सतावीसइविहेक्कसीओ वा।
दुसओ तेयालो वा, लेसाणं होइ परिणामो॥२०॥

अब छठा परिणाम द्वार लेश्या के परिणाम तीन प्रकार के होते हैं १. जघन्य, २. मध्यम और ३ उत्कृष्ट इसके ९ भेद–१ जघन्य का जघन्य, २ जघन्य का मध्यम, ३ जघन्य का उत्कृष्ट, ४ मध्यम का जघन्य, ५ मध्यम का मध्यम, ६ मध्यम का उत्कृष्ट, ७ उत्कृष्ट का जघन्य, ८

उत्कृष्ट का मध्यम और ९ उत्कृष्ट का उत्कृष्ट। इसी प्रकार इन एक-एक के तीन २ भेद करते ९ × ३ = २७ भेद होते हैं फिर भी उन के भी तीन २ भेद करते २७ × ३ = ८१ भेद और होते हैं ८१ को भी जघन्य मध्यम उत्कृष्ट से तीन गुने करते ८१ × ३ = २४३ भेद होते हैं इतने परिणाम छः ही लेश्या के जानना॥२०॥

पंचासवप्पवत्तो, तीहिं अगुत्तो छसुं अविरओ य।
तिव्वारंभपरिणओ, खुद्दो साहसिओ नरो॥२१॥
निद्धंधसपरिणामो, निस्संसो अजिइंदिओ।
एयजोगसमाउत्तो, किण्हलेसं तु परिणमे॥२२॥

सातवां लक्षण द्वार–पांच आश्रव सेवन करे, तीनों योग की अगुप्ति रखे, छः काया की हिंसा तीव्र परिणाम से करे, आरम्भ करता अचकावे नहीं, सर्व जीवों का अहितकारी हिंसा करने में साहसिक होवे, इस लोक परलोक के दुःख से डरे नहीं, विध्वंस परिणामी। जीव की घात में घृणा रहित, अर्जीतेन्द्रिय। इस प्रकार के योगों के व्यापार कर युक्त होवे उसे कृष्ण लेश्या वाला जानना॥२१-२२॥

इस्सा-अमरिस-अतवो, अविज्ज माया अहीरिया।
गेही पओसे य सढे, पमत्ते रसलोलुए सायगवेसए॥२३॥
आरंभाओ अविरओ, खुद्दो साहसिओ नरो।
एयजोगसमाउत्तो नीललेसं तु परिणमे॥२४॥

ईर्ष्यावंत, बहुत कदाग्रही, तप रहित, अच्छी विद्या रहित, ठग, कपटी, अनाचार की लज्जा रहित विषय का लम्पटी, द्वेषी, धूर्त, आठों मद का धारक, रस लम्पटी अपने सुख का ही गवेषी आरंभ की वृत्ति रहित, सब जीवों का अहित कर्ता, इन लक्षण युक्त होवे उसे नील लेश्यावाला जानना॥२३-२४॥

वके वकसमायारे, नियडिल्ले अणुज्जुए।
पलिउंचग ओवहिए, मिच्छदिट्ठी अणारिए॥२५॥
उप्फालग-दुट्ठवाई य, तेणे यावि य मच्छरी।
एयजोगसमाउत्तो, काउलेसं तु परिणमे॥२६॥

बांका बोले, बांके ही काम करे, निबड़ कपटी, सरलता रहित अपने अवगुण ढके, दूसरे के प्रगट करे, मिथ्या दृष्टि, अनार्य, क्लेशकारी वचन का प्रकाशक, झूठ वचन बोलने वाला चोरी की करने वाला। अन्य का सुख सम्पत्ति देख झूरने वाला इन लक्षण कर युक्त होवे उसे कापोत लेश्या वाला जानना॥२५-२६॥

नीयावित्ती अचवल, अमाई अकुऊहले।
विणीयविणए दते, जोगवं उवहाणव॥२७॥
पियधम्मे, दढधम्मे, वज्जभीरू हिएसए।
एयजोगसमाउत्तो, तेओलेसं तु परिणमे॥२८॥

तीनों योगों कर नम्रता वाला चपलता रहित स्थिर स्वभावी, कुतुहल रहित, कपट रहित, विनीत, गुरु की भक्ति करने वाला, इन्द्रियों का दमन करने वाला, स्वाध्यायादि में अनुरक्त सिद्धान्ताभ्यास करते जो तप करना हो उस तप कर सहित, धर्म प्रेमी दृढ़ धर्मी पाप का डर रखने वाला, मोक्ष का इच्छुक। इन लक्षण युक्त हो उसे तेजो लेश्यावाला जानना॥२७-२८॥

पयणुकोह-माणे य, माया लोभे य पयणुए।
पसंतचित्ते दंतप्पा, जोगवं उवहाणवं॥२९॥
तहा पयणुवाई य, उवसंते जिइंदिए।
एयजोगसमाउत्तो, पम्हलेसं तु परिणमे॥३०॥

जिसके क्रोध मान माया लोभ राग द्वेष उपशान्त हुआ हो स्वात्मा का दमन करने वाला, तीनों जगको स्वतः के वश में रखने वाला तपोधन का करने वाला थोड़ा बोले उपशान्त चित्त जीतेन्द्रिय इन गुण युक्त होवे उसे पद्मलेश्या वाला जानना॥२९-३०॥

अट्ट-रूद्दाणि वकज्जत्ता, धम्म-सुक्काणि साहए।
पसंतचित्ते दंतप्पा, समिए गुत्ते य गुत्तिसु॥३१॥
सरागे वीयरागे वा, उवसंते जिइंदिए।
एयजोगसमाउत्तो, सुक्कलेसं तु परिणमे॥३२॥

आर्त रोद्र ध्यान का वर्जने वाला। धर्म शुक्ल ध्यान का ध्याने वाला राग द्वेष कर उपशान्त चित्त, स्वात्मा को वश का करने वाला, पांच समिति समता, तीन गुप्ति गुप्ता, सरागी संयमी तथा वीतरागी संयमी, जीतेन्द्रिय इन लक्षण युक्त हो उसे शुक्ललेश्या वाला जनना॥३१-३२॥

असंखिज्जाणोसप्पिणीण, उस्सप्पिणीण जे समया।
सखाईया लोगा, लेसाण हवति ठाणाइ॥३३॥

आठवां स्थान द्वार–दस क्रोडाक्रोड सागरोपम का अवसर्पिनी (घटता) काल, और दस क्रोडा क्रोड सागरोपम का उत्सर्पिणी (बढ़ता) काल। ऐसी असंख्याती अवसर्पिनी उत्सर्पिनी के जितने समय होते हैं तथा यह तीन सो त्रीयालीस राज का घनाकार लोक है ऐसे संख्याते लोक के जितने आकाश प्रदेश होते हैं उतने लेश्या के स्थानक हैं॥३३॥

मुहुत्तद्धं तु जहन्ना, तेत्तीसा सागरा मुहुत्तऽहिया।
उक्कोसा होइ ठिई, नायव्वा किण्हलेसाए॥३४॥

नववां लेश्या स्थिति द्वार–कृष्णलेश्या की स्थिति जघन्य अन्तर महूर्त की उत्कृष्ट ३३ सागरोपम अन्तर्मुहूर्त अधिक॥३४॥

मुहुत्तद्धं तु जहन्ना, दस उदही पलियमसंखभागमब्भहिया।
उक्कोसा होइ ठिई, नायव्वा नीललेसाए॥३५॥

नीललेश्या की स्थिति जघन्य अन्तर मूहूर्त उत्कृष्ट दस सागरोपम एक पल्योपम का असंख्यातवां भाग अधिक॥३५॥

मुहुत्तद्धं तु जहन्ना, तिण्णदही पलियमसंखभागमब्भहिया।
उक्कोसा होइ ठिई, नायव्वा काउलेसाए॥३६॥

कापोत लेश्या की स्थिति–जघन्य अन्तर मुहूर्त, उत्कृष्ट तीन सागरोपम एक पल्योपम का असंख्यातवा भाग अधिक॥३६॥

मुहुत्तद्धं तु जहन्ना, दोण्णुदही पलियमसंखभागमब्भहिया।
उक्कोसा होइ ठिई, नायव्वा तेउलेसाए॥३७॥

तेजोलेश्या की स्थिति, जघन्य अन्तर मुहूर्त उत्कृष्ट दो सागरोपम एक पल्योपम के असंख्यातवे भाग अधिक॥३७॥

मुहुत्तद्धं तु जहन्ना, दस उदही होंति मुहुत्तमब्भहिया।
उक्कोसा होइ ठिई, नायव्वा पम्हलेसाए॥३८॥

पद्मलेश्या की स्थिति जघन्य अन्तर मुहूर्त उत्कृष्ट दस सागरोपम अन्तर मुहूर्त अधिक जानना॥३८॥

मुहुत्तद्धं तु जहन्ना, तेत्तीसं सागरा मुहुत्तऽहिया।
उक्कोसा होइ ठिई, नायव्वा सुक्कलेसाए॥३९॥

शुक्ललेश्या की स्थिति जघन्य अन्तर मुहूर्त उत्कृष्ट ३३ सागरोपम अन्तर मुहूर्त अधिक॥३९॥

एसा खलु लेसाणं, ओहेण ठिई उ वण्णिया होइ।
चउसु वि गईसु एत्तो, लेसाण ठिई तु वोच्छामि॥४०॥

हे शिष्य : यह तो छही लेश्या की ओघ (समुच्चय) स्थिति कही अब गति आश्रिय लेश्या की स्थिति कहते हैं॥४०॥

दस वाससहस्साइं, काऊए ठिई जहन्निया होइ।
तिण्णुदही पलिओवम, असंखभागं च उक्कोसा॥४१॥

नरक गति की लेश्या की स्थिति–कापोतलेश्या की स्थिति जघन्य दस हजार वर्ष (प्रथम नरक आश्रिय) उत्कृष्ट तीन सागर (दूसरा नरक आश्रिय) पल्योपम का असंख्यातवा भाग अधिक (मनुष्य तिर्यंच के आयुर्बन्ध भव आश्रिय)॥४१॥

तिण्णुदही पलिओवम, असंखभागो जहन्ओ नीलठिई।
दस उदही पलिओवम, असंखभागं च उक्कोसा॥४२॥

नीललेश्या की जघन्य तीन सागरोपम (तीसरी नरक आश्रिय) पल्योपम का असंख्यातवा भाग अधिक (उक्त प्रकार) उत्कृष्ट दस सागरोपम पल्योपम का असंख्यातया भाग अधिक॥४२॥

दस उदही पलिओवम, असंखभागं जहन्निया होइ।
तेत्तीससागराइ, उक्कोसा होइ किण्हाए॥४३॥

कृष्ण लेश्या की स्थिति–जघन्य दस सागरोपम (पांचवीं नरक आश्रिय) पल्योपम का असंख्यातवा भाग अधिक। उत्कृष्ट ३३ सागरोपम की (सातवीं नरक आश्रिय)॥४३॥

एसा नेरइयाणं, लेसाण ठिई उ वण्णिया होई।
तेण पर वोच्छामि, तिरिय-मणुस्साण देवाणं॥४४॥

यह तो नरक गति में तीन ही लेश्या रहती है उसकी स्थिति का वर्णन किया, अब तिर्यंच मनुष्य और देवता में छही लेश्या रहती है जिसका वर्णन कहते हैं॥४४॥

अंतोमुहुत्तमद्धं लेसाण, ठिई जहिं जहिं जा उ।
तिरियाण नराणं वा, वज्जित्ता केवलं लेसं॥४५॥

पृथ्वी, पानी, वनस्पति, (इसमें पहले की चार लेश्या पावे) तेऊ, वायु, तीनों विकलेन्द्रिय, असंज्ञी तिर्यंच पंचेन्द्रिय (इनमें तीन लेश्या पहली पावे) गर्भेज मनुष्य (केवल ज्ञानी को छोड़कर) इनमें छही लेश्या होती है इन सब की छः ही लेश्या की जघन्य उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त की ही स्थिति होती है॥४५॥

मुहुत्तद्धं तु जहन्ना, उक्कोसा होइ पुव्वकोडी उ।
नवहि वरिसेहि ऊणा, नायव्वा सुक्कलेसाए॥४६॥

और केवल ज्ञानी के एक शुक्ल लेश्या ही होती है जिसकी स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त उत्कृष्ट देश(९ वर्ष) कम क्रोड पूर्व की॥४६॥

एसा तिरिय-नराण, लेसाण ठिई उ वणिया होइ।
तेण परं वोच्छामि, लेसाण ठिई उ देवाणं॥४७॥

यह तिर्यंच की और मनुष्य स्थिति का वर्णन कहा। अब देवता की लेश्या की स्थिति का कहते हैं॥४७॥

दस वाससहस्साइं, किण्हाए ठिई जहन्निया होइ।
पलियमसंखिज्जइमो उक्कोसो, होइ किण्हा ए॥४८॥

कृष्ण लेश्या की स्थिति जघन्य दस हजार वर्ष की (भवनपति आश्रिय) उत्कृष्ट पल्योपम के असंख्यातवे भाग की॥४८॥

जा किण्हाए ठिई खलु, उक्कोसो सा उ समयमब्भहिया।
जहन्नेणं नीलाए, पलियमसंखं च उक्कोसा॥४९॥

जो कृष्ण लेश्या की उत्कृष्ट स्थिति है उसके उपरांत एक समय अधिक नील लेश्या की जघन्य स्थिति जानना और उत्कृष्ट स्थिति उसके उपरान्त पल्योपम के असंख्यातवें भाग की जानना॥४९॥

जा नीलाए ठिई खलु, उक्कोसा सा उ समयमब्भ हिया।
जहन्नेण काऊए, पलियमसंखं च उक्कोसा॥५०॥

जितनी नील लेश्या की उत्कृष्ट स्थिति है उस पर एक समय अधिक कापोत लेश्या की जघन्य स्थिति जानना और उसके उपरांत पल्योपम के असंख्यातवें भाग अधिक उत्कृष्ट स्थिति जानना॥५०॥

तेण परं वोच्छामी, तेऊसेला जहा सुरगणाणं।
भवणवइ-वाणमंतर-जोइस-वेमाणियाणं च॥५१॥
पलिओवमं जहन्ना, उक्कोसा सागरा उ दुण्णऽहिया।
पलियमसंखेज्जेणं, होई भागेण तेऊए॥५२॥

अब अहो शिष्य! भुवनपति वाण व्यन्तर ज्योतिषी और वैमानिक इन चारों में तेजो लेश्या रहती है उसकी स्थिति कहते हैं–तेजो लेश्या की स्थिति जघन्य एक पल्योपम की (प्रथम दूसरे देवलोक के देवता आश्रिय) उत्कृष्ट दो सागरोपम (पहले दूसरे देवलोक के देवता आश्रिय) कुछ (पल्योपम का असंख्यातवां भाग) अधिक (पूर्व भव आश्रिय जानना)॥५१-५२॥

दस वाससहस्साइं, तेऊए ठिई जहन्निया होइ।
दुण्णुदही पलिओवमअसंखभागं च उक्कोसा॥५३॥

और भी तेजो लेश्या की जघन्य दस हजार वर्ष की स्थिति (भवनपति वाणव्यन्तर आश्रिय) उत्कृष्ट दो सागरोपम की पल्योपम की असंख्यातवां भाग अधिक (मध्यम स्थिति में ज्योतिषी जानना)॥५३॥

जा तेऊए ठिई खलु, उक्कोसा सा उ समयमब्भहिया।
जहन्नेणं पम्हाए, दसउ मुहुत्तऽहियाइं उक्कोसा॥५४॥

जो तेजो लेश्या की जघन्य स्थिति और पद्म लेश्या की उत्कृष्ट स्थिति दश सामरोपम अन्तर मुहूर्त अधिक जानना। उत्कृष्ट स्थिति होवे उससे एक समय अधिक पद्म लेश्या की (पांचवें देवलोक आश्रिय)॥५४॥

जा पम्हाए ठिई खलु, उक्कोसा सा उ समयमब्भहिया।
जहन्नेणं सुक्काए, तेत्तीस मुहुत्तमब्भहिया॥५५॥

जो पद्मलेश्या की उत्कृष्ट स्थिति कही उस से एक समय अधिक शुक्ल लेश्या की जघन्य स्थिति जानना। और शुक्ल लेश्या की उत्कृष्ट स्थिति ३३ सागरोपम अन्तर मुहूर्त अधिक जानना॥५५॥

किण्हा नीला काऊ, तिन्नि वि एयाओ अहम्मलेसाओ।
एयहि तिहि वि जीवो, दोग्गइं उववज्जई॥५६॥

दसवां गति द्वार–कृष्ण नील कापोत इन तीन लेश्या कर जीव अधर्म गति (दुःखदायी स्थान) में उत्पन्न होता है॥५६॥

तेऊ पम्हा सुक्का, तिन्नि वि एयाओ धम्मलेसाओ।
एयहि तिहि वि, जीवो सोग्गइं उववज्जई॥५७॥

तेजो पद्म और शुक्ल इन तीनों लेश्या कर जीव सदगति (सुखदाई गति में) उत्पन्न होते हैं॥५७॥

लेसाहिं सव्वाहिं, पढमे समयम्मि परिणयाहिं तु।
न हु कस्सइ उववत्ति, परे भवे होइ जीवस्स॥५८॥

ग्यारहवां च्यवन द्वार जब जीवों के भव के आयुष्य का अंत आता है तब जीव के जिस गति में जाने का बंध पड़ा होता है उस गति में जो लेश्या होती है वह परिणमती है जिस समय में वह लेश्या परिणमती है उस समय में उसकी मृत्यु नहीं होती है॥५८॥

लेसाहिं सव्वाहिं, चरिमे समयम्मि परिणयाहिं तु।
न हु कस्सइ उववत्ति, परे भवे हवइ जीवस्स॥५९॥

वैसे ही मृत्यु के समय सभी जीवों को जिस गति में जाना हो उस गति स्थान में जो लेश्या होती है वह परिणमती है। उस समय भी कोई जीव परभव में उत्पन्न नहीं होता है॥५९॥

अतमुहुत्तम्मि गए, अंतमुहुत्तम्मि सेसए चेव।
लेसाहिं परिणयाहिं, जीवा गच्छंति परलोयं॥६०॥

परन्तु मृत्यु के अन्त से आगे जिस भव में जाना हो उन सुख स्थान में जो लेश्या होती है। उस लेश्या के परिणाम यहाँ रही आत्मा में परिणमन के बाद उस लेश्या की जो स्थिति है। उस स्थिति का अन्तर मुहूर्त ही शेष रहे तब जीव यहाँ से परभव में जाता है अर्थात् प्रथम और अन्तिम लेश्या की स्थिति के दोनों समय छोड़ कर बीच के समय में जीव परभव में गमन करता है॥६०॥

तम्हा एयासि लेसाणं, अणुभावे वियाणिया।
अप्पसत्थाओ वज्जित्ता, पसत्थाओ अहिट्ठए॥६१॥ त्ति बेमि॥
॥ लेसऽज्झयणं समत्तं॥३४॥

हे भव्यो! अशुभ लेश्या से दुर्गति में और शुभ लेश्या से सद्गति में जीव जाता है ऐसा जानकर कृष्ण नील कापोत इन तीनों अशुभ लेश्या को छोड़कर तेजो पद्म और शुक्ल इन तीन लेश्या को स्वीकार कर सुखी होवे! यों सुधर्मा स्वामी ने जंबू स्वामी से कहा॥६१॥

लेश्या नामक चौतीसवां अध्ययन समपूर्ण।



पंचतीइमं अणगारमग्गईयं अज्झयणं
अणगारयध्यणं पञ्चत्रिंशत्तममध्ययनम्

चौतीसवें अध्ययन में लेश्या के स्वरूप वर्णन शुभ लेश्या तो अनगार-साधु को होती है। इसलिये पैत्तीसवें अध्ययन में अनगार के गुण कहते हैं। श्री सुधर्मा स्वामी कहते हैं कि–

सुणेह मे एगग्गमणा, मग्गं बुद्धेहि देसियं।
अमायरंतो भिक्खू, दुक्खाणंतकरो भवे॥१॥

अहो जम्बू! श्री तीर्थंकर भगवंत ने जिसके आचरण करने से साधु सर्वथा दुःख का अन्त करते हैं ऐसा जो मोक्ष का मार्ग कहा है उसका स्वरूप मैं तुम्हें कहूंगा। सो तुम दत्त चित्त से श्रवण करो॥१॥

गिहवासं परिच्चज्ज, पव्वज्जामस्सिए मुणी।
इमे संगे वियाणिज्जा, जेहिं सज्जंति माणवा॥२॥

साधु माता-पिता स्त्री आदि का सम्बन्ध संसार वृद्धि का हेतूभूत जानकर जिसमें मनुष्य बन्धे हुए हैं उसका त्याग कर जो दीक्षा ग्रहण करते हैं वे साधु कहलाते हैं॥२॥

तहेव हिंसं अलियं, चोज्जं अब्बंभवसेवणं।
इच्छाकामं च लोहं च, संजओ परिवज्जए॥३॥

वे साधु हिंसा, झूठ, चोरी, मैथुन, अप्राप्त को प्राप्त करने की इच्छा और प्राप्त वस्तु में लुब्धता इनका सर्वथा त्याग करते हैं॥३॥

मणोहरं चित्तघरं, मल्ल-धूवेण वासिय।
सकवाडं पंडरूल्लोयं मणसा वि न पत्थए॥४॥

जो मकान स्त्री आदि के चित्र युक्त पुष्पादि का शृंगारा हुआ, धूपादि कर सुगंधी बनाया हुआ, लगा रखने जैसा, श्वेत वस्त्र से विभूषित चन्दवादि सहित इत्यादि रीति कर मनोहर बनाया हो ऐसे मकान में रहने की इच्छा साधु मन करके भी नहीं करे (तो रहना तो दूर ही रहा)॥४॥

इंदियाणि उ भिक्खुस्स, तारिसम्मि उवस्सए।
दुक्कराइं निवारेउं, कामरागविवड्ढणे॥५॥

क्योंकि ऐसा स्थान स्वभाव से ही काषाय व विकार सम्बन्धी राग का करने वाला होता है उसमें रहे साधु को पांचों इन्द्रिय को वश करना बहुत मुश्किल होता है॥५॥

सुसाणे सुन्नगारे वा, रूक्खमूले व इक्काओ।

पइरिक्के परकडे वा, वासं तत्थऽभिरोयए॥६॥

इसलिये समशान में, सूने घर में, वृक्ष के नीचे, या गृहस्थ ने अपने कार्य के लिये बनाया हो ऐसा मकान कि जहाँ स्त्री पशू नपुंसक रहते न हो ऐसे स्थानक में साधु रागद्वेष रहित रहने की इच्छा करे॥६॥

फासुयम्मि अणाबाहे, इत्थीहिं अणभिद्दुए।
तत्थ संकप्पए वासं, भिक्खू परमसंजए॥७॥

मोक्षार्थी साधु को त्रस स्थावर जीवों रहित तथा अपनी आत्मा को परकी आत्मा को उपद्रव रहित उक्त प्रकार के स्थानक में रहना युक्त है॥७॥

न सयं गिहाइं कुव्विज्जा, नेव अन्नेहिं कारए।
गिहकम्मसमारंभे, भूयाणं दिस्सए वहो॥८॥

मकान बन्धाने में ऐकेन्द्रिय आदि जीवों की हिंसा प्रत्यक्ष में ही दिखती है। ऐसा जानकर साधु स्वयं घर बनावे नहीं अन्य के द्वारा बनावे भी नहीं॥८॥

तसाणं थावाणं च, सुहुमाणं बादराण य।
तम्हा गिहसमारंभं, संजओ परिवज्जए॥९॥

घर बनाने में पृथव्यादि स्थावर जीवों का और बेन्द्रियादि त्रस जीवों का तथा दृष्टि अगोचर हो ऐसे सूक्ष्म जीवों का और बड़े शरीर वाले वादर जीवों का हिंसा होती है, ऐसे जानकर साधु घर बनाने के समारंभ से सदैव अलग ही रहे। यह स्थानक की विधी कही॥९॥

तहेव भत्त-पणेसु, पयणे पयावणेसु य।
पाण-भूयदयट्ठाए, न पए न पयावए॥१०॥

अब आहार पानी की विधी कहते हैं–उक्त प्रकार ही आहार पानी बनाने में भी त्रस और स्थावर जीवों की हिंसा होती है। इसलिये त्रस स्थावर जीवों के दया पालक साधु स्वयं आहार (भोजन) बनावे नहीं, अन्य के पास बनवावे नहीं और बनाते को अच्छा भी जाने नहीं॥१०॥

जल-धन्ननिस्सिया जीवा, पुढवी कट्ठनिस्सिया।
हम्मंति भत्त-पाणेसु, तम्हा भिक्खू न पयावए॥११॥

पानी की नेश्राय, (पानी में–१ समुच्चय जीव, २. वेन्द्रिय, ३. तेन्द्रिय, ४. चौरिन्द्रय, ५. पंचेन्द्रिय, ६. अपकाय और ७. वनस्पतिकाय। इन सात प्रकार की जीवों की नियमा कही है। तथा अनाज की नेश्राय। इल्ली आदि पृथ्वीकाय की नेश्राय अंकुर, चिंटी आदि और काष्ट-लकड़ के नेश्राय घुनादि जीव होते हैं। वे भोजनार्थ आग्नि आदि आरंभ करते समय सभी मर जाते हैं इसलिये साधु स्वयं भोजन का आरंभ करे नहीं। अन्य के द्वारा भोजन बनवाये नहीं। और भोजन बनाने के आरम्भ को अच्छा करने को भी जाने नहीं॥११॥

विसप्पे सव्वओधारे, बहुपाणविणासणे।
नत्थि जोइसमे सत्थे, तम्हा जोइ न दीवए॥१२॥

अग्नि थोड़ी बहुत होती है वह भी दसों दिशा में शंख रूप परिणमती है बहुत जीवों का

विनाश करती है और इसके बराबर दूसरा कोई शस्त्र ही नहीं है। ऐसा जान साधु अग्नि को स्वयं प्रजाले नहीं, दूसरे पास प्रज्वलित करावे नहीं दूसरा कोई प्रज्वलित करता हो उसे अच्छा जाने नहीं॥१२॥

हिरण्णं जायरूवं च, मणसा वि न पत्थए।
समलेट्ठु-कंचणे भिक्खू, विरए कय-विक्कए॥१३॥

जिन साधु ने स्वर्ण को और पाषाण को एक-सा जान रखा है वे साधु और किसी भी वस्तु की क्रय करने से व विक्रय से निवृते हैं। सुवर्णादि धातु को ग्रहण करके भी इच्छा मात्र भी नहीं करते हैं॥१३॥

किणतो कइओ होइ, विक्किणंतो य वाणिओ।
कय-विक्कयम्मि वट्टंतो, भिक्खू न भवई तारिसो॥१४॥

क्योंकि–किराना (वस्तु) का क्रय करने वाला तो ग्राहक होता है और बेंचने वाला वणिक होता है। परन्तु क्रय-विक्रय करने वाला साधु कदापि नहीं होता है॥१४॥

भिक्खियव्वं, न केयव्वं भिक्खुणा भिक्खवित्तिणा।
कय-विक्कओ महादोसो, भिक्खवित्ती सुहावहा॥१५॥

जिन साधु की भिक्षावृति ही उपजीविका है उन साधु को याचना करके ही लेना ही उचित है। भिक्षा वृत्ति ही उसको सर्व प्रकार सुख की करता होती है परन्तु विक्रय हुई कोई भी वस्तु लेना योग्य नहीं है क्योंकि विक्रय वस्तु लेने से ग्रहस्थ की खुशामदी वस्तु का संग्रह परिग्रह रक्षणादि बहुत दोषोत्पत्ति होती है॥१५॥

समुयाणं उंछमेसिज्जा, जहासुत्तमणिंदियं।
लाभालाभम्मि संतुट्ठे, पिंडवायं चरे मुणी॥१६॥

जिन कुलों में जाने से दुगंछा (निन्दा) होती हो ऐसे कुलों में भिक्षा आदि के लिये जावे नहीं तथा मांस मदिरादि दुगंछनीक आहार ग्रहण करें नहीं परन्तु ऊँच क्षत्रिय आदि, नीच कृपणादि या याचको और मध्यम वणिकादि के कुलों में बहुत घरों में थोड़ा-थोड़ा आहार शास्त्रोक्त विधि प्रमाणे एषना गवेषना कर ग्रहण करे। इस विधि युक्त आहार प्राप्त हावे तो भी और नहीं होवे तो भी सदैव संतोषी रहे परन्तु किसी की निन्दा स्तुति करे नहीं॥१६॥

अलोले, न रसे गिद्धे, जिब्भादंते अमुच्छिए।
न रसट्ठाए भुंजिज्जा, जवणट्ठा महामुणी॥१७॥

अब साधु के आहार करने की विधी कहते हैं–महामुनि सरस आहार की प्राप्ति से प्रसन्न न हो वैसे ही उसमें लुब्ध रहित प्राप्त आहार को स्वाद से आसक्त होता नहीं वैसे धातु वृद्धि के आहार नहीं करता हुवा केवल एक समय का निर्वाह करने के लिये ही आहार करे॥१७॥

अच्चणं रयण चेव, बंदणं पूयणं तहा।
इड्ढी-तक्कार-सम्माणं, मणसा वि न पत्थए॥१८॥

चन्दनादि से अर्चना करना गुण कीर्तन-प्रशंसा, पुष्पादि से पूजन, लब्धी आदि ऋद्धि, उत्थानादि सत्कार, वस्त्रामंत्रणादि सन्मान, वंदना नमस्कार इत्यादि की मन करके भी वांच्छा नहीं करे, कि–मेरे ऐसा हो तो अच्छा होता॥१८॥

सुक्कज्झाणं झियाएज्जा, अनियाणे अकिंचणे।
वोसट्ठकाए विहरेज्जा, जाव कालस्स पज्जओ॥१९॥

आयु का अन्त पास जानकर काया का ममत्व का त्याग कर संथारा करे, फिर मृत्यु आवे वहां तक अतिबन्धपने धर्म ध्यान शुक्ल ध्यान ध्याता विचरे॥१९॥

निज्जूहिऊण आहारं, कालधम्मे उवट्ठिए।
चइऊण माणुसं बोदिं, पहू दुक्खा विमुच्चई॥२०॥

इस प्रकार जो साधु संयमाचार शुद्धाचार के पालक शरीर के ममत्व को त्याग संलेषणा कर चारों आहार का त्याग कर जो आयुष्य पूर्ण करते हैं वे इस अशुचीमय मनुष्य के शरीर का त्याग कर सर्व दुःख के अन्त करने वाले (मोक्षगामी) होते हैं॥२०॥

निम्ममे निरहंकरे, वीयरागो अणासवो।
संपत्तो केवलंनाणं, सासयं परिनिव्वुडे॥२१॥ त्ति बेमि॥ ॥
अणगारमग्गगईयं समत्तं॥३५॥

सर्व प्रकार के पदार्थों को ममता रहित सत्कार सन्मानादि के अहंकार रहित, शुभाशुभ शब्दादि पांचों इन्द्रिय के विषय संयोग में राग द्वेष रहित, संयम कर कर्म आने के कारण आश्रव द्वारका निरुंधन करता, जो साधु होते हैं वे सर्व कर्मों का क्षय करके केवल ज्ञान केवल दर्शन को प्राप्त करके मोक्ष के शाश्वत सुख को प्राप्त कर शीतलीभूत होते हैं। ऐसा सुधर्मा स्वामी ने जम्बू स्वामी से कहा॥२१॥

साधु के आचार का पैंतीसवां अध्ययन समपूर्ण।

३६

छत्तीसइमं जीवाजीवविभक्ति अज्झयणं
जीवाजीव विभक्ति षट्त्रिंशत्तममध्ययनम्

पैंतीसवें अध्ययन में अनगार के गुणों का वर्णन है। जो अनगार होते हैं वे जीवाजीव के जानकार होते हैं इसलिये छत्तीसवें अध्ययन में जीवाजीव का कथन करते हैं श्री सुधर्मा स्वामी कहते हैं कि

जीवाजीवविभत्तिं मे सुणेह एगमणा इओ।
जं जाणिऊण भिक्खू सम्मं जयई संजमे॥१॥

अहो जम्बू! जीवाजीव के भेदों को जानकर साधु संयम में सच्चे मन से उद्यम करे उन जीवाजीव के भेदों का वर्णन में तुम से कहता हूँ सो तुम दत्तचित्त श्रवण करो॥१॥

जीवा चेव अजीवा, य एस लोए वियाहिए।
अजीवदेससमागासे, अलोए से वियाहिए॥२॥

जिस में जीव और अजीव दोनों ही पदार्थ होते हैं उसे भगवंत ने लोक कहा है और जिसमें अजीव का एक देश आकाश रूप है उसे तीर्थंकरों ने अलोक कहा है॥२॥

दव्वओ खेत्तओ चेव, कालओ भावओ तहा।
परूवणा तेसिं भवे, जीवाणमजीवाण य॥३॥

जीव और अजीव इन दोनों की द्रव्य से क्षेत्र से काल से और भाव से यों चार प्रकार से प्ररूपना होती है॥३॥

रूविणो चेवऽरूवी य, अजीवा दुविहा भवे।
अरूवी दसहा वुत्ता, रूविणो वि चउव्विहा॥४॥

अब दोनों में से प्रथम अजीव के भेद कहते हैं–अजीव के दो भेद–१ रूपी अजीव और २ अरूपी अजीव। इसमें अरूपी अजीव के १० प्रकार और रूपी अजीव के चार प्रकार कहे हैं॥४॥

धम्मत्थिकाए तद्देसे, तप्पएसे य आहिए।
अहम्मे तस्स देसे य, तप्पदेसे य आहिए॥५॥
आगासे तस्स देसे य, तप्पएसे य आहिए।
अद्धासमए चेव, अरूवी दसहा भवे॥६॥

अब अजीव अरूपी के १० भेद कहते हैं–चलने में सहायता देने वाली धर्मास्ति काय के

तीन भेद–१ सम्पूर्ण धर्मास्तिकाय सो स्कन्ध, २. उसका कुछ विभाग सो देस, ३ जिसके दो भाग न हो ऐसे भाग सो प्रदेश वैसे ही स्थिरता में सहायता करने वाली अधर्मास्ति काया के भी तीन भेद १. संपूर्ण अधर्मास्ति काया सो अधर्मास्ति काया का स्कन्ध। २ उसका कुछ विभाग सो देश और द्विविभाग न हो ऐसा सूक्ष्म भाग वह प्रदेश। ऐसे ही विकास की देने वाली आकाशास्तिकाया के भी तीन भेद–१ संपूर्ण लोकालोक का आकाश वह स्कन्ध, २ उसका कुछ हिस्सा वह देश और ३ सूक्ष्म हिस्सा वह प्रदेश। यों ९ भेद हुए और १०वां काल। यह दस भेद अजीव अरूपी के कहे हैं। यह अरूपी अजीव की दव्य से प्ररूपना कही॥५-६॥

धम्माधम्मे य दो वेए, लोगमेत्ता वियाहिया।
लोगलोगे य आगासे, समए समयखेत्तिए॥७॥

अब अरूपी अजीव की क्षेत्र से प्ररूपना कही है–धर्मास्ति काया और अधर्मास्ति काया दोनों तो लोक प्रमाण है आकाशास्ति काया लोकालोक प्रमाण है और काल यह समय क्षेत्र-अढाइ द्वीप प्रमाण हैं॥७॥

धम्माधम्मागासा, तिन्नि वि एए अणइया।
अपज्जवया चेव, सब्बद्धं तु वियाहिया॥८॥

अब काल से कहे हैं–धर्मास्ति अधर्मास्ति और आकाशास्ति यह तीनों अनादि काल से हैं–और अनन्त काल तक रहेंगे। इनकी आदि और अन्त दोनों नहीं हैं। सदैव शाश्वत हैं ऐसा तीर्थंकर ने कहा है॥८॥

समए वि संतइं पप्प, एवमेव वियाहिए।
आएसं पप्प साईए, अप्पज्जवसिए वि य॥९॥

वैसे समय काल भी निरन्तर होने आश्रिय धर्मास्ति आदि काया के जैसा ही आदि अन्त रहित है। परन्तु किसी कार्य का प्रारम्भ आश्रिय आदि भी है और कार्य के अन्त आश्रिय अन्त भी है। अब भाव से कहते हैं–धर्मास्ति अधर्मास्ति आकाशास्ति और काल यह चारों ही में वर्ण नहीं। गंध नहीं। रस नहीं स्पर्श नहीं, अर्थात् अरूपी है, यों धर्मास्ति काया आदि चारों को वर्णगंध रस स्पर्श, और गुण इस प्रकार अरूपता से पांच गुने करने से ४ × ५ = २० भेद हुए, और दस प्रथकहै सो। यों अरूपी अजीव के ३० भेद हुए॥९॥

खंधा य खंधदेसा य, तप्पएसा तहेव य।
परमाणुणो य बोद्धव्वा, रूविणो य चउव्विहा॥१०॥

अब रूपी अजीव के चार भेद कहते हैं। १. पुद्गलों के संयोग से बना वह स्कन्ध, २. उसका हिस्सा वह देश, ३. परमाणु स्कन्ध के साथ लगा वह प्रदेश और स्कन्ध से अलग हुआ अकेला वह परमाणु (परम उत्कृष्ट अणु बारीक जिसके द्विविभाग की कल्पना मात्र न हो वह परमाणु)॥१०॥

एगत्तेण पुहत्तेण, खंधा य परमाणुणो।
लोएगदेसे लोए य, भइयव्वा ते उ खेत्तओ॥११॥

१ दव्य से परमाणुओं का एकत्र शामिल होने का और बिखर जाने का स्वभाव है। जब परमाणु

एकत्र हो रहते हैं उसे स्कन्ध कहते हैं और जिस समय अलग कर सब अलग-अलग हो जाते हैं। तब परमाणु कहलाते हैं। २. क्षेत्र से लोक के एक देश (आकाश प्रदेश) पर परमाणु रहे हैं और सम्पूर्ण लोक में तथा लोक के देश में पुद्गलों के स्कन्ध रहे हैं, उन स्कन्ध के और परमाणुओं के क्षेत्र आश्रिय समझना जानना अर्थात्–एक आकाश प्रदेश पर स्कन्ध होवे भी और नहीं भी होवे और प्रमाणु तो एक आकाश प्रदेश पर ही रहता है। इन आश्रिय समझना कहीये॥११॥

सुहुमा सव्वलोगम्मि, लोगदेसे य बायरा।
एत्तो कालविभगं तु, तेसिं वोच्छं चउव्विहं॥१२॥

सूक्ष्म पुद्गल तो सर्व लोक में भरे हैं और लोक के देश विभाग में बादर पुद्गलों रहे हैं। ३. काल से पुद्गलों की स्थिति चार प्रकार की कही है॥१२॥

संतइं पप्प तेऽणाई, अपज्जवसिया वि य।
ठिइं पडुच्च साईया, सपज्जवसिया वि य॥१३॥

१. उन पुद्गलों कि आस्ति आश्रिय अनादि काल के हैं और (२) आगे अनंत काल तक रहेंगे इसलिये अंत रहित है और (३-४) स्कन्ध हो के प्रमाणु होवे और प्रमाणु का स्कन्ध होवे इस आश्रय आदि अन्त दोनों सहित हैं॥१३॥

असंखकालमुक्कोसा, एक्कं समयं जहग्नया।
अजीवाण य रूवीणं, ठिई एसा वियाहिया॥१४॥

जो वे पुद्गल एक स्थान मिलकर रहे तो जघन्य एक समय उत्कृष्ट असंख्यात काल की। और पुद्गल स्कन्ध से बिछुड़कर अन्य स्थान जाकर बाद में उस ही स्कन्ध में आकर मिले उसके मध्य का अन्तर जघन्य एक समय का उत्कृष्ट अनंत काल का॥१४॥

अणंतकालमुक्कोसं, एक्कं समयं जहन्नयं।
अजीवाण य रूवीणं, अंतरेयं वियहियं॥१५॥
वण्णओ गंधओ चेव, रसओ फासओ तहा।
संठाणओ य विन्नेओ, परिणामी तेसि पंचहा॥१६॥

और चार भाव से अजीव रूपी पुद्गल पांच प्रकार से परिणमें हैं–१. वर्ण से, २. गंध से, ३. रस से, ४. स्पर्श से और ५. संस्थान से॥१५-१६॥

वण्णओ परिणया जे उ, पंचहा ते पकित्तिया।
किण्हा नीला य लोहिया, हालिद्दा सुक्किला तहा॥१७॥

इसमें जो पुद्गल वर्णरूप में परिणमें हैं वे पांच प्रकार के हैं–१. काला, २. हरा, ३. लाल, ४. पीला और ५. श्वेत॥१७॥

गंधओ परिणया जे उ, दुविहा ते वियाहिया।
सुब्भिगंधपरिणामा, दुब्भिगंधा तहेव य॥१८॥

जो गंधरूप में परिणमें हैं। वे दो प्रकार से परिणमें हैं–१. सुरभिगन्ध पने और २. दुरभिगंधपने॥१८॥

रसओ परिणया जे उ, पंचहा ते पकित्तिया।
तित्त-कडुय-कसाया, अंबिला महुरा तहा॥१९॥

जो पुद्गल रसपने परिणमें हैं वे पांच प्रकार से परिणमें हैं–१. तिक्त रसपने, २. कटुक रसपने ३. कषायले रसपने, ४. खट्टे रसपने, और ५. मधुर रसपने॥१९॥

फासओ परिणया जे उ, अट्ठहा ते पकित्तिया।
कक्खडा मउया चेव, गरूया लहुआ तहा॥२०॥
सीया उण्हा य निद्धा य, तहा लुक्खा य आहिया।
इइ फासपरिणया एए, पुग्गला समुदाहिया॥२१॥

जो पुद्गल स्पर्शपने परिणमें हैं वे आठ प्रकार से परिणमें हैं–१. कठोर, २. कोमल, ३. भारी, ४. हलके, ५. शीत, ६. ऊष्ण, ७. चिकने और ८. लूखे। इस प्रकार के पुद्गलों का सम्बन्ध भी मिलता है और वियोग भी होता है। इसलिये ही यह पुद्गल कहे जाते हैं॥२०-२१॥

संठाणओपरिणया जे उ, पंचहा ते पकित्तिया।
परिमंडला य वट्टाय, तंसा चउरंसमायया॥२२॥

और जो पुद्गल संस्थानपने परिणमें हैं वे पांच प्रकार से परिणमें हैं–१. परिमंडल चूडी जैसा, २. वर्तुल लड्डू जैसा, ३. त्रिकोन-सिंघोडे जैसा, ४. चौरंस-चौकी जैसा और ५. आयत संस्थान-लकड़ी जैसा लम्बा॥२२॥

वण्णओ जे भवे किण्हे, भइए से उ गंधओ।
रसओ फासओ चेव, भइए संठाणओ वि य॥२३॥

एक परमाणु में तो–१ वर्ण, १ गंध, १ रस और २ स्पर्श। यों ४ बाले ही पाते हैं परंतु यहाँ तो अनन्त प्रदेशिक स्कन्ध आश्रिय कथन करते हैं–जो काले वर्ण के पुद्गल हैं उसमें २ गंध, ५ रस, ८ स्पर्श और ५ संस्थान। यों सब २० बाले पाते हैं॥२३॥

वण्णओ जे भवे नीले, भइए से उ गंधओ।
रसओ फासओ चेव, भइए संठाणओ वि य॥२४॥

जो हरे वर्ण के पुद्गल हैं उनमें भी २० बोल पाते हैं–२ गंध, ५ रस, ८ स्पर्श और ५ संस्थान॥२४॥

वण्णओ लोहिए जे उ, भइए से उ गंधओ।
रसओ फासओ चेव, भइए संठाणओ वि य॥२५॥

जो लाल वर्ण के पुद्गल हैं उनमें भी २० बोल पाते हैं–२ गंध, ५ रस, ८ स्पर्श और ५ संस्थान॥२५॥

वण्णओ पीयए जे उ, भइए से उ गंधओ।
रसओ फासओ चेव, भइए संठाणओ वि य॥२६॥

जो पीले वर्ण के पुद्गल हैं–उसमें भी २० बोल पाते हैं–२ गंध, ५ रस, ८ स्पर्श, और ५ संस्थान॥२६॥

वण्णओ सुक्किले जे उ, भइए से उ गंधओ।
रसओ फासओ चेव, भइए संठाणओ वि य॥२७॥

जो श्वेत वर्ण के पुद्गल हैं उनमें २० बोल पाते हैं २ गंध, ५ रस, ८ स्पर्श, ५ संस्थान॥२७॥

गंधओ जे भवे सुब्भी, भइए से उ, वण्णओ।
रसओ फासओ चेव, भइए संठाणओ वि य॥२८॥

जो सुगंधी पुद्गलें हैं उनमें २३ बोल पाते हैं–५ वर्ण ५ रस ८ स्पर्श, ५ संस्थान॥२८॥

गंधओ जे भवे दुब्भी भइए से उ, वण्णओ।
रसओ फासओ चेव, भइए संठाणओ वि य॥२९॥

जो दुर्गंधी पुद्गल हैं उनमें २३ बोल पाते हैं–५ वर्ण, ५ रस, ८ स्पर्श ५ संस्थान॥२९॥

रसओ तित्तए जे उ, भइए से उ वण्णओ।
गंधओ फासओ चेव, भइए संठाणओ वि य॥३०॥

जो तिक्तरस के पुद्गल हैं उनमें २० बोल पाते हैं–५ वर्ण, २ गंध, ८ स्पर्श ५ संस्थान॥३०॥

रसओ कडुए जे उ, भइए से उ वण्णओ।
गंधओ फासओ चेव, भइए संठाणओ वि य॥३१॥

जो कटु रस के पुद्गल हैं उनमें २० बोल पाते हैं–५ वर्ण, २ गंध, ८ स्पर्श, ५ संस्थान॥३१॥

रसओ कसाए जे उ, भइए से उ वण्णओ।
गंधओ फासओ चेव, भइए संठाणओ वि य॥३२॥

जो कषाय ले रस के पुद्गल हैं उनमें २० बोल पाते हैं–५ वर्ण, २ गंध, ८ स्पर्श, ५ संस्थान॥३२॥

रसओ अंबिले जे उ, भइए से उ वण्णओ।
गंधओ फासओ चेव, भइए संठाणओ वि य॥३३॥

जो खट्टे रस के पुद्गल हैं उनमें २० बोल पाते हैं–५ वर्ण, २ गंध, ८ स्पर्श, ५ संस्थान॥३३॥

रसओ महुरए जे उ, भइए से उ वण्णओ।
गंधओ फासओ चेव, भइए संठाणओ वि य॥३४॥

जो मधुर रस के पुद्गलों हैं उनमें २० बोल पाते हैं–५ वर्ण, २ गंध, ८ स्पर्श, ५ संस्थान॥३४॥

फासओ कक्खडे जे उ, भइए से उ वण्णओ।
गंधओ रसओ चेव, भइए संठाणओ वि य॥३५॥

जो कठोर स्पर्श के पुद्गल हैं उनमें २३ बोल बोल पाते हैं–५ वर्ण, २ गंध ५ रस, ६ स्पर्श (कठोर कोमल नहीं) ५ संस्थान॥३५॥

फासओ मउए जे उ, भइए से उ वण्णओ।
गंधओ रसओ चेव, भइए संठाणओ वि य॥३६॥

जो कोमल स्पर्श के पुद्गल हैं उसमें २३ बोल पाते हैं–५ वर्ण, २ गंध, ५ रस, ६ स्पर्श (कठोर कोमल नही) ५ संस्थान॥३६॥

फासओ गरूए जे उ, भइए से उ वण्णओ।
गंधओ रसओ चेव, भइए संठाणओ वि य॥३७॥

जो भारी स्पर्श के पुद्गल हैं उनमें २३ बोल पाते हैं–५ वर्ण, २ गंध, ५ रस, ६ स्पर्श (भारी हलका नहीं) ५ संस्थान॥३७॥

फासओ लहुए जे उ, भइए से उ वण्णओ।
गंधओ रसओ चेव, भइए संठाणओ वि य॥३८॥

जो हल्के स्पर्श के पुद्गल हैं उसमें २३ बोल पाते हैं–५ वर्ण, २ गंध, ५ रस, ६ स्पर्श (भारी हल्का नहीं) ५ संस्थान॥३८॥

फासओ सीयए जे उ, भइए से उ वण्णओ।
गंधओ रसओ चेव, भइए संठाणओ वि य॥३९॥

जो शीत स्पर्श के पुद्गल हैं उनमें २३ बोल पाते हैं–५ वर्ण, २ गंध, ५ रस, ६ स्पर्श (शीत उष्ण नहीं) ५ संस्थान॥३९॥

फासओ उण्हए जे उ, भइए से उ वण्णओ।
गंधओ रसओ चेव, भइए संठाणओ वि य॥४०॥

जो उष्ण स्पर्श के पुद्गल हैं उनमें २३ बोल पावे २ वर्ण २ गंध, ५ रस, ६ स्पर्श (शीत उष्ण नही) ५ संस्थान॥४०॥

फासओ निद्धए जे उ, भइए से उ वण्णओ।
गंधओ रसओ चेव, भइए संठाणओ वि य॥४१॥

जो चिकने स्पर्श के पुद्गल हैं उनमें २३ बोल पावे २ गंध, ५ रस, ६ स्पर्श, (चिकना लूखा नहीं) ५ संस्थान॥४१॥

फासओ लुक्खए जे उ, भइए से उ वण्णणे।
गंधओ रसओ चेव, भइए संठांणओ विय॥४२॥

जो लूखे स्पर्श के पुद्गल हैं उनमें २३ बोल पावे–५ वर्ण, २ गंध, ५ रस, ६ स्पर्श। (चिकना लूंख नहीं) ५ संस्थान॥४२॥

परिमंडलसंठाणे, भइए से उ वण्णओ।
गंधओ रसओ चेव, भइए फासओ वि य॥४३॥

जो परिमंडल संस्थान के पुद्गल हैं। उनमें २० बोल पावे ५ वर्ण, २ गंध, ५ रस, ८ स्पर्श॥४३॥

संठाणओ भवे वट्टे, भइए से उ वण्णओ।
गंधओ रसओ चेव, भइए फासओ वि य॥४४॥

जो वर्तुल संस्थान के पुद्गल हैं उनमें २० बोल पावे–५ वर्ण २ गंध, ५ रस, ८ स्पर्श॥४४॥

संठाणओ भवे तसे, भइए से उ वण्णओ।
गंधओ रसओ चेव, भइए फासओ वि य॥४५॥

जो त्रिकोन संस्थान के पुद्गल हैं उनमें २० बोल पावे–५ वर्ण, २ गंध, ५ रस, ८ स्पर्श॥४५॥

संठाणओ जे चउरंसे, भइए से उ वण्णओ।
गंधओ रसओ चेव, भइए फासओ वि य॥४६॥

जो चौकोन संस्थान के पुद्गल हैं उनमें २० बोल पावे–५ वर्ण, २ गंध, ५ रस, ८ स्पर्श॥४६॥

जे आयतसंठाणे, भइए से उ वण्णओ।
गंधओ रसओ चेव, भइए फासओ वि य॥४७॥

जो परिमंडल संस्थान के पुद्गल हैं उनमें २० बोल पावे–५ वर्ण, २ गंध, ५ रस, ८ स्पर्श॥४७॥

एसा अजीवाविभत्ती, समासेण, वियाहिया।
इत्तो जीवविभतिं, बुच्छामि अणुपुव्वसो॥४८॥

अहो शिष्य! यह श्री तीर्थंकर ने ५ वर्ण के १०० बोल, २ गंध के ४६ बोल, ५ रस के १००। ८ स्पर्श के १८४ बोल, ५ संस्थान के १०० बोल सब मिलाकर अजीव रूपी पुद्गलों के भाव से ५६० भेद कहे हैं॥४८॥

संसारत्था य सिद्धा य, दुविहा जीवा वियाहिया।
सिद्धा णेगविहा वुत्ता, तं मे कितयओ सुण॥४९॥

अब आगे जीव के भेदों का वर्णन अनुक्रम से कहता हूँ। अहो जम्बू! तीर्थंकर ने जीव दो प्रकार के कहे हैं–१ कर्म सहित सो संसारी जीव, और २ कर्म रहित सो सिद्ध भगवंत के जीव। इसमें से प्रथम सिद्ध के जीव के अनेक भेद कहे हैं सो मैं तुझे अनुक्रम से कहता हूँ। उसे दत्त चित्त श्रवण कर॥४९॥

इत्थी-पुरिसासिद्धा य, तहेव य नपुंसगा।
सलिंगे अन्नलिंगे य, गिहिलिंगे तहेव य॥५०॥

संसार के जीव जिस प्रकार सिद्ध होते हैं सो कहते हैं–१ स्त्री लिंग से सिद्ध होवे, २ पुरुष लिंग से सिद्ध होवे, ३ नपुंसक लिंग से सिद्ध होवे, ४ स्वलिंग सो साधु के लिंग से सिद्ध होवे, ५ सन्यासी आदि के अन्य लिंग से शुद्ध श्रद्धा कर सिद्ध होवे, ५ गृहस्थ लिंग (भाव चरित्र) से सिद्ध होवे॥५०॥

उक्कोसोगाहणाए य, जहन्न-मज्झिमाए य।
उड्ढं अहे य तिरियं य, समुद्दम्मि जलम्मि य॥५१॥

जघन्य दो हाथ की (बावन संस्थान आश्रय) अवगाहना वाला सिद्ध होवे, मध्यम अवगाहना

वाले सिद्ध होवे। और उत्कृष्ट ५०० धनुष्य की अवगाहना वाले सिद्ध होवे। ऊँची भूमि पर्वतादि पर से सिद्ध होवे, नीची भूमि गर्तादि में से सिद्ध होवे। तिरछा अढाई द्वीप में से सिद्ध होवे। कोई देवता छद्मस्थ साधु का हरन कर लवण समुद्र तथा कालोदधी समुद्र में डाल दे वहाँ केवल ज्ञान पाकर सिद्ध होवे। ऐसे ही नदी आदि अन्य जलाशय में से सिद्ध होवे॥५१॥

दस य नपुंसएसुं वीसंइत्थियासु य।
पुररिसेसु य अट्ठसयं समएणेगेण सिज्झई॥५२॥

एक समय में–नपुंसक लिगी १० सिद्ध होवे, स्त्री लिंग २० सिद्ध होवे और पुरुष लिंगी १०८ सिद्ध होवे॥५२॥

चत्तारि य गिहिलिंगे अन्नलिंगे दसेव य।
सलिंगेण य अट्ठसयं समएणेगेण सिज्झइ॥५३॥

एक समय में–गृहस्थ लिंग से भाव चारित्र प्राप्त कर ४ सिद्ध होवे, अन्य लिंग से भाव सम्यक्त्व चारित्र प्राप्त कर दस सिद्ध होवे, साधु के लिंग से १०८ सिद्ध होवे॥५३॥

उक्कोसोगाहणाए य, सिज्झंते जुगवं दुवे।
चत्तारि जहन्नाए, मज्झऽट्ठुत्तरं सयं॥५४॥

एक समय में जघन्य अवगाहना वाले चार जीव सिद्ध होवे, मध्यम अवगाहना वाले १०८ जीव सिद्ध होवे। उत्कृष्ट अवगाहना वाले दो जीव सिद्ध होवे॥५४॥

चउरूड्ढलोगे य दुवे समुद्दे, तओ जले वीसमहे तहेव।
य सयं च अट्ठत्तरं तिरियलोए, समएणेगेणं उं सिज्झई धुवं॥५५॥

एक समय में मेरु पर्वत की चूलकादि उर्ध्वलोक में उत्कृष्ट चार सिद्ध होवे, समुद्र मे दो जीव सिद्ध होवे, नदी प्रमुख के पानी में तीन जीव सिद्ध होवे, अधोगामिनी विजय आदी नीचे लोक में २० जीव सिद्ध होवे। तिरछे लोक में १०८ सिद्ध होवे॥५५॥

कहिं पडिहया सिद्धा? कहिं सिद्धा पइट्ठिया?।
कहिं बोदिं चइत्ताणं कत्थ गंतूण सिज्झई?॥५६॥
अलोए पडिहया सिद्धा, लोयग्गे य पइट्ठिया।
इहं बोदिं चइत्ताणं, तत्थ गंतूण सिज्झई॥५७॥

गौतम स्वामी ने प्रश्न किया कि–अहो भगवान! सिद्ध भगवंत कहाँ जाकर रुके हैं? कहा रहे हैं? कहाँ शरीर छोड़ा है? और कहाँ जाकर सिद्ध हुए हैं? भगवंत ने उत्तर दिया कि अहो–गौतम! सिद्ध भगवंत ऊर्ध्व लोक में अलोक में जाकर रुके हैं, लोकाग्र भाग में रहे हैं। इस मनुष्य लोक में शरीर का त्याग कर जहाँ लोकाग्र में सिद्ध क्षेत्र में सिद्ध हुए हैं॥५६-५७॥

बारसहिं जोयाणेहिं, सव्वट्ठस्सुवरिं भवे।
ईसिपब्भारनामा, पुढवी छत्तसंठिया॥५८॥

वह सिद्ध क्षेत्र कहाँ है सो कहते हैं–सर्वार्थ सिद्ध महा विमान से बारह योजन ऊपर

ईषत्प्रागभार नामक मुक्ति शिला है। वह पृथ्वी परिणाममय प्रणामी चित्ते छत्र के संस्थान से संस्थित है॥५८॥

पणयालसयसहस्सा, जोयाणणं तु आयया।
तावइयं चेव वित्थिण्णा, तिगुणो तस्सेव परिरओ॥५९॥

वह सिद्ध शिला पैंतालीस लाख योजन की लम्बी चौड़ी गोल है, उससे त्रिगुनी (१४२-३०२४९) योजन कुछ अधिक) परधी है॥५९॥

अट्ठजोयणबाहल्ला, सा मज्झम्मि वियाहिया।
पारिहायंती चीरमंते मच्छियपत्ताओ तणुययरी॥६०॥

वह सिद्ध शिला मध्य में आठ योजन की जाडी है, फिर आगे चारों तरफ अनुक्रम से पतली पड़ती-पड़ती अन्तिम अग्रभाग किनारे पर मक्षिका की पांख से भी बहुत पतली रह गई है॥६०॥

अज्जुणसुवण्णगमई, सा पुढवी निम्मला सहावेणं।
उत्ताणगछत्तसंठिया य, भणिया जिणवरेहिं॥६१॥

वह सिद्ध शिला अर्जुन (श्वेत) सुवर्णमय निर्मल है और चित्तेछत्र के आकार से तीर्थ करने कही है॥६१॥

संखंक-कुन्दसंकासा, पंडरा निम्मला सुहा।
सीयाए जोयणे तत्तो, लोयंते उ वियायिओ॥६२॥

वह सिद्ध सिला-शंख, अंकरत्न, मचकुंद मोगरा का फूल समान श्वेन उज्वल निर्मल है। उस सिद्ध सिला के ऊपर एक योजन प्रमाण में लोक का अन्त है॥६२॥

जोयणस्स उ जो तत्थ, कोसो उवरिमो भवे।
तस्स कोसस्स छब्भाए, सिद्धाणोगाहणा भवे॥६३॥

उस सिद्ध के ऊपर के एक योजन में के तीन हजार नव सौ निन्याणवें (३९९९) योजन नीचे छोड़ना ऊपर का एक कोश रहा उसके ६ भाग करना उसमें से पांच भाग नीचे छोड़ना ऊपर का एक भाग ३३३ (तीन सो तैंतीस) धनुष्य और ३२ अंगुल क्षेत्र रहा है, (इतनी सिद्ध की उत्कृष्ट अवगाहना है) उतने जाडे क्षेत्र में और (पैंतालीस लक्षयोजन लम्बे चौड़े क्षेत्र में) अनंत सिद्ध का अवगाह है॥६३॥

(अंगुल का प्रमाण चार मधु-त्रिफले का एक श्वेत सरसव, १६ सरसव का उडद, दो उडद का एक गुंजा (चीरमी) पांच गुंज का एक मासा, १६ मासा का एक सोनैया। ८ सोनैये भर का एकांगुनी रत्न, उस रत्न के ६ तले ८ कौने १२ हांसे हैं। वह सुवर्णकार की ऐरन के संस्थान से संस्थित होता है। उस कांगुनी रत्न का एकेक हांस एक उत्सेव अंगुल का चौड़ा होता है, वह उत्सेध अंगुल श्रमण भावंत श्री महावीर स्वामी का आधा अंगुल होता है, उसे हजार गुना करने से एक परमाणु अंगुल होता है अर्थात् महावीर स्वामी के आत्म अंगुल का एक परमाणु अंगुल होता है। ऐसे ६ परमाणु अंगुल का एक पांव, दो पांव का १ वेंत दो वेंत का एक हाथ, दो हाथ की एक कुक्षी दो कुक्षी का एक धनुष्य, २००० धनुष्य का एक कोश, चार कोश का एक योजन। यह परमाणु अंगुल के योजन का मान कहा।

अब उत्सेध अंगुल का प्रमाण कहते हैं—अनंत सूक्ष्म परमाणु का एक बादर परमाणु तथा व्यवहार परमाणु, जिसके अति तीक्ष्ण शस्त्र करके भी द्विभाग न होवे, अनंत व्यवहार परमाणु का ऊष्ण श्रेणिया (गरमी के पुद्गल) आठ ऊष्ण श्रेणिया पुद्गल जितना एक शीत श्रेणिया (ठंड के पुद्गल) आठ शीत श्रेणिया जितना एक उडरेणु (तरवले में देखावे सो) आठ ऊर्ध्वरेणु जितनी एक त्रसरेणु (त्रस काया का शरीर) आठ त्रस रेणु जितनी एक रथ रेणु (रथ चलते धूल उडे वह) आठ रथ रेणु जितना एक देवकुरु उत्तर कुरु क्षेत्र के युगलीये का बालग्र। आठ देवकुरु उत्तर कुरु के बालाग्र जितना एक हरीवास, रम्यकवास क्षेत्र के युग लिये का बालग्र, आठ हरीवास रम्यकवास क्षेत्र के मनुष्यों का बालग्र जितना एक हेमवत ऐरणवत क्षेत्र के मनुष्यों का बालाग्र, आठ हेमवत ऐरणवत क्षेत्र के मनुष्य के बालाग्र जितना एक पूर्व महा विदेह पश्चिम महा विदेह क्षेत्र के मनुष्य का बालाग्र, आठ महा विदेह क्षेत्र के मनुष्य के बालाग्र जितना एक भरत ऐरावत क्षेत्र के संख्यात वर्षायु वाले मनुष्य के बालाग्र। आठ भरत ऐरावत क्षेत्र के मनुष्य के बालाग्र जितनी लीख, आठ लीख की एक यूका, आठ यूका का एक जव मध्य, आठ जव मध्य का एक अंगुल, ६ अंगुल का एक पाउ, २ पाव एक बेत्त, २ बेत्त एक हाथ, २ हाथ एक कुछ दो कुछ का एक धनुष्य, २००० धनुष्य का एक कोश, ४ कोश का एक योजन, ऐसे उत्सेध अंगुल के ४००० कोश होवे तब प्रमाणु अंगुल का एक योजन)।।६३।।

तत्थ सिद्धा महाभागा, लोगग्गम्मि पइट्ठिया।
भवप्पवंचउम्मुक्का, सिद्धिं वरगइं गया।।६४।।

जहां सिद्ध क्षेत्र में रहे सिद्ध भगवंत अनंत ज्ञान रूप ऋद्धि कर महाभाग्यवान हैं, अनंत बलवीर्य रूप ऋद्धि कर महाशक्ति के धारक हैं। सर्व लोक के ऊपर अग्रभाग में रहे नरकादि गति के भवों में भ्रमण करने के प्रपंच से निवृते हैं और मोक्ष रूप प्रधान गति को प्राप्त की है।।६४।।

उस्सेहो जस्स जो होइ, भवम्मि चरिमम्मि उ।
विभागहीणो तत्तो य, सिद्धाणोगाहणा भवे।।६५।।

मनुष्य भव के चरम-अन्तिम शरीर की जितनी अवगाहना (ऊँचाई) थी उसके तीन भाग में का एक भाग छोड़कर बाकी रहे। दो भाग जितनी सिद्ध भगवंत की अवगाहना होती है।।६५।।

एगत्तेण सादीया, अपज्जवसिया वि य।
पुहत्तेण अणाइया अपज्जवसिया वि य।।६६।।

एकसिद्ध आश्रिये तो आदि अन्त सहित है। जैसे महावीर स्वामीजी कार्तिक वद्य अमावश्या को मोक्ष गये और बहुत सिद्धो आश्रिय आदिअंत दोनों नहीं हैं।।६६।।

अरूविणो जीवघणा नाण-दंसणसन्निया।
अउलं सुहं संपत्ता उवमा जस्स नत्थि उ।।६७।।

वे सिद्ध भगवन्त कर्म रहित होने से अरूपी हैं। शरीर रहित होने से सघन आत्म प्रदेश के धारक हैं। केवल ज्ञान केवल दर्शन रूप संज्ञा वाले हैं और सुख की उपमा रहित अतुल्य सुख को प्राप्त हुए हैं।।६७।।

लोएगदेसे ते सव्वे नाण-दंसणसन्निया।
संसारपारनित्थिण्णा सिद्धिं वरगई गया॥६८॥

वे सिद्ध भगवन्त लोक के एक देश विभाग में रहे हैं, केवल ज्ञान केवल दर्शन रूप संज्ञोपयुक्त हैं संसार परिभ्रमण का छेदन कर संसार के पार हुए हैं सर्व कर्मांश क्षय करके मोख रूप प्रधान गति को प्राप्त की है। यह सिद्ध का स्वरूप जानना॥६८॥

संसारत्था उ जे जीवा, दुविहा ते वियाहिया।
तसा य थावरा चेव, थावरा विविहा तहिं॥६९॥

अब दूसरे संसारी जीवों का स्वरूप कहते हैं–जो संसार में रहे वे संसारी जीव दो प्रकार के कहे हैं–१ त्रस जीव और २ स्थावर जीव। इसमें स्थावर जीव के तीन प्रकार कहे हैं॥६९॥

पुढवी-आउजीवा य तहेव य, वणस्सई।
इच्चेए थावरा तिविहा, तेसिं भेए सुणेह मे॥७०॥

अहो जम्बू! वे तीन भेद स्थावर के मैं तुम से कहता हूँ सो तुम दत्तचित्त श्रवण करो पृथ्वीकाय, २ अपकाय, और ३ वनस्पतिकाय॥७०॥

दुविहा पुढविजीवा य सुहुमा बायरा तहा।
पज्जत्तमपज्जत्ता, एवमेए दुहा पुणो॥७१॥

पृथ्वीकाय के भेद कहते हैं। श्री तीर्थंकर भगवान ने द्रव्य से पृथ्वीकाय के दो भेद कहे हैं–१ सूक्ष्म और २ बादर, इसमें सूक्ष्म के दो भेद अपर्याप्त और पर्याप्त वैसे ही बादर के भी दो भेद–१ अपर्याप्त और २ पर्याप्त॥७१॥

बायरा जे उ पज्जत्ता, दुविहा ते वियाहिया।
सण्हा खरा य बोद्धव्या, सण्हा सत्तविहा तहिं॥७२॥

और भी बादर पृथ्वीकाय के दो भेद–१ कोमल और २ कठिन इसमें कोमल पृथ्वी काय के ७ भेद॥७२॥

किण्हा नीला य रूहिरा य, हालिद्दा सुक्किला तहा।
पंडु पणगमट्टीया, खरा छत्तीसईविहा॥७३॥

तद्यथा–१ काली मिट्टी, २ हरी मिट्टी, ३. लाल मिट्टी, ४. पीली मिट्टी, ५ श्वेत मिट्टी, ६. पांडू और ७. गोपीचंदन और कठिन मिट्टी के ३६ भेद कहे हैं॥७३॥

पुढवी य सक्करा वालुया य, उवले सिला य लोणूसे।
अय तंब सीसग, रूप्प सुवण्णे वइरे य॥७४॥
हरियाले हिंगुलुए, मणेसिा सासगजण पवाले।
अब्भपडल-ऽब्भवालुया, बादरकाए मणिविहाणे॥७५॥

तद्यथा–१ खदान की मिट्टी, २. मुरड-कंकर, ३. वेलू रेती, ४. पाषान, ५. सिला, ६. समुद्रादि का नमक, ७ ओस-खारी, ८. लोहा, ९. ताम्बा, १०. तरुआ (कथीर) ११. सीसा, १२

रूपा, १३. सुवर्ण, १४. बज्रहीरा, १५. हरताल, १६. हिंगलु, १७. मणःसिला, १८. रत्नों को जाति, १९. सुरमा, २०. प्रवाल, २१. अभ्रक, २२. मोडल की धूल, यह २२ जाति की पृथ्वी काया॥७४-७५॥

गोमेज्जए य रूपगे अंके फलिहे य लोहियक्खे य।
मरगय मसारगल्ले भुयमोयग इंदनीले य॥७६॥
चंदण गेरूय हंसगब्भे पुलए सोगंधिए य बोद्धव्वे।
चंदप्प वेरूलिए जलकंते सूरकंते य॥७७॥

सोले जाति के रत्न–१. गोमिज रत्न, २. रुचक रत्न, ३. अंक रत्न, ४. स्फटिक रत्न, ५. लोहिताक्ष रत्न, ६. मरकत रत्न, ७. मसारगल रत्न, ८. भुजमोचक रत्न, ९. इन्द्रनील रत्न, १०. चंदन रत्न, ११. गैरक रत्न, १२. हंसगर्भ रत्न, १३. पुलक रत्न, १४. सौगंधिक रत्न, १५. चन्द्रप्रभ रत्न, १६. वैडूर्य रत्न, १७. जलकांत रत्न, १८. सूर्यकान्त रत्न॥७६-७७॥

एए खरपुढवीय, भेया छत्तीसमाहिया।
एगविहमनाणत्ता, सुहुमा तत्थ वियाहिया॥७८॥

यह कठिन पृथ्वी के छत्तीस भेद कहे और सूक्ष्म पृथ्वी काया का तो एक ही भेद तीर्थंकर ने कहा है यों सब ४८ भेद पृथ्वी काया के हुए॥७८॥

सुहुमा सव्वलोगम्मि, लोगदेसे य बायरा।
एत्तो कालविभागं तु, बुच्छं तेसिं चउव्विहं॥७९॥

२ क्षेत्र से–सूक्ष्म पृथ्वी काया के एक ही प्रकार के जीव सर्व लोक में व्याप रहे हैं और बादर पृथ्वी काया के जीव लोक के देश विभाग में हैं ३ काल से पृथिवी काया के जीवों के चार भेद हैं सो मैं कहता हूँ॥७९॥

संतइं पप्पऽणादीया अपज्जवसिया वि य।
ठिइं पडुच्च साईया, सपज्जवसिया वि य॥८०॥

१ पृथ्वी काया दव्य की अपेक्षा तो अनादि और अनंत हैं। अर्थात् पृथ्वी काया कभी बनी नहीं और सब पृथ्वीकाया का नाश भी नहीं होगा, वैसे ही पर्याय की अपेक्षा अर्थात् जीव शरीर का उत्पन्न होना और नाश होने की अपेक्षा आदि और अन्त दोनों सहित हैं॥८०॥

बावीससहस्साइं, वासाणुक्कोसिया भवे।
आउठिई पुढवीणं, अंतोमुहुत्तं जहन्निया॥८१॥

(२) पृथ्वीकाया की स्थिति–जघन्य अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट बाईस (२२) हजार वर्ष की। यह भव स्थिति कही॥८१॥

असंखकालमुक्कोसा, अंतोमुहुत्तं जहन्निया।
कायठिई पुढवीणं, तं कायं तु अमुंचओ॥८२॥

(३) अब कायास्थिति अर्थात् पृथ्वीकाया का जीव मर-मरकर पुनः पृथ्वी काया में ही उत्पन्न होवे उसकी (काया) स्थिति–जघन्य अन्तर्मुहूर्त की उत्कृष्ट असंख्यात काल की॥८२॥

अणंतकालमुक्कोसं, अंतोमुहुत्तं जहननयं।
विजढम्मि सए काए पुढविजीवाण अंतरं॥८३॥

(४) पृथ्वी काया के जीव पृथ्वी काया का शरीर छोड़कर पुनः पृथ्वी काया में उत्पन्न होवे उसके मध्य (बीच) में अन्तर पड़े तो जघन्य अन्तर्मुहूर्त का उत्कृष्ट अनंत काल का॥८३॥

एएसिं वण्णओ चेव, गंधओ रस-फासओ।
संठाणादेसओ वा वि, विहाणाइं सहस्ससो॥८४॥

४ भाव से पृथ्वी काया के वर्ण की गंध की रस की स्पर्श की और संस्थान की अपेक्षा से हजारों ही भेद होते हैं। इति पृथ्वीकाया वर्णन॥८४॥

दुविहा आउजीवा उ, सुहुमा बायरा तहा।
पज्जत्तमपज्जत्ता, एवमेए दुहा पुणो॥८५॥

अब अपकाया के भेद कहते हैं–१. द्रव्य से अपकाया के दो भेद-१ सूक्ष्म और २ बादर, इसमें सूक्ष्म के भी दो भेद–१. अपर्याप्त और २ पर्याप्त। वैसे ही बादर के भी दो भेद–१ अपर्याप्त और २ पर्याप्त॥८५॥

बायरा जे उ पज्जता, पंचहा ते पकित्तिया।
सुद्धोदए य उस्से, हरतणु महिया हिमे॥८६॥

श्री तीर्थंकर भगवान ने बादर पर्याप्त अपकाया के पांच भेद कहे हैं–१ शुद्ध मेघ का पानी, २. ओस का पानी, ३. हरे तृण पर रहा पानी, ४. धूंवर का पानी, और ५. हेम (बरफ) का पानी॥८६॥

गविहमणाणत्ता सुहुमा तत्थ वियाहिया।
सुहुमा सव्वलोगम्मि, लोगदेसे य बायरा॥८७॥

श्री तीर्थंकर ने सूक्ष्म अप्काया का तो एक ही भेद कहा है–२ क्षेत्र से सूक्ष्म अप्काया के जीव सर्व लोक में व्यापक हैं। और बादर अप्काया के जीव लोक के देश विभाग में हैं॥८७॥

संतइं पप्पऽणादीया अपज्जवसिया वि य।
ठिइं पडुच्च साईया, सपज्जवसिया वि य॥८८॥

३ काल से–अप्काया चार प्रकार की है–१ अप्काया की सदैव आस्ति आश्रिय अनादि अनंत है। चवन उपजन आश्रिय सादि सान्त है॥८८॥

सत्तेव सहस्साइं वासाणुक्कोसियो भवे।
आउठिई आऊण अंतोमुहुत्तं जहन्निया॥८९॥

अपकाया की भवस्थिति जघन्य अन्तर्महूर्त की उत्कृष्ट सात हजार वर्ष की॥८९॥

असंखकालमुक्कोसं, अंतोमुहुत्तं जहन्नय।
कायठिई आऊणं तं, कायं तु अमुंचओ॥९०॥

अपकाया की काया स्थिति जघन्य अन्तर्मूहुर्त की उत्कृष्ट असंख्यात काल तक मर कर उसी में उत्पन्न होवे॥९०॥

अणंतकालमुक्कोसं, अंतोमुहुत्तं जहन्नयं।
विजढम्मि सए काए, आउजीवाण अंतरं॥९१॥

अपकाया का जीव निकलकर पुनः अपकाया में जावे जिस का अन्तर जघन्य अन्तर्मूहूर्त का उत्कृष्ट अनंत काल का॥९१॥

एएसिं वण्णओ चेव, गंधओ रस-फासओ।
संठाणादेसओ वा वि विहाणाइं सहस्ससो॥९२॥

४ भाव से अपकाया के ५ वर्ण, २ गंध, ५ रस, ८ स्पर्श संस्थान की अपेक्षा कर हजारों भेद होते हैं। इति अपकाया वर्णन॥९२॥

दुविहा वणस्सईजीवा, सुहुमा बायरा तहा।
पज्जत्तमपज्जत्ता एवमेए दुहा पुणो॥९३॥

अब वनस्पति काया का कहते हैं–१ द्रव्य से वनस्पति के जीव दो प्रकार के कहे हैं–१ सूक्ष्म और २ बादर, इसमें सूक्ष्म के दो भेद पर्याप्त और अपर्याप्त वैसे ही बादर के भी दो भेद अपर्याप्त और पर्याप्त॥९३॥

बायरा जे उ पज्जता दुविहा ते वियाहिया।
साहारणसरीरा य पत्तेगा य तहेव य॥९४॥

बादर पर्याप्त वनस्पति काया के दो भेद कहे हैं–१साधारण शरीर (एक शरीर में अनंत (जीव) वाली और प्रत्येक शरीर (एक शरीर में एक जीव) वाली॥९४॥

पत्तेगसरीरा उ, णेगहा ते पकित्तिया।
रुक्खा गुच्छा य गुम्मा य लया वल्ली तणा तहा॥९५॥
वलय पव्वगा कुहणा जलरुहा ओसही तिणा।
हरियकाया उ बोद्धव्वा पत्तेगाइ वियाहिया॥९६॥

इसमें प्रत्येक शरीर वाली वनस्पति के अनेक भेद कहे हैं–१ रूंख वृक्ष (यह दो प्रकार के होते हैं एक बीजवाले तो अम्बादि और बहुत बीजवाले सीताफलादि) गुच्छा रींगनी प्रमुख के, ३ गुल्म मालती आदि के, ४ लता-चम्पादि की ५ बेली-तुम्बे प्रमुख की, ६ तृण ७ पर्व ८ इक्षुआदि ९ कुहाण भूमि फोड़ादि, १० जलवृक्ष कमलादि, ११ औषधि धान्य शालीप्रमुख और १२ हरित काय भाजी आदि यह बारा प्रकारादि प्रत्येक वनस्पति के भेद जानना॥९५-९६॥

साहारणसरीरा उ णेगहा ते पकित्तिया।
आलुए मूलए चेव, सिंगबेरे तहेव य॥९७॥
हिरिली सिरिली सिस्सिरिली, जावई केयकंदली।
पलंडु-लसणकंदे य, कंदली य कुहुव्वए॥९८॥

लोहि णीहू य, थीहू य कुहगा य तहेव य।
कण्हे य वज्जकंदे य कंदे सूरणए तहा॥९९॥
अससकण्णी य बोद्धव्वा, सीहकण्णी तहेव य।
मुसुंढी य हलिद्दा य णेगहा एवमायओ॥१००॥

अब साधारन वनस्पति के भी अनेक भेद कहे हैं जैसे–१ आलू, २ मूली, ३ अदरक, ४ हिरली, ५ सिरली, ६ शशीरीली, ७ जवाय, ८ कदली, ९ पंडालु, १० लशन, ११ कान्दे, १२ कुडुक, १३ सोहिणी, १४ हुंथीया, १५ कुहाग, १६ कृष्णकंद, १७ वज्रकंद, १८ अश्वकर्णी, २० सिहकर्णा, २१ मुसंडी और २२ हरी हल्दी इत्यादि बहुत प्रकार की कन्द मूलादि साधारन वनस्पति की जाति है॥९७-१००॥

एगविहमणाणत्ता सुहुमा तत्थ वियाहिया।
सुहुमा सव्वलोगम्मि, लोगदेसे य बायरा॥१०१॥

और जो सूक्ष्म वनस्पति है उसका एक ही प्रकार कहा है। २ क्षेत्र से सूक्ष्म बनस्पति सर्व लोक में भरी है। और बादर वनस्पति लोक के एक देश में रही है॥१०१॥

संतइं पप्पऽणाईया, अपज्जवसिया वि य।
ठिइं पडुच्च साईया, सपज्जवसिया वि य॥१०२॥

काल से वनस्पति के चार प्रकार–१ वनस्पति काय की सदैव आस्ति होने से आदि और अन्त रहित है। वनस्पति च्यवन उपचन आश्रिय आदि और अन्त सहित है॥१०२॥

दस चेव सहस्साइं, वासाणुक्कोयिा भवे।
वणप्फईण आउं तु, अंतोमुहुत्तं जहन्नयं॥१०३॥

२ वनस्पति काया की भव स्थिति जघन्य अन्तर मुहूर्त की है। उत्कृष्ट दश हजार वर्ष की है॥१०३॥

अणंतकालमुक्कोसं अंतोमुहुत्त जहन्नया।
कायठिई पणगाण, तं कायं तु अमुंचओ॥१०४॥

वनस्पति काया की कायास्थिति जघन्य अन्तर मुहूर्त की उत्कृष्ट अनन्त काल की है। (यह कथन अनंत काय आश्रिय जानना)॥१०४॥

असंखकालमुक्कोसां, अंतोमुहुत्तं जहन्नयं।
विजढम्मि सए काए, पणगजीवाण अतरं॥१०५॥

वनस्पति काया का जीव निकल पुनः वनस्पति काया में उत्पन्न होवे तो उसका अन्तर जघन्य अन्तर मुहूर्त का उत्कृष्ट असंख्यात काल का॥१०५॥

एएसिं वण्णओ चेव, गंधओ रस-फासओ।
संठाणदेसओ वा वि विहाणाइं सहस्सो॥१०६॥

४ भाव से वनस्पति काया के ५ वर्ण की २ गंध, ५ रस की, ८ स्पर्श और ५ संस्थान की अपेक्षा कर हजारों भेद होते हैं। इति वनस्पति काया का कथन संपूर्ण॥१०६॥

इच्चेए थावरा तिविहा, समासेण वियाहिया।
एत्तो उ तसे तिविहे, वुच्छामि अणुपुव्वसो॥१०७॥

अहो जम्बू! यह तीनों प्रकार के स्थावर जीवों का भेदानुभेद कहा अब तीनों प्रकार के त्रस जीवों का कथन अनुक्रम से कहूंगा॥१०७॥

तेऊ वाऊ य बोधव्वा, ओराला य तसा तहा।
इच्चेए तसा तिविहा, तेसि भेए सुणेह मे॥१०८॥

तीनों त्रस के नाम–तेउकाय[१], २ वायुकाय और ३ औदादिक त्रस इनके भेदानुभेद आगे कहता हूँ, सो दत्त-चित्त से श्रवण कर॥१०८॥

दुविहा तेउजीवा उ, सुहुमा बायरा तहा।
पज्जत्तमपज्जत्ता, एवमेए दुहा पुणो॥१०९॥

तेउकाया के जीव १ द्रव्य से दो प्रकार के कहे हैं। १ सूक्ष्म और २ बादर इसमें सूक्ष्म के दो भेद १ अपर्याप्त और पर्याप्त वैसे ही बादर के भी दो भेद–१अपर्याप्त और पर्याप्त॥१०९॥

बायरा जे उ पज्जत्ता, णेगहा ते वियाहिया।
इंगाले मुम्मुरे अगणी, अच्चीं जाला तहेव य॥११०॥
उक्का विज्जू य बोधव्वा, णेगहा एवमायओ।
एगविहमनाणत्ता, सुहुमा ते वियाहिया॥१११॥

बादर तेजस्काय के पर्याप्त है जिसके अनेक भेद कहे हैं–१ अंगारे, २ भोभर, ३ अग्नि, ४ ज्वाला, ५ टूटती ज्वाला, वैसे ही ६ उल्कापात की अग्नि ७ बिजली की अग्नि, ८ इत्यादि बहुत भेद हैं। और सूक्ष्म तेजस्काय का एक ही भेद हैं॥११०-१११॥

सुहुमा सव्वसलोगम्मि, लोगदेसे य बायरा।
एत्तो कालविभागं तु, तेसिं वोच्छं चउव्विहं॥११२॥

२ क्षेत्र से सूक्ष्म तेजस्काय के जीव तो सर्व लोक में व्यापक है बादर तेजस्काय लोक के एक देश (अढाइ द्वीप) में ही है। और ४ भाव के चार प्रकार कहे॥११२॥

संतइं पप्पऽणाईया, अपज्जवसिया वि य।
ठिइं पडुच्च साईया, सपज्जवसिया वि य॥११३॥

अग्नि काय की सदैव आस्ति आश्रिय अनादि अनंत है। और जीवों के उत्पन्न वचन आश्रिय आदि और अन्त सहित है॥११३॥

---

१. तेऊ वायु को बहुत से स्थान स्थावरों में भी गिना जाता है। जिस का कारण एकेन्द्रिय होने से और यहां तथा जीवाभिगम में त्रस में आया है वह चलन शक्ति की अपेक्षा से है।

तिण्णेव अहोरत्ता, उक्कोसेण वियाहिया।
आउठिती तेऊणं, अंतोमुहुत्त जहन्निया॥११४॥

२ तेजस्काय की भव स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त की उत्कृष्ट तीन अहोरात्रि की॥११४॥

असंखकालमुक्कोसं, अंतोमुहत्तं जहन्निय।
कायठिई तेऊणं तं काय तु अमुंचओ॥११५॥

तेजस्काय की कायास्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त की उत्कृष्ट असंख्यात काल की॥११५॥

अणंतकालमुक्कोसं, अंतोमुहुत्तं जहन्नयं।
विजढम्मि सए काए, तेउजीवाण अंतरं॥११६॥

तेजस्काय का जीव मर पुनः तेजस्काय में उत्पन्न हो जिसका अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त का उत्कृष्ट अनंत काल का॥११६॥

एएसिं वण्णओ चेव गंधओ रस-फासओ।
संठाणादेसओ वा वि विहाणाइं सहस्ससो॥११७॥

४ भाव से तेजस्काय के ५ वर्ण की, २ गंध की, ५ रस की, ८ स्पर्श की और ५ संस्थान की अपेक्षा कर हजारों भेद होते हैं। इति तेजस्काय॥११७॥

दुविहा वाउजीवा उ, सुहुमा बायरा तहा।
पज्जत्तमपज्जत्ता, एवमेए दुहा पुणो॥११८॥

अब वायुकाया का कहते हैं–वायुकाया के दो भेद कहे हैं–सूक्ष्म और बादर इसमें सूक्ष्म के दो भेद अपर्याप्त और पर्याप्त वैसे ही बादर के भी दो भेद अपर्याप्त और पर्याप्त॥११८॥

बायरा जे उ पज्जत्ता, पंचहा ते पकित्तिया।
उक्कलिया-मंडलिया-घण-गुंजा-सुद्धवाया य॥११९॥
संवट्टगवाए य णेगहा एवमायओ।
एगविहमणाणत्ता, सुहुमा तत्थ वियाहिया॥१२०॥

बादर पर्याप्त वायुकाय के ५ भेद कहे हैं–१ उत्कालिक वायु (ठेर-२ कर चले) २ मंडलिक वायु चक्कर खावे, ३ घनवायु जो जमीन के नीचे ४ गुंजवायु-गुंजारव करे सो, ५ शुद्ध वायु ६ संवर्तक वायु इत्यादि वायु काया के बहुत प्रकार हैं और सूक्ष्म वायुकाया का एक ही प्रकार कहा है॥११९-१२०॥

सुहुमा सव्वलोगम्मि, लोगदेसे य बायरा।
एत्तो कालविभागं तु तेसिं वुच्छं चउव्विहं॥१२१॥

क्षेत्र से सूक्ष्म वायुकाया सर्वलोक में व्यापक है। और बादर वायुकाया लोक के देश विभाग में हैं। ३ काल से वायुकाया के चार प्रकार हैं॥१२१॥

संतइं पप्पऽणाईया, अपज्जवसिया वि य।
ठिइं पडुच्च साईया, सपज्जवसिया वि य॥१२२॥

वायु काया की आस्ति आश्रिय अनादि अनंत है। और उत्पन चवन आश्रिय सादी सान्त है॥१२२॥

तिण्णेव सहस्साइं घासाणुक्कोसिया भवे।
आउठिई बाऊणं, अंतोमुहुत्तं जहन्निया॥१२३॥

वायु काया की भव स्थिति जघन्य अन्तर मुहूर्त की उत्कृष्ट तीन हजार वर्ष की॥१२३॥

असंखकालमुक्कोसा, अंतोमुहुत्तां जहन्निया।
कायठिई वाऊणं, तं कायं तु अमुंचओ॥१२४॥

वायु काया की स्थिति जघन्य अन्तर मुहूर्त की उत्कृष्ट असंख्यात काल की, वहाँ तक वायु कायारूप में ही रहे॥१२४॥

अणंतकालमुक्कोसं, अंतोमुहुत्तं जहन्नयं।
विजढम्मि सए काए वाउजीवाण अंतरं॥१२५॥

वायु काया का जीव मरकर पुनः वायु काया में उत्पन्न होने के अन्तर पड़े तो जघन्य अन्तर मुहूर्त का उत्कृष्ट अनंत काल का॥१२५॥

एएसिं वण्णओ चेव गंधओ रस-फासओ।
संठाणादेसओ वा वि विहाणाइं सहस्ससो॥१२६॥

४ भाव से वायु काया के ५ वर्ण की, २ गंध की, ५ रस की, ८ स्पर्श की और ५ संस्थान की अपेक्षा कर हजारों भेद होते हैं॥ इति वायु काया॥१२६॥

उराला तसा उ चउहा ते पकित्तिया।
वेइंदिय तेइंदिय, चउरो पंचेदिया चेव॥१२७॥

अब औदारिक त्रस के चार भेद कहे हैं–१ बेन्द्रिय, २ तेन्द्रिय, ३ चौरिन्द्रिय और ४ पंचेन्द्रिय॥१२७॥

बेइंदिया उ जे जीवा दुविहा ते पकित्तिया।
पज्जत्तमपज्जत्ता, तेसिं भेए सुणेह मे॥१२८॥

बेइन्द्रिय जो जीव हैं उनके दो भेद कहे हैं–पर्याप्त और अपर्याप्त॥१२८॥

किमिणो सोमंगला चेव अलसा माइवाहया।
वासीमुहा य सिप्पीया संखा संखणगा तहा॥१२९॥
पल्लोया णुल्लया चेव तहेव य वराडगा।
ज्लूगा जालगा चेव, चंदणा य तहेव य॥१३०॥

बेइन्द्रिय के भेद–१ कृमिये, २ सोमंगल अलसिया, ३ गिंडाले, ४ बंसीमुखे, ५ सीप, ६ शंख,

७ संशोलिये, (छोटे शंख) , ८ पलोया, ९ घुन, १० राडा काष्ट भक्षी, ११ जलोक, १२ कोडे, १३ चन्दन॥१२९-१३०॥

इइ बेइंदिया एए, णेगहा एवमायओ।
लोगगदेसे ते सव्वे न सव्वत्थ वियाहिया॥१३१॥

क्षेत्र से इत्यादि बेइन्द्रिय के अनेक भेद हैं, वे सब लोक के एक देश में रहते हैं। परंतु सर्व स्थान में नहीं हैं॥१३१॥

संतइं पप्पऽणाईया, अपज्जवसिया वि य।
ठिइ पडुच्च साईया, सपज्जवसियाविय॥१३२॥

काल से चार भेद–१ बेइन्द्रिय की सदैव आरित आश्रिय अनादि अनंत है और उत्पन्न चवन आश्रिय आदि अंत सहित है॥१३२॥

वासाइं बारसा चेव उक्कोसेण वियाहिया।
बेइंदिय आउठिई अंतोमुहुत्तं जहन्निया॥१३३॥

बेइन्द्रिय की भव स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त की उत्कृष्ट बारा वर्ष की है॥१३३॥

संखिज्ज काल मुक्कोसं, अन्तोमुहुत्त जहन्नगं।
बेइंदिय काय ठई, तं कायंतु अमुंचओ॥१३४॥

बेइन्द्रिय की काया स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त उत्कृष्ट संख्यात काल की, इतने काल तक बेइन्द्रिय में ही रहे॥१३४॥

अणंतकाल मुक्कोसं, अंतो मुहुत्तं जहन्नयं।
बेइंदियजीवाणं अंतरेयं वियाहियं॥१३५॥

बेइन्द्रिय मरकर पुनः बेइन्द्रिय में उत्पन्न होने का अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त का उत्कृष्ट अनंत काल का॥१३५॥

एएसिं वण्णओ चेव, गंधओ रस-फासओ।
संठाणादेसओ वा वि विहाणाइं सहस्ससो॥१३६॥

४ भाव से बेइन्द्रिय के ५ वर्ण, २ गंध, ५ रस, ८ स्पर्श, ५ संस्थान की अपेक्षा कर हजारों भेद होते हैं, इति बेइन्द्रिय॥१३६॥

तेइंदिया उ जीवा, दुविहा ते पकित्तिया।
पज्जत्तमपज्जत्ता तेसिं भेए सुणेह मे॥१३७॥

तेइन्द्रिय के दो भेद कहे हैं। तद्यथा पर्याप्त ओर अपर्याप्त॥१३७॥

कुंथू पिवीलिउद्दंसा उक्कलुद्देहिया तहा।
तणहार कट्ठहारा य मालूगा पत्तहाकरगा॥१३८॥
कप्पासट्ठिमिंजा, य तिंदुगा तउसमिंजगा।
सदावरी य गुम्मी य बोद्धव्वा इंदगाइया॥१३९॥

इंदगोवमाईया णेगहा एवमायओ।
लोएगदेसे ते सव्वे न सव्वत्थ वियाहिया॥१४०॥

तेइन्द्रिय के नाम–१ कुंथुवा, २ चींटी, ३ उदंसा, ४ उकालिया, ५ उदइ, ६ तृणाहारी, ७ काष्टाहारी, ८ मालूका, ९ पत्तहारी, १० कपासिया, ११ अस्थिमींजा, १२ दुक, १३ समीजग, १४ सदाबारीये, १५ गुर्भाय, १६ इन्द्रगाय, १५ इन्द्रगोप इत्यादि तेइन्द्रिय के अनेक प्रकार हैं। २ क्षेत्र से सब तेइन्द्रिय जीव लोक के एक देश विभाग में है परन्तु सर्व लोक में नहीं॥१३८-१४०॥

संतइं पप्पऽणाईया अपज्जवसिया व य।
ठिइं पडुच्च साइया सपज्जवसिया वि य॥१४१॥

अब काल से ४ प्रकार तेइन्द्रिय जीवों की सदैव आस्ति आश्रिय अनादि अनंत हैं, उपजन चवन आश्रिय सादी संत हैं॥१४१॥

एगूणपण्णहोरत्ता, उक्कोसेण वियाहिया।
तेइंदियआउठिई, अंतोमुहुत्तं जहन्निया॥१४२॥

तेइन्द्रिय की भव स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त की उत्कृष्ट उनपचास(४९) दिन की है॥१४२॥

संखेज्कालमुक्कोसं, अंतोमुहुत्तं जहन्निया।
तेइंदियकायठिई तं कायं तु अमुंचओ॥१४३॥
अणंतकालमुक्कोसं, अंतोमुहुत्तं जहन्नयं।
तेइंदियजीवाणं अंतरय तु वियाहियं॥१४४॥

तेइन्द्रिय की काया स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त की उत्कृष्ट असंख्यात काल की, तेइन्द्रिय मर कर पुनः तेइन्द्रिय होवे जिसका अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त का उत्कृष्ट अनंत काल का॥१४३-१४४॥

एएसिं वण्णओ चेव गंधओ रस-फासओ।
संठाणादेसओ वा वि विहाणाइं सहस्ससो॥१४५॥

भाव से तेइन्द्रिय के ५ वर्ण, २ गंध, ५ रस, ८ स्पर्श, ५ संस्थान की अपेक्षा करके हजारों भेद होते हैं। इति तेइन्द्रिय॥१४५॥

चउरिंदिया उ जे जीवा दुविहा ते पकित्तिया।
पज्जत्तभपज्जत्ता तेसिं भेए सुणेह में।१४६॥

चौरोन्द्रिय जीव दो प्रकार के कहे हैं–तद्यथा अपर्याप्त ओर पर्याप्त॥१४६॥

अंधिया पोत्तिया चेव मच्छिया मसगा तहा।
भमरे कीडपयगे य ढेंकुणे कुंकुडे तहा॥१४७॥
कुक्कुडे सिंगिरीडी य, नंदावत्ते य विच्छिए।
डोले भिंगारीडी य पिरिली अच्छिवेहए॥१४८॥

अच्छिले माहए अच्छिरोडए विचित्ते चित्तपत्तए।
उहिंजलिया जलकारी य नीया तंतवगाइया॥१४९॥

चौरेन्द्रिय के नाम–१ अंधिका, २ पोतिका, ३ मच्छर, ४ डांस, ५ भ्रमर, ६ कीड़े, ७ पंतग, ८ ढिंकण, ९ कुकगे, १० सीगरीडी, ११ नंदावृत, १२ बिच्छू, १३ गंडोल, १४ भींगारी, १५ बीरली, १६ अक्षीवेधक, १७ अच्छीला, १८ मागध, १९ रोड़, २० विचित्र, २१ ऊर्ध्व जनिक, २२ जलकारी, २३ निया, २३ तबका॥१४७-१४९॥

इइ चउरिंदिया एए, णेगहा एवमायओ।
लोगस्स एगदेसम्मि ते सव्वे परिकित्तिया॥१५०॥

इत्यादि बहुत प्रकार के चौरेन्द्रिय हैं। २ क्षेत्र से चौरेन्द्रिय लोक के एक देश में है। परंतु सब लोक में नहीं है॥१५०॥

संतइं पप्पऽणाईया, अपज्जवसिया वि य।
ठिइं पडुच्च साईया सपज्जवसिय वि य॥१५१॥

काल से ४ भेद–चौरेन्द्रिय की सदैव आस्ति आश्रिय आदि और अन्त दोनों नहीं है। और उत्पन्न च्यवनआश्रिय आदि अन्त दोनों ही है॥१५१॥

छच्चेव य मासा ऊ उक्कोसेण वियाहिया।
चउरिंदियकाउठिई, तं कायं तु अमुंचओ॥१५२॥

चौरेन्द्रिय की भव स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त उत्कृष्ट छः महिने की॥१५२॥

सखिज्जकालमुक्कोसं, अंतोमुहुत्तं जहन्नयं।
चउरिंदियजीवाणं अंतरेयं वियाहिय॥१५३॥

चौरेन्द्रिय की काया स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त उत्कृष्ट संख्यात काल तक॥१५३॥

अणंतकालमुक्कोसं, अंतोमुहुत्तं जहन्नयं।
विजठम्मि सए काए, अंतरं च विचाहियं॥१५४॥

चौरेन्द्रिय मर कर पुनः चौरेन्द्रिय होवे उसका अंतर जघन्य अंतर्मुहूर्त का, उत्कृष्ट अनंत काल का॥१५४॥

एएसिं वण्णओ चेव, गंधवो रसफांसओ।
संठाणादेसओ वा वि विहाणाइं सहस्ससो॥१५५॥

४ भाव चौरेन्द्रिय के ५ वर्ण, २ गंध, ५ रस, ८ स्पर्श, ५ संस्थान आश्रिय हजारों भेद होते हैं। इति चौरेन्द्रिय॥१५५॥

पंचिंदिया उ जे जीवा चउव्विहा ते वियाहिया।
नेरइया तिरिक्खा य मणुया देवा य आहिया॥१५६॥

अब पंचेन्द्रिय के भेद कहते हैं–पंचेन्द्रिय चार प्रकार के कहे हैं–१ नारकी, २ तिर्यंच, ३ मनुष्य और ४ देवता॥१५६॥

नेरइया सत्तविहा पुढवीसू सत्तसू भवे।
रयणाभ सक्कराभा बालुयाभा य आहिया॥१५७॥
पंकाभा धूमाभा तमा तमतमा तहा।
इइ नेरइया एए सत्तहा परिकित्तिया॥१५८॥

नारकी के द्रव्य से ७ भेद–१ रत्न प्रभा, २ शर्कर प्रभा, ३ बालुप्रभा, ४ पंक प्रभा, ५ धूम्रप्रभा, ६ तमप्रभा, ७ तमतमा प्रभा, यह नरक के ७ प्रकार कहे॥१५७-१५८॥

लोगस्स एगदेसम्मि ते सव्वे उ वियाहिया।
एत्तो कालविभागं तु तेसिं वोच्छं चउव्विहं॥१५९॥

क्षेत्र से नरक लोक के एक देश में है, परन्तु सर्व स्थान में नहीं है। ३ काल से ४ भेद कहे हैं॥१५९॥

संतइं पप्पऽणाईया अपज्जवसिया वि य।
ठिइं पडुच्च साईया सपज्जवसिया वि य॥१६०॥

नारकी की आस्ति आश्रिय अनादी अनंत है। और उत्पन्न मृत्यु आश्रिय आदि सहित अंत सहित है॥१६०॥

सागरोवममेगं तु उक्कोसेण वियाहिया।
पढमाए, जहन्नेणं दसवाससहस्सिया॥१६१॥

नरक की भव स्थिति रत्नप्रभा में जघन्य दश हजार वर्ष की उत्कृष्ट एक सागर की॥१६१॥

तिण्णेव सागरा ऊ, उक्कोसेण वियाहिया।
दोच्चाए, जहन्नेणं एगं तू सागरोवमं॥१६२॥

शर्कर प्रभा में जघन्य एक सागर उत्कृष्ट तीन सागर की॥१६२॥

सत्तेव सागरा ऊ, उक्कोसेण वियाहिया।
तइयाए, जहन्नेणं तिण्णेव सागरोवमा॥१६३॥

बालु प्रभा की जघन्य तीन सागर उत्कृष्ट सात सागर की॥१६३॥

दस सागरोवमा ऊ, उक्कोसेण वियाहिया।
चउत्थीए, जहन्नेणं सत्तवे उ सागरोवमा॥१६४॥

पंक प्रभा की, जघन्य सात सागर की उत्कृष्ट, दश सागर की॥१६४॥

सत्तरस सागरा ऊ, उक्कोसेण वियाहिया।
पंचमाए, जहन्नेणं दस चेव उ सागरोवमा॥१६५॥

धूम्र प्रभा की जघन्य दश सागर की, उत्कृष्ट सतरा सागर की॥१६५॥

बावीस सागरा ऊ, उक्कोसेण वियाहिया।
छट्ठीए जहन्नेणं सत्तरस सागरोवमा॥१६६॥

तम प्रभा की जघन्य सतरा सागर उत्कृष्ट बाइस सागर की॥१६६॥

तेत्तीस सागरा ऊ, उक्कोसेण वियाहिया।
सत्तमाए, जहन्नेणं बीवीसं सागरोवमा॥१६७॥

तपतमा प्रभा की करे जघन्य बाईस सागर की और उत्कृष्ट तेंतीस सागर की॥१६७॥

जा चेव य आउठिई नेरइयाणं वियाहिया।
सा तेसिं कायठिई जहन्नुक्कोसिया भवे॥१६८॥

नारकी की काया स्थिति जो नारकी की भवस्थिति कहीं वहीं सातों नरक की कायास्थिति जानना, अर्थात् नारकी का जीव मरकर पुनः नरक में उत्पन्न नहीं होता है। जिससे नारकी का एक ही भव होता है॥१६८॥

अणंतकालमुक्कोसं, अंतोमुहुत्तं जहन्नयं।
विजढम्मि सए काए नेरइयाणं तु अंतरं॥१६९॥

नरक का जीव मरकर पुनः नरक में उत्पन्न होवे, जगन्य अन्तर, अन्तर मुहूर्तायु तिर्यंच का भव कर पुनः नरक में उत्पन्न होवे, उत्कृष्ट अनंत काल का॥१६९॥

एएसिं वण्णओ चेव, गंधओ रस-फासओ।
संठाणादेसओ वा वि विहाणाइं सहस्ससो॥१७०॥

४ भाव से नरक में ५ वर्ण, २ गंध, ५ रस, ८ स्पर्श, ५ संस्थान की अपेक्षा से नारकी के हजारों भेद होते हैं॥१७०॥

पंचिंदियतिरिक्खा ओ दुविहा ते वियाहिया।
सम्मुच्छिमतिरिक्खा ऊ गब्भवक्कंतिया तहा॥१७१॥

तिर्यंच पंचेन्द्रिय का कहते हैं–पंचेन्द्रिय तिर्यंच के दो प्रकार कहे हैं–समुर्च्छिम तिर्यंच और गर्भेज तिर्यंच पंचेन्द्रिय॥१७१॥

दुविहा ते भवे तिविहा जलयरा थलयरा तहा।
नहयरा य बोद्धव्वा तेसिं भेए सुणेह मे॥१७२॥

उक्त दोनों प्रकार के जीव के अलग-अलग तीन २ भेद कहे हैं। तद्यथा–१ जलचर पानी में चलने वाले, २ स्थलचर–जमीन पर चलने वाले, और ३ खेचर आकाश में उड़ने वाले॥१७२॥

मच्छा य कच्छभा य गाहा य मगरा तहा।
सुंसुमारा य बोद्धव्वा पंचहा जलयराऽहिया॥१७३॥

जलचर के दव्य से–१ मच्छ, २ कच्छवे, ३ गाह-तांतीये मगर, ४ मगरमच्छ और ५ सुसमार होत पांच भेद कहे हैं॥१७३॥

लोएगदेसे ते सव्वे, न सव्वत्थ वियाहिया।
एत्तो कालविभागं तु तेसिं वोच्छं चउव्विहं॥१७४॥

अब पंचेन्द्रिय जलचर तिर्यंच पंचेन्द्रिय लोक के एक देश में है परन्तु संपूर्ण लोक में नहीं है। मनुष्य और ४ देवर के ४ भेद॥१७४॥

सतइं पप्पऽणाईया अपज्जवसिया वि य।
ठिइं पडुच्च साईया सपज्जवसिया वि य॥१७५॥

जलचर जीव की सदैव आस्ति आश्रिय अनादि अनंत है और उत्पन्न मृत्यु आश्रिय आदि सहित तथ अन्त सहित हैं॥१७५॥

एगा य पुव्वकोडी ओ उक्कोसेण वियाहिया।
आउठिई जलयराणं, अंतोमुहुत्तं जहन्निया॥१७६॥

जलचर की भवस्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त उत्कृष्ट पूर्व कोटी वर्ष की॥१७६॥

पुव्वकोडीपुहत्तं तु उक्कोसेण वियाहिया।
कायठिई जलयराणं, अंतोमुहुत्तं जहन्नयं॥१७७॥

जलचर की कायास्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त उत्कृष्ट पृथक्त्व (दो से नव तक) पूर्व कोटी वर्ष की॥१७७॥

अणंतकालमुक्कोसं, अंतोमुहुत्तं जहन्नयं।
विजढम्मि सए कए जलयराणं तु अंतरं॥१७८॥

जलचर मरकर पुनः जलचर होवे उसका अंतर जघन्य अंतर्मुहूर्त का उत्कृष्ट अनंत काल का॥१७८॥

एएसिं वण्णओ चेव गंधओ रस-फासओ।
संठाणादेसओ वा वि, विहाणाइं सहस्ससो॥१७९॥

४ भाव आश्रिय यह जलचर के ५ वर्ण से, २ गंध से, ५ रस से , ८ स्पर्श, ५ संस्थान से हजारों भेद होते हैं। इति जलचर॥१७९॥

चउप्पया य परिसप्पा, दुविहा थलयरा भवे।
चउप्पया चउविहा ते मे कित्तयओ सुण॥१८०॥

स्थलचर तिर्यंच पंचेन्द्रिय के दो भेद कहते हैं–१ चतुष्पद और २ परिसर्प इसमें चतुष्पद के चार भेद कहे हैं॥१८०॥

एगखुरा दुखुरा चेव गंडीपय सणप्पया।
हयमाई गोणमाई गयमाई सीहमाइणो॥१८१॥

तद्यथा–१ एक खुरा घोड़ा गद्धादि, २ दो खुरा गौ महिषादि, ३. गंडीपद गोल पांव वाले हाथी ऊंटादि और ४ सन्नापदा पंजे नख वाले, सिंह, कुत्ता, बिल्ली आदि॥१८१॥

भुओरगपरिसप्पा य परिसप्पा दुविहा भवे।
गोहाई अहिमाईय एक्केक्का णेगहा भवे॥१८२॥

परिसर्प के दो भेद कहे हैं–१ उरपरीसर्प और २ भुजपरी सर्प सर्पादि पेट रगड़ वाल उरपरिसर्प के अनेक भेद हैं वैसे ही नकुलादि भुज पर भुजा के जोर से च भी अनेक भेद हैं॥१८२॥

तिण्णेव अहोरत्ता, उक्कोसेण वियाहिया।
आउठिती तेऊणं, अंतोमुहुत्त जहन्निया॥११४॥

२ तेजस्काय की भव स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त की उत्कृष्ट तीन अहोरात्रि की॥११४॥

असंखकालमुक्कोसं, अंतोमुहत्तं जहन्निय।
कायठिई तेऊणं तं काय तु अमुंचओ॥११५॥

तेजस्काय की कायास्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त की उत्कृष्ट असंख्यात काल की॥११५॥

अणंतकालमुक्कोसं, अंतोमुहुत्तं जहन्नयं।
विजढम्मि सए काए, तेउजीवाण अंतरं॥११६॥

तेजस्काय का जीव मर पुनः तेजस्काय में उत्पन्न हो जिसका अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त का उत्कृष्ट अनंत काल का॥११६॥

एएसिं वण्णओ चेव गंधओ रस-फासओ।
संठाणादेसओ वा वि विहाणाइं सहस्ससो॥११७॥

४ भाव से तेजस्काय के ५ वर्ण की, २ गंध की, ५ रस की, ८ स्पर्श की और ५ संस्थान की अपेक्षा कर हजारों भेद होते हैं। इति तेजस्काय॥११७॥

दुविहा वाउजीवा उ, सुहुमा बायरा तहा।
पज्जत्तमपज्जत्ता, एवमेए दुहा पुणो॥११८॥

अब वायुकाया का कहते हैं–वायुकाया के दो भेद कहे हैं–सूक्ष्म और बादर इसमें सूक्ष्म के दो भेद अपर्याप्त और पर्याप्त वैसे ही बादर के भी दो भेद अपर्याप्त और पर्याप्त॥११८॥

बायरा जे उ पज्जत्ता, पंचहा ते पकित्तिया।
उक्कलिया-मंडलिया-घण-गुंजा-सुद्धवाया य॥११९॥
संवट्टगवाए य णेगहा एवमायओ।
एगविहमणाणत्ता, सुहुमा तत्थ वियाहिया॥१२०॥

बादर पर्याप्त वायुकाय के ५ भेद कहे हैं–१ उत्कालिक वायु (ठेर-२ कर चले) २ मंडलिक वायु चक्कर खावे, ३ घनवायु जो जमीन के नीचे ४ गुंजवायु-गुंजारव करे सो, ५ शुद्ध वायु ६ संवर्तक वायु इत्यादि वायु काया के बहुत प्रकार हैं और सूक्ष्म वायुकाया का एक ही प्रकार कहा है॥११९-१२०॥

सुहुमा सव्वलोगम्मि, लोगदेसे य बायरा।
एत्तो कालविभागं तु तेसिं वुच्छं चउव्विहं॥१२१॥

क्षेत्र से सूक्ष्म वायुकाया सर्वलोक में व्यापक है। और बादर वायुकाया लोक के देश विभाग में है। ३ काल से वायुकाया के चार प्रकार हैं॥१२१॥

संतइं पप्पऽणाईया अपज्जवसिया वि य।
ठिइं पडुच्च साईया सपज्जवसिया वि य॥१९१॥

खेचर की सदैव आस्ति की अपेक्ष आदि अंत रहित है। उत्पन्न मृत्यु आश्रिय आदि अंत सहित हैं॥१९१॥

पलिओवमस्स भागो असंखेज्जइमो भवे।
आउठिई खहयराणं, अंतोमुहुत्तं जहन्निया॥१९२॥

खेचर की भव स्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त की उत्कृष्ट पल्योपम के असंख्यातवे भाग की॥१९२॥

असंखभागो पलियस्स उक्कोसेण उ साहिओ।
पुव्वकोडिपुहत्तेणं, अंतोमुहुत्तं जहन्निया॥१९३॥

खेचर की काया स्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त की उत्कृष्ट एक पल्योपम के असंरप्यातवे भाग ऊपर क्रोड पूर्व पृथक्त्व की॥१९३॥

कायठिई खहयराणं; अंतरं तेसिमं भवे।
अणंतकालमुक्कोसं, अंतोमुहुत्तं जहन्नयं॥१९४॥

खेचर मरकर पुनः खेचर होवे जिसका अंतर जघन्य अंतर्मुहूर्त उत्कृष्ट अनंत काल का॥१९४॥

एएसिं वण्णओ चेव गंधओ रस-फासओ।
संठाणादेसओ वा वि विहाणाइं सहस्ससो॥१९५॥

४ भाव से खेचर के ५ वर्ण, २ गंध, ५ रस, ८ स्पर्श, ५ संस्थान की अपेक्षा हजारों भेद होते हैं। इति खेचर॥१९५॥

मणुया दुविहभेया उ ते मे कित्तयओ सुण।
संमुच्छिमा य मणुया गब्भवक्कंतिया तहा॥१९६॥

मनुष्य दो प्रकार के कहे हैं–१ संमूर्च्छिम मनुष्य और २ गर्भेज मनुष्य॥१९६॥

गब्भवक्कंतिया जे उ, तिविहा ते वियाहिया।
कम्म-कम्मभूमा य अंतरद्दीवया तहा॥१९७॥

इस में गर्भ से उत्पन्न होने वाले मनुष्य तीन तरह के कहे हैं–तद्यथा १ कर्मभूमि जो असी मसी कृषि तीनों प्रकार से अपनी उपजीविका करे, २ अकर्मभूमि उक्त तीनों कर्म नहीं करे और कल्प वृक्षों से जिनकी इच्छा पूरी हो। ३ अंतर द्वीप जो समुद्र में द्वीपों पर युगल मनुष्य रहते हैं॥१९७॥

पन्नरस-तीसइविहा भेया य अट्ठवीसइं।
संखा उ कमसो तेसिं इइ एसा वियाहिया॥१९८॥

इसमें कर्मभूमि के पन्दरा भेद एक भरत एक ऐरावत एक महा विदेह। यह तीन क्षेत्र ज *में दो भरत, दो ऐरावत दो महा विदेह यह ६ क्षेत्र घात की खण्ड में और यही ६ क्षेत्र*

द्वीप में यों ५ भरत, ५ ऐरावत और ५ महा विदेह ऐसे १५ कर्मभूमि के क्षेत्र जानना। एक हेमवत एक हेरण्यवत, एक हरीवास एक रम्यकवास, एक देवगुरु और एक उत्तर कुरु यह ६ क्षेत्र जम्बूद्वीप में दो दो धातकी खड़ी में १२ क्षेत्र और पुष्करार्ध द्वीप में भी १२ क्षेत्र यों सब तीस अकर्मभूमि के क्षेत्र जानना। जम्बूद्वीप में भरत क्षेत्र की मर्यादा कर्ता चुल्लहिववंत के पर्वत पूर्व पश्चिम के अन्त में दो दो दाढ़ों दोनों पर्वत की ४ दाढ़ों एकेक दाढ़ों पर सात-२ द्वीप आठों दाढ़ो के ७×४=२८ अंतर द्वीप हुए॥१९८॥

संमुच्छिमाण एसेव भेओ होइ आहिओ।
लोगस्स एगदेसम्मि ते सव्वे वि वियाहिया॥१९९॥

संमूर्च्छिम मनुष्य जो मनुष्यों के लघु नीत बड़ी नीत आदि चौदह स्थान में उत्पन्न होवे उन का एक ही भेद है। २ क्षेत्र से मनुष्य लोक के एक देश में रहे हैं, परन्तु सब लोक में नहीं हैं॥१९९॥

सतइं पप्पऽणाईया अपज्जवसिया वि य।
ठिइं पडुच्च साईया सपज्जवसिया वि य॥२००॥

काल से मनुष्यों के ४ प्रकार १ मनुष्यों की सदेव आस्ति है इस अपेक्षा आदि अन्त रहित हैं, और उत्पत्ति मृत्यु आश्रिय आदि अन्त सहित है॥२००॥

पलिओवमाइं तिण्णि उक्कोसेण वियाहिया।
आउठिई मणुयाणं, अंतोमुहुत्तं जहन्निया॥२०१॥

मनुष्य की भव स्थिति जघन्य अन्तर्मूहूर्त की उत्कृष्ट तीन पल्योपम तथा पल्य का असंख्यातवा भाग अर्थात् कर्मभूमि मनुष्य के पांच भरत पांच ऐरावत में उत्सपिंणी के पहला आरा बैठते तीन पल्योपम की उतरते दो पल्योपम की दूसरा आरा बैठते दो पल्योपम उतरते एक पल्योपम तीसरा आरा बैठते एक पल्योपम उतरते क्रोड पूर्व, चौथा आरा बैठते क्रोड पूर्व उतरते सौ वर्ष कुछ अधिक, पांचवां आरा बैठते सौ वर्ष कुछ अधिक उतरते बीस वर्ष, छठा आरा बैठते २० वर्ष उतरते सोलह वर्ष, इस ही प्रकार अससर्पिणी छहों आरे में चड़ती स्थिति जानंना; पांचों महा विदेह क्षेत्र में जघन्य अंतर्मुहूर्त उत्कृष्ट क्रोड पूर्व की, अकर्म भूमि के तीस क्षेत्र में पांच हेमवत पांच एरणवत में एक पल्योपम, पांच हरीवास पांच रम्यकवास में दो पल्योपम, पांच देवकुरु पांच उत्तर कुरु में तीन पल्योपम की, छप्पन्न अंतर द्वीप में पल्योपम के असंख्यातवे भाग की और सब संमूर्च्छिम मनुष्य की जघन्य उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त की॥२०१॥

पलिओवमाइं तिण्णि उ उक्कोसेण विहाहिया।
पुव्वकोडिपुहत्तेणं, अंतोमुहुत्तं जहन्निया॥२०२॥

मनुष्यों की काया स्थिति जघन्य अन्तमुहूर्त की उत्कृष्ट तीन पल्योपम पृथक्त्व कोटी पूर्व अधिक

कि क्रमशः सात भव कर्मभूमि मनुष्य के कर एक भव अकर्मभूमि मनुष्य का फिर नियमा अब पच्चे॥२०२॥

मनुष्य और ४ ५

कायठिई मणुयाणं; अंतरं तेसिमं भवे।
अणंतकालमुक्कोसं अंतोमुहुत्तं जहन्नयं॥२०३॥

यह काया स्थिति कहीं अब मनुष्य मर कर पुनः मनुष्य होवे जिसके मध्य का अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त का उत्कृष्ट अनंत काल का॥२०३॥

एएसिं वण्णओ चेव गंधओ रस-फासओ।
संठाणादेसओ वा वि विहाणाइं सहस्ससो॥२०४॥

४ भाव से मनुष्य के ५ वर्ण, २ गंध, ५ रस, ८ स्पर्श, ५ संस्थान आश्रिय हजारों भेद होते हैं। इति मनुष्यधिकार॥२०४॥

देवा चउव्विहा वुत्ता, ते मे कित्तयओ सुण।
भोमिज्ज वाणमंतरा जोइस वेमाणिया तहा॥२०५॥

अब देवता के भेद कहते हैं–द्रव्य से देवता के चार भेद–१ भवनपति, २ वाणव्यन्तर, ३ ज्योतिषी और ४ वैमानिक॥२०५॥

दसहा उ भवणवासी, अट्ठाहा वणचारिणो।
पंचविहा जोइसिया, दुविहा वेमाणिया तहा॥२०६॥

इनमें भुवनपति के १० भेद, वाणव्यन्तर के ८ भेद, ज्योतिषी के ५ भेद और वैमानिक के दो भेद॥२०६॥

असुरा नाग सुवण्णा विज्जू अग्गी य आहिया।
दीवोदहि दिसा वाया थणिया भवणवासिणो॥२०७॥

१ असुरकुमार, २ नाग कमार, ३ सुवर्ण कुमार, ४ विद्युतकुमार, ५ अग्नि कुमार, ६ द्वीप कुमार, ७ उदधी कुमार, ८ दिशा कुमार, ९ वायु कुमार, और १० स्तनीत कुमार। यह भुवन पति के दस भेद जानना॥२०७॥

पिसाय भूय जक्खा य रक्खसा किन्नरा य किंपुरिसा।
महोरगा य गंधव्वा अट्ठविहा वाणमंतरा॥२०८॥

१ पिशाच, २ भूत, ३ यक्ष, ४ राक्षस, ५ किन्नर, ६ किंपुरुष, ७ महोरग और ८ गन्धर्व यह वाणव्यन्तर के ८ भेद॥२०८॥

चंदा सूरा य नक्खत्ता गहा, तारागणा तहा।
दिसाविचारिणो चेव पंचहा जोइसालया॥२०९॥

१ चन्द्रमा, २ सूर्य, ३ ग्रह, ४ नक्षत्र, और ५ तारा। यह पांच ज्योतिषी के भेद जानना॥२०९॥

वेमाणिया उ जे देवा दुविहा ते वियाहिया।
कप्पोवगा य बोद्धव्वा कप्पाईया तहेव य॥२१०॥

१ कल्पोत्पन्न और २ कल्पातीत। यह वैमानिक के दो भेद कहे॥२१०॥

कप्पोवगा बारसहा–सोहम्मीसाणगा तहा।
सणंकुमार माहिंदा बंभलोगा य लतंगा॥२११॥
महासुक्का सहस्सारा, आणया पाणया तहा।
आरणा अच्चुया चेव इइ कप्पोवगा सुरा॥२१२॥

इनमें कल्पोत्पन्न के १२ भेद–१ सौधर्म देवलोक, २ ईशान देवलोक, ३ सनत्कुमार देवलोक, ४ माहेन्द्र देवलोक, ५ ब्रह्म देवलोक, ६ लांतक देवलोक, ७ महाशुक्र देवलोक, ८ सहस्त्रार देवलोक, ९ आणत देवलोक, १० प्राणत देवलोक, ११ आरण देवलोक, और १२ अच्युत देवलोक। इन १२ स्थान में जो देव उत्पन्न होते हैं वे कल्पोत्पन्न जानना॥२११-२१२॥

कप्पाईया उ जे देवा दुविहा ते वियाहिया।
गेवेज्जाऽणुत्तरा चेव, गेविज्जा नवविहा तहिं॥११३॥

और जो कल्पातीत देवता हैं उनके दो भेद तद्यथा १ ग्रैवेयकवासी, और २ अनुत्तर विमानवासी। इसमें ग्रवेयकवासी देव नव प्रकार के कहे हैं॥२१३॥

हेट्ठिमाहेट्ठिमा चेव हेट्ठिमामज्झिमा तहा।
हेट्ठिमाउवरिमा चेव, मज्झिमाहेट्ठिमा तहा॥२१४॥
मज्झिमामज्झिमा चेव मज्झिमाउवरिमा तहा।
उवरिमाहेट्ठिमा चेव उवरिमामज्झिमा तहा॥२१५॥
उवरिमाउवरिमा चेव इय गेविज्जगा सुरा।
विजया वेजयंता य जयंता अपराजिया॥२१६॥
सव्वत्थसिद्धगा चेव, पंचहाऽणुत्तरा सुरा।
इय वेमाणिया एए णेगहा एवमायओ॥२१७॥

१ नीचे की नीचली (भद्दे), २ नीचे की बीच की, (सुभद्दे) ३ नीचे की ऊपर की, (सुजात) ४ मध्य की निचली (सुमानस) ५ मध्य की बची की (सुदर्शन), ६ मध्य की ऊपर की (प्रियदर्शन) ७. ऊपर की निचली (अमोघ), ८. ऊपर की मध्य की (प्रतिभद्र) और ९ ऊपर की ऊपरली (जसोधर) यह नव ग्रैवेयक स्थान के देवता जानना। १ विषय, २ वैजयंत, ३ शयंत, ४ अपराजित और सर्वार्थ सिद्ध। यह पांच अनुत्तर विमानवासी देव जानना। इन प्रतरादि विभाग होकर वैमानिक देव के अनेक भेद होते हैं॥२१४-२१७॥

लोगस्स एगदेसम्मि ते सव्वे वियाहिया।
इत्तो कालविभागं तु तेसिं वुच्छं चउव्विह॥२१८॥

अब पूर्वोक्त देवता लोक के एक देश विभाग में हैं, परन्तु संपूर्ण लोक में नहीं है और इनके मनुष्य और ४ प्रकार भेद होते हैं॥२१८॥

संतइं पप्पऽणाईया अपज्जवसिया वि य।
ठिइं पडुच्च साईया सपज्जवसिया वि य॥२१९॥

देवताओं की सदैवकाल आस्ति होने से अनादि अनंत हैं और प्रत्येक देवताओं के उत्पन्न चवन आश्रिय सादि सान्त हैं॥२१९॥

साहीयं सागरं एक्कं, उक्कोसेण ठिई भवे।
भोमेज्जाणं, जहन्नेणं दसवाससहस्सिया॥२२०॥

भुवनपति में असुरकुमार देवता की जघन्य दस हजार वर्ष की उत्कृष्ट एक सागर से कुछ अधिक स्थिति है॥२२०॥

पलिओवम दोऊणा, उक्कोसेण वियाहिया।
असुरेंद वज्जेताण, जहन्ता दस हिरसग्गा॥२२१॥

असुर कुमार छोड़कर बाकी के नव जाति के भुवनपति देवता की जघन्य दस हजार वर्ष की उत्कृष्ट कुछ कम दो पल्योपम की स्थिति है। (भुवनपति के असुरकुमार जाति के देवता के दो इन्द्र हैं १ दक्षिण दिशा के चमर इन्द्र और २ उत्तर दिशा के बल इन्द्र। इसमें चमर इन्द्र की उत्कृष्ट एक सागर की, चमर इन्द्र की देवी की साढी तीन पल्य की। दक्षिण के नाग कुमारादि नव जाति के देव की देढ(१॥) पल्य की और इनकी देवी की पौन (॥) पल्य की। उत्तर के बलेन्द्र की उत्कृष्ट स्थिति कुछ अधिक एक सागर की जिनकी देवी की साढी चार पल्योपम की, उत्तर के नाग कुमारादि नव जाति के देवता की कुछ कम दो पल्योपम की। उसकी देवी की कुछ कम एक पल्योपम की। सब भुवनपति देवता देवी की जघन्य स्थिति दस हजार वर्ष की जानना॥२२१॥

पलिओवममेगं तु उक्कोसेण ठिई भवे।
वंतराणं, जहन्नेणं दसवाससहस्सिया॥२२२॥

वाणव्यन्तर देवता की जघन्य दस हजार वर्ष की उत्कृष्ट एक पल्योपम की (वाणव्यन्तर देवता की देवी की जघन्य दस हजार वर्ष की उत्कृष्ट आधा पल्योपम की)॥२२२॥

पलिओवमं तु एगं आसलक्खेण साहियं।
पलिओवमट्ठभागो जोइसेसु जहन्निया॥२२३॥

ज्योतिषी देवता की जघन्य पल्योपम का आठवां भाग। उत्कृष्ट एक पल्योपम एक लाख वर्ष की (चन्दविमानवासी देव की जघन्य पाव पल्योपम की उत्कृष्ट एक पल्योपम एक लाख वर्ष की। जिनकी देवी की जघन्य पाव पल्य की उत्कृष्ट आधी पल्य पच्चास हजार वर्ष की, सूर्य देवता की जघन्य पाव पल्य की उत्कृष्ट एक पल्य एक हजार वर्ष की। जिनकी देवी की जघन्य पल्य की उत्कृष्ट आधी पल्य पांच सौ वर्ष की। ग्रह देवता की जघन्य पाव पल्य की उत्कृष्ट आधी पल्य की। जिनकी देवी की जघन्य पाव पल्य की उत्कृष्ट आधी पल्य की, नक्षत्र देवता की जघन्य पाव पल्य की उत्कृष्ट आधी पल्य की जिनकी देवी की जघन्य पावपल्य उत्कृष्ट पाव

अधिक। तारा देवता की जघन्य पाव पल्य उत्कृष्ट पाव पल्य कुछ अधिक जिनकी देवी की जघन्य पल्य के आठवें भाग उत्कृष्ट पल्योपम के आठवें भाग कुछ अधिक॥२२३॥

दो चेव सागराइं उक्कोसेण वियाहिया।
सोहम्मम्मि, जहन्नेणं एगं तु पलिओवमं॥२२४॥

अब वैमानिक देवताओं की स्थिति कहते हैं–१ सौधर्मा देवलोक निवासी देवताओं की जघन्य एक पल्योपम की उत्कृष्ट दो सागरोपम की॥२२४॥

सागरा साहिया दोण्णि उक्कोसेण वियाहिया।
ईसाणम्मि, जहन्नेणं साहियं पलिओवमं॥२२५॥

ईशान देवलोक में जघन्य एक पल्योपम कुछ अधिक की उत्कृष्ट दो सागरोपम कुछ अधिक॥२२५॥

सागराणि य सत्तेव उक्कोसेण ठिई भवे।
सणकुमारे, जहन्नेणं दुभि ऊ सागरोवमा॥२२६॥

तीसरे सनत्कुमार देवलोक में जघन्य दो सागर की उत्कृष्ट सात सागर की॥२२६॥

साहिया सागरा सत्त उक्कोसेण ठिई भवे।
माहिंदम्मि, जहन्नेणं साहिया दोन्नि सागरा॥२२७॥

चौथे महेन्द्र देवलोक में जघन्य दो सागर कुछ अधिक, उत्कृष्ट सात सागर कुछ अधिक॥२२७॥

दस चेव सागराइं उक्कोसेण ठिई भवे।
बंभलोए, जहन्नेणं सत्त ऊस सागरोवमा॥२२८॥

पांचवे ब्रह्म देवलोक में जघन्य सात सागरोपम की उत्कृष्ट दस सागरोपम की॥२२८॥

चउद्दस सागराइं उक्कोसेण ठिई भवे।
लंतगम्मि, जहन्नेणं दस ऊ सागरोवमा॥२२९॥

छठे लांतक देवलोक में जघन्य दस सागरोपम की उत्कृष्ट चौदा सागरोपम की॥२२९॥

सत्तरस सागराइं उक्कोसेण ठिई भवे।
महासुक्के, जहन्नेणं चउद्दस सागरोवमा॥२३०॥

सातवें महा शुक्र देवलोक में जघन्य चउदा सागरोपम की उत्कृष्ट सतरा सागरोपम की॥२३०॥

अट्ठारस सागराइ उक्कोसेण ठिई भवे।
सहस्सारम्भि, जहन्नेणं सत्तरस सागरोवमा॥२३१॥

आठवें सहस्रार देवलोक में जघन्य सतरा सागरोपम का उत्कृष्ट अठारा सागरोपम की॥२३१॥

र्म देवलोक में परिग्रही देवी की उत्कृष्ट ७ पल्योपम की स्थिति है और अपरिग्रही देवी की ५० सागरोपम की स्थिति
अब प ही ईशान देवलोक में उत्कृष्ट परिग्रही देवी की ९ पल्योपम की और अपरिग्रही देवी की पचावन पल्योपम की स्थिति
मनुष्य और ४ घन्य सब की एक पल्योपम की स्थिति जानना। दूसरे देवलोक के ऊपर देवीयों की उत्पत्ति नहीं है।

सागरा अऊणवीसं तु, उक्कोसेण ठिई भवे।
आणयम्मि, जहन्नेणं अट्ठारस सागरोवमा॥२३२॥

नववें आनत देवलोक में जघन्य अठारा सागरोपम उत्कृष्ट उन्नीस सागरोपम॥२३२॥

वीसं तु सागराइं उक्कोसेण ठिई भवे।
पाणयम्मि, जहन्नेणं सागरा अउणवीसई॥२३३॥

दसवें प्राणत देवलोक में जघन्य उन्नीस सागरोपम उत्कृष्ट बीस सागरोपम॥२३३॥

सागरा एक्कबीसं तु उक्कोसेण ठिई भवे।
आरणम्मि, जहन्नेण वीसइं सागरोवमा॥२३४॥

ग्यारहवें आरन देवलोक में जघन्य बीस सागरोपम उत्कृष्ट इक्कीस सागरोपम॥२३४॥

बावीस सागराइं, उक्कोसेण ठिई भवे।
अच्चुयम्मि, जहन्नेणं सागरा एक्कवीसई॥२३५॥

बारहवें अच्युत देवलोक में जघन्य इक्कीस सागरोपम उत्कृष्ट बाईस सागरोपम। यह बारह कल्पोत्पन्न देवों की स्थिति हुई॥२३५॥

तेबीस सागराइं, उक्कोसेण ठिई भवे।
पढमम्मि, जहन्नेणं बावीसं सागरोवमा॥२३६॥

अब ग्रैवेयक के देवों स्थिति कहते हैं–प्रथम ग्रैवेयक की जघन्य बाईस सागर की उत्कृष्ट तेईस सागरोपम की॥२३६॥

चउवीस सागराइं, उक्कोसेण ठिइ भवे।
विइयम्मि, जहन्नेणं तेवीसं सागरोवमा॥२३७॥

दूसरी ग्रैवेयक की जघन्य तेईस सागरोपम की उत्कृष्ट चौवीस सागरोपम की॥२३७॥

पणबीस सागराइं, उक्कोसेण ठिई भवे।
तइयम्मि, जहन्नेणं चउबीसं सागरोवमा॥२३८॥

तीसरी ग्रैवेयक की जघन्य चौवीस सागरोपम की उत्कृष्ट पचीस सागरोपम की॥२३८॥

छब्बीस सागराइं, उक्कोसेण ठिई भवे।
चउत्थम्मि, जहन्नेणं सागरा पणुवीसई॥२३९॥

चौथा ग्रैवेयक की जघन्य पच्चीस सागरोपम की उत्कृष्ट छब्बीस सागरोपम की॥२३९॥

सागरा सत्तवीसं तु उक्कोसेण ठिई भवे।
पंचमम्मि, जहन्नेणं सागरा उ छबीसई॥२४०॥

पांचवें ग्रैवेयक की जघन्य सागरोपम की उत्कृष्ट सतावीस सागरोपम की॥२४०॥

सागरा अट्ठबीसं तु उक्कोसेण ठिई भवे।
छट्टम्मि, जहन्नेणं सागरा सत्तवीसई॥२४१॥

छठी ग्रैवेयक की जघन्य सतावीस सागरोपम उत्कृष्ट अट्ठावीस सागरोपम॥२४

सागरा अउणतीसं तु उक्कोसेण ठिई भवे।
सत्तमम्मि जहण्णेणं सागरा अट्ठवीसई॥२४२॥

सातवीं ग्रैवेयक की जघन्य अटावीस सागरोपम उत्कृष्ट उनतीस सागरोपम॥२४२॥

तीसं तु सागराइ उक्कोसेण ठिई भवे।
अट्ठमम्मि, जहन्नेणं सागरा अउणतीसई॥२४३॥

आठवी ग्रैवेयक की जघन्य उनतीस सागरोपमा उत्कृष्ट तीस सागरोपम॥२४३॥

सागरा एक्कतीसं तु उक्कोसेण ठिई भवे।
नवमम्मि, जहन्नेणं तीसइ सागरोवमा॥२४४॥

नववी ग्रैवेयक की जघन्य तीस सागर की उत्कृष्ट इकतीस सागरोपम की यह ग्रैवेयक की स्थिति कही॥२४४॥

तित्तीस सागराई उक्कोसेण ठिई भवे।
चउसुं पि विजयाईसुं जहन्नेण क्कतीसई॥२४५॥

अब पांच अनुत्तर विमान की–१ विजए, २ वेजयंत, ३ जयंत, और ४ अपराजित इन चारों विमानों की जघन्य इक्कतीस सागरोपम की उत्कृष्ट तैंतीस सागरोपम की॥२४५॥

अजहन्नमणुक्कोसा तत्तीसं सागरोबमा।
महाविमाणसव्वट्ठेठितो एसा वियाहिया॥२४६॥

जा और सर्वार्थ सिद्ध महाविमान के देवता की जघन्य उत्कृष्ट दोनों की एक ही प्रकार की तैंतीस सागरोपम की स्थिति है॥ यह सब देवता की भवस्थिति कही॥२४६॥

चेवउ आउठिई देवाणं तु वियाहिया।
सा तेसिं कायठिई जहन्ननुम्कोसिया भवे॥२४७॥

अब काय स्थिति कहते हैं–जितनी स्थिति देवता के एक भव की कही उतनी ही काय स्थिति जानना, क्योंकि-देवता मरकर पुनः देवता नहीं होता है॥२४७॥

अणंतकालमुक्कोसं, अंतोमुहुत्तं जहन्नयागं।
विजनं मिसए काए देवाणं हुज्ज अंतरं॥२४८॥

देवता च्यवकर पुनः देवतारूप में उत्पन्न होवे जिसका अन्तर जघन्य अन्तरमुहुर्त का (तिर्यंच का भवकर उत्पन्न हो जावे) और उत्कृष्ट अनन्तकाल का वनस्पति आश्रिय॥२४८॥

अणंत काल मुक्कोसं, वास हुपुतं जहन्नगं।
आणयाइण कप्पण, गोविज्जाणं तू अंतरं॥२४९॥

नववें आणत देवलोक में लगाकर नववें ग्रैवेयक के देवता का अन्तर पडे तो जघन्य वर्ष अर्थात् दो वर्ष से नव वर्ष की आयु वाला ही मनुष्य आठवें देवलोक के ऊपर उत्पन्न हैं कम आयु वाला नहीं हो सकता है। और उत्कृष्ट अनंत काल का॥२४९॥

अब पक्का मनुष्य और ४

संखेचेज्ज, सागरुक्कीस, वास पुहुत्तं जहन्निया।
अणुत्त राणय देवाणं, अंतरं तु वियाहिया॥२५०॥

चारों अनुत्तर विमान के देवता का अन्तर पड़े तो जघन्य पृथक्त्व वर्ष का उत्कृष्ट संख्यात सागरोपम का क्योंकि अनुत्तर विमान के देवता नरक तिर्यंच में कदापि नहीं जाते हैं। केवल मनुष्य व देव के संख्याते भवकर मोक्ष जाते है और सर्वार्थ सिद्ध विमानवासी देव का तो अन्तर पड़ता ही नहीं क्योंकि वे सभी एकावतारी होते हैं। अर्थात् स्वार्थसिद्ध विमान से च्यवकर से चक्कर मनुष्य होकर मोक्ष ही जाते हैं॥२५०॥

एएसिं वण्णओ चेव गंधओ रस-फासओ।
सठाणादेसओ वा वि विहाणाइं सहास्सओ॥२५१॥

४ भाव से देवता के ५ वर्ण, २ गंध, ५ रस, ८ स्पर्श, ५ संस्थान आश्रिय हजारों भेद होते हैं। इति देतवाधिकार॥२५१॥

संसारत्था य सिद्धा य इति अजीवा वियाहिया।
रूविणो चेवऽरूवी य अजीवा दुविहा वि य॥२५२॥

अहो शिष्य! श्री तीर्थंकर भगवंत ने रूपी अजीव तथा अरूपी अजीव का और सिद्ध के जीव का तथा संसारी जीव का स्वरूप विस्तारपूर्वक उक्त प्रकार कहा है॥२५२॥

इय जीवमजीवे य सोच्चा सद्दहिऊण य।
सव्वनयाण मणुमए रमेज्जा संजमे मुणी॥२५३॥

अहो शिष्य! गुरु आदि के समीप उक्त कहे जीवादि का स्वरूप श्रवण कर सर्व(सातों) नय प्रमाणादि युक्ति कर यथार्थ श्रद्धान कर। अर्थात् ज्ञानी बनकर फिर तप संयम में अपनी आत्मा को रमन करावे॥२५३॥

तओ बहूणि वासाणि सामण्णमणुपालिया।
इमेण कमजोएण अप्पाणं संलिहे मुणी॥२५४॥

तब फिर तप संयम में आत्मा का रमन करता हुआ बहुत वर्ष पर्यंत संयम का पालन कर। आगे कहूंगा उस उपाय कर द्रव्य से शरीर को और भाव से कषाय को दुर्बल बनावे॥२५४॥

बारसेव उ वासाइं संलेहुक्कोसिया भवे।
संवच्छर मज्झिमिया छम्मासे य ज हन्निया॥२५५॥

शरीर और कषाय को दुर्बल बनावे उसे संलेषणा कहते हैं वह तीन प्रकार से करे। जघन्य ६ महिने की, मध्यम एक वर्ष की, और उत्कृष्ट १२ वर्ष की॥२५५॥

पढमे वासचउक्कम्मि, विगईनिज्जूहणं करे।
बिइए वासचउक्कम्मि विचित्तं तु तवं चरे॥२५६॥

अब बारह वर्ष की संलेषणा किस प्रकार करे वह कहते हैं–प्रथम चार वर्ष प दही धृत तेल मिठाई इन पांचों विगय को भोगवने का त्याग करे फिर चार वर्ष प छठ भक्तादि विविध प्रकार का तप करे॥२५६॥

एगंतरमायामं कट्टु संवच्छरे दुवे।
तओ संवच्छरऽद्धं तु नाऽइविगिट्ठं तवं चरे॥२५७॥
तओ संवच्छरऽद्धं तु विगिट्ठं तु तवं चरे।
परिमित्तं चेव आयामं तम्मि संवच्छरे करे॥२५८॥

फिर दो वर्ष पर्यंत एकांतर उपवास करे और पारणे में आयम्बिल करे। (यह १० वर्ष हुए) फिर छः महिने पर्यंत षष्टम् अष्टमादि किसी भी प्रकार का तप नहीं करे। फिर छः महीने पर्यंत षष्टम अष्टमादि दुक्कर तप का आचरण करे। पारने में आयम्बिलादि तप करे॥२५७-२५८॥

कोडी सहियमायामं कट्टु संवच्छरे मुणी।
मासऽद्धमासिएणं आहारेणं तवं चरे॥२५९॥

फिर बारहवें वर्ष में कोडी सहित तप करे अर्थात् मास खमन आधा मास खमन आदि तप करे। और पारने में आयम्बिल करे। फिर आहार का त्याग कर अनशन तप करे (जो आयुष्य अन्त नजदीक न दिखते मास आधा मास खमनादि तप करता रहे) यह बारह वर्ष का संलेषणा तप कहा॥२५९॥

कंदप्पमाभिओगं च किब्बिसियं मोहमासुरत्तं च।
एयाउ दोग्गईओ मरणम्मि विराहिया होंति॥२६०॥

अब जो साधु होकर जन्म व संयम से भ्रष्ट होते हैं उनकी गति का कथन करते हैं–१ जो साधु हँसी मस्करी करता है वह कंदर्पिया (गायन नाटक करने वाला) देवता होता है। २ जो साधु मंत्रादि प्रयुक्त है वह अभियोगी (नौकर) देवता होता है। ३ जो साधु आचार्य उपाध्यायादि वयोवृद्ध की असातना करे वह किल्विषी (नीच जाति का) देवता होवे। ४ जो साधु अज्ञान कष्ट करे तथा बहुत काल तक रोष द्वेष भाव रखे वह असुर कुमार (परमाधर्मी) जाति का देवता होवे। इन चार कर्मों को बहुत काल तक करने वाले व मृत्यु के समय यह भाव प्राप्त होने वाले साधु संयम के विराधक होकर उक्त देवता की दुर्गति में देवतारूप में उत्पन्न होते हैं॥२६०॥

मिच्छादंसणरत्ता सनियाणा हु हिंसगा।
इय जे मरंति जीवा तेसिं पुण दुल्लहा बोही॥२६१॥

मिथ्यात्व से हानि–जो जीव मिथ्यात्व दर्शन (कुमत) में रक्त होते हैं, करणी कर उसका नियाना (फल की वांछा) करते हैं, कृष्ण लेश्या मय अशुद्ध परिणाम के धारक होते हैं। उन जीवों को आगामिक काल में बोध बीज सम्यक्त्व की प्राप्ति होनी दुर्लभ होती है॥२६१॥

सम्मद्दंसणरत्ता, अनियाणा सुक्कलेसमोगाढा।
इय जे मरंति जीवा सुलहा तेसिं भवे बोही॥२६२॥

सम्यक्त्व का फल–जो जिनेश्वर भगवंत के वचनों में अनुरक्त हो सिद्धान्त कथनानुसार करणी करने वाला हो, मिथ्यात्व मैल रहित हो, राग द्वेष क्लेश का विध्वंशक हो यह जीव स्वल्प अब पर[illegible] अर्थात् थोड़े काल में मोक्ष प्राप्त करता है॥२६२॥
मनुष्य और ४ [illegible]

मिच्छद्दंसणरत्ता सनियाणा किण्हलेसमोगाढा।
इय जे मरंति जीवा तेसिं पुण दुल्लहा बोही॥२६३॥

जो जीव जिनेश्वर के वचनों को जानता मानता नहीं है वह बेचारे रंक जीव इस अपार संसार में क्षुधा तृषादि दुःखों से पीड़ित होते हुए बाल मृत्यु अकाम मृत्यु से मरते हैं॥२६३॥

बालमरणाणि बहुसो, अकाममरणाणि चेव य बहूणि।
मरिहिंति ते वराया, जिणवयणं जे न याणंति॥२६४॥

जो जीव जिन वचनों को नहीं जानते, अर्थात् ज्ञान पूर्वक क्रियानुष्ठान में अबोध हैं। वे बेचारे अनेक बार बालमृत्यु और अकाम मृत्यु को प्राप्त करते हैं॥२६४॥

बहुआगमविन्नाणा समाहिउप्पायगा य गुणगाही।
एएण कारणेणं अरिहा आलोयण सोउं॥२६५॥

जो जीव बहुत से आगमों के ज्ञाता समाधि के उत्पादक और गुणों के ग्राहक हैं। उक्त कारणों से वे जीव ही आलोचना सुनने के योग्य माने जाते हैं॥२६५॥

कंदप्प-कोक्कुयाइं तह सील-सहाव-हसण-विकहाहिं।
विम्हावितो य परं कंदप्पं भावणं कुणइ॥२६६॥

साधक कन्दर्प अर्थात् बार-बार हंसना और मुख विकारादि चेष्टाओं द्वारा तथा हास्य और विकथा आदि के द्वारा अन्य व्यक्तियों को विस्मित करता हुआ कन्दर्प भावना का आचरण करता है॥२६६॥

मंताजोगं काउं भूईकम्मं च जे पउंजंति।
साय-रस-इड्ढिहेउं अभिओगं भावणं कुणइ॥२६७॥

जो पुरुष साता, रस और समृद्धि के लिए मंत्र और भूतिकर्म का प्रयोग करता है। वह अभियोगी-भावना का सम्पादन करता है॥२६७॥

नाणस्स केवलीणं धम्मायरियस्स संध-साहूणं।
माई अवण्णवाई किब्बिसियं भावणं कुणई॥२६८॥

ज्ञान केवली भगवन, धर्माचार्य, संघ और साधुओं का अवर्णवाद करने वाला मायावी पुरुष किल्विषी भावना को उत्पन्न करता है॥२६८॥

अणुबद्धरोसपसरो तह य निमित्तम्मि होइ पडिसेवी।
एएहिं कारणेहिं आसुरिय भावणं कुणइ॥२६९॥

निरन्तर रोष का विस्तार करने वाला और त्रिकाल निमित्त का सेवन करने वाला जीव, [illegible] कारणों से आसुरी-भावना को उत्पन्न करता है॥२६९॥

सत्थग्गहणं विसभक्खणं च जलणं च जलपवेसो य।
अणायारभंडसेवा जम्मण-मरणाणि बंधंति॥२७०॥

शस्त्र ग्रहण, विष भक्षण, अग्नि में झंपपात और जल में प्रवेश तथा [illegible] उपहासादि के द्वारा जीव मृत्यु को प्राप्त करते हैं वे जन्म मरण की [illegible]

इति पाउकरे बुद्धे नायए परिनिव्वुए।
छत्तीसं उत्तरऽज्झाए भवसिद्धियसम्मए॥२७१॥ त्ति बेमि॥
॥जीवाजीवविभत्ती॥३६॥
(उत्तरऽज्झयणाणि समत्ताणि)

जो शस्त्र प्रयोग कर, विषादि का भक्षण कर, अग्नि में जलकर, पानी में डूबकर, अनाचार का सेवन करके, मृत्यु करते हैं वे बहुत जन्म मृत्यु की वृद्धि करते हैं॥२७१॥

श्री सुधर्मास्वामीजी कहते हैं कि जम्बू! श्रमण भगवंत श्री महावीर स्वामी जी (अपर नाम-ज्ञात पुत्र) ने इतना ही अर्थात् यह उत्तराध्यायन सूत्र के अध्ययन का यहाँ तक प्ररूपन करते यह ज्ञान प्रकट करते परिनिर्वाण हुए अर्थात् कर्मलाय को बुझाकर परम शीतली भूत बने। सिद्ध गति को प्राप्त हुए॥ यह उत्तराध्ययन सूत्र के छत्तीस अध्ययन भव्य जीवों को ही प्रियकारक-हित कारक होंगे!!

जीवाजीव विभक्ति नामका छत्तीसवां अध्याय समाप्तम्।
॥इति एकोनत्रिंशत्तम उत्तराध्ययन सूत्र समाप्तम्॥

वीराब्द २४४६ वैशाख कृष्णपक्ष १० भोमवार

✦✦✦